कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन

(महाकवि सूर एवं गुरु गोबिन्दसिंह के सन्दर्भ में)

(पंजाब विश्वविद्यालय की पी-एच० डी०—उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)

1977

प्रा. [illegible]
10/2/19[illegible]

निर्देशक :
डॉ० सरन दास भनोत

लेखिका :
भूषण सचदेवा

अनुक्रम

भूमिका — 1 – 9

परिचय - खण्ड

प्रथम - परिच्छेद — 11 — 30

पृष्ठभूमि एवं विषय - प्रवेश

(क) सूर - साहित्य की पृष्ठभूमि ।

1- राजनीतिक परिस्थितियां

2- सामाजिक परिस्थितियां

3- धार्मिक परिस्थितियां

4- साहित्यिक परिस्थितियां

(ख) गुरु गोबिन्दसिंह के साहित्य की पृष्ठभूमि ।

1- राजनीतिक अवस्था

2- सामाजिक अवस्था

3- धार्मिक अवस्था

4- साहित्यिक अवस्था

द्वितीय परिच्छेद — 32 —— 49

प्राचीन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप एवं विकास

1- ` कृष्ण ` शब्द की व्युत्पत्ति

2- वैदिक साहित्य में कृष्ण

3- महाभारत में कृष्ण

4- पुराणों में कृष्ण

5- श्रीमद्भागवत पुराण में कृष्ण

6- लोक भाषाओं में कृष्ण

तृतीय - परिच्छेद — 50 —— 10

कृष्ण काव्य का विकास

1- सूर पूर्व कृष्ण काव्य

2- मध्यकालीन कृष्ण काव्य

3- रीतिकालीन कृष्ण काव्य

4- आधुनिक कृष्ण काव्य

चतुर्थ - परिच्छेद

९२ ——— १२१

महाकवि सूर : एक परिचय

(अ) व्यक्तित्व -

1- जीवन वृत्त - जन्म स्थान, जन्मकाल, जाति तथा वंश, अन्धत्व वैराग्य तथा सम्प्रदाय प्रवेश, गोलोकवास।

(क) बाह्य साक्ष्य (प्राचीन मुख्य)- भक्तमाल, भक्तविनोद, भावप्रकाश, चौरासी वैष्णवत की वार्ता, वल्लभदिग्विजय, सम्प्रदाय कल्पद्रुम, आइने अकबरी, अष्टसखान की वार्ता, मूल - गुसांई चरित, व्यास वाणी, राम रसिकावली ।

(ख) बाह्य साक्ष्य(अर्वाचीन गौण)- भारतेन्दु ग्रियर्सन, हरप्रसाद-शास्त्री, मिश्रबन्धु, श्यामसुन्दरदास, राधाकृष्ण-दास, प्रभुदयाल मित्तल, हरवंशलाल वर्मा, इत्यादि ।

(ग) अन्त: साक्ष्य -

1- (।) सूर- सारावली
(।।) साहित्य लहरी
(।।।)सूर सागर
} मुख्य सामग्री

2- प्रेरणा स्त्रोत

3- बहुज्ञता

4- विशेष प्रभाव

5- जीवन दृष्टि अथवा धार्मिक मान्यतायें

(आ) कृतित्व -

1- सूर सारावली

2- साहित्य लहरी

3- सूर सागर

पंचम - परिच्छेद

गुरू गोबिन्दसिंह : एक परिचय

(अ) व्यक्तित्व -

1- जीवन वृत्त - जन्म, बाल्यकाल, शिक्षा-दीक्षा एवं प्रसिद्ध घटनाएं इत्यादि ।

(क) प्राचीन बाह्याधार (मुख्य)

1- गुरू विलास - भाई सुक्खा सिंह

2- सूरज प्रकाश - भाई सन्तोख सिंह

3- गुरू शोभा - सेनापति

(ख) अर्वाचीन बाह्याधार (गौण)

1- डॉ0 मैकालिफ- दि सिक्ख रिलिजन

2- जे0 डी0 कनिंघम -हिस्ट्री आफ दि सिक्खस

3- प्रो0 तेजासिंह तथा गण्डा सिंह } दा शार्ट हिस्ट्री ऑफ दि सिक्खस

4- डॉ0 गोकुलचंद नारंग- ट्रांसफारमेशन आफ- सिक्खस

5- डॉ0 महीपसिंह - गुरू गोबिन्दसिंह और उनकी - हिन्दी कविता

6- डॉ0 प्रसन्नी सहगल- गुरू गोबिन्दसिंह और उनका - काव्य

7- डॉ0 धर्मपाल मैनी- गुरू गोबिंदसिंह के साहित्य में भारतीय साहित्य के तत्व

8- डॉ0 जयभगवान गोयल- गुरू गोबिंदसिंह :विचार - और चिन्तन

9- डॉ0 रत्नसिंह जग्गी- दशम ग्रंथ की पौराणिक - पृष्ठभूमि

10- प्रो0 करतारसिंह - दुष्ट दमन श्री गुरूगोबिंदसिंह जी

11- श्री इन्द्रपालसिंह - वाणी गुरू गोबिंदसिंह

12- भाई बूटासिंह - श्री दशमेश चमत्कार

13- डॉ0 जयभगवान गोयल - वीर कवि दशमेश

14- डॉ0 विनोद कुमार- गुरू गोबिंदसिंह का काव्य और दर्शन

(आ) कृतित्व

(क) आत्मकथा - विचित्र नाटक

(ख) विशुद्ध भक्तिपरक रचनाएं- जापु, अकाल स्तुति, सफुट छन्द

(ग) पौराणिक आख्यानों पर आधारित रचनायें:-

1- चण्डी चरित्र (उक्ति विलास)

2- चण्डी चरित्र (द्वितीय)

3- चौबीस अवतार

4- ब्रह्मावतार

5- रूद्रावतार

6- ज्ञान प्रबोध

7- शस्त्र नाम माला

8- चरित्रोपाख्यान

तुलना - खण्ड

षष्ठ - परिच्छेद

तुलनात्मक - अध्ययन

(क) वर्ण्य - वस्तु 185 — 236

1- कृष्ण का स्वरूप- बाल्यावस्था, किशोरावस्था, एवं दुष्टदमन रूप में ।

2- कृष्ण काव्य के अन्य पात्र - नंद यशोदा, बलराम, राधा, गोपियां ।

3- भ्रमरगीत ।

4- प्रकृति - चित्रण ।

238 ——-285

(ख) दार्शनिक पक्ष

1- ब्रह्म

2- जीव

3- जगत्

4- माया

5- मुक्ति

287 —— 317

(ग) भाव - पक्ष

287 — 321

(अ) शृंगार - वर्णन

(क) संयोग शृंगार- रूप वर्णन, नखशिख वर्णन एवं क्रीड़ा इत्यादि ।

(ख) वियोग शृंगार- पूर्वराग, मान, प्रवास, करूण एवं बारहमासा- आदि ।

(आ) भक्ति एवं उसका स्वरूप

322 — 377

(घ) कला पक्ष

371 — 442

1- काव्य रूप - प्रबन्ध काव्य, महाकाव्य, गीतिकाव्य एवं मुक्तक काव्य ।

2- रस- व्यंजना - करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, शृंगार, वात्सल्य, अद्भुत एवं शान्त आदि ।

3- छन्द विधान

4- शैली

5- अलंकार योजना -

(।) शब्दालंकार

(।।) अर्थालंकार

6- भाषा- विन्यास

(।) शब्द- शक्तियां

(।।) शब्द कोष- तत्सम, अर्द्धतत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी आदि ।

(iii) चित्र योजना
(iv) संगीतात्मकता
(v) मुहावरे एवं लोकोक्तियां
(इ) साहित्य - सन्देश ५५५ — ५६।

सप्तम-परिच्छेद ५६३ — ४८६

कृष्ण काव्य परम्परा में स्थान

1- गुरू गोबिन्दसिंह - धार्मिक नेता के रूप में
2- महाकवि सूर - सूर परम्परा के निर्माता एवं भक्त की दृष्टि से ।

उपसंहार । ४४४ - ४९८

सहायक ग्रन्थ - सूची ।

भूमिका

000

भारतीय धर्म और संस्कृति के इतिहास में कृष्ण का व्यक्तित्व अत्यन्त विलक्षण है। इस विलक्षण व्यक्तित्व से साहित्य भी अछूता नहीं । हिन्दी - साहित्य के इतिहास में कृष्णाश्रित काव्यधारा विद्यापति से ले कर आज तक निरन्तर प्रवहमान है। कृष्ण ने अपनी विलक्षणता से जन- मानस को जितना मोहा है उतना शायद ही कोई अन्य व्यक्तित्व मोह पाया है । ऋग्वेद के ऋषि कृष्ण(अंगीरस एवं महाभारत के वीर राजनीतिज्ञ कृष्ण ही छांदोग्य उपनिषद में देवकी पुत्र कहे गये जो (कृष्ण) तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्य की दक्षिणा से युक्त थे । कृष्ण- चरित्र का यह विस्तृत रूप हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण और जैन- पुराणों की वीथिकाओं में विचरता हुआ भागवत- पुराण में आ कर व्यवस्थित हो गया । पुराणों में कृष्ण- कथा धार्मिक रूपक के रूप में प्रयुक्त होने लगी और यही रूपक क्रमशः आगे बढ़ता चला गया एवं कवियों की कल्पना उसमें नये प्रसंग और सन्दर्भ जोड़ती चली गयी ।

हिन्दी- साहित्य के प्रारम्भ होने के पूर्व ही कृष्ण के चरित का यह समन्वयात्मक रूप संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य में पूर्णता प्राप्त कर चुका था । हिन्दी- साहित्य में भी हमें युग और परिवेश के अनुरूप कृष्ण के विलक्षण रूप का चित्र दृष्टिगत होता है। सम्पूर्ण कृष्ण- काव्य बाल- गोपाल, रास-रसिक, गीता - उपदेशक - आदि कृष्ण के नानाविधि चित्रों का एक ऐसा एलबम लगता है कि जब भी उसको खोलें उसके चित्रों की मोहकता हमें प्रभावित किये बिना नहीं रहती । रूप ० रे० उच्चार्द्ध में ` कृष्ण- काव्य ` प्रश्न - पत्र में तथा सूर के पदों के रूप में कृष्ण के विभिन्न चित्रों को देखने के साथ ही एवं अनुबंध के रूप में ` गुरु गोबिन्दसिंह कृत कृष्णावतार- कथा ` शीर्षक विषय पर लिखते हुये मेरे मन में जो प्रबल जिज्ञासा उठी, वही इस शोध की मूल प्रेरणा है। उपरोक्त अनुबंध को लिखते हुये दशमग्रन्थ सम्बन्धी सामग्री भी मुझे प्रभूत मात्रा में पढ़ने को मिली ।पंजाब -

विश्वविद्यालय के तत्वाधान में प्रकाशित होने वाली पत्रिका ' परिशोध ' के गुरू गोबिन्दसिंह विशेषांक में प्रकाशित विद्वतापूर्ण लेखों ने भी मुझे बहुत प्रभावित किया। इस बीच दशमग्रन्थ पर विभिन्न दृष्टियों से प्रकाश डालने वाले अनेक शोध-ग्रन्थों का अवलोकन भी मैंने किया, जिनमें प्रमुख हैं 'The Poetry of Dasham Granth' (डॉ० धर्मपाल आष्टा) गुरूमुखी लिपि में हिन्दी- काव्य(डॉ० हरिभजनसिंह), दशमग्रंथ की पौराणिक पृष्ठभूमि (डॉ० रत्नसिंह जग्गी), गुरू गोबिन्दसिंह और उनका काव्य(डॉ० प्रसन्नी सहगल) तथा गुरू गोबिन्दसिंह की हिन्दी कविता (डॉ० महीपसिंह) । यद्यपि इन ग्रन्थों में दशमग्रंथ के प्रतिपाद्य एवं काव्य- सौष्ठव आदि से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का विशद अध्ययन हुआ है तथापि गुरू गोबिन्दसिंह के कृष्ण काव्य के स्वतन्त्र अध्ययन की आवश्यकता अब भी शेष थी। मेरे लिये यह आश्चर्य की बात थी कि कृष्ण पर 2492 छन्दों में आबद्ध प्रबन्ध काव्य लिखने पर भी गुरू गोबिन्दसिंह को हिन्दी कृष्ण- काव्य परम्परा में कोई स्थान प्राप्त नहीं है । गुरू जी कृत कृष्णावतार- कथा को पढ़ते हुये मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि गुरू गोबिन्द-सिंह जी ने भी हिन्दी- कृष्ण- काव्य को बहुत कुछ दिया है। कई स्थलों पर तो गुरू जी हिन्दी के महाकवि सूर को भी पीछे छोड़ गये हैं। मेरे मन में कृष्ण-काव्य को सूर और गुरू गोबिन्दसिंह की दृष्टि से देखने का कौतूहल जागा और इसके लिये मैंने अपेक्षित सामग्री पर्याप्त मात्रा में संकलित कर ली। उस सामग्री के आधार पर मैंने पंजाब- विश्वविद्यालय के हिन्दी- विभाग के वरिष्ठ विद्वानों से इस विषय में शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने के लिये परामर्श लिया। हिन्दी- विभाग के अध्यक्ष ने कृपापूर्वक मेरी योजना को स्वीकृति प्रदान की और विषय निर्धारित हुआ - ' कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन , सूर एवं गुरू गोबिन्दसिंह के सन्दर्भ में ' ।

श्री कृष्ण भारतीय संस्कृति में पूर्णावतार माने जाते हैं । उनमें समस्त कलाओं का पूर्णरूपेण विकास हुआ है। उनका बचपन असाधारण प्रेम, उमंग और उल्लास का प्रतीक है, तो उनका यौवन शृंगार- लीलाओं का, उनकी प्रौढ़ावस्था अलौकिक शक्ति, कुशाग्र बुद्धि तथा नेतृत्व क्षमता का दृष्टान्त है। यदि लोक चातुर्य से उन्होंने संकटापन्न

पाण्डवों का मार्ग निर्दिष्ट किया तो अलौकिक प्रतिभा से अर्जुन को धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र में गीता का तेजस्वी मन्त्र दिया ।

हिन्दी के विश्रुत महाकवि सूर कृष्ण- काव्य में निस्सन्देह सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हैं। परन्तु उन्होंने कृष्ण के योद्धा रूप पर अधिक बल नहीं दिया। गुरु गोबिन्दसिंह कृत कृष्णावतार- कथा पढ़ते समय मुझे ऐसी प्रतीति हुई कि गुरु जी ने अपने परिवेश के कारण उस रूप को जो सूर से छूट- सा गया था, पूर्णरूपेण उजागर किया है । गुरु जी कृत कृष्णावतार- कथा गुरुमुखि लिपि में लिखी होने के कारण हिन्दी- जगत् से उपेक्षणीय रही पर फिर भी उसकी भाषा ब्रज है और यही इस तुलना का मुख्य स्रोत है जिसने इन दो अलग समयों के कवियों को भावना और कल्पना के क्षेत्र में एक साथ लाकर बिठा दिया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध सात परिच्छेदों में विभाजित है। प्रथम परिच्छेद में महाकवि सूर एवं गुरु गोबिन्दसिंह के साहित्य की पृष्ठभूमि को लिया गया है। प्रत्येक कवि परम्पराओं के साथ- साथ अपने युग के परिवेश से दूर नहीं जा पाता । राजनीतिक , सामाजिक , धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियां किसी न किसी रूप में उसे प्रभावित अवश्य करती है। उन्हीं परिस्थितियों की विवेचना इस परिच्छेद में की गयी हैं ।

द्वितीय तथा तृतीय परिच्छेद में कृष्ण के स्वरूप तथा उसके विकास को लिया गया है। द्वितीय परिच्छेद में कृष्ण- शब्द की उत्पत्ति, वेदों में वर्णित कृष्ण का रूप, महाभारत में कृष्ण, छान्दोग्य उपनिषद में कृष्ण, पुराणों में कृष्ण तथा श्रीमद्- भागवत पुराण में कृष्ण के सर्वांगपूर्ण रूप का वर्णन करते हुये संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश - काव्य में कृष्ण के रूप का जो चित्रण मिलताहै उसका वर्णन करने के बाद तृतीय परिच्छेद में हिन्दी में कृष्ण- काव्य का विकास आदिकाल से अब तक लिया गया है । हिन्दी कृष्ण काव्य विद्यापति से प्रारम्भ होता है। उसके पश्चात् सूरदास से पूर्व के सभी कवियों का विवेचन करते हुये निम्बार्क सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय, वल्लभ सम्प्रदाय और उसकी प्रमुख विशेषताओं की विवेचना करने के पश्चात् राधा - वल्लभ सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय तथा सम्प्रदायमुक्त कवियों के कृष्ण काव्य की

विवेचना की गई है । भक्ति काल के कवियों के पश्चात् रीतिकाल में भक्ति- शृंगार, स्वच्छन्द शृंगार और रीति- शृंगार के कृष्ण - वर्णन का विवेचन है । आधुनिक काल में भारतेन्दु से आज तक कृष्ण- काव्य का विवेचन करते हुये यह परिच्छेद पूर्ण किया गया है।

चतुर्थ परिच्छेद में महाकवि सूरदास के व्यक्तित्व तथा कृतित्व की विवेचना की गई है। व्यक्तित्व के अन्तर्गत बाह्य साक्ष्य और अन्त: साक्ष्य के आधार पर महाकवि का जीवन वृत्तान्त विवेचित है और कृतित्व के अन्तर्गत सूर- सारावली, साहित्य लहरी और सूरसागर का परिचय दिया गया है।

पंचम परिच्छेद के अन्तर्गत गुरु गोबिन्दसिंह के व्यक्तित्व तथा कृतित्व को लिया गया है। गुरु जी के जीवन- वृत्त का विवेचन भी प्राचीन और अर्वाचीन बाह्य- धारों पर तथा दशम ग्रंथ में विचित्र- नाटक के आधार पर किया गया है। उनके कृतित्व के अन्तर्गत दशमग्रन्थ की विवेचना है। उनकी रचनाओं का परिचय आत्मकथा विशुद्ध भक्ति परक एवं पौराणिक आख्यानों पर आधारित भागों में कर के दिया गया है।

षष्ठ परिच्छेद में महाकवि सूर और गुरु गोबिन्दसिंह के कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत परिच्छेद को पांच भागों में बांटा गया है । प्रथम भाग में वर्ण्य- वस्तु की दृष्टि से दोनों कवियों का तुलनात्मक अध्ययन है । यह भाग चार उपभागों में विभाजित है। प्रथम उपभाग में उपास्य (कृष्ण) का स्वरूप है जिसमें बाल, रास, दान, मान एवं चरित्र हरण लीलाओं के साथ- साथ कृष्ण के लोक- रक्षक एवं दुष्ट दमन रूप की विवेचना की गयी है । द्वितीय उपभाग के अन्तर्गत कृष्ण- काव्य के अन्य प्रमुख पात्रों को लिया गया है। तृतीय उपभाग में भ्रमरगीत प्रसंग का विश्लेषण तथा अंतिम उपभाग में प्रकृति के विविध रूपों की विवेचना की गयी है

द्वितीय भाग के अन्तर्गत दोनों विवेच्य कवियों के कृष्ण- काव्य के दार्शनिक पक्ष की विवेचना पांच उपभागों में विभाजित करके की गई है । ब्रह्म, जीव, जगत् माया, तथा मोक्ष । इन सभी की क्रमश: विवेचना करने से पूर्व सांख्य योग एवं वेदान्त-

दर्शन का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। उसके उपरान्त श्रीमद्भागवत के दार्शनिक तत्वों की संक्षिप्त विवेचना करते हुये आचार्य वल्लभ के दार्शनिक सिद्धान्तों का परिचय दिया गया है। सिक्ख गुरुओं की दार्शनिक मान्यताओं का परिचय देने के बाद सूरदास और गुरु गोबिन्दसिंह की दार्शनिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन क्रमशः ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, काल तथा मोक्ष आदि के शीर्षकान्तर्गत किया गया है।

तृतीय भाग में भाव- पक्ष के अन्तर्गत शृंगार एवं भक्ति का वर्णन है। शृंगार कृष्णकाव्य का प्रखरतम स्वर है जिसमें संयोग के अन्तर्गत रूप सौन्दर्य और उनकी विभिन्न क्रीड़ाओं का विवेचन है तथा विप्रलम्भ के अन्तर्गत पूर्वराग, मान, प्रवास, करुण तथा विरह की अन्य अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। विप्रलम्भ शृंगार में ही सूर के भ्रमरगीत एवं गुरु गोबिन्दसिंह के `बारहमासा` के संकेत विवेचित हैं। भक्ति के अन्तर्गत भक्ति की विवेचना करते हुये उसके प्रकारों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। सिक्ख सम्प्रदाय में भक्ति तथा शक्ति की उपासना का विवेचन करने के बाद श्री वल्लभाचार्य की पुष्टि भक्ति का परिचय देते हुये सूरदास और गुरु गोबिन्दसिंह कृष्णकाव्य में भक्ति की तुलनात्मक विवेचना की गई है। दोनों विवेच्य कवियों के नवधा परक भावों का तुलनात्मक अध्ययन करने के उपरान्त भक्तिरस के भेदों का परिचय है। गुरु गोबिन्दसिंह की प्रेमाभक्ति की विवेचना करने के बाद सूरदास की पुष्टिमार्गीय सेवा की विवेचना की गई है। और अन्त में दोनों कवियों की निष्काम- भक्ति- रूप की विवेचना करते हुये इस भाग का समापन किया गया है।

चतुर्थ भाग में कला पक्ष का तुलनात्मक अध्ययन है। प्रारम्भ में काव्य- रूपों का परिचय दिया गया है। कृष्णावतार कथा की प्रबन्धात्मकता का विवेचन करने के बाद गीतिकाव्यात्मकता की दृष्टि से सूर और गुरु गोबिन्दसिंह के कृष्णकाव्य की तुलना की गई है। रस- व्यंजना के अन्तर्गत विविध रसों की विवेचना है। छन्द - विधान में दोनों कवियों द्वारा प्रस्तुत छन्दों का विवेचन है। शैली पक्ष में वर्णन शैली गीत- शैली और दृष्टकूट शैली का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है

अलंकार- योजना के अन्तर्गत विवेच्य कवियों द्वारा प्रयुक्त विविध शब्दालंकार एवं अर्थालंकारों की विवेचना की गई है। भाषा- विन्यास के अन्तर्गत दोनों कवियों द्वारा प्रयुक्त विविध शब्दों, शब्द- शक्तियों , काव्य गुणों, चित्रात्मकता, संगीतात्मकता एवं मुहावरे तथा लोकोक्तियों का तुलनात्मक विवेचन है ।

पंचम भाग में महाकवि सूरदास तथा गुरु गोबिन्दसिंह के उन जीवनोद्देश्यों का तुलनात्मक विवेचन किया गया है जो उनके काव्य का सन्देश बन गये हैं।

सप्तम परिच्छेद में कृष्णकाव्य-परम्परा में सूरदास के भक्त रूप तथा गुरु - गोबिन्दसिंह के धार्मिक नेता रूप के विविध पक्षों की विवेचना करते हुये सम्पूर्ण कृष्ण-काव्य परम्परा में दोनों विवेच्य कवियों के स्थान निर्धारण का प्रयास किया गया है।

उपसंहार में सम्पूर्ण शोधकार्य पर विहंगम दृष्टिपात करते हुये प्रबन्ध का समापन है तथा अन्त में सहायक-ग्रन्थ-सूची दी गई है ।

मौलिकता -इस शोध- प्रबन्ध की मौलिकता इसकी विषयवस्तु से ही स्पष्ट है । गुरु गोबिन्दसिंह कृत हिन्दी- साहित्य की अमर कृति ` कृष्णावतार कथा ` का स्वतन्त्रतया मूल्यांकन प्रथम बार इस शोध- प्रबन्ध में हुआ है । वास्तव में हिन्दी के कृष्ण काव्य में ` कृष्णावतार ` ही पहला ग्रंथ है जिसमें कृष्ण के युद्धों का इतनी विशदता और विस्तार से वर्णन किया गया है और पहली बार इसी रचना में ही कृष्ण एक दुष्ट - विनाशक, धर्म संस्थापक, कुशल नीतिज्ञ युद्धवीर एवं लोकरक्षक के रूप में चित्रित हुये हैं। सूर सहित ब्रज के अन्य कवियों ने तो कृष्ण के रसेश्वर एवं बाल रूप को ही उजागर किया था परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह ने ही कृष्ण को सर्वप्रथम लोकरक्षक रूप प्रदान किया । सबसे बड़ी बात तो यह है कि कृष्ण के इतने विशद एवं व्यापक रूप को लेकर लिखा जाने वाला यही एक प्रथम महाकाव्य है। इससे पूर्व कृष्ण- काव्य परम्परा में कृष्ण को लेकर लिखा जाने वाला कोई प्रबन्ध काव्य नहीं मिलता । फिर भी, गुरमुखी लिपि का अत्यल्प प्रचार होने के कारण ब्रजभाषा में लिखा जाने पर भी कृष्णावतार का युद्ध - प्रबन्ध अभी तक हिन्दी- समीक्षकों द्वारा प्राय: उपेक्षित ही रहा। दशम- ग्रन्थ पर कुछ शोध प्रबन्ध लिखे जाने पर भी इसका समुचित मूल्यांकन नहीं हुआ ।

प्रस्तुत शोध- प्रबन्ध की मौलिकता यह है कि इसमें गुरु गोबिन्दसिंह को हिन्दी - कृष्ण- काव्य परम्परा में एक वरिष्ठ स्थान प्रदान करने का प्रयास किया गया है और यह सिद्ध किया गया है कि गुरू गोबिन्दसिंह के परवर्ती हिन्दी- कृष्ण - कवियों पर ` कृष्णावतार ` का यथेष्ठ प्रभाव पड़ा । ` कृष्णावतार ` के पश्चात् आधुनिक काल में भी कृष्ण पर कुछेक प्रबन्ध लिखे गये जिन में कृष्ण के वीर योद्धा एवं लोकरक्षक रूप को ही गौरव प्रदान किया गया । इस शोध प्रबन्ध में मौलिकता इस बात को ले कर भी है कि गुरू गोबिन्दसिंह ने हिन्दी- कृष्ण- काव्य -परम्परा में एक नवीन सम्प्रदाय को जन्म दिया जिसे ` वीर- सम्प्रदाय ` का नाम दिया जा सकता है । गुरू जी के परवर्ती कवि जोकि कृष्ण के वीर रूप को लेकर चले, इसी सम्प्रदाय से प्रभावित अथवा दीक्षित कहे जा सकते हैं ।

अत: इस शोध प्रबन्ध की मौलिकता यही प्रामाणित करने में है कि गुरू गोबिन्दसिंह ने कृष्ण के परम्परा से चले आ रहे लोकरंजक रूप को अपने युग एवं परि- स्थितियों के अनुसार बदल कर लोकरक्षक रूप प्रदान किया । इस दृष्टि से गुरू गोबिंदसिंह ने ही अपने कृष्ण-काव्य में कृष्ण के पूर्णावतार रूप को स्पष्ट किया है। इस लिए कृष्ण- काव्य- परम्परा को एक नया एवं उत्कृष्ट रूप प्रदान करने के नाते गुरू गोबिंदसिंह को हिन्दी- काव्य- परम्परा में सूर के सदृश ही वरिष्ठ स्थान मिलना ही चाहिये । जिस प्रकार महाकवि सूर हिन्दी- कृष्ण- काव्य में कृष्ण के बाल- वर्णन ने प्रथम कवि कहे जाते हैं उसी प्रकार गुरू गोबिन्दसिंह को भी हिन्दी- कृष्ण- काव्य- परम्परा में कृष्ण के वीर एवं योद्धा रूप को प्रतिष्ठित करने ` वाले प्रथम कवि के रूप में कृष्ण - काव्य- परम्परा में योग्य स्थान मिलना ही चाहिये । यही इस शोध- प्रबन्ध का उद्देश्य है ।

आभार स्वीकार - प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध की आरम्भिक परिकल्पना से ले कर पूर्णता तक अनेक विद्वानों की प्रकृष्ट प्रतिभा और वरद अनुकम्पा मेरी सहायक रही है ।सर्वप्रथम मैं पंजाब विश्वविद्यालय के हिन्दी- विभाग के अध्यक्ष डॉ० इन्द्रनाथ मदान के प्रति

अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट करती हूं जिन्होंने प्रस्तुत शोध - प्रबंध के विषय को स्वीकार करके मेरे चिरकालीन स्वप्न की पूर्ति का अवसर उपलब्ध किया ।

प्रस्तुत शोध- प्रबन्ध डॉ० सरनदास भनोट के निर्देशन में लिखा गया है । उनके स्नेह युक्त निर्देशन के अभाव में मेरा कार्य सुगम नहीं हो सकता था । उनके प्रति कुछ कह सकने में मेरी लेखनी समर्थ नहीं है। उनके अतिरिक्त अपने शोध- कार्य में मुझे जिन विद्वानों से सहायता और प्रेरणा मिली है उन में से डॉ० मनमोहन सहगल(अध्यक्ष , हिन्दी-विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय,पटियाला), डॉ० रत्नसिंह जग्गी (पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला), डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त (आचार्य तथा अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, रोहतक विश्वविद्यालय) डॉ० यश गुलाटी (हिन्दी- विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय) एवं डॉ० किरणचन्द्र शर्मा, के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूं जिन्होंने, समय - समय पर जब भी मैंने कुछ जानने का प्रयास किया तो, अपने अमूल्य समय में से, व्यस्त होते हुये भी सौहार्दपूर्वक मुझे राह सुझायी । डॉ० धर्मपाल मैनी जी की पुस्तक ` गुरु गोबिन्दसिंह के काव्य में भारतीय संस्कृति के तत्व ` से मुझे विशेष सहायता और प्रेरणा मिली है। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं परन्तु परोक्ष रूप में उन्होंने जो मेरी सहायता की है वह भुलाई नहीं जा सकती । इसी प्रकार डॉ० एन० एस० दक्षिणामूर्ति की कृति ` हिन्दी और तेलगु के कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन ` , तथा डॉ० तपेश्वरनाथ कृत ` हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप: विकास ` भी मेरे प्रेरणा स्रोत रहे हैं । अत: उनके प्रति भी आभार प्रदर्शित करना मेरा कर्तव्य है ।

मुझे अपने इस प्रबन्ध में अनेक विद्वानों की कृतियों से सहायता मिली है यथास्थान उनका उल्लेख भी मैं ने किया है। निम्नलिखित पुस्तकालयों से मैंने लाभ उठाया है :- सैन्ट्रल लाइब्रेरी,पटियाला, केन्द्रीय पुस्तकालय,पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला, केन्द्रीय पुस्तकालय, पंजाब विश्वविद्यालय , चण्डीगढ़ । विभागीय पुस्तकालय हिन्दी - विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ , देव समाज कॉलिज पुस्तकालय, अम्बाला

)

शहर, डी० ए० वी० कालिज पुस्तकालय अम्बाला शहर, गुरु गोबिन्दसिंह म्युसिपल-लायब्रेरी अम्बाला शहर, स्टेट लायब्रेरी अम्बारा कैन्ट, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान अम्बाला कैन्ट, आर० के० एस० डी० कालिज पुस्तकालय कैथल - इन सभी पुस्तकालयों के प्रबन्धकर्ताओं के प्रति मैं आधार प्रकट करती हूं ।

अपने परिवार के सदस्यों के प्रति भी मैं आधारी हूं जिनकी प्रेरणा एवं स्नेह से मुझे पर्याप्त सहायता मिली है ।

अन्त में यह शोध- प्रबन्ध सुधी विद्वज्जनो के कर- कमलों में समर्पित है । यह विनम्र प्रयास यदि उन्हें कुछ भी संतोष दे पाया तो मैं अपने इस कार्य को सफल समझूंगी ।

भूषण सचदेवा

भूषण सचदेवा

प्रथम - परिच्छेद

पृष्ठभूमि एवं विषय - प्रवेश

(क) सूर साहित्य की पृष्ठभूमि

(ख) गुरू गोबिंदसिंह के साहित्य की पृष्ठभूमि

पृष्ठभूमि एवं विषय- प्रवेश

यह एक ध्रुव सत्य है कि मानव परिस्थितियों से प्रभावित होता है । वस्तुत: बाह्य हलचल ही चेतना की प्रसुप्त शक्तियों को जागृत एवं उत्तेजित करती रहती है । कदाचित् यही कारण है कि साहित्य- सर्जक कवि जहां एक ओर अपने देश एवं समाज से प्रभावित होता है वहां दूसरी ओर अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के माध्यम से तत्कालीन समाज को नये रूप एवं आकार में ढालने का प्रयत्न भी करता है । हमारे इन दोनों आलोच्य कवियों (महाकवि सूरदास एवं गुरू - गोबिन्दसिंह) का व्यक्तित्व और कृतित्व भी तद्युगीन परिवेश से न केवल निर्मित एवं प्रभावित है वरन् उसमें नये मोड़ देने में भी समर्थ हुआ है । अतएव पृष्ठभूमि के रूप में इन परिस्थितियों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है ।

सूर-साहित्य की पृष्ठभूमि

हिन्दी साहित्याकाश के उज्जवल नक्षत्र भक्त शिरोमणि महाकवि सूरदास पन्द्रहवीं - सोलहवीं शताब्दी की एक महान् विभूति हैं । यद्यपि एकान्त साधना - निरत भक्त होने के नाते सूरदास की दृष्टि अन्तर्मुखी आत्मपरक ही अधिक रही, फिर भी उनका काव्य अपने युग के प्रभाव से सर्वथा मुक्त नहीं है । तत्कालीन परिस्थितियों ने सूर की काव्य एवं धर्म-साधना को तो प्रभावित किया ही प्रत्युत अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं काव्य- प्रतिभा से सूर ने भी उस युग की भक्ति - भावना को एक नई दिशा दी । मानव के अन्तर में छिपी भावनाओं एवं वासना के सभी नालों को भक्ति की मन्दाकिनी में मिलाकर उन्हें गंगा की-सी पावनता प्रदान करने का श्रेय महाकवि सूरदास जी को ही प्राप्त है ।

1- राजनीतिक परिस्थितियां -

सूरदास जी का आविर्भाव उस समय हुआ था जिस समय हमारे देश में

2)

सर्वत्र विदेशी मुसलमानों के आतंक की व्याप्ति हो गई थी । देश की राजनैतिक अवस्था अस्त-व्यस्त हो रही थी । मुस्लिम शासक हिन्दू जनता पर अनेक अत्याचार कर रहे थे । उन्हें इस्लाम- धर्म स्वीकार करने के लिए विवश किया जाता था। जनता में उत्साह नहीं था, लोग व्याकुल हो रहे थे और ऐसी ही दशा में मनुष्य विरक्ति, दीनता और विनय की बात सोचता है । महाकवि सूर के जीवन का प्रारम्भिक काल इसी अव्यवस्थित दशा में व्यतीत हुआ और उसका उनके जीवन तथा साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा ।

अकबर के शासनकाल तक भारत की राजनैतिक अवस्था बहुत ही अस्त - व्यस्त रही । अकबर से पूर्व क्रमश: बहलोल लोदी, सिकन्दर लोदी, इब्राहीम लोदी, बाबर, हुमायूं, शेरशाह सूरी, इस्लाम शाह, मुहम्मद आदिल शाह सिकन्दर शाह, हुमायूं(पुन:) आदि शासकों ने दिल्ली पर अपना अधिकार जमाया जिनकी शासन- नीति क्रूरता, धर्मान्धता तथा पक्षपातपूर्ण थी । सुल्तान काल की हिन्दू- जनता की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए डॉ० ईश्वरीप्रसाद जी लिखते हैं - " इस्लाम धर्म का प्रचार भारत में उसके सरल सिद्धान्तों के कारण नहीं, अपितु इसलिए हुआ कि वह एक राजशक्ति का धर्म था, जिसका प्रचार विजित प्रजा में बलात् कृपाण और दण्ड के आधार पर किया जाता था । स्वार्थ - सिद्धि एवं राजसभा में उच्च पद प्राप्त करने के लोभ में लोग अपने धर्म को त्याग कर इस्लाम स्वीकार कर लेते थे, किन्तु पद- प्राप्ति- प्रलोभन एवं राज्य की ओर से आर्थिक पुरस्कार उस वर्ग के प्रति हिन्दुओं के हृदय में कसकती वैर- भावना को दबाने में सफल नहीं हुए, जिसने उनके स्वातन्त्र्य का अपहरण किया था और उनके धर्म को घृणा की भावना से देखा था ।[1] "

1- हिस्ट्री आफ मैडीवियल इण्डिया - डॉ० ईश्वरीप्रसाद - पृ० 465 ।

वास्तव में मुसलमानों द्वारा किये गये अत्याचारों से हिन्दू -समाज विक्षुब्ध हो गया था । सिकन्दर लोदी के राज्यकाल में तो हिन्दुओं पर अत्याचार करने का एक आन्दोलन सा ही चल पड़ा था ।

भारत के उक्त सुल्तानों में शेरशाह सूरी तथा अकबर ऐसे बादशाह अवश्य हुए जिन्होंने सम्पूर्ण प्रजा की आर्थिक दशा को सुधारा था और प्रजाहित के लिए कार्य किए थे । अकबर की नीति, बुद्धिमत्ता एवं उदारता से हिन्दू - जनता काफी प्रभावित हुई । अकबर जानता था कि मुगल- साम्राज्य की नींव की दृढ़ता के लिए केवल सम्पूर्ण देश को जीतना ही पर्याप्त नहीं अपितु इसके लिए हिन्दू- जनता के दिलों को भी जीतना होगा । अकबर ने एक शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता की स्थापना की । हिन्दू-प्रजा की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए अकबर ने ' दीन - ए - इलाही ' का मत चलाया और ' जजिया ' कर उठा दिया । बड़े-बड़े पदों पर हिन्दू कर्मचारी नियुक्त किये और सम्पूर्ण प्रजा को उदार दृष्टि से देखा । अकबर ने सभी धर्मों के प्रति उदारता प्रकट की और सब को स्वतंत्रता के साथ विकसित होने का अवकाश दिया ।

अकबर विद्या- प्रेमी भी था । उसने पण्डितों, गायकों और कवियों का सम्मान किया । तानसेन जैसे गायक और रहीम, गंग एवं नरहरि जैसे हिन्दी कवि भी उसके दरबार में थे । वास्तव में अकबर साहित्य एवं कला का पोषक था । अकबर-युग की इस अनुकूल परिस्थिति ने कृष्ण- भक्ति - धारा के कवियों को प्रभावित किया और हिन्दी के कृष्ण- भक्त कवि तन्मय होकर कृष्ण की लीलाओं का गान करने में लग गये । कला प्रिय होने के साथ ही अकबर विलासी भी था और उसकी इस विलासिता का प्रभाव तत्कालीन कवियों के काव्य में भी यत्र- तत्र मिल जाता है । मुस्लिम बादशाहों की देखा देखी हिन्दू राजा भी विलासिता के जीवन को अपनाने लगे थे । राजपूत राजाओं ने भी अपना आत्म-सम्मान और वीरता खो दी थी । कदाचित् इसी कारण तत्कालीन कृष्ण-भक्त-

कवियों के कृष्ण भी अपने रसिकेश्वर रूप में ही प्रकट हुए। कृष्ण का वीर एवं योद्धा रूप इन कवियों की दृष्टि में नहीं उतर सका ।

श्री वल्लभाचार्य ने अपने समय की परिस्थितियों के विषय में 'कृष्णाश्रय ' ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा है - " देश मलेच्छों से आक्रान्त है, मलेच्छों से दबा हुआ देश पाप का स्थान बन गया है। सत्पुरुषों को पीड़ा दी जाती है । सम्पूर्ण लोक इस पीड़ा से पीड़ित है, ऐसे देश में भगवान कृष्ण ही हमारे रक्षक हैं । गंगा आदि सब उत्तम तीर्थ भी दुष्टों से आक्रान्त हो रहे हैं, ब्रह्मचर्यादि व्रत से लोग रहित हैं। ऐसे लोगों के पास रहने से वेदमन्त्र हीन हो गये हैं । उनके अर्थ और ज्ञान भी विस्मृत हो गये हैं । ऐसी दशा में केवल कृष्ण ही मेरी गति हैं ।[1] "

वस्तुत: तत्कालीन विषम परिस्थितियों से जूझ कर ही वल्लभाचार्य की भांति सूर एवं अन्य कृष्ण- भक्त कवियों ने सांसारिक सुखों की अवहेलना करते हुए भगवान कृष्ण के मनोहर स्वरूप को अपनी भक्ति का आलम्बन बनाया । इन भक्त कवियों की राजनीतिक परिवर्तनों के प्रति उदासीनता का संकेत इस उक्ति में स्पष्ट मिलता है :- " सन्तन को कहा सीकरी सो काम " -(कुम्भनदास)

यही कारण है कि भक्त सूरदास के काव्य में तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का सीधा वर्णन हमें उपलब्ध नहीं होता, परन्तु कुछ पदों में उसका हल्का सा रूप अवश्य दृष्टिगत होता है जैसे :-

" खेलन में को काको गुसैयां ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैया ।।
जाति पांति हमतें बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयां ।
अति अधिकार जनावत यातें जातें अधिक तुम्हारी गैयां ।।[2] "

1- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, दूसरा भाग, डॉ. दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ 30 से उद्धृत ।

2- सूरसागर(दशम स्कंध)-काशी नागरी प्रचारिणी सभा- पद सं0 244 ।। 862 ।। पृ0 343 ।

राजसत्ता के विरोध में प्रजा का भाव ही यहां व्यक्त हुआ है। प्रजा राजा को चुनौती देती सी जान पड़ती है । वास्तव में सूर एकान्त साधना प्रिय भक्त कवि थे । अत: अपने समय की राजनीतिक उलझनों से उदासीन होकर उन्होंने अपनी सम्पूर्ण चित्तवृत्तियों को भगवान कृष्ण की ओर उन्मुख किया था ।

2- सामाजिक परिस्थितियां -

सूरदास के युग में मुगलों की कठोर नीति के कारण जन- साधारण की सामाजिक स्थिति संतोषजनक नहीं थी । हिन्दू - जनता में कोई संगठन न था । वर्णाश्रम-धर्म की व्यवस्था भी शिथिल पड़ने लगी थी । शिक्षा का प्रचार अधिकतर उच्चवर्ग के लोगों में था । साधारण जनता अशिक्षित ही थी । साधारण जनता की आर्थिक स्थिति भी दयनीय थी। पीड़ित और अशिक्षित हिन्दू-जनता में अन्ध-विश्वास, भेद- भाव, ईर्ष्या- द्वेष, साहसहीनता और कलह आदि कुत्सित भाव बल पकड़ रहे थे । निम्न लोग अस्पृश्य समझे जाते थे । ब्राह्मणों में आध्यात्मिक एवं मानसिक शक्ति क्षीण हो गई थी , क्षत्रियों में शौर्य, त्याग एवं देश- प्रेम की भावना लुप्त होती जा रही थी ।

अकबर के शासनकाल में सामाजिक अवस्था में भी कुछ सुधार आया । राजदरबार में स्थान पा कर हिन्दू जनता की आर्थिक दशा सुधरने लगी । हिन्दू-कवियों एवं साहित्यकारों को भी शाही दरबार में सम्मान मिलने लगा । अकबर के राजत्व काल में विदेशी सत्ता का आतंक काफी कम हो गया । अकबर ने हिन्दुओं के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर हिन्दुओं और मुसलमानों को समान अधिकार दिया, लेकिन सर्वत्र हिन्दुओं का स्तर मुसलमानों के समान नहीं था ।

देश की बिगड़ती हुई सामाजिक दशा को सुधारने के लिए कुछ धर्माचार्य भी आगे आये, जैसे स्वामी रामानन्द ने अछूत और दलित हिन्दू जातियों को भी

अपनाया, कबीर ने साम्प्रदायिक कट्टरता और जाति- पाति एवं भेद- भाव का खुला विरोध किया । कबीर तो वस्तुत. एक महान् समाज- सुधारक के रूप में अवतीर्ण हुए । श्री वल्लभाचार्य तथा श्री बिट्ठलनाथ ने भी छुआछूत आदि को हटाने के लिए निरन्तर प्रयास किये । महाकवि तुलसीदास ने भी अपने ` मानस ` के ` उत्तरकाण्ड ` में कलियुग के धर्म एवं समाज के चित्रण के रूप में वस्तुत:तत्कालीन हिन्दू समाज का ही चित्रण किया है। लेकिन इतना होने पर भी असंगठित एवं साम्प्रदायिक धर्म की क्रियाओं से प्रतिबन्धित यह आन्दोलन इतने विस्तृत देश के अशिक्षित तथा छिन्न- भिन्न हिन्दू समाज को संगठित करने में सफल नहीं हो पाए ।

इस प्रकार सूरदास के समय में जनता की सामाजिक स्थिति संतोषजनक नहीं थी । सूर अपने समय की सामाजिक अवस्था से अवश्य प्रभावित हुए । उनके अनेक पदों में सामाजिक परिस्थितियों से खिन्न अन्तरात्मा की पुकार स्पष्ट सुनाई पड़ती है । सांसारिक विषयों एवं वासना से आलिप्त मनुष्य के जीवन की विफलता के अनेकों मार्मिक चित्र सूर के काव्य में दृष्टिगत होते हैं जो तत्कालीन सामाजिक अवस्था की दयनीयता का ही परिणाम हैं ।

3- धार्मिक परिस्थितियां -

जिस युग में राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियां ही उन्नत न हों तो फिर वहां धर्म कैसे टिक सकता है । उस समय धर्म- साधना का भी कोई सर्व-स्वीकृत तथा सुव्यवस्थित स्वरूप देश में प्रचलित नहीं था । लेकिन, सुदूर वैदिक युग के अन्तर से फूट कर भारतीय दर्शन एवं भक्ति की पावन एवं निर्मल धारा कल- कल निनाद करती हुई उपनिषद की घाटियों को रमणीय बनाती हुई, सिद्धों के शान्त एवं सुरम्य तपोवनों से होती हुई एवं नाथ- साहित्य की कठोर साधना - भूमि को स्पर्श करती हुई जन- मानस को भी आन्दोलित करने लगी थी।

मुस्लिम आक्रान्ताओं के आघात से चिन्तन एवं भक्ति के चिर- पोषित बीज कसमसाने लगे थे । तभी दक्षिण से स्वामी रामानुजाचार्य की करुणा मिश्रित गम्भीर वाणी सुनाई दी कि मनुष्य और संसार ईश्वर के ही रूप हैं। उनका यह मत विशिष्टाद्वैत कहलाया। दूसरा स्वर उठा पश्चिम में गुजरात के प्रांगण से स्वामी मध्वाचार्य का कि ब्रह्म अविनाशी है, स्वामी है और जीव उसका सेवक है। यह द्वैतवाद कहलाया । तीसरा स्वर था विष्णुस्वामी का जिन्होंने कृष्ण के साथ- साथ राधा की भक्ति पर भी बल दिया । उनकी यह धारणा शुद्धाद्वैत कहलाई । महाप्रभु वल्लभाचार्य इसी पथ के पथिक थे और सूर वल्लभाचार्य के अनुयायी थे। चौथा और शायद अन्तिम गुरु गम्भीर स्वर था स्वामी निम्बार्क का जिन्होंने जीव और ब्रह्म दोनों को भिन्न माना । लेकिन, साथ में यह भी कहा कि जब जीव ब्रह्म में अपना अस्तित्व खो देता है तो दोनों मिल कर एक हो जाते हैं। इस मत को द्वैताद्वैत की संज्ञा मिली ।

इसके अतिरिक्त कबीर और दादू जैसे निर्गुणोपासक सन्तों की वाणी हिन्दू और मुसलमानों के बीच बढ़ते हुए भेद- भाव को दूर करने में काफी हद तक लाभदायक सिद्ध हुई तो दूसरी ओर सूफी मत के समर्थक मुसलमान सूफी साधकों ने भी हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सांस्कृतिक एकता को लाने का स्तुत्य प्रयास किया । इन सूफी साधकों ने प्रेम द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग सुझाया । मुस्लिम धर्म- प्रचार की प्रतिक्रिया एवं मायावाद शून्यवाद, शैव, शाक्त, वैष्णव, ज्ञानी योगी आदि की प्रतिद्वन्द्विता के फलस्वरूप भक्ति- आन्दोलन भी बल पकड़ता जा रहा था । अष्टछाप के समय में आकर इस भक्ति - आन्दोलन का बहुत विस्तार हुआ और अकबर के शासन काल में तो यह आन्दोलन देश- व्यापी हो गया ।

तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों का सूर पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा । सूर ने निर्गुणोपासकों के ज्ञान और नाथ पंथियों के योग की अपेक्षा भगवद्भक्ति को

अधिक उच्च स्थान दिया है। सूर के भ्रमरगीत में गोपी- उद्धव- संवाद निर्गुण ब्रह्म की भक्ति हेतु अनुपयुक्त सिद्ध करने के लिए सगुणोपासना की महत्ता को प्रतिपादित करता है ।

इस विषय में डॉ० हरवंश लाल शर्मा भी लिखते हैं कि - ` हमारे चरित्र नायक भक्तप्रवर सूरदास इस भक्ति आन्दोलन के अपार- पारावार में डूबती- उतरती जन- साधारण की नौका के कर्णधार कहे जा सकते हैं जिन्होंने मत - मतान्तरों के झंझावत से डगमगाती हुई उस साधना - तरणी को प्रेमाभक्ति के पतवारों से ब्रजलोक के सुरम्य तट पर लाकर खड़ा कर दिया । संसार के संकीर्ण वातावरण में तड़पते हुए मानव को उन्होंने उस उच्च भाव- भूमि पर ला कर बिठा दिया, जहां एक ओर तो वह रेहिकता की क्लुषित दुर्गन्ध से मुक्त होकर ईर्ष्या- द्वेष, छल-कपट आदि से रहित उन्मुक्त वायु में सांस ले सका और दूसरी ओर सांसारिक संताप से तप्त मनुष्य की दशा पर आंसू बहाता हुआ हाथ बढ़ा कर उसे ऊपर उठने में सहारा दे सका । जनता की क्लुषित मनोवृत्तियों का परिष्कार कर उन्हें ब्रह्ममय कृष्ण की ओर अभिमुख कर सूर ने लोक- कल्याण का बड़ा भारी कार्य किया ।[1] `

4- साहित्यिक परिस्थितियां -

सूर के पूर्ववर्ती युग की काव्य- शैलियों एवं साहित्यिक परम्पराओं से भी सूरदास ने काव्य- रचना की प्रेरणा प्राप्त की है। उनका काव्य मुख्यत: गेय - पद शैली में ही आबद्ध है । सूरदास के समय तक गीति- काव्य की परम्परा पर्याप्त प्रौढ़ एवं लोकप्रिय हो चुकी थी । जयदेव के ` गीत- गोविंद ` से नि:सृत संस्कृत की गीति- काव्य - धारा ही विद्यापति के कंठ से पुन: प्रस्फुटित हुई और मिथिला की अमराईयों को गुंज्जरित करती हुई आगे चल कर सूर की मधुर वाणी

1- सूर और उनका साहित्य- डॉ० हरवंश लाल शर्मा- पृ०- 178 ।

9)

का पीयूष लेकर ब्रज के करील- कुंजो को निनादित करती हुई मुरझाये जन-मानस को सींचने लगी । सूर से पहले वज्रयानी सिद्धों, नाथपंथी योगियों, निर्गुणिए सन्तों एवं भगवान का लीला- गान करने वाले चण्डीदास, ज्ञानेश्वर एवं नामदेव आदि भक्तों ने भी इसी गेय- पद शैली में अपनी काव्य- रचना की ।

सूरदास ने पूर्व प्रचलित दृष्टि-कूट-पद शैली का अनुसरण करते हुए 'साहित्य- लहरी ' की रचना की है। सूर द्वारा रचित यह दृष्टिकूट भी शाब्दिक चमत्कार लिए हुए गेय- पदों में ही आबद्ध हैं । सूर से पूर्व के हिन्दी- साहित्य में नाथपंथी योगियों और कबीर जैसे साधकों ने अपने गूढ़- गम्भीर भावों के प्रस्तुतीकरण के लिये इसी दृष्टिकूट शैली को अपनाया था । सूर के पूर्व ' पृथ्वीराज रासो ' तथा ' विद्यापति पदावली ' में दृष्टिकूट के अनेक उदाहरण मिलते हैं । 'साहित्य - लहरी ' के अतिरिक्त ' सूरसागर ' में भी दृष्टिकूट पदों के कुछ रूप देखने में आते हैं ।

महाकवि सूरदास पर पूर्ववर्ती कवि मैथिल- कोकिल विद्यापति का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। सूर मुख्यत: वात्सल्य एवं शृंगार रस के कवि हैं और हिन्दी में शृंगार का विशद् चित्रण सर्वप्रथम विद्यापति ने किया । सूर की ' साहित्य- लहरी ' के अनेक पदों में रस, नायिका- भेद एवं अलंकार आदि का विवेचन पाया जाता है । इस विषय में आचार्य शुक्ल भी लिखते हैं कि - " सूर के शृंगारिक पदों की रचना बहुत कुछ विद्यापति की पद्धति पर हुई है । यही नहीं, कुछ पदों के तो भाव भी बिल्कुल मिलते हैं ।[1] " वस्तुत: विद्यापति का काव्य सूर के लिए अनेक रूपों में प्रेरणास्त्रोत बना रहा है । लेकिन सूर ने अपने पूर्ववर्ती कवियों, चाहे वह विद्यापति ही क्यों न हो , का कोरा अनुकरण कहीं नहीं किया है। वह संस्कृत की पूर्व - प्रचलित गीति- काव्य परम्परा से प्रभावित अवश्य हुए, किन्तु उनका गीति- काव्य सर्वथा मौलिक एवं हृदयग्राही रूप में हमारे सामने आता है ।

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य शुक्ल - पृ० 165 ।

सूरदास जी के काव्य का मुख्याधार श्रीमद्भागवत है। लेकिन भागवत पर आधारित होने पर भी ` सूरसागर ` उसका अनुवाद नहीं है। भागवत के प्रसंग तो कवि - हृदय के निगूढ़तम भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए निमित्त-मात्र ही हैं ।

सारांशत: हम कह सकते हैं कि अपनी काव्य- रचना के लिये सूर ने श्रीमद्भागवत का आधार ले कर अपनी मौलिक उद्भावनाएं प्रस्तुत की हैं एवं गीति-काव्य, दृष्टिकूट, शृंगार- वर्णन, रीति-तत्व, राधा- कृष्ण- स्वरूप तथा अलंकार योजना के क्षेत्र में सूर को प्रभावित कर उनके पूर्ववर्ती कवियों ने उनके काव्य के विशाल- पट के लिए ताने- बाने का काम किया है ।

गुरू गोबिन्दसिंह के साहित्य की पृष्ठभूमि

इतिहास के पृष्ठों में अंकित एक महान्, रणनीति कुशल योद्धा, राष्ट्र-निर्माता, सर्वस्व त्यागी महात्मा, अनेक भाषाओं के पण्डित एवं हिन्दी के एक महान् कवि गुरू गोबिन्दसिंह की रचनाओं पर तत्कालीन परिस्थितियों की छाप जितनी स्पष्ट और गहरी है उतनी सामान्यत: अन्य कवियों पर दिखाई नहीं पड़ती । इसका कारण भी स्पष्ट है कि जिस समय गुरू गोबिन्दसिंह का जन्म हुआ, उस समय मुग़ल शासन अपनी राजनीतिक शक्ति के चरमोत्कर्ष पर था । उनके जन्म से आठ वर्ष पूर्व औरंगज़ेब अपने भाईयों को मौत के घाट उतार कर और अपने पिता को बन्दी बनाकर ` आलमगीर ` की उपाधि ग्रहण कर चुका था । अकबर द्वारा प्रस्थापित राजनीतिक शांति पूरी तरह नष्ट हो चुकी थी ।

गुरू गोबिन्द सिंह की अवस्था कुल पांच वर्ष की थी जब छत्रसाल के नेतृत्व में बुन्देलों ने औरंगज़ेब से टक्कर ली । उनकी आयु अभी छ: वर्ष की ही थी जब दिल्ली के निकट नारनौल के सतनामी सम्प्रदाय ने मुग़ल-शासन के प्रति इतना बड़ा विद्रोह किया । नौ वर्ष की अल्प आयु में ही अपने पूज्य पिता का बलिदान

होते देखा और गुरू गद्दी का गुरुतर भार वहन किया । इस प्रकार बचपन से ही वह मुगलों के इन अत्याचारों को देखते आ रहे थे और परिणामस्वरूप उनका मुगल-शासकों के प्रति विरोध प्रकट करना स्वाभाविक ही था । इसी कारण गुरू जी के काव्य में तत्कालीन राजनीतिक अवस्था का चित्र स्पष्ट है क्योंकि उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों को केवल देखा ही नहीं, परखा भी था ।

1- राजनीतिक अवस्था -

गुरू गोबिन्दसिंह कृत ` दशमग्रन्थ ` सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दी के मध्य की रचना है। राजनैतिक दृष्टि से यह वह समय था जब भारत में विगत डेढ़ सौ वर्षों से स्थापित मुगल शासन उत्तरोत्तर उत्कर्ष करता हुआ अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका था किन्तु मुगल- साम्राज्य का जो सूर्य भारत के राजनीतिक आकाश पर सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध में बाबर एवं अकबर के आगमन के साथ उदय हुआ था, अब वह धीरे-धीरे अस्ताचलगामी हो रहा था । अकबर द्वारा किये गये विभिन्न उदार उपायों के परिणामस्वरूप राजनीतिक दृष्टि से जो शान्ति का वातावरण पैदा हुआ था उसकी गम्भीरता एवं सहजता औरंगज़ेब के दुर्नीतिपूर्ण शासन से भंग होने लगी थी । वास्तव में मुगल साम्राज्य को पतन की ओर बढ़ावा देने वाली गृह- कलह की विभीषिका जहांगीर के समय से ही दृष्टिगत होने लगी थी ।

जहांगीर की धार्मिक असहिष्णुता का ज्वलंत उदाहरण है - उसके द्वारा सिक्खों के पंचम गुरू अर्जुन देव का अकारण वध करवाना । इस प्रकार जहांगीर के समय में ही राजनीतिक विघटन के लिये पर्याप्त आधार बन चुका था जिसके परिहार अथवा निवारण का कोई भी उपाय उसके उत्तराधिकारी शाहजहां द्वारा भी न हो सका । उसने यद्यपि राज्यसीमाओं का तो यत्किंचित् विस्तार किया किन्तु आन्तरिक विद्रोहों और उसकी विलासितापूर्ण प्रवृत्ति ने राजनैतिक स्थायित्व की दिशा में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं होने दी । औरंगज़ेब के सिंहासनारूढ़ होने

पर तो मुगल- साम्राज्य के दुर्ग में अनेक दरारें पड़ने लग गईं । उन दरारों को अधिकाधिक बढ़ा कर मुगल- सत्ता को धराशायी करने में जहां दक्षिण में शिवाजी उद्यमशील थे और मध्यभारत में छत्रसाल द्वारा उसका आयोजन हो रहा था, वहां उत्तर भारत अर्थात् पंजाब में यह कार्य दशमेश गुरू गोबिन्दसिंह जी तथा उनके सरदार बंदा बैरागी द्वारा सम्पन्न हुआ ।[1]

पंजाब की राजनैतिक स्थिति एक प्रकार से बहुत विशिष्ट थी । मुगल - राजधानी दिल्ली और उसके परंपरागत सम्पर्क- सूत्र काबुल का मध्यवर्ती प्रदेश होने के कारण पंजाब को दो प्रकार की राजनीतिक गतिविधियों का साक्षात्कार बहुत निकट से करना पड़ता था ।[2]

गुरू नानक से ले कर गुरू अर्जुनदेव तक तो सिक्ख- सम्प्रदाय सर्वथा निस्पृह धार्मिक - सम्प्रदाय ही रहा, किन्तु इसके पश्चात् जहांगीर द्वारा की गई गुरू - अर्जुनदेव की निर्मम हत्या से स्थिति में परिवर्तन आ गया और फिर गुरू हरगोबिन्द का तो मुगल- सेना से संघर्ष भी हुआ । गुरू हरिराय और गुरू हरिकृष्ण शान्त प्रकृति के थे लेकिन वह भी अपने साथ सैनिक बराबर रखते थे । तत्पश्चात् सिक्खों के नवें गुरू तेगबहादुर को औरंगज़ेब की बलात् धर्म- परिवर्तन करने की कठोर नीति के विरुद्ध अपने प्राणों को होम करना पड़ा ।

इस प्रकार उत्तर भारत की राजनीति में सिक्खों का महत्व उत्तरोत्तर अधिक होता गया जिसकी चरमावस्था दशमग्रंथकार गुरू गोबिन्दसिंह जी के समय में दृष्टिगत होती है। उनके राजनैतिक कार्य कलापों का विशद चित्रण पंचम परिच्छेद में उनके जीवन - वृत्त के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है, यहां तो केवल उसकी पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है ।

1- द्रष्टव्य- संक्षिप्त गुरू प्रताप सूरज, भूमिका- डॉ० जयभगवान गोयल, पृ० 1 ।

2- द्रष्टव्य- ट्रांसफारमेशन आफ सिक्खिज्म-डॉ० गोकुलचन्द नारंग, पृ० 28-29 ।

13)

यद्यपि भारतीय इतिहास के उस संघर्षमय युग में अन्य भी अनेक संत- महात्मा एवं भक्त- कवि हुए, किन्तु उनकी कृतियों में तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का प्रतिबिम्ब अंकित नहीं हो पाया । बाबर से लेकर अकबर तक मेवाड़ के राजाओं ने मुगलों की राजनीतिक सत्ता को स्थापित न होने देने तथा स्थापित हो जाने पर पुनः मूलोच्छेदन करने के लिये अविरल संघर्ष किया किन्तु उत्तर भारत के किसी भी संतमहात्मा या भक्त- कवि ने उसका उल्लेख तक नहीं किया ।[1] इस अभाव की पूर्ति यदि कहीं हुई तो गुरू गोबिन्दसिंह के ` दशमग्रन्थ ` में । गुरू जी कृत ` जफरनामा ` तो राजनीतिक दृष्टि से इतिहास में स्थान पा ही चुका है, उनकी अन्य पौराणिक एवं भक्तिपरक रचनायें भी राजनीतिक परिस्थितियों की स्पष्ट छाप दिखलाने में कम सक्षम नहीं । उनकी इन कृतियों का सम्यक् विवेचन पंचम परिच्छेद में किया गया है। गुरू जी के समस्त राजनीतिक क्रिया - कलाप उनकी इच्छा के नहीं, अपितु युग-जन्य विवशता के प्रतीक थे ।

2- सामाजिक अवस्था -

सामाजिक दृष्टि से यह युग अस्त- व्यस्ततापूर्ण एवं घोर विषमताओं से युक्त था । निरन्तर युद्धों की विभीषिका से जूझते रहने एवं विलासप्रिय शासकों की विलास- सामग्री के लिये धन जुटाने में लगे रहने से तत्कालीन भारतीय समाज गतिहीन एवं मृत-प्रायः सा हो गया था । तत्कालीन समाज में दो वर्गों का प्राधान्य था - शासक और शासित । शासित वर्ग की दशा अत्यन्त दयनीय थी । जाति- भेद अत्याधिक बल पकड़ चुका था और जाति - पाति के भेद- भाव से दुर्बल हुई हिन्दू- जाति आक्रामकों के प्रहार सहते - सहते अपनी अवरोधक शक्ति भी खो बैठी थी । अपने आप को सान्त्वना देने के लिये जन- साधारण अलौकिक बातों

1- द्रष्टव्य- संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह `दिनकर `- पृष्ठ-270 ।

में ही अपना त्राण खोजने लगा था। स्त्रियों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी । उन में बाल- विवाह, पर्दा और सती- प्रथा का प्रचलन था । अमरत्व की साधना के सभी अधिकारों से वे वंचित कर दी गई थीं । गुरू गोबिन्द ने स्त्रियों के समुचित आदर के लिये ही खालसा- पंथ का उद्घाटन माता सुन्दरी से करवाया ।

गुरू गोबिन्दसिंह का आविर्भाव जिस समय हुआ, तब उनके चारों ओर का समाज बंधे जल की भांति एक ही ढर्रे पर चल रहा था । ब्राह्मण अपना तेज खो चुके थे, पहले जैसी निस्वार्थ- भावना उनमें नहीं रही थी । क्षत्रिय- जन भी अपनी वीरता को खो कर विलासप्रिय बन गये थे । वैश्यवर्ग भी स्वार्थता एवं लोलुपता की पंक में फंस चुका था । निम्न- वर्ग की दशा अत्यन्त शोचनीय एवं दयनीय हो गई थी । किसी भी क्षेत्र में निम्नवर्ग को मान्यता प्राप्त नहीं थी । गुरू गोबिन्दसिंह ने खालसा- पंथ की स्थापना के लिये पंच- प्यारों का चयन इसी निम्न- वर्ग के लोगों में से करके इस विडम्बना को दूर करने का एक क्रान्तिकारी कदम उठाया ।

तत्कालीन सामाजिक अवस्था की स्पष्ट झलक गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में दृष्टिगत होती है। गुरू जी ने अपनी कृतियों में जहां तत्कालीन समाज की विकृतियों, विसंगतियों, अकर्मण्यता एवं विलासप्रियता के स्पष्ट चित्र अंकित किये हैं वहां तत्कालीन जन- जीवन में फिर से नई आशा का संचार कर विभिन्न नैतिक मूल्यों की स्थापना करने का अमर संदेश भी उनके काव्य में निहित है।

3- धार्मिक अवस्था -

उस युग में धर्म के वास्तविक स्वरूप को विरूप एवं कुरूप कर देना ही वस्तुतः सबसे बड़ा धर्म माना जाता था । अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों का अनुसरण तथा बाह्याडम्बरों का पालन ही तत्कालीन धर्म की परिभाषा बन चुकी थी । धीरे- धीरे धर्म में राजनीति का प्रवेश एक सामान्य बात हो गई थी ।

गुरू नानकदेव ने भी [illegible] में अपने समय की धार्मिक स्थिति का सजीव वर्णन करते हुए उसके प्रति अपनी विरक्ति प्रकट की है।[1]

अकबर के समय में धार्मिक अवस्था में कुछ सुधार अवश्य आया और तत्कालीन संघर्षों से कुछ राहत पा कर कृष्ण एवं राम की भक्ति- धारा के कवियों की सुमधुर एवं सुललित वाणी जन- मानस को पर्याप्त धार्मिक तुष्टि एवं शान्ति प्रदान करने लगी । किन्तु अकबर के आंखे मूंदते ही धार्मिक अवस्था भी पतन की ओर अग्रसर होने लगी । जहांगीर के शासनकाल में धर्मान्धता ने पुन: ज़ोर पकड़ा और जनता पर हो रहे अत्याचारों का सिलसिला बढ़ने लगा । सिक्खों के पांचवें गुरू गुरू अर्जुनदेव को भी जहांगीर की इस धर्मान्धता के कारण शहीद होना पड़ा जिससे सिक्ख- सम्प्रदाय मुगल- शासन का विरोधी हो गया और अब उसका सम्बन्ध केवल धर्म से न रहकर राजनीति से जुड़ गया । सिक्ख- सम्प्रदाय का धार्मिक अस्तित्व राजनैतिक शक्ति के रूप में परिवर्तित होता गया जिसका चरमोत्कर्ष दशम गुरू - गोबिन्दसिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में स्पष्टत: परिलक्षित होता है।

गुरू गोबिन्दसिंह के समय में औरंगज़ेब मुगल शासन की बागडोर सम्भालता हुआ अपनी धर्मान्धता के वशीभूत हुआ जन- सामान्य के जीवन को तेज़ी से कुचलता एवं अस्त-व्यस्त करता चला जा रहा था । नवम् गुरू तेगबहादुर का बलिदान उस समय की धार्मिक दुर्दशा का चरम बिन्दु था जिसके परिणामस्वरूप दशम गुरू गोबिन्दसिंह ने भक्ति एवं शक्ति के समन्वय द्वारा एक नये धार्मिक सम्प्रदाय का निर्माण किया जिसे ` खालसा पंथ ` का नाम दिया । सिक्ख- पंथ के अतिरिक्त सतनामी, निरंजनी, प्राणनाथी, दरियादासी, शिव नारायणी, चरणदासी, राधा स्वामी तथा साहिब

1- सरमु धरमु दुइ छपि खलोए, कूडु फिरै परधानु वे लालो ।
कजीआ बामन की गलि थकि, अगदु पढ़ै सैतानु वे लालो ।।
मुसलमानीआ पढहि कतेबा कसट महि करहि वे खुदाई वे लालो ।
खून के सोहिले गावहि नान रतु का कंगु पाइ वे लालो ।।
- आदि ग्रन्थ, तिलंग महला-1, पृष्ठ 722-23 ।

पंथी आदि निर्गुण मतावलंबी सम्प्रदायों के साथ ही सगुणोपासना की परम्परा भी अपने सौन्दर्य, लालित्य, रमणीयता एवं मानव- प्रेम आदि श्रेष्ठ एवं उदात्त गुणों से धार्मिक परिवेश को सुधारने में लगी थी । राम और कृष्ण की भक्ति का प्रचार अधिकाधिक बढ़ता चला जा रहा था । शक्ति की उपासना भी जन-मानस को आकृष्ट कर रही थी । गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में हमें इन सभी धार्मिक मान्यताओं का समाहार द्रष्टव्य होता है। दशमग्रंथ में संकलित ' चौबीस-अवतार ' रचना के अन्तर्गत आई सभी अवतार- कथाएं वस्तुत: तत्कालीन धार्मिक परिवेश को ही प्रतिबिम्बित करती है।

वस्तुत. गुरू गोबिन्दसिंह के समय में कृष्ण भक्ति की परम्परा तो नैतिक दृष्टि से भी बहुत नीचे गिर चुकी थी। लीलापुरूषोत्तम कृष्ण भावदेव एवं भक्ति देव की उन्नत पीठिका से उतर कर मात्र शृंगार देव ही बन कर रह गये थे । राधा - कृष्ण की पावन प्रेम कथा अब स्थूल मांसल शृंगार का रूप धारण कर चुकी थी । सर्वत्र भक्ति का आध्यात्मिक रूप तिरोहित हो गया था और स्थूल पार्थिवता व्याप्त हो गई थी । रागात्मिका भक्ति की उदात्त भावना को समझने की मानसिक शक्ति तत्कालीन जनता में नहीं के बराबर थी । विलासप्रियता एवं कामुक लोलुपता धार्मिक साहित्य के साथ- साथ धर्म के ठेकेदार महन्तों के जीवन में भी व्याप्त हो गई थी । लोकरक्षक एवं मर्यादापुरूषोत्तम राम भी अब सरयू के किनारे काम- क्रीड़ा करने लगे । महन्तों की इस भक्ति में अर्थ सेवा का भी महत्वपूर्ण स्थान था ।

गुरू गोबिन्दसिंह ने अपने युग की समस्त धार्मिक परिस्थितियों का गहन अध्ययन कर अपने पूर्व गुरूओं की परम्परा के अनुसार तद्युगीन धर्म को एक नया मोड़ दिया । उनका धर्म निवृत्ति मूलक न हो कर प्रवृत्ति मूलक था । गुरू जी ने अपने काव्य में तथाकथित पण्डितों एवं धर्म के ठेकेदार महन्तों की भरपेट निन्दा की है। गुरू जी की रचनाओं में बाह्याडम्बरों का विरोध भी स्पष्ट परिलक्षित

होता है। गुरू गोबिन्दसिंह जी ने कृष्ण के स्वरूप वर्णन में भी एक नया मोड़ दिया और कृष्ण को शृंगार- नायक के पद से उठाकर वीर एवं योद्धा के उच्च आसन पर बिठा दिया । गुरू गोबिन्दसिंह के कृष्ण- बाल- गोपाल, रसिकेश एवं वीर- योद्धा तथा लोकरक्षक के रूप में हमारे सामने आते हैं । चण्डी के उपासक होते हुए भी गुरू जी ने स्वयं को हिंसा के अतिरेक से दूर रखा और शान्ति के समर्थक होते हुए भी युग की मांग के अनुरूप अस्त्र- शस्त्रों को ईश्वर का ही रूप माना ।

इस प्रकार धर्म के क्षेत्र में गुरू गोबिन्दसिंह जी ने एक ऐसे धार्मिक - पंथ का निर्माण किया जिसमें भक्ति और शक्ति, निर्गुण और सगुण, निवृत्ति और प्रवृत्ति आदि सभी मत- मतान्तरों का समाहार है ।

4- साहित्यिक अवस्था -

गुरू गोबिन्दसिंह के जीवन का कार्यकाल हिन्दी- साहित्य के विभाजन की दृष्टि से ` रीतिकाल ` के अन्तर्गत आता है। रीतिकाल के अधिकांश प्रमुख कवि- चिंतामणि, बिहारी, मतिराम, कुलपति मिश्र और देव आदि सभी- औरंगज़ेब के समकालीन थे । लेकिन इन में से किसी ने भी अपने युग की राजनीतिक स्थिति की झलक भी अपने काव्य में नहीं आने दी । वास्तव में इन कवियों (भूषण और लाल को छोड़ कर) के सम्मुख जीवन का कोई महान् आदर्श नहीं था । तत्कालीन अधिकांश कवि काव्य- रचना के लिए इधर- उधर भटकते रहते और जहां कहीं कोई आश्रयदाता मिल जाता, वहीं टिक कर उसकी इच्छा एवं आदेशानुसार काव्य- रचना करते । यह आश्रयदाता अधिकांशत: राजा, राव या रईस एवं विलासी होते थे और रीतिकालीन कवि इनकी स्तुति करते हुए इनकी विलास- वृत्ति को अधिकाधिक संतुष्ट करने का प्रयास किया करते थे । इस विषय में आचार्य शुक्ल कहते हैं - ` शृंगार के वर्णनों को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुंचा दिया था। इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाता

18)

राजा- महाराजाओं की रुचि थी जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था ।[1]

कदाचित् इन कवियों को उनके पूर्व के कृष्ण- भक्त कवियों की शृंगारिक परम्परा से पर्याप्त प्रोत्साहन मिला था। इस युग की मूल प्रवृत्ति शृंगार थी और शृंगार का रसराजत्व सब ने एक स्वर से स्वीकार किया है । भक्ति के उपास्य इस युग में शृंगार के नायक- नायिका मात्र बन कर रह गये । तत्कालीन युग के कवि राधा - कन्हाई के सुमिरन का बहाना कर घोर शृंगार में डूबते चले गये । डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में - " पराम्व के और भी युग भारतीय जीवन में आए, पर उन सभी में काम की ऐसी सार्वभौम उपासना नहीं हुई । कारण यह था कि उन युगों में नैतिक आदर्श दृढ़ और कठोर थे, जो इस प्रवृत्ति के प्रतिकूल पड़ते थे । परन्तु रीतिकाल में कृष्ण- भक्ति की परम्परा से नैतिक अनुभूति भी एक प्रकार से इसे प्राप्त हो गई थी । अतएव अब किसी प्रकार के अप्राकृतिक संकोच अथवा दमन की आवश्यकता भी नहीं पड़ी । काम की उपासना जीवन के स्वीकृत सत्य के रूप में होती थी । वातावरण के अतिरिक्त साहित्यिक परम्पराएं और प्रभाव भी इस के अनुकूल थे । फारसी संस्कृति और साहित्य की शृंगारिकता अब तक भारतीय संस्कृति में घुल- मिलकर उसका एक अंग बन गई थी । वह नागरिकता का एक प्रधान अलंकरण थी, अतएव इसका प्रभाव चेतन और अचेतन दोनों रूपों में हिन्दी कविता पर पड़ रहा था ।[2] "

इस काल के अधिकांश कवि राज्याश्रित थे जो राजाओं एवं सम्राटों की इच्छा- पूर्ति के लिये नायिका- भेद की सूक्ष्मतम परिभाषाएं करते हुए शृंगारिक

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य शुक्ल, पृष्ठ- 223 ।

2- रीति काव्य की भूमिका - डॉ० नगेन्द्र - पृष्ठ 173 - 74 ।

रचनाएं करते रहे और रीति- ग्रंथ लिखते रहे । इसके अतिरिक्त कुछ कवि ऐसे थे जो मुगल- साम्राज्य के विरोधी राजाओं के आश्रित थे । यह विरोधी राजा उस समय विधिवत राजा नहीं थे, लेकिन उनके रहन- सहन एवं दरबारों का रंग- ढंग राजाओं जैसा ही था । औरंगज़ेब के शासन- काल में शिवाजी, छत्रसाल और गुरू- गोबिन्दसिंह इसी प्रकार के नायक थे और भूषण, लाल एवं सेनापति इनके आश्रित कवि थे जो तद्युगीन श्रृंगारिक परम्परा के प्रतिकूल वीर- रस पूर्ण रचनाएं कर रहे थे । गुरू गोबिन्दसिंह तो कवियों के आश्रयदाता होने के साथ- साथ स्वयं भी उच्च- कोटि के कवि थे जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से भी तत्कालीन मृत-प्राय: जन- मानस को नव- जागरण का संदेश देकर धर्म- युद्ध के लिए उत्साहित किया ।

यह युग मूलत: काव्य की सजावट का युग था । साहित्य की आत्मा के स्थान पर उसके कलेवर के सौन्दर्य- विधान पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा था । तद्युगीन साहित्यकार एवं कवि ग्रन्थ- रचना में काव्य- लक्षण, छन्द, अलंकार एवं रीति आदि पर विशेष ध्यान देने लगे थे । हिन्दी के काव्य- शास्त्र के आचार्यों एवं समीक्षकों का उस युग में अभाव नहीं था, किन्तु तात्त्विक अथवा दार्शनिक विवेचन से पूर्ण कोई भी ग्रन्थ इस युग में नहीं लिखा गया । नायक- नायिका का सौन्दर्य विकास एवं नख-शिख- वर्णन ही इस काल की प्रमुख विशेषता है ।

वस्तुत: श्रृंगारिकता के प्रवाह से इस युग का कोई भी साहित्यकार अपने को बचा नहीं सका । गुरू गोबिन्दसिंह की रचनाओं पर भी श्रृंगारिकता का प्रभाव स्पष्ट है। ` कृष्णावतार ` में रास- क्रीड़ा में केलि- क्रीड़ा एवं ऋतुओं का कामोत्तेजक वर्णन है लेकिन उनके श्रृंगार- वर्णन में तद्युगीन कवियों के समान कहीं भी उच्छृंखलता अथवा निम्न- कोटि की रसिकता नहीं मिलती ।

वास्तव में युग की परिस्थितियों ने जिस तीव्र झंझावत की अवतारणा की उससे प्रभावित होकर गुरू गोबिन्दसिंह ने अपनी सभी रचनाओं में वीर- रस को ही प्रधानता दी । युग की मांग के अनुरूप उनके ईश्वर को भी शस्त्रधारी बनने के लिए

विवश होना पड़ा । गुरू जी ने अत्याचार के प्रबल विरोधी एवं युग-निर्माता होने के साथ ही सरस्वती को भी दुर्गा के वीर परिवेश में ढाल दिया ।

गुरू गोबिन्दसिंह का व्यक्तित्व वस्तुत. राजनैतिक , धार्मिक,सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से प्रखर है, विराट है। डॉ० मैनी लिखते हैं - " एकाकी धर्म के क्षेत्र में शंकर का दर्शन महान् हो सकता है, राजनीति क्षेत्र में अकबर को महान् सम्राट की उपाधि से विभूषित किया जा सकता है, साहित्य के क्षेत्र में सूर या तुलसी को सर्वोत्कृष्ट कहा जा सकता है और सामाजिक क्षेत्र में कबीर को महान् क्रान्तिकारी स्वीकार किया जा सकता है । लेकिन सभी दृष्टियों से किसी एक का व्यक्तित्व इतना विकसित नहीं हो सका जितना गुरू गोबिन्दसिंह का ।[1] "

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गुरू गोबिन्दसिंह का भक्त, योद्धा, साहित्यकार और समाज- सुधारक रूप एक साथ ही जागरूक रहा और उन्होंने तद्युगीन समाज की धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार की समस्याओं का वैयक्तिक जीवन के माध्यम से समाधान करने का स्तुत्य प्रयास किया ।

1- गुरू गोबिन्द सिंह के साहित्य में भारतीय संस्कृति के तत्व,
-डॉ० धर्मपाल मैनी, पृष्ठ- 12 ।

080

द्वितीय - परिच्छेद

प्राचीन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप और विकास

1- कृष्ण शब्द की व्युत्पत्ति

2- वैदिक साहित्य में कृष्ण

3- महाभारत में कृष्ण

4- पुराणों में कृष्ण

5- श्रीमद्भागवत पुराण में कृष्ण

6- लोक भाषाओं में कृष्ण

प्राचीन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप एवं विकास

भारतीय साहित्य में राम और कृष्ण की कथाओं का स्थान सर्वाधिक प्रभावपूर्ण है। राम यदि मर्यादापुरुषोत्तम हैं तो कृष्ण लीला पुरुषोत्तम ।राम से जीवन की मर्यादा संयम,त्याग, आदर्शवादिता और कर्तव्यपरायणता आदि गुणों को बल मिला तो कृष्ण अनुराग, कोमलता, कलात्मकता, रसात्मकता, उपदेशात्मकता और मधुरता के भाव-पूर्ण स्रोत बने । अपने लोकरंजनकारी व्यक्तित्व के कारण ही कृष्ण सर्वाधिक लोकप्रिय हुए । वस्तुत: कृष्ण- साहित्य के अभाव में हिन्दी-साहित्य परिपूर्ण नहीं माना जा सकता ।

वस्तुत: भारतीय वाङ्मय के प्राचीन और अतिविस्तृत पट पर, चाहे वह वैदिक हो या औपनिषदिक, पौराणिक हो या लौकिक- कृष्ण की तरह गतिशील, बहुवर्णी, रंगीन और आध्यात्मिकता सम्पन्न चरित्र कोई दूसरा दिखाई नहीं देता । कृष्ण के व्यक्तित्व में अखिल ब्रह्माण्ड की संचालिका शक्ति है तो पूर्ण निस्संगता भी। क्रियाशीलता है तो शान्त निर्विकारिता भी। वह एक साथ ही सांसारिक जीवन के सर्वांगीण भोक्ता और आध्यात्मिक मूल्यों के स्त्रष्टा भी हैं। अपनी इन उपलब्धियों में कृष्ण जहां ऐतिहासिक व्यक्तित्व में अद्वितीय हैं, पौराणिक चरित्रों में अप्रतिम हैं, वहीं रूपकात्मक एवं रहस्यात्मक साहित्य में वर्णित नायकों में अतुलनीय हैं ।[1]

वास्तव में कृष्ण कौन थे ? गोपाल, रसेश्वर, मुरलीधर, माखनचोर, मथुरा के राजा, द्वारिकाधीश, अपने युग के महानतम नीतिज्ञ महाभारत के वीर योद्धा

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप और विकास(अवतरिणका)- - डॉ० तपेश्वरनाथ - पृष्ठ, 2 ।

गीता के योगीराज, या फिर उस ईश्वर का अवतार जो इस सम्पूर्ण सृष्टि का नियंता और पालनकर्ता है। कृष्ण - चरित के इस विकास क्रम को जानने के लिये हमें निम्न सरणियों का अवलोकन करना होगा -

सर्वप्रथम ` कृष्ण ` शब्द को ही लें । इस शब्द की व्युत्पत्ति ` कृष् ` धातु से मानी जाती है। ` कृष् ` धातु में ` नक् ` प्रत्यय जुड़ कर कृष्ण बनता है, जिसका अर्थ है - ` कर्षति मन: ` अर्थात् मन को आकृष्ट करने वाला । ` कृष् ` धातु सत्तावाचक है और ` ण ` प्रत्यय आनन्द का वाचक है। सत्ता और आनन्द दोनों का एकता भाव- रूप परब्रह्म कृष्ण कहलाता है ।[1] `

नारायणशास्त्री जी ने श्रीमद्भागवत गीता की प्रस्तावना में कृष्ण शब्द की बड़े ही सुन्दर ढंग से व्याख्या की है:-

` कर्षति सर्वान् स्वकुक्षौ प्रलय काले श्रुति: कृष्ण:[2] `

1-वैदिक साहित्य में कृष्ण-

भारतीय ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का आदि विचार-स्त्रोत वेद ही हैं । कृष्ण(आंगिरस) का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद(1,116, 7, 1, 116,23,8,85, 1-9, 8, 86, 1-5) में पाया जाता है। इन सन्दर्भों में कृष्ण एक स्तोता ऋषि है, वे तथा उनके पुत्र क्रमश: अपने पौत्र तथा पुत्र विश्वक - विष्णु को पुनर्जीवन और आरोग्य देने के लिये अश्विनी कुमारों का आह्वान करते हैं। ऋग्वेद में एक कृष्णासुर का भी उल्लेख है, जिसे इन्द्र ने पराभूत किया था(1,101,1,8,16,13-15) ।परन्तु महाभारत के वीर राजनीतिज्ञ कृष्ण के व्यक्तित्व से इन प्राचीन सन्दर्भों में कोई

1- सूर के कृष्ण एक अनुशीलन - डॉ० शशि तिवारी- पृष्ठ-9 ।

2- श्रीमद्भागवत गीता - आर० एस० नारायणस्वामी- प्रस्तावना से ।

समता नहीं मिलती । ` छान्दोग्य उपनिषद् ` (3,17, 4-7) के घोर आंगिरस के शिष्य कृष्ण देवकी पुत्र कहे गये हैं, जिन्हें गुरू से यज्ञ की सरल रीति प्राप्त हुई, जिसकी दक्षिणा थी तप, दान, आर्जव, आहिंसा और सत्य । महाभारत के शान्ति-पर्व में वासुदेव कृष्ण की पूजाविधि बताते हुए जिस वैष्णव यज्ञ का प्रतिपादन किया गया है उससे उपनिषद् के इस सन्दर्भ का सरलता से सामंजस्य हो जाता है ।[1]

बौद्ध जातकों में भी कण्ह- वासुदेव की क्रमशः एक पूरी कथा मिलती है । ` घट- जातक ` में उपसागर के पुत्र कृष्ण- क्रीड़ा प्रिय, पराक्रमी एवं वीर रूप में चित्रित है और यह कथा भागवत-वर्णित कृष्ण-कथा से साम्य रखती है ।

वैदिक युग में विष्णु के तीन स्वरूप हैं - त्रिविक्रम यज्ञदेवता और इन्द्रसखा। महाभारत- काल तक वासुदेव, कृष्ण, विष्णु, नारायण, हरि आदि सभी पद एकमेक हो चुके थे । आचार्य द्विवेदी के अनुसार " ऋषि कृष्ण और देव वासुदेव के योग से एक कृष्ण ब्राह्मण युग के अन्त में प्रतिष्ठित हो चुके थे । - - - इन्हीं में बाद को एक कृष्ण आ मिले - - - (1) मथुरा के बाल- गोपाल और (2) वृष्णियों के नायक राजपूत कृष्ण । इस प्रकार कृष्ण का विकास हुआ ।[2] "

2- महाभारत में कृष्ण -

महाभारत को इतिहास ग्रन्थों में परिगणित किया जाता है। महाभारत में वर्णित कृष्ण का प्रारम्भिक रूप सामान्य मानव का रूप है किन्तु बाद में यह ग्रन्थ परिवर्तित और परिवर्द्धित होता रहा तथा कृष्ण परब्रह्म, विष्णु, नारायण

1- हिन्दी साहित्य-कोश(भाग-1), पृष्ठ-265 ।

2- सूर साहित्य- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ- 4-5 ।

आदि के प्रतिरूप परमदेव के रूप में प्रतिष्ठित हो गये । महाभारत में कृष्ण वृष्णि सात्वत, यदुवंशीय क्षत्रिय के रूप में अंकित है[1] ।

महाभारत के कृष्ण पाण्डवों के सखा हैं, सम्बंधी हैं, कुशल राजनीतिज्ञ हैं, विष्णु के अवतार हैं और अपने युग के श्रेष्ठ महापुरुष हैं । कृष्ण के पूर्व - प्रचलित विभिन्न नामों में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा इसी ग्रन्थ से आरम्भ होती है। यहां कृष्ण के विराट् रूप का भी वर्णन हुआ है।

महाभारत में कृष्ण का उद्देश्य धर्म की स्थापना है। कौरवों द्वारा पीड़ित द्रौपदी का चीर बढ़ा कर वह लीलापुरूषोत्तम से मर्यादा- पुरूषोत्तम बन जाते हैं । महाभारत में ब्रजलीलाओं का संकेत भी नहीं है।

पूर्व प्रचलित विश्वास के अनुसार यदि ` गीता ` को ` महाभारत का अंश मान लिया जाय तो कृष्ण ईश्वर के पूर्णावतार सिद्ध होते हैं। गीता के योगीश्वर कृष्ण आसक्तिहीन, समता- परायण और कर्मयोगी हैं । कुरूक्षेत्र की युद्ध-भूमि में अर्जुन के मन में मोह उत्पन्न होता है और उसके मोह को दूर कर कृष्ण उसे कर्मक्षेत्र की ओर प्रेरित करने के लिये ज्ञान एवं कर्म विषयक उपदेश देते हैं। यही उपदेश गीता है। गीता में भक्ति- ज्ञान और कर्म- तीनों का अनूठा संगम है जिसमें अवगाहन करने वाला प्रगाढ़- प्रेम, अटूट-विश्वास और पूर्ण-समर्पण की भाव- उर्मियों से सरोबार हो जाता है। यहां कृष्ण ज्ञान-गम्य और योग-साध्य ही नहीं भक्ति- भावित भी है ।

वस्तुत: वेद- वेदांग ज्ञाता कृष्ण ने व्यावहारिक स्तर पर दर्शन को गीता में पहली बार प्रतिष्ठित किया है, जिसके अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस रूप में कृष्ण यहां वर्णित हैं वह उनके परम देवत्व का परिचायक है[2] ।

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप विकास-
-डॉ0 तपेश्वरनाथ,पृष्ठ 15 पर उद्धृत ।

2- हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ0 नगेन्द्र - पृष्ठ - 186 ।

गीता की भक्ति- भावना निर्गुण की अपेक्षा सगुण के अधिक निकट है । ` इसके भक्ति वचन में भावात्मक स्वरूप के मंत्र बीज हैं जो सगुण- भक्ति के परवर्ती रूपों में उत्तरोत्तर पल्लवित होते गये हैं। मध्यकालीन कृष्ण - काव्य में उद्धव- गोपी- संवाद और भ्रमरगीत - प्रसंग में सगुण - निर्गुण विवाद तथा निर्गुण पर सगुण की भावात्मक महिमा का वितान इसी मूल भूत विचारतत्व से अनुप्रेरित कहे जा सकते हैं[1] `

वस्तुत: कृष्णचरित्र में अलौकिक आख्यानों का प्रस्फुटन महाभारत काल में ही होने लगा था। कृष्ण की अवतारवादी कल्पना भी ` महाभारत ` में ही की गई । यहां कृष्ण में नारायण, वासुदेव, विष्णु सब का सम्मिश्रण हो गया है । गीता के कृष्ण ब्रह्म के साकार रूप हैं, विष्णु के पूर्णावतार हैं। गीता के चतुर्थ अध्याय का 7वां श्लोक अवतारवाद का प्रतिनिधि सूत्र है -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।। 4। 7

महाभारत में भगवान के चतुर्व्यूह सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया गया है । ` ऐसा कहा गया है कि - ` निर्गुणात्मक क्षेत्रज्ञ भगवान वासुदेव जो जीव रूप में अवतार लेता है, वह संकर्षण है। संकर्षण से मन रूप में अवतार लेने वाला प्रद्युम्न है, प्रद्युम्न से अनिरुद्ध का उद्भव होता है। वही अहंकार और ईश्वर है । ` यहां यह बताया गया है कि प्रद्युम्न(मन), अनिरुद्ध(अहंकार), संकर्षण(बलराम) जीव के अवतार और वासुदेव के अवतार श्री कृष्ण हैं। चतुर्व्यूह सिद्धान्त की यह कल्पना सात्वत सम्प्रदाय में मान्य रही है और ये लोग श्री कृष्ण के ही वंशज थे । अत: श्री कृष्ण ही सात्वत, वासुदेव, नारायण और विष्णु रूप में प्रतिष्ठित हो गये।[2] `

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप विकास -
- डॉ० तपेश्वरनाथ,पृष्ठ- 33 ।

2- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप विकास -
- डॉ० तपेश्वरनाथ,पृष्ठ - ५। ।

इस प्रकार महाभारत में कृष्ण को देवत्व मिला और वे गीता के योगेश्वर के रूप में अपनी चारित्रिक उज्ज्वलता में यहां विराजमान हुए ।

3- पुराणों में कृष्ण -

पुराण भारतीय धर्म - बुद्धि की रागात्मक अभिव्यक्ति है। इसके अन्तर्गत सैकड़ों के लोक- मानस के विश्वास और चिन्तन का समवेत प्रतिफलन हुआ है । ईश्वर- चिन्तन यहां ज्ञान की अपेक्षा भाव का विषय बन गया है। लीलावाद इसकी अन्यतम परिणति है। इसी लीलावादी आग्रह से विभिन्न देवी- देवताओं के इतिवृत्तात्मक या बौद्धिक चरित में पौराणिक कल्पनाओं का विनियोग कर उन्हें परम रंजनकारी स्वरूप में ढाल दिया गया है। कहना न होगा कि इन वैष्णव पुराणों में कृष्ण चरित के साथ भी यही परिणति हुई है। फलत: कृष्ण का चरित्र तत्व या इतिवृत्त से ऊपर उठकर पूर्ण सौन्दर्य, परिपूर्ण माधुर्य और सम्पूर्ण आनन्द से मण्डित हो गया है। यहां पहुंच कर दुर्योध ब्रह्म भी अन्तरंग मानवीय सम्बंधों में पूर्ण व्यक्त हो उठा है ।[1]

वैदिक साहित्य में जो कृष्ण मंत्रद्रष्टा ऋषि थे, उपनिषदों में आंगिरस के शिष्य एवं वेद वेदांगों के ज्ञाता थे, महाभारत में कुशल राजनीतिज्ञ एवं वीर योद्धा थे, वही कृष्ण पुराणों में आकर अपने भावात्मक स्वरूप को ग्रहण करते हैं। कृष्ण यहां रंजन के देवता हैं, लीला पुरूषोत्तम हैं। वैदिक साहित्य में तो कृष्ण एकान्त - तत्व आश्रित हैं। प्रवृत्ति तत्व से संयुक्त उनकी युगल- कल्पना यहां नहीं है। महाभारत में भी कृष्ण की महिमा का उपयोग दुष्ट- दमन या उनके लोक- रक्षक रूप में ही अधिक हुआ है। गीता के कृष्ण में ज्ञान और भक्ति- दर्शन का तेजोमय रूप है लेकिन

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप विकास -
-डॉ० तपेश्वरनाथ - पृष्ठ- 81 ।

7)

पुराणों में कृष्ण- लीला में पुरूष के साथ प्रकृति भी है। यहां कृष्णचरित में युग्मवाद और लीलावाद का समावेश है जो कम आकर्षक नहीं । यहां सौन्दर्य, माधुर्य और प्रेम का बाहुल्य है और इसका आस्वादन करना ही भक्तों का सर्वोपरि लक्ष्य है । पुराणों में वर्णित कृष्ण- लीला का रस ` उज्ज्वल- रस ` है। यहां धर्म तत्त्व और लोक- भावना का मणि- कांचन संयोग है। ` यहां जन मानस के भावदेव और शास्त्रों के धर्मतत्त्वदेव का सम्मिश्रण हुआ है। तत्त्व और भाव का मिलन- बिन्दु धर्म है। चूंकि यह धर्म समाज- बोध से प्रेरित है इसलिये इसमें लौकिकता और अलौकिकता का अद्भुत सांकर्य घटित हुआ है। इसी कारण कृष्ण चरित्र में जिन लीलाओं का स्फुटन हुआ उनमें धर्म का अंकुश भी है और प्रेम का पूर्ण खुलावा भी । एक शब्द में, यह प्रेम- धर्म का अक्लुष प्रतिफलन है। यही लीला है । - - -
इस लीला के आश्रय कृष्ण और आलम्बन गोपियां हैं। मध्ययुग का कृष्ण- काव्य इसी पौराणिक लीला की लोक- प्रतिध्वनि है।[1] ` जिन वैष्णव पुराणों में कृष्ण - लीला का विधिवत उल्लेख हुआ है वे हैं - (1) हरिवंश पुराण,(2) विष्णु पुराण, (3) पद्म पुराण,(4) ब्रह्मवैवर्त पुराण और (5) श्री मद्भागवत पुराण ।
हरिवंश पुराण- हरिवंश पुराण में सबसे अधिक कृष्ण लीलाओं का वर्णन है। यह गोपाल कृष्ण के प्रसंग में प्राय: 20 अध्याय लिखे गये हैं । जिन में मुख्यत: कृष्ण का दुष्ट-दमनकारी रूप प्रधान है। हरिवंश- पुराण में शकटवध, पूतनावध, यमलार्जुन भंग, वृक दर्शन, वृन्दावन वास, धेनुकवध, प्रलम्ब वध , गोवर्धन धारण, हल्लीस क्रीड़ा, वृषभासुर वध, केशि वध, आदि लीलाओं का वर्णन हुआ है ।

कुछ विद्वान ` हरिवंश ` को महाभारत का ही एक अंश मानते हैं । किन्तु

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप विकास-
- डॉ0 तपेश्वरनाथ- पृष्ठ, 82 ।

8)

कुछ इसे ` विष्णुपुराण ` की परवर्ती कृति भी मानते हैं। हरिवंश के ` विष्णुपर्व ` के 20वें अध्याय में संक्षेप में कृष्ण के साथ गोपियों की रास-लीला का वर्णन है जिसे ` हल्लीश क्रीड़ा ` का नाम दिया गया है । यहां किसी भी प्रधान गोपी का वर्णन नहीं मिलता । गोपियां यहां परकीया हैं।

इस पुराण में कृष्ण का वंश वृक्ष भी स्पष्टता के साथ दिया गया है । यहां कृष्ण एक वीर सामन्त हैं । कृष्ण को विष्णु का अवतार तो माना गया है लेकिन उनकी लीलाओं में किसी प्रकार की अलौकिकता देखने में नहीं आती। इस पुराण में कुब्जा का भी संक्षिप्त-सा उल्लेख हुआ है।

विष्णु पुराण- यहां कृष्ण को परब्रह्म स्वरूप कह कर आध्यात्मिक भावना प्रकट की गई है । छः अंशों में वर्णित इस पुराण के पंचम अंश में कृष्ण का अलौकिक चरित्र वर्णित है। इसकी संक्षिप्त कृष्ण- लीला भागवत तथा हरिवंश पुराण से साम्य रखती है। कृष्ण यहां विष्णु के अंशावतार हैं ।

विष्णु पुराण के 13वें अध्याय में रास-लीला का भी वर्णन है जहां कृष्ण अपने मनोरम रूप में प्रस्तुत हैं । इस पुराण के चौथे अंश के 15 वें अध्याय में कृष्ण जन्म और पांचवें में कृष्ण की लीला का वर्णन है। इस पुराण में गोपियों में कृष्ण की प्रियतमा ` मदालसा ` नामक गोपी का उल्लेख मिलता है जिसने पूर्व जन्म में भगवान विष्णु की अभ्यर्चना की थी । गोपियों के विप्रलम्भ प्रेम का रूप कृष्ण के मथुरा-गमन के अवसर पर प्रकट होता है। इसमें उपालम्भ का अंश मात्र है। गोपियों की माधुर्य भावना मर्यादित है। इस पुराण में कुब्जा का कोई विशेष उल्लेख नहीं है ।

संक्षेप में इस पुराण के कृष्ण जगत्- पालन- कर्ता, परम आनन्द दाता और संहारक हैं। देवताओं के अगोचर प्रभु हैं, धर्म है, मूर्त भी हैं, अमूर्त भी, सूक्ष्म सूक्ष्म भी हैं, विराट् भी, सर्व भी हैं, सर्वज्ञ भी ।

इन पुराणों के अतिरिक्त और भी बहुत से पुराणों(जैसे- वायु,वामन कूर्म और गरुड़)में भी कृष्ण की कथा है।

वायु पुराण में कृष्ण जन्म और स्यमंतक मणि की कथा है। कृष्ण जन्म के प्रसंगों में कृष्ण की अलौकिकता का वर्णन यहां भी मिलता है। कृष्ण की सोलह हजार पत्नियों का वर्णन यहां है लेकिन राधा नामक किसी गोपी का उल्लेख यहां नहीं है।

वामन पुराण में कोशी, मुर, और कालनेमि के वध की कथा है। वामनावतार का वर्णन भी इस पुराण में हुआ है ।

कूर्म पुराण में कृष्ण द्वारा महादेव की आराधना की गई है। कृष्ण के पुत्रों की कथा भी इसमें मिलती है।

गरुड़ पुराण के आचार-काण्ड में कृष्ण- कथा का वर्णन कुछ विस्तार से मिलता है। पूतना-वध, यमलार्जुन कथा, गोवर्धन धारण, केशी -वध, कालिय दमन, शकटासुर वध, सान्दीपनी गुरू द्वारा शिक्षा की प्राप्ति एवं कृष्ण की आठ पत्नियों का उल्लेख यहां मिलता है ।

श्रीमद्भागवत पुराण- कृष्ण भक्ति का सर्वांग सम्पूर्ण ग्रन्थ श्रीमद्भागवत है । सर्वप्रथम इसी पुराण में कृष्ण की बाल, कैशोर और यौवन- लीलाओं का विस्तृत विन्यास हुआ है। यहां कृष्ण एक साथ ही असुर संहारक, वीर, योद्धा, बालकृष्ण, गोपी- बिहारी राजनीतिज्ञ , कूटनीतिज्ञ, योगेश्वर और परब्रह्म आदि सब कुछ हैं । भागवत में कृष्ण के लोकरंजक और लोकरक्षक- दोनों ही रूपों का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। गीता के परमपुरूष, सर्वव्यापक और अमृततत्व श्रीकृष्ण ही भागवत में व्यक्त होकर सगुण बन गये हैं। यद्यपि भागवत में कृष्ण के अनेक रूपों का उद्घाटन हुआ है, किन्तु प्रधानता उनके रसिकेश्वर रूप की है। इस पुराण के दशम-स्कन्ध में कृष्ण की अवतार- लीलाओं का क्रमबद्ध चित्रण हुआ है।

इस की दृष्टि से भागवत-पुराण में वर्णित कृष्ण- लीला के तीन वर्ग किये जा सकते हैं - वात्सल्य, वीर और शृंगार । स्थान की दृष्टि से भी इसके दो वर्ग हैं - गोकुल और वृन्दावन ।

कृष्ण की वेणु की अमृत-मधुर स्वर लहरी लहर की भाँति भागवत पुराण को आप्लावित कर रही है। इस स्वर लहरी से बौराई हुई गोपियाँ काम- वृत्ति से प्रेरित होकर कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने की कामना से शरद् स्नान और कात्यायनी व्रत रखती हैं ।

22वें अध्याय में चीर हरण- प्रसंग है। 29 से 33 वें अध्याय तक गोपी-कृष्ण की रास- लीला का सुमधुर वर्णन हुआ है। पांच अध्यायों में विधिवत सम्पन्न होने के कारण इसे ` रास पंचाध्यायी ` भी कहते हैं । इसके क्रमिक प्रसंग इस प्रकार हैं -

1- (क) वेणुनादाकर्षण ।

(ख) रासारम्भ ।

(ग) कृष्ण का अन्तर्धान होना ।

2- गोपियों का कृष्ण का अनुकरण और प्रतीक्षा ।

3- गोपी- गीत ।

4- कृष्ण का आश्वासन ।

5- महारास ।

` महारास ` इस पुराण की चरम काव्योपयुक्त कल्पना है। प्रेम के इस दृश्य को देखने के लिये स्वर्ग के देवता उमड़ पड़ते हैं, नदियों का प्रवाह थम जाता है, पूनम के इन्दु से अमृत टपकने लगता है।

38वें अध्याय में अक्रूरागमन है और 39वें अध्याय में कृष्ण और बलराम के मथुरा- प्रवास के कारण गोपियों के करुण एवं मार्मिक विलाप का मर्मस्पर्शी चित्रण है। 42वें अध्याय में कुब्जा का वर्णन है। 46वें अध्याय में उद्धव का व्रजागमन

है और 46-47 वें अध्याय में भ्रमरगीत(उपालम्भ गीत) का प्रतिपादन हुआ है । 48 वें अध्याय में कृष्ण कुब्जा को दिये वचन पूरे करते हैं ।

82 वें अध्याय में सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में गोपियों से कृष्ण का पुनर्मिलन होता है ।

भागवत में, कृष्ण जन्म से लेकर मथुरा- गमन तक की विविध लीलाओं में सख्य वात्सल्य और मधुर भावों का ही व्यापक प्रतिफलन हुआ है ।[1]

भागवत के कृष्ण मुख्यत: भक्ति का आधार है। गीता का कर्मयोग ही भक्ति से मिल कर भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन बन जाता है।

वस्तुत: महाभारत, गीता और श्रीमद्भागवत के कृष्ण के रूप में उत्तरोत्तर विकास है। महाभारत में कृष्ण वीरत्व विधायक, गीता में परब्रह्म एवं भागवत में रसिकेश्वर हैं। वैसे तो भागवत में भगवान कृष्ण के अनेक रूपों का उद्घाटन हुआ है लेकिन प्रधानता उनके रसिकेश्वर रूप की ही है। भागवत के दशम स्कन्ध के उत्तरार्द्ध में यही माखनचोर, वृन्दावन बिहारी रसिक कृष्ण ही- असुर संहारक, कुशल राजनीतिवेत्ता एवं कूटनीतिज्ञ के रूप में दृष्टिगत होते हैं। दशमस्कन्ध में भगवान कृष्ण की अवतार- लीलाओं का क्रमबद्ध चित्रण हुआ है। हिन्दी कृष्ण- काव्य पर इस पुराण का सर्वाधिक प्रभाव है। बाहर से देखने में तो महाकवि सूरदास कृत 'सूरसागर' श्रीमद्भागवत का अनुवाद-सा प्रतीत होता है किन्तु वह इससे प्रभावित होते हुए भी अपने में एक नवीनता एवं मौलिकता लिए हुए हैं । गुरु गोबिन्दसिंह का कृष्ण-काव्य भी भागवत से ही प्रभावित जान पड़ता है। लेकिन उनका मन दशम-स्कन्ध के उत्तरार्द्ध में वर्णित कृष्ण के वीर रूप में ही अधिक रमा है।

1- महाकवि सूरदास - आचार्य नन्ददुलारे वाजेपयी -पृष्ठ, 31 ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भागवत के धर्म संस्थापक और राज्य - नियन्ता कृष्ण भक्ति- प्लावित होकर हमारे सामने आते हैं और अपने अद्भुत सौन्दर्य और रसिक- चेष्टाओं से परवर्ती कृष्ण- साहित्य को भी आप्लावित कर जाते हैं ।

पद्म पुराण- इस वैष्णव पुराण की विशेषता राधा- भाव के प्रथम दर्शन में है । पांच- खण्डों में वर्णित इस पुराण के ` पाताल-खण्ड ` में वृन्दावन, कृष्ण तथा राधा की महिमा का समारोहपूर्ण विवरण मिलता है । ` उत्तर- खण्ड ` में भी कृष्ण- लीला का संक्षिप्त-वर्णन हुआ है लेकिन यहां शृंगारिक लीलाओं को विशेष स्वीकृति नहीं दी गई । ` पद्म-खण्ड ` के सप्तम अध्याय में राधा के जन्म तथा ` राधाष्टमी- व्रत ` का पूर्ण विवरण मिलता है।

पद्म पुराण के कृष्ण माखन चोर भी हैं और असुर संहारक भी । उनकी प्रिया राधा आद्या प्रकृति है। राधा- कृष्ण की युगल कल्पना इस पुराण की विशेष उपलब्धि है।

ब्रह्मवैवर्त- पुराण- कृष्ण के जन्मादि और लीलाओं से सम्बन्धित इस पुराण का बहुत महत्व है। यहां भी कृष्ण परब्रह्म है, निर्गुण- निराकार भी हैं और सगुण- साकार भी । कृष्ण यहां चिर- किशोर, रासेश्वर एवं काल - कला विशारद हैं ।

इस पुराण में भी राधा- कृष्ण के युगल रूप का बड़ा प्रभावशाली चित्रण हुआ है। राधावाद का चरम रूप यहां दृष्टिगोचर होता है। वह कृष्ण की प्राणेश्वरी है, उनकी शक्ति है, प्रकृति है । इस पुराण में कृष्ण का स्वरूप सौन्दर्यमूलक है ब्रह्मवैवर्त के कृष्ण स्वयं कहते हैं - ` गोलोक में मैं परिपूर्णतम कृष्ण हूं, गोकुल में राधापति हूं, बैकुण्ठ में चतुर्भुज विष्णु हूं। श्वेत द्वीप और क्षीर सिन्धु में भी मैं ही हूं । नारायण भी मैं ही हूं और अर्जुन का सारथी भी मैं ही हूं ।[1] `

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप-विकास-
- डॉ0 तपेश्वरनाथ -पृष्ठ- 105 से उद्धृत ।

इस प्रकार ब्रह्मवैवर्त की कृष्ण-लीला में श्रीमद्भागवत से भिन्न अनेकवाद के स्थान पर युगलवाद अथवा अद्वय युग्मवाद की प्रतिष्ठा हुई है । कृष्ण यहां बहुवल्लभ न होकर राधा वल्लभ या राधा- कृष्ण हैं। जयदेव एवं विद्यापति की राधा -कृष्ण - शृंगार लीला इससे ही अनुप्राणित जान पड़ती है। हिन्दी के चैतन्य एवं राधा - वल्लभ आदि वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों में इसका प्रत्यक्ष प्रभाव है। चैतन्य महाप्रभु तो इस अद्वय युग्मवाद के साक्षात प्रतीक ही थे । सूर- साहित्य के विशेषज्ञ विद्वान सूर पर भागवत के बाद इसी का ऋण स्वीकार करते हैं । विशेषत: राधा विषयक प्रसंग तो इसी से आस्फूर्त हैं ।[1]

4- लोक - काव्य में कृष्ण -

(क) प्राकृत काव्य में कृष्ण - वैष्णव भक्ति- भावना में ललित मधुर गोपाल कृष्ण के पल्लवन और प्रसार का बहुत कुछ श्रेय इस लोक- काव्य को दिया जा सकता है। प्राकृत- भाषा को साहित्य- विकास की व्यापक पीठिका प्रदान करने में आभीरों का अन्यतम योग रहा है। सर्वप्रथम कृष्ण की लीला का वर्णन प्राकृत भाषा की गाथाओं के संकलित ग्रन्थ ` गाहा सतसई ` या ` गाथा- सप्तशती ` में मिलता है जिसका सम्पादन प्रतिष्ठानपुर के सातवाहन राजा ` हाल ` ने किया । इसका समय पहली शताब्दी है । हाल की यह ` गाहा सतसई ` गोपी-कृष्ण और राधा - कृष्ण की शृंगार - लीला का काव्य में प्राप्त प्रथम प्रामाणिक उल्लेख है। इसके नायक गोपाल कृष्ण हैं जिनके चरित्र की रेखाएं आभीरों के चरवाही- गीतों के आलम्बन प्रेमी गोपाल की लीलाओं से परिपुष्ट हुई हैं ।

` गाहा- सतसई ` में वर्णित अन्य कितने शृंगारिक प्रसंग हैं जो संस्कृत, अपभ्रंश के मुक्तकों से होते हुए विद्यापति, सूरदास और बिहारी आदि हिन्दी

1- सूर और उनका साहित्य- डॉ० हरवंश लाल शर्मा - पृष्ठ- 171 ।

कवियों द्वारा ज्यों के त्यों अपना लिये गये हैं । हां , भाव- भेद या परिवेश की भिन्नता के कारण उन शृंगारिक पदों के आश्रय और आलम्बन अवश्य बदल गये हैं ।

ख) संस्कृत काव्य में कृष्ण- संस्कृत साहित्य के बहुत से नाटकों एवं काव्यों में राधा- कृष्ण की युगल- लीला का वर्णन है। सर्वप्रथम कवि भट्टनारायण ने 8वीं शती में अपने ` वेणी संहार ` नामक नाटक में अपनी प्रार्थना में राधा-कृष्ण का वर्णन किया है ।

इसके पश्चात् 9वीं शताब्दी में ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य आनन्द-वर्धन के ` ध्वन्यालोक ` में कृष्ण के राधा- प्रेम विषयक कुछ प्राचीन श्लोकों का उद्धरण मिलता है ।

10वीं शती में रचित एक प्रसिद्ध मुक्तक ग्रन्थ ` कवीन्द्र-वचन -समुच्चय ' में भी राधा- कृष्ण- प्रेम विषयक कई पद संकलित हैं । इसके प्रथम चार पदों में राधा - कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। इन लीलाओं के आश्रय कृष्ण शृंगार के धीरललित नायक हैं। कुछ श्लोकों में कृष्ण के गोपाल रूप का भी वर्णन है ।

11 वीं शताब्दी के प्रसिद्ध आलंकारिक भोज के ` सरस्वती- कंठाभरण ` में भी राधा के प्रणयी कृष्ण का उल्लेख हुआ है ।

12वीं शती की श्रीधरदास द्वारा संगृहीत एक प्रसिद्ध सुभाषित कृति ` सदुक्ति कर्णामृत ` में 446 कवियों की कविताओं के उद्धरण हैं जिनमें कृष्ण की व्रजलीला और राधा- कृष्ण - प्रेम से सम्बन्धित अनेक पद्य हैं। यहां लक्ष्मी या रुक्मिणी- प्रेम के स्थान पर राधा- प्रेम की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है इस कृति में ` गोपी- सन्देश ` विषयक पद भी प्राप्त होते हैं जिनमें द्वारिकावासी कृष्ण के प्रति गोपियों की गम्भीर मनोदशा व्यंजित हुई है ।

15)

12 वीं शती में ही राधा- कृष्ण की लीलाओं का पूर्ण विकास बिल्व मंगल ठाकुर के ` कृष्णकर्णामृत ` नामक ग्रन्थ में दृष्टिगत होता है। नामलीला एवं दानलीला आदि कृष्ण विषयक लीलाओं से सुसज्जित इस ग्रन्थ को चैतन्य महाप्रभु दक्षिण से लाये थे ।

संस्कृत के गीति-काव्य में मुक्तक-संग्रह के अन्तर्गत रूपगोस्वामी की ` पदावली ` भी अपना महत्व रखती है। इस ` पदावली ` में संकलित कविताएं स्पष्टत: ही मानवीय- प्रेम पर आधारित शृंगारिक कविताएं हैं जिन्हें धीरे - धीरे राधा- कृष्ण के आध्यात्मिक प्रेम के आवरण से ढांप दिया गया है । ` पदावली ` में कृष्ण का स्वरूप विशुद्ध प्रणयी का स्वरूप है ।

इसके पश्चात् 12 वीं शताब्दी में लोक गीतों के आधार पर जयदेव ने ` गीत- गोविन्द ` की रचना की । ` गीत गोविन्द ` में भक्ति - भावना अत्यल्प है और शृंगार- भावना की अधिकता है। इसकी कृष्ण-लीला मिलनान्त है । इस कृति में 12 सर्ग हैं और इसमें वर्णित कृष्ण कवि- कल्पित अधिक हैं और पुराण-वर्णित कम । इसके कृष्ण मुख्यत: राधा- कृष्ण हैं । - - - - स्वाभावत: यहां कृष्ण का स्वरूप भागवत न होकर भावगत है ।[1] मैथिल कोकिल विद्यापति और रीतिकाल के प्राय: सभी शृंगारिक कवि जयदेव के ` गीत- गोविन्द ` से प्रत्यक्षत: प्रभावित हैं। महाकवि सूर पर भी जयदेव का प्रभाव परोक्ष रूप से अवश्य पड़ा है ।

ग) अपभ्रंश काव्य में कृष्ण - अपभ्रंश और विशेषत: ब्रजभाषा की जननी शौर सेनी अपभ्रंश के पद- साहित्य की नयी खोज से हिन्दी कृष्ण काव्य पर्याप्त आलोकित हुआ है। इस विषय के अनुसन्धाताओं के मतानुसार विद्यापति और सूर आदि भाषा- कवियों की कृष्ण- लीला पर ` श्रीमद्भागवत ` और `गीत - गोविन्द' की व्यावहारिक प्रेरणा जो भी हो, किन्तु उन पर प्रत्यक्ष प्रभाव

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप -विकास - डॉ० तपेश्वरनाथ - पृष्ठ, 178 ।

प्राचीन ब्रज- काव्य (अपभ्रंश आदि) का पड़ा है।[1]

वस्तुत: 12 वीं शती के जयदेव से कोई दो सौ वर्ष पूर्व 10 वीं शती में अपभ्रंश के प्रसिद्ध कवि पुष्पदन्त के `उत्तर पुराण ` में हमें कृष्ण की बाल-लीला (पूतना-लीला, ऊखल-बन्धन, गोवर्द्धन-धारण कालिय-दमन एवं अन्य नटखट वृत्तियां) और किशोर-लीला (गोपी-कृष्ण-विहार एवं रास-लीला आदि) का मधुर अंकन दृष्टिगत होता है। पुष्पदन्त ने श्रीमद्भागवत के आधार पर ही कृष्ण की वात्सल्य एवं शृंगार लीलाओं का सुमधुर चित्रण किया है।

14 वीं शताब्दी के पिंगल- ग्रन्थ ` प्राकृत - पैंगलम् ` में भी राधा - कृष्ण- प्रेम में भक्ति और शृंगार की मीठी धूप- छांव के नौ- दस छन्द मिल जाते हैं जिनमें तीन कृष्ण की वृन्दावन-लीला से सम्बन्धित हैं और अन्य कृष्ण-स्तुतिमूलक हैं जिनमें उनके मधुर रूप के साथ दिव्य- तेज का भी आलोक मिलता है ।

इसके अतिरिक्त लोक- काव्य के अन्तर्गत मिथिला में विद्यापति बंगाल में चण्डीदास, असम में शंकरदेव, ब्रज में विष्णुदास, राजस्थान में मीरां और गुजरात में नरसी मेहता आदि ने भी राधा-कृष्ण की प्रेम- लीलाओं एवं कृष्ण की रूप - माधुरी के रस- मधुर गीत गाये हैं जो हिन्दी- साहित्य की अनुपम निधि हैं ।

इस विषय में डॉ० तपेश्वरनाथ का कथन है - ` कृष्ण- चरित के विकास की ये ही वे सरणियां हैं जिनसे हो कर 16 वीं शती के सूर आदि श्रेष्ठ ब्रज कवियों की पदावली में इसके भावात्मक स्वरूप का विन्यास हुआ । आचार्य शुक्ल ने बाल- कृष्ण और राधा- कृष्ण की मधुर- लीलाओं के विस्तृत विन्यास को देखते हुए सूरदास को इस भाषा- परम्परा का प्रथम कवि नहीं माना था ।

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप - विकास-
- डॉ० तपेश्वरनाथ - पृष्ठ 179 से उद्धृत ।

17)

उन्हें इसके पीछे देश भाषा काव्य की विशाल काव्य- सम्पदा का जो अनुमान हुआ था, वह आधुनिक शोधों के आलोक में पूर्णत: सत्य सिद्ध हो चुका है।सूरदास का सूरसागर ब्रजभाषा में कृष्णचरित का विशाल भावात्मक चित्रागार है। और उसमें सुदूर पूर्व के विद्यापति और शंकर देव, चण्डीदास और रायरामानन्द, मध्यदेश के विष्णुदास और संगीतज्ञ कवि तथा पश्चिम के नामदेव और मालण की कृष्ण - प्रेम- साधना का ही भव्य रूपांकन हुआ है। इनमें परस्पर स्थूल अन्तर यदि है तो वह यह कि पूर्वी अंचल के कवियों के कृष्ण मूलत: शृंगारदेव हैं जबकि पश्चिम अंचल के कृष्ण भक्ति- देव हैं। पूर्वी कृष्णचरित भावुकतापूर्ण है किन्तु पश्चिमी कवियों ने उनके चरित्र में अपेक्षाकृत संयम और श्रद्धाबुद्धि का प्रदर्शन किया है। राधा- प्रेम, शृंगार - लीला, वसन्त रास आदि पूर्वी कवियों की देन है। गोपी- प्रेम, वात्सल्य -लीला, शरद् रास आदि पश्चिमी भक्तों की उपलब्धियां हैं और, अतीव सम्भवत: दोनों के पीछे उपजीव्य रूप में जो पौराणिक प्रभाव पड़ा है, उसके अनुसार पूर्वी कृष्ण-चरित पर ब्रह्मवैवर्त और पश्चिमी कृष्णचरित पर श्रीमद्भागवत का प्रतिनिधि प्रभाव माना जा सकता है।[1]

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप-विकास- डॉ० तपेश्वरनाथ-पृष्ठ, 205 ।

तृतीय - परिच्छेद

कृष्ण काव्य का विकास

1- सूर पूर्व कृष्ण काव्य

2- मध्यकालीन कृष्ण काव्य

3- रीतिकालीन कृष्ण काव्य

4- आधुनिक कृष्ण काव्य

कृष्ण काव्य का विकास

हिन्दी साहित्य के इतिहास में निरन्तर प्रवाहित होती आ रही कृष्णाश्रित काव्यधारा रस की वह मूर्तिमती स्रोतस्विनी है जिसमें अवगाहन कर जड़ चेतन हो जाते हैं और चेतन आनन्दमय । विद्यापति की पदावली से लेकर धर्मवीर भारती की कनुप्रिया तक जनमानस के अनेक धरातलों को आप्लावित करती आ रही यह अविच्छिन्न धारा एक ऐसे विश्वास, श्रद्धा एवं आनन्द रूपी संगम-स्थल को प्रस्तुत करती है जिसके तट पर बैठ कर लोल-लहरियों के दर्शन करने वाला भी आनन्द - विभोर हो उठता है और अवगाहन करने वाला भी ।

हिन्दी- साहित्य के आरम्भ होने से पूर्व ही वैदिक साहित्य के वासुदेव कृष्ण, महाभारत के कर्मयोगी कृष्ण, भागवत के गोपीवल्लभ कृष्ण और आभीरों के बाल- गोपाल कृष्ण का यह समन्वयात्मक रूप संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के वाङ्मय द्वारा पूर्णता को प्राप्त कर चुका था । हिन्दी- साहित्य के आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल में तो तद्युगीन परिवेश के अनुकूल कृष्ण के इसी समन्वयात्मक स्वरूप का काव्य में नियोजन किया गया ।

सूर पूर्व कृष्ण काव्य-

सन् 1400 ई० में मैथिल- प्रदेश में अभिनव जयदेव मैथिल कोकिल विद्यापति का आविर्भाव हुआ जिन्होंने सामन्ती दरबार के अनुरूप कृष्ण को शृंगारदेव बनाकर चित्रित किया। विद्यापति ने श्रीकृष्ण को माधव, कान्ह, श्याम, हरि, गोविन्द, वनमाली, दामोदर आदि नामों से सम्बोधित तो किया है लेकिन उनके इन सब रूपों का गान नहीं किया । उनके कृष्ण न तो वात्सल्य का आलम्बन हैं और न ही दुष्ट- दमन या अवतारवादी रूप का । कृष्ण के राधारमण और गोपीवल्लभ रूप

को ही उन्होंने स्वीकार किया है। वस्तुत: उन्होंने अपनी पदावली में प्रतीक के रूप में कृष्ण- चरित को अंगीकार कर शृंगार के आश्रय और आलम्बन राधा- कृष्ण की प्रेम लीलाओं के रस- मधुर गीत गाये ।

विद्यापति ने संस्कृत, अवहट्ठ और मैथिली- इन तीनों भाषाओं में काव्य रचना की लेकिन हिन्दी में उनकी कीर्ति का कारण उनकी मैथिली-पदावली ही है जिसके पद हिन्दी- गीति - काव्य के शृंगार हैं। विद्यापति के ये गीत प्रेम की मादकता, शृंगारिकता, ऐहिकता, विलासिता एवं भावों की स्वतन्त्रता के परिचायक हैं। इन गीतों में यद्यपि कृष्ण- लीला के साथ- साथ शिव-स्तुति भी है और शिवजटालम्बिनी गंगा की स्तुति भी, किन्तु इनकी संख्या कम है । यह मूलत: कृष्ण काव्य है ।

विद्यापति की अवहट्ठ रचना ` कीर्तिपताका ` में प्रसंगवश कृष्णावतार का उल्लेख हुआ है । कविवर अपने आश्रयदाता सम्राट से कहते हैं -

` सीताविश्लेषदु:खादिव रघुतनयो लब्धकृष्णावतार: ।।
पूर्वं कृष्णो यथा भूदरिकुलदमन: साम्प्रतं तादृशस्त्वम् ।।
तस्माद् भूपालमौले सुखमपि सुरते(र) ता(देव)देवानुभूया: ।
संसारे भोगसारे स्फुटमवनिभुजां श्रीफलं वा किमन्यत् ।।

(अर्थात् सीता के वियोग से हुये दुख के कारण राम ने कृष्ण का अवतार लिया पहले जैसे कृष्ण- अरि-कुल दमन हो गये, वैसे अब तुम हो । अत: भूपाल श्रेष्ठ देव तुम सुरत से ही सुख का अनुभव करो। इस भोग- वैशिष्ट्य संसार में भूपतियों की लक्ष्मी का फल स्पष्टत: भोग के अतिरिक्त और क्या है ।)[1] `

उपर्युक्त विवरण में निर्दिष्ट कवि का निखिल सृष्टि के प्रति उद्दाम

1- हिन्दी -काव्य में कृष्ण का भावात्मक स्वरूप और विकास -
डॉ० तपेश्वरनाथ- पृष्ठ -184 से उद्धृत ।

भोक्ता रूप उनकी पदावली में पल्लवित शृंगार का तथा शृंगार- देव श्री कृष्ण का सुन्दर स्मारक है। अत: उनके कृष्ण पर परमात्मा का आरोप विशेष बुद्धि-ग्राह्य नहीं है।[1]

असम के शंकरदेव(सन् 1449-1558) ने भी राधा- कृष्ण प्रेमोपाख्यान पर आधारित अनेक गीत, काव्य और नाटक लिखे। ` इनके काव्य- गीतों को ` वरगीत ` ( भजन के पद) और नाट्य-गीतों को ` अंकेर गीत (अंकिया नाट) कहते हैं। इनमें समग्रत: कृष्ण की प्रेम- कथा अंकित है। वरगीतों की भाषा में यद्यपि असमियां के प्रयोग हैं किन्तु आधुनिक शोधकर्ता विद्वानों का यह स्पष्ट अभिमत है कि इसमें ब्रजभाषा की मूल प्रकृति आश्चर्यजनक रूप से सुरक्षित है।[2] `शंकरदेव के ` वरगीत ` से उदाहरणार्थ एक गोपी- विरह - गीत प्रस्तुत है जो कृष्ण के मथुरा- प्रवास के उपलक्ष में है।[3]

ध्रुव- गोपिनी प्रान काहेनो गयो रे गोविन्द ।
हामु पापिनी पुनु पेखवो नाहिं आर मोहि वदन अरविन्द ।।

पद- कवन भाग्यवती, भयो रे सुपरभात आजु भेटन मुख चांदा ।
उगत सूर दूर गयो रे गोविन्द भयो गोप वंधु आन्धा ।।
आजु मथुरा पुरे मिलन महोत्सव माधव- माधव मान ।
गोकुल के मंगल दूर गयो नहिं बाजत बेनू विषान ।।
आजु जत नागरी करत नयन भरि मुख पंकज मधुपाना ।
हमारि वन्ध विधि हाते हरल निधि कृष्ण किंकर रस माना ।।

1- अपभ्रंश भाषा का अध्ययन- डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, परिशिष्ट-4,पृ०-295 ।

2- सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य-डॉ० शिवप्रसाद सिंह -पृष्ठ-227 ।

3- सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य-डॉ० शिवप्रसाद सिंह -पृष्ठ-227 पर उद्धृत ।

उत्कल के रायरामानन्द(सन् 1504-1532) भी राधा - कृष्ण की माधुर्य भक्ति के प्राचीनतम उपासकों में से एक हैं जिनके गीत उड़िया ब्रजबूली काव्य के आधार हैं ।

जिस समय पूर्वी प्रदेश में ब्रजबूली के माध्यम से कृष्ण की मधुर लीलाओं का गुणगान हो रहा था उसी समय या उससे कुछ पूर्व ही मध्यप्रदेश में ब्रजभाषा के आदि कवि विष्णुदास(सन् 1535) के काव्यों में कृष्ण- लीला का व्यापक समावेश मिलता है। उनकी उपलब्ध कृतियों में ' स्नेह - लीला ' कृष्ण की वृन्दावन लीला पर आधारित है । " आधुनिक शोध के निष्कर्ष स्वरूप, स्नेह- लीला भ्रमरगीत का पूर्वरूप है। कृष्ण को एक दिन अचानक ब्रज की याद आती है । प्रेम - विह्वल कृष्ण उद्धव को गोपियों के लिये सन्देश दे कर ब्रज भेजते हैं। ज्ञान- गम्भीर उद्धव ब्रज की धूलि में सारी निर्गुण- गरिमा को लुटा कर वापस आते हैं ।[1] " उद्धव और कृष्ण का यह प्रेम- संवाद द्रष्टव्य है[2] -

नन्द जसोदा हेत की कहिये कहा बनाय ।
वे जाने के तुम भले मो पै कह्यो न जाय ।। 1
अस गोपिन के प्रेम की महिमा कछु अनन्त ।
मैं पूछी षट् मास लौं तऊ न पायो अन्त ।। 3
तब हरि ऊधो सो कह्यो हूं जानत सब अंग ।
हौं कबहूं ह्वा चो नहिं ब्रज वासिन्ह को संग ।। 7
ब्रज तजि अनत न जायहो मेरे तो या टेक ।
भूतल भार उतारहौ धरिहौ रूप अनेक ।। 8

1- सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य- डॉ० शिवप्रसाद सिंह -पृ०-151 ।

2- सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य - डॉ० शिवप्रसाद सिंह -पृ० 151 पर उद्धृत ।

उक्त पद में कृष्ण के वात्सल्य और मधुर रूप के साथ- साथ भवभय-हारी रूप भी स्पष्ट है। भागवत की ही भांति यहां भी राधा का उल्लेख नहीं है और भक्ति भावना से पूर्ण कृष्ण लीला का वर्णन है । ` यह अष्टछाप के कवियों की कृष्ण- भावना की समर्थ पृष्ठभूमि है। ब्रज- भक्ति के प्राण प्रतिष्ठा-पक स्वामी वल्लभाचार्य से प्राय: 80 वर्ष पूर्व तथा ब्रज काव्य के प्राणाधार कवि सूरदास से प्राय: 50 वर्ष पूर्व विष्णुदास का कृष्ण- काव्य ब्रजभाषा साहित्यकी एक ऐतिहासिक उपलब्धि है ।[1]

पूर्व और मध्यदेश की भांति महाराष्ट्र और गुजरात(भारत का पश्चिम भाग) भी कृष्ण- चरितामृत से सिंचित हुआ है । मराठी के ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम जनाबाई ने बाल- कृष्ण, गोपी-कृष्ण और राधा- कृष्ण के भावात्मक स्वरूप का सुमधुर अंकन किया है। नामदेव(सन् 1270-1350) हिन्दी में गीत- शैली (राग- रागिनियों में निबद्ध) के प्रथम गायक कहे जा सकते हैं । इन्हों कृष्ण की प्रेमोपासना कामिनी के रूप में की है। उनके शब्दों में -

कामी पुरुष कामिनी पियारी। ऐसी नामें प्रीति मुरारी ।।

गुजरात में भा ण (16 वीं शती पूर्वार्द्ध) के ` दशम स्कन्ध ` और केशव कायस्थ के (सन् 1472) ` कृष्ण- क्रीड़ाकाव्य ` में कृष्ण की ब्रजलीला का सुमधुर चित्रण हुआ है ।

कृष्ण- चरित के विकास की ये ही वे सरणियां हैं जिन से हो कर 16वीं शती के सूर आदि श्रेष्ठ ब्रज कवियों की पदावली में इसके भावात्मक स्वरूप का विन्यास हुआ है। यही वह नींव है जिस पर ` सूरसागर ` सभी भव्य- प्रासाद का निर्माण हुआ है । वस्तुत: मध्ययुग के भक्ति आन्दोलन की यह ही पृष्ठभूमियां हैं। आचार्य

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप और विकास-
- डॉ0 तपेश्वरनाथ- पृष्ठ -202 ।

शुक्ल ने बाल-कृष्ण और राधा - कृष्ण की मधुर लीलाओं के विस्तृत विन्यास को देखते हुए सूरदास को इस भाषा- परम्परा का प्रथम कवि नहीं माना था । ' सूरसागर ' पर टिप्पणी देते हुए शुक्ल जी ने कहा था - " सूरसागर किसी चली आ रही गीतकाव्य परम्परा का चाहे वह मौखिक ही रही हो - पूर्ण विकसा प्रतीत होता है ।[1] "

वस्तुत: " सूरदास का सूरसागर ब्रजभाषा में कृष्णचरित का विशाल भावात्मक चित्रागार है और उसमें सुदूर पूर्व के विद्यापति और शंकरदेव, चण्डीदास और रायरामानन्द, मध्यदेश के विष्णुदास और संगीतज्ञ कवि(बैजू बावरा और गोपालनायक के सांगीतिक पदों में भी कृष्ण- लीला के रमणीय प्रसंग हैं) तथा पश्चिम के नामदेव और माण की कृष्ण- प्रेम- साधना का ही भव्य रूपांकन हुआ है । इनमें परस्पर स्थूल अन्तर यदि है तो वह यह कि पूर्वी अंचल के कवियों के कृष्ण मूलत: शृंगारदेव है जबकि पश्चिम अंचल के कृष्ण भक्त- देव हैं। पूर्वी कृष्णचरित भावुकतापूर्ण है किन्तु पश्चिमी कवियों ने उनके चरित्र में अपेक्षाकृत संयम और श्रद्धाबुद्धि का प्रदर्शन किया है । राधा- प्रेम, शृंगार-लीला, बसन्त रास आदि पूर्वी कवियों की देन है। गोपी- प्रेम, वात्सल्य-लीला, शरद्-रास आदि पश्चिमी भक्तों की उपलब्धियां हैं और अतीव संभवत: दोनों के पीछे उपजीव्य रूप में जो पौराणिक प्रभाव पड़ा है उसके अनुसार पूर्वी कृष्णचरित पर ब्रह्मवैवर्त और पश्चिमी कृष्णचरित पर श्रीमद्भागवत का प्रतिनिधि प्रभाव माना जा सकता है।[2] "

मध्ययुगीन(भक्ति कालीन) कृष्ण- काव्य

मध्ययुगीन कृष्ण साहित्य परिमाण और गुण दोनों में श्रेष्ठ है। अने

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य शुक्ल - पृष्ठ, 69 ।

2- हिन्दी काव्य में कृष्णचरित का भावात्मक स्वरूप और विकास -
- डॉ० तपेश्वरनाथ ,पृष्ठ- 205 ।

कवियों ने प्रचुर काव्य लिखकर कृष्ण-काव्य की श्रीवृद्धि की है । मध्ययुगीन सम्प्रदायों के अधिकांश भक्त वाणीकार हैं जिन्होंने अपनी भावना बद्ध वाणी का नैवेद्य भगवान कृष्ण को अर्पित किया है।

वस्तुत: कृष्णभक्ति के इस व्यापक आन्दोलन के वास्तविक पथप्रदर्शक वल्लभाचार्य हैं जिन्होंने दार्शनिक सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा के अतिरिक्त कृष्णभक्ति के प्रसारार्थ भी क्रियात्मक कार्य किया । उन्होंने एक ऐसी नींव का निर्माण किया जिसपर ब्रजभाषा काव्य में कृष्णभक्ति की भव्य अट्टालिका निर्मित हुई । एक ऐसे युग का निर्माण हुआ जिसमें चतुर्दिक कृष्ण की वंशी की मधुर लय गुंजरित हो रही थी । परिणाम स्वरूप समस्त भारत कृष्ण भक्ति- धारा में निमज्जित हो गया ।

1- निम्बार्क सम्प्रदाय में कृष्ण - मध्ययुगीन कृष्ण प्रेमश्रयी शाखा वाले वैष्णव सम्प्रदायों में निम्बार्क सम्प्रदाय प्राचीनतम माना जाता है। श्री कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति राधा की प्रतिष्ठा सर्वप्रथम इसी मत में हुई। इस सम्प्रदाय में कृष्ण का युगल स्वरूप प्रतिबिम्बित है ।

निम्बार्क सम्प्रदाय में हिन्दी ब्रजभाषा के अनेक कवि हुए, जिनमें श्री भट्ट सम्प्रदाय के प्रथम हिन्दी कवि माने जाते हैं। इनकी एक मात्र प्राख्यात रचना ` युगल शतक ` है जिसे ` आदिवाणी ` कह कर पुकारा जाता है । विषय की दृष्टि से यह ग्रन्थ छ: भागों में विभाजित है जिसमें राधा-कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य, प्रणय , रस, निकुंज लीला, हिंडोल एवं राधा- कृष्ण- विवाह आदि मनोरंजक वातावरण का चित्रण है । युगल स्वरूप की एक झांकी द्रष्टव्य है -

दर्पन में प्रतिबिम्ब ज्यों नैन जु नैननि मांहि ।
यों प्यारी पिय पलक हूं न्यारे नहिं दरसाहिं ।।
प्यारी तन स्याम, स्यामा तन प्यारी ।
प्रतिबिम्बित तन अरसि परसि दोउ ।।
एक पलक दिखियत नहीं न्यारी ।।

ज्यों दर्पण में नैन, नैन में नैन सहित दर्पण दिखरावौं ।
श्री भट्ट जौंट की अति छवि ऊपर तन मन धन न्यौछावर हारौ ।।[1]

श्री भट्ट के शिष्य श्री हरिव्यास देव ने भी अपनी रचनाओं में राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओं का विशद चित्रण किया है। हरिव्यास श्रीकृष्ण के मधुर स्वरूप के उपासक थे। निम्बार्क मतावलम्बी होते हुए भी इन्होंने ` रसिक - सम्प्रदाय ` नाम से एक अलग शाखा चलायी । इनकी एक मात्र हिन्दी रचना ` महावाणी ` है जो ` युगल शतक ` के अनुकरण पर रचित है। यहां भी राधा श्याम सुन्दर की ह्लादिनी शक्ति के रूप में विराजमान हैं । राधा के बिना न तो कृष्ण की स्थिति है और न कृष्ण के बिना राधा का ही अस्तित्व है -

` एक स्वरूप सदा द्वै नाम ।
आनन्द के अह्लादिनी स्यामा अह्लादिनी के आनन्द स्याम ।।
सदा सर्वदा जुगल एक तन एक जुगल तन विलसत धाम ।
श्री हरिप्रिया निरन्तर नित प्रति काम रूप अद्भुत अभिराम ।।[1]

हिन्दी के कृष्ण- भक्त कवियों में हरिव्यास देव जी का सम्मानपूर्ण स्थान है और, निम्बार्क मतावलम्बी कवियों में तो इनका वही स्थान है जो वल्लभ मतावलम्बी कवियों में सूरदास का । कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि निम्बार्क मतावलम्बी कवियों ने श्री कृष्ण की सम्पूर्ण ब्रजलीला का चित्रण न कर उनके शृंगारिक और रसमय युगल स्वरूप तक ही अपने को सीमित रखा है। शृंगार में भी वियोग तक को इसमें कोई स्थान नहीं है ।[2]

निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्य कवियों में - परशुराम देव, रूपरसिक श्री तात्वेत्ता, वृन्दावन देव, श्री गोबिन्द देव, श्रीमति बांकावती एवं सुन्दर कुंवरि

1-२- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप और विकास - डॉ० तपेश्वरनाथ-पृष्ठ-237, 238 पर उद्धृत ।

3- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप और विकास- डॉ० तपेश्वरनाथ- पृष्ठ - 239 ।

9)

हुई है जिन्होंने कृष्ण को सर्वेश्वर, भक्त उद्धारक, नित्य- विहारी एवं रसात्मक रूप में देखा है ।

संक्षेप में निम्बार्क सम्प्रदाय के मध्ययुगीन हिन्दी कवियों के रसात्मक कृष्ण का स्वरूप इस प्रकार है - " श्री कृष्ण आनन्द स्वरूप हैं। राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति है। वे दोनों दो नामों से एक होकर विलास करते हैं । सम्प्रदाय में कृष्ण सदैव राधा के साथ शोभायमान होते हैं। राधा उनकी स्वकीया है ।[1] "

2- चैतन्य सम्प्रदाय में कृष्ण- 16 वीं शती के वैष्णवाचार्यों में माधुर्य - भाव की दृष्टि से, भगवान् श्री कृष्ण की प्रेम माधुरी के उन्मत्त गायक एवं राधा माधव की शृंगारलीला के संकीर्तनकार, बंगाल के महाप्रभु चैतन्यदेव का स्थान सर्वोपरि है । इनके विषय में डॉ० सेन लिखते हैं कि निरन्तर राधा भाव की महादशा में आत्म प्रक्षोपण और हरि- नाम- संकीर्तन की दिव्य माधुरी से उनका अंतरंग एवं बहिरंग पूरी तरह सराबोर हो चुका था ।[2]

चैतन्य के कृष्ण मात्र कृष्ण नहीं, राधा- कृष्ण युगल स्वरूप में हैं । राधा और कृष्ण क्रमश: रति और रस रूप हैं तथा अभिन्न हैं । लीला- रस के आस्वादन के लिए ही वह द्विधा विभक्त गये हैं । यहां राधा और कृष्ण क्रमश: परकीया और अपपति है और कृष्णावतार का लक्ष्य प्रेम- लीला है। भू- भारहरण की तो यहां आनुषंगिक चर्चा है। वस्तुत: चैतन्य मत वियोग में संयोग और संयोग में चिरवियोग की पद्धति पर अवस्थित है ।

1- हिन्दी साहित्य में कृष्ण- डॉ० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ - पृष्ठ- 136 ।

2- 'That the Radha Krishna legend inspite of all its association of Love and erotics is a grand imagery and a beautiful allegory of the highest truth, the eternal relation between man and God has been proved by the life of Chaitanya Deva himself.'

— A History of Braj Buli Literature, Dr. S. Sen, P. 14

` चैतन्यमत के सिद्धान्त को ` अचिन्त्यभेदाभेदवाद ` भी कहा जाता है। चैतन्यमत में परमतत्व स्वयं श्री कृष्ण हैं। यह तत्व सच्चिदानन्द स्वरूप तथा अनन्त शक्ति- युक्त है। -- ब्रह्म ज्ञान गम्य है। परमात्मा योग- साध्य है । किन्तु भगवान् भक्ति- भावित हैं। यही परब्रह्म हैं, यही कृष्ण हैं, यही भगवान् हैं ।यानि, श्री कृष्ण की अनन्त शक्ति जब प्रकट रहती है तब उसे भगवान् कहते हैं । भगवान् की '3' शक्तियां हैं - जीवशक्ति, माया शक्ति और स्वरूप शक्ति । उपर्युक्त दो प्रकृति के वशीभूत हैं किन्तु अन्तिम- स्वरूप शक्ति अप्राकृत नित्य गोलोक में प्रकट हैं । श्री कृष्ण सच्चिदानन्द स्वरूप हैं अत: उनके '3' गुणों के अनुरूप इनकी स्वरूप शक्ति के भी '3' स्वरूप हुए- संधिनी, संवित और ह्लादिनी । भगवान् जिसके द्वारा सत्ता धारण करते हैं वह संधिनी जिसके द्वारा स्वयं को जानते हैं वह संवित और जिसके द्वारा आह्लादित होते हैं वह ह्लादिनी शक्ति है । इस ह्लादिनी के दो काम है भगवान् को आह्लादित करना और भक्त को आह्लादित करना । - भगवान् में ह्लादिनी रसरूपिणी *रसरूपिणी* है - भक्त हृदय में वही भक्ति रूपिणी है । स्वरूप शक्ति की सारभूता यह जो ह्लादिनी शक्ति है, उसी की सारधनमूर्ति हैं राधा- नित्य प्रेम स्वरूप की ही नित्य प्रेम- रूपिणी । इनमें ऐश्वर्य, कारुण्य के अतिरिक्त माधुर्य की चरम स्फूर्ति है । यह अधिरूढ़ महाभाव तक अन्तव्याप्त है। इन्हीं के आश्रय से वृन्दावन सर्वोच्यधाम और ब्रजेश्वर कृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं।- सर्वोच्यधाम में ही द्विभुज मुरलीधारी गोपेश्वर कृष्ण की गोपेश्वरी राधा के साथ नित्य लीला होती है। यह दोनों एक होकर भी लीला के बहाने दो हैं - अभेद में भेद है। अचिन्त्य शक्ति के बल से ही इस अभेद लीलाविलास से भेद है। यही ` अचिन्त्यभेदाभेद वाद ` है ।[1]

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण का भावात्मक स्वरूप और विकास-
डॉ0 तपेश्वरनाथ -पृष्ठ- 252-253

वस्तुत: महाप्रभु चैतन्य ने अपने मत की स्थापना के लिये स्वयं कुछ नहीं लिखा । इसका श्रेय तो उनके शिष्यों - सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी, गोपाल-भट्ट गोस्वामी, रघुनाथ दास, रघुनाथ भट्ट, और जीवगोस्वामी- को ही दिया जा सकता है जो वृन्दावन के षड्गोस्वामियों के नाम से प्रसिद्ध है। इन में चैतन्यदेव की विचारधारा को गहराई से समझ कर अग्रसर करने वाले एवं सर्वाधिक प्रतिभाशाली आचार्य और कवि रूपगोस्वामी हैं जिन्होंने अपने अद्वितीय रसग्रन्थों- ` हरिभक्ति रसामृत सिन्धु ` और ` उज्जवल-नीलमणि ` - द्वारा कृष्णभक्ति धारा को तीन बहुमूल्य देन दी :-

1- भक्ति का रसात्मक निरूपण,

2- पंचभावोपासना की स्वरूप- स्थापना,

और 3- राधा- कृष्ण का विभावन । - इसके अतिरिक्त इनकी लगभग एक दर्जन कृतियां हैं जिनमें कृष्णलीला का महिमाशाली वर्णन है ।

इसके पश्चात् चैतन्य - मत के एक अन्य प्रतिनिधि कवि और राधा-कृष्ण के युगल रूप के उपासक श्री गदाधर भट्ट का नाम आता है लेकिन इनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं हैं। इनकी रचनायें प्राय: पदों में निबद्ध हैं जिन में अधिकांश पद राधा- कृष्ण के शृंगार, रास, विलास, हास आदि प्रसंगों पर हैं । गोपी- लीला का भी उल्लेख दो - एक पदों में हुआ है। कहीं- कहीं नन्द- यशोदा के कृष्ण के प्रति वत्सल- भाव के चित्र भी बिखरे हुए मिल जाते हैं। यमुना, वंशी, वर्षा , हिंडोल , वसन्त और होली का वर्णन भी कुछ पदों में हुआ है ।

एक अन्य कवि ` सूरदास मदनमोहन ` भी इस सम्प्रदाय में अपना स्थान रखते हैं । इन्होंने भी कृष्ण के बाल- रूप, नख- शिख, रास- विलास, मान, होली, हिंडोल आदि का सरस वर्णन है । उदाहरण द्रष्टव्य है -

` मधु के मतवारे श्याम खोलो प्यारे पलकैं।सीस मुकुट लटा छुटी और छुटी अलकैं ।।
सुर नर मुनि द्वार ठाढ़े दरस हेतु किलकैं।नासिका के मोती सोहैं बीच लाल ललकैं ।।
कटि पीताम्बर मुरली कर स्रवन कुण्डल झलकैं।सूरदास मदनमोहन `दरस देहौं भलकैं ।।[1]

इस के अतिरिक्त इस सम्प्रदाय में - माधवदास, रामराय, चन्द्रगोपाल आदि प्रसिद्ध कृष्ण- भक्त कवि हुये हैं जिन में माधवदास इस मत के प्रथम ब्रज- कवि कहे जाते हैं ।

3- वल्लभ - सम्प्रदाय में कृष्ण - इस मत के प्रवर्तक आचार्य वल्लभ ने भगवान् को प्राप्त करने का एकमात्र साधन भक्ति को स्वीकार किया है। मर्यादा मार्ग की कठिनाइयों को देखते हुये उन्होंने पुष्टिमार्ग को ही प्रमुखता दी है। रागात्मिक वृत्ति को प्रमुखता देने के कारण ही इस मत में कृष्ण का ब्रजेश्वर रूप, मथुरावासी और द्वारिकावासी कृष्ण की अपेक्षा अधिक महत्वशाली है। यहां श्रीकृष्ण का प्रतिनिधि भाव सख्य ही है अत: यही कारण है कि इस मत में कृष्ण के बाल- रूप और युवा रूप को ही स्वीकार किया गया है ।

इस पुष्टि सम्प्रदाय को विशाल रूप देने का कार्य वल्लभचार्य के पुत्र गोसाईं बिट्ठलनाथ ने किया । इन्होंने आठ प्रमुख काव्यकार, संगीतज्ञ, तथा कीर्तनकार शिष्यों (जिनमें चार शिष्य वल्लभाचार्य के थे - कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्णदास तथा चार शिष्य स्वयं बिट्ठलनाथ के थे - गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास) को लेकर अपने आशीर्वाद की ` छाप ` लगा उन्हें `अष्ट-छाप ` के नाम से विभूषित किया । कृष्णभक्ति में सख्य- भाव के प्रचारार्थ अष्टछाप के पावन फूलोंको ने विशेष सहयोग दिया है। अष्टछाप की प्राय: सभी रचनाओं में प्रेमाभक्ति के प्रतिनिधि भाव- दास्य, वात्सल्य, सख्य और कान्त - सन्निविष्ट हैं । इस तरह, इस मत में कृष्ण भावदेव बन कर प्रस्तुत हुये हैं।

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण का भावात्मक स्वरूप और विकास -
डॉ० तपेश्वरनाथ - पृष्ठ - 271 पर उद्धृत

13)

भावोपासना भक्ति- भावना का ही एक अंग है। श्रीमद्भागवत में भक्ति के नौ भेद- श्रवण, कीर्तन , स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन - मानकर इसे नवधा- भक्ति की संज्ञा दी गई है । इसमें प्रथम छः वैधी भक्ति और अन्तिम तीन रागानुगा भक्ति के अंग हैं और यह अन्तिम तीन तत्व भगवान् (कृष्ण) के साथ वैयक्तिक सम्बन्ध पर ही आश्रित हैं। यही भावोपासना है । नारद भक्ति- सूत्र में प्रेमरूपा भक्ति के सम्बन्ध में ग्यारह आसक्तियों - गुण (श्रवण), अहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति (कीर्तन), पूजासक्ति, स्मरणासक्ति (स्मरण), दास्यासक्ति(दास्य), सख्यासक्ति (सख्य), कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति(आत्मनिवेदन), तन्मयासक्ति और परमविरहासक्ति - का उल्लेख है जिन में दास्य, वात्सल्य, सख्य और कान्तासक्ति क्रमशः दास्य, वात्सल्य, सख्य और मधुर- भाव भक्ति ही हैं और शेष तीन में से आत्मनिवेदनासक्ति नवधा भक्ति का ही चरम रूप है। इसके अतिरिक्त अन्तिम दो - तन्मयासक्ति और परम-विरहासक्ति को भी माधुर्य के दोनों पक्षों (संयोग और वियोग) में समाविष्ट किया जा सकता है ।

अष्टछाप के कवियों की भावोपासना में यों तो इन सब का स्थान है किन्तु नवधा भक्ति के अन्तिम तीन तत्व और नारदीय भक्ति की अन्तिम सात आसक्तियों को ही इनकी रचनाओं में अधिक विस्तार मिला है । इनकी रचनाओं में महत्ता तो माधुर्य- भाव को ही प्रदान की गई है । वास्तव में आचार्य रूपगोस्वामी ने इसी माधुर्य - भाव को ही अपने ग्रन्थ ` उज्ज्वल नीलमणि ` में ` उज्ज्वल- रस ` के नाम से विस्तार दिया था ।

इस प्रकार हम अष्टछाप के कवियों की इन पांच प्रणालियों - शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य और मधुर - में आबद्ध भक्ति- भावना को पंचभावोपासना के नाम से अभिहित कर सकते हैं। इन पांचों में कृष्ण का स्वरूप इस प्रकार है -

1- शान्त- भक्ति - भावना - इसका उदय `शान्ति रति ` से होता है ।

शान्ति का अर्थ है - सम । वस्तुत: सभी प्राणियों के प्रति सम भाव में ही शान्त रस है । यहां भक्त का चित्त भगवान्(कृष्ण) में अनुरक्त होते ही वह सांसारिक प्रपंचों से विरक्त हो जाता है । अष्टछाप के कवियों में सूर और परमानन्द दास ने कृष्ण के प्रति अपनी शान्त भक्ति- भावना प्रदर्शित की है। सूर का एक पद द्रष्टव्य है :-

" सुआ, चलु वा बन को रसु लीजो ।
जा बन कृष्ण नाम- अमरित - रस, स्रवन-पात्र भरि पीजै ।।
को तेरो पुत्र पिता तू काको, मिथ्या भ्रम जग केरो ।।
काल-मंजार लै जैहै तोको, तू कहै मेरो - मेरो ।।
हरि नाना रस मुकति- क्षेत्र चलु तोकों हौं दिखराऊं ।।
` सूरदास ` साधुनि की संगति, बड़े भाग्य जो पांऊ ।।[1] "

एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं -

" सदा एक रस एक अखंडित आदि अनादि अनूप ।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, बिहरत युगल स्वरूप ।।
सकल तत्व ब्रह्मांड देव पुनि, माया सब बिधि काल ।।
प्रकृतिरूप श्रीपति नारायण, सब है अंस गोपाल ।।[2]

यहां कृष्ण सदा एकरस एक और अखण्ड हैं। पुरुष, नारायण और विष्णु - सब उसी अविनाशी गोपाल कृष्ण के ही अंश हैं और यही शान्त भक्ति के देवता का स्वरूप हैं ।

1- पठान्तर - ` राम ` ` सूरसागर ` (ना० प्र० स० संस्करण), पद सं०- 340 ।

2- सूरसागर - पद संख्या - 337 (ना० प्र० स०) ।

2- दास्य- भक्ति- इसका स्थायी भाव `प्रीति `, आलम्बन द्विभुज एवं चतुर्भुज रूपी कृष्ण तथा आश्रय दास अर्थात भक्त- वर्ग हैं। यहां भक्त की यही कामना रहती है कि भगवान् अनुग्राहक हैं और मैं उनका अनुग्राह्य हूं। यह ` प्रीति ` भी दो प्रकार की होती है संभ्रम प्रीति(जहां भक्त अपने को दीन- हीन समझ, प्रभुकृपा की अभिलाषा करता है) और गौरव प्रीति (जहां भक्त भगवान् द्वारा अपनी रक्षा तथा पालन की कामना करता है)।

सूर की अधिकांश दास्य परक रचनाएं वल्लभाचार्य से साक्षात्कार से पूर्व की हैं। हां, कुछ विनयपरक पद बाद के भी हैं। सूरदास के शब्दों में भक्त- वत्सल कृष्ण का स्वरूप द्रष्टव्य है -

हम भक्तन के , भक्त हमारे ।
सुन अर्जुन परितिग्या मेरी, यह व्रत टरत न टारे ।।
भक्तै काज लाज हिय धरिकैं, पाइं पयादे धाऊं ।।
जहं - जहं भीर परै भक्तन पै, तहं - तहं जाय छुड़ाऊं ।।
जो मन भक्त सों बैर करत है, सो निज बैरी मेरो ।
देखि बिचारि भक्त हित कारन, हांकत हौं रथ तेरो ।।
जीतैं जीति भक्त अपने की, हारैं हारि बिचारौं ।
` सूरदास ` सुनि भक्त - विरोधी, चक्र सुदर्शन धारौं ।।[1]

3- वात्सल्य- भक्ति - इसका स्थायी भाव ` महत्व ` है। आधुनिक शोधकर्ता विद्वानों ने इसके स्थान पर रूपगोस्वामी द्वारा स्थापित ` वात्सल्य `, स्थायी का ही युक्तिपूर्वक समर्थन किया है। उनके अनुसार ` वत्सल ` शब्द में वत्स के प्रति मार्मिक

1- सूरसागर - पद संख्या - 5 (न0 प्र0 स0) ।

आकर्षण व्यक्त होता है। विशुद्ध निस्वार्थ प्रेम और बलिहारी जाने की जो स्पष्ट भावना `वत्सल ` में है, वह किसी और में नहीं ।[1]

अष्टछाप के कवियों ने बालकृष्ण को आलम्बन मान कर वात्सल्य रस की पावन धारा प्रवाहित की है। इन कवियों में सूर और परमानन्ददास इस भाव के अनन्य साधक हैं। इस भाव के अन्तर्गत कृष्ण मुख्यत: दो रूपों में व्यक्त हुए हैं -

1- लौकिक - इसमें उनके जन्मोत्सव तथा बाल- संस्कार , रूप- सौन्दर्य तथा चपल क्रीड़ायें संलग्न हैं ।

2- अलौकिक - यहां कृष्ण द्वारा कंस के भेजे गये राक्षसों का वध किया गया है । लौकिक रूप में जो सुकुमारता और चांचल्य है वह अलौकिक रूप के शौर्य और शक्ति से घुल- मिल गया है । डॉ० दीनदयालु गुप्त के शब्दों में - ` मातृहृदय की जिस प्रकार की संयोग- वियोगात्मक अनुभूतियां शिशु के संयोग- वियोग में होती हैं और जितना रूप- माधुरी का सुख किसी सुन्दर, चंचल तथा क्रीड़ाशील बालक को देखकर दर्शक वृन्द लेता है उन सब का अनुभव सूर और परमानन्ददास के भक्ति भावुक हृदय प्रबलता के साथ करते हैं ।[2] `

मातृहृदय के सहज ममत्व, पवित्र दुलार और अपार वेदना को वाणी प्रदान करने के लिये सूर ने जिस यशोदा की सृष्टि की है,वह विश्व- साहित्य में अतुलनीय है ।

4- सख्य - भक्ति- इसका स्थायी-भाव ` विश्रम्भ ` है जो किसी प्रकार के नियन्त्रण से रहित प्रगाढ़ विश्वास का पर्याय है। इसके आलम्बन कृष्ण और आश्रय सुबल और श्रीदामा आदि मित्रवर्ग हैं ।

अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में कृष्ण की बाल और किशोरावस्था की आमोद- प्रमोदमय सख्य लीलाओं का मार्मिक अंकन हुआ है। बाल- पौगण्ड और

1- रस सिद्धान्त : स्वरूप और विश्लेषण, डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित - पृष्ठ - २१५ ।

2- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय - डॉ० दीनदयालु गुप्त - पृष्ठ 617 ।

किशोर- इन त्रिविध अवस्थाओं में कृष्ण के अन्तरंग सहचरों में परस्पर प्रेम और अलौकिक क्रीड़ा में इन कवियों ने स्वयं अन्तरंग सखा बन कर हिस्सा लिया है। अष्टछाप के आठों कवि कृष्ण की विभिन्न लीलाओं के भाव- सहचर हैं। इनमें भी सूर के सख्य में सहजता और तन्मयता है। सूर के कृष्ण की आंख मिचौली का एक दृश्य प्रस्तुत है :- हरि तबे आपनि आंखि मुंदाई।

सखा सहित बलराम छिपाने जहां तहां गए भगाई।
कान लागि कहेऊ जननी जसोदा, वा घर में बलराम।
बलदाऊ को आवन दे हो, श्रीदामा सों है काम।
दौरि दौरि बालक सब आवत, छुवत महरि के गात।
सब आए, रहे सुबल श्रीदामा हारे अब के तात।
सोर पारि हरि सुबलहिं धाए, गह्यो श्रीदामा गाइ।
देहैं सोंह नन्द बबा की जननी पै ले आइ।
हंसि हंसि तारी देत सखा सब भए श्रीदामा चोर।
सूरदास हंसि कहति जसोदा जीत्यो है सुत मोर।।[1]

5- माधुर्य- भक्ति - वस्तुत: लोकपक्ष में जो शृंगार- रस है, भक्ति शास्त्र में वही `मधुरभक्ति - रस` है। इसके दो प्रकार हैं- संयोग और वियोग। अष्ट-छाप के कवियों के कृष्ण मधुर स्वरूप के अन्यतम चित्रकार हैं। यह माधुर्य सख्य-रूप की ही स्वाभाविक परिणति है। उनके जो सखा कृष्ण गायों के पीछे लाठी लिये चलते थे वही अब ब्रजांगनाओं के पीछे बांसुरी लिये डोलते हैं।

मधुर भक्ति में `कृष्ण पूर्णरूपेण भाव की प्रतिमा हैं। स्वयं न वे स्वयं न वे बालक हैं, न तरुण, न प्रेमी हैं न प्रेम पात्र। उनकी मूर्ति एकमात्र

1- सूरसागर(दशमस्कंध) ^ पद सं० — ४५४ | बेंक प्रे०, पृष्ठ - 129 ।

भक्त की भावना और अनुभूति पर आश्रित हैं। सूरदास की भावना और अनुभूति के कृष्ण सुन्दर, सुकुमार, कोमल, मधुर, विनोदी, चंचल, रसिक, क्रियाशील, गतिमान और अद्भुत लीलाधारी हैं ।..... इस मधुर रस में जो स्वाद है वह अवर्णनीय है `[1]। चीरहरण लीला, रास-लीला, दान-लीला, पनघट लीला आदि माधुर्य - रस के संयोग पक्ष में और पूर्वराग, मान, प्रवास आदि वियोग पक्ष के अन्तर्गत आते हैं ।

वस्तुत: हिन्दी साहित्य में कृष्ण-भक्ति की निर्झरिणी प्रवाहित करने वालों भक्त कवियों में भक्तशिरोमणि महाकवि सूरदास का नाम विशेष सम्मान से लिया जाता है । गौरव- गरिमा से युक्त ब्रजभाषा के माध्यम से उन्होंने ` भागवत ` पुराण को आधार बना कर राधा- कृष्ण की विविध मनोहारी लीलाओं का वर्णन ` सूरसागर ` में किया है । सूर का समस्त काव्य श्याम के रंग में अनुरंजित है। उनके भावों की इस ` सागर ` में जितनी भी उर्मियां उठती हैं , वह सभी श्याम- नाम से ध्वनित होती प्रतीत होती हैं। भक्ति- भाव और रस इनके काव्य में एकाकार हो गये हैं । लेकिन सूर की दृष्टि कृष्ण के लोकरंजक रूप पर ही अधिक रही है, उनके लोक- रक्षक रूप का तो सामान्य सा वर्णन ही सूर ने किया है। अधिकांश में रसिक शिरोमणि कृष्ण और नटखट कृष्ण के राग-रंगों का ही व्यापक वितान तन जाने के कारण इसके भीतर लोकनायक कृष्ण, योद्धा कृष्ण और दुष्ट-दमन कृष्ण का झीना रूप छिप सा गया है। वस्तुत: सूर का ध्येय मुख्यत: भाव- चित्रण ही रहा है। विनय और दैन्य के प्रसंगों में भी उच्चकोटि के भावों का समावेश है।

सूर को वात्सल्य और शृंगार का कवि कहा जाता है। इन दोनों भावों के चित्रण में सूर अपना सानी नहीं रखते । वस्तुत: सूर एक भक्त, प्रेमी

1- सूर मीमांसा - डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा-(भावातीत कृष्ण- पृष्ठ- 174) ।

एवं कवि के रूप में साहित्य- क्षेत्र के अन्तर्गत अवतरित हुए हैं । उनके तीनों पक्ष एक दूसरे पर अन्योनाश्रित एवं पूरक हैं। कृष्ण- भक्ति में लीन होकर ही उनके कंठ और वीणा से झंकृत होने वाली राग- रागनियों ने उन्हें कवि का रूप प्रदान किया । सूर वस्तुत: भावजगत् के अद्भुत द्रष्टा ही नहीं, स्रष्टा भी हैं ।

सूरदास के बाल-लीला सम्बन्धी पदों में वात्सल्य रस और उससे सम्बद्ध विविध भावों की मनोरम अभिव्यक्ति हुई है। इसके अतिरिक्त सूर ने वियोगी की एक- एक मानसिक - दशा का अनुपम चित्र उतारा है। विरह- सागर की एक - एक लहर का उन्हें अनुभव है। गोपियों और राधा के साथ विविध प्रेम क्रीड़ाओं में सूर के कृष्ण एक रसिक, नागर, विलासप्रिय नायक के रूप में हमारे सामने आते हैं।

द्वारिकावासी कृष्ण के चरित्र- चित्रण में सूर की दृष्टि अधिक नहीं रमी है। द्वारिका के ऐश्वर्य- सम्पन्न , महिमाशाली वातावरण में भी कृष्ण ब्रज के सुख के लिये तरसते दिखाई देते हैं ।

भागवतकार की तरह सूर ने कृष्ण को परब्रह्म, पुरूषोत्तम , सर्वव्यापी, अगम, अगोचर और निर्गुण भी माना है लेकिन उनका मन कृष्ण के सगुण- साकार रूप में ही अधिक रमा है ।

इस प्रकार सूरदास ने कृष्ण के सुन्दर, सुकुमार, मधुर , विनोदी, चंचल, रसिक और लीलामय स्वरूप को ही प्रकाश में लाने का अधिक प्रयत्न किया है । उनके इस लीलामय स्वरूप के अतिरिक्त भक्तवत्सल असुरसंहारक आदि अन्य रूपों

1- सूर की काव्य- साधना - डॉ० गोविन्दराम शर्मा - पृष्ठ 287 ।

के वर्णन में सूर की दृष्टि अधिक नहीं रमी है। उन्होंने कृष्ण को मुख्यतया मानवीय रूप में ही चित्रित किया है । कृष्ण की मानवीय लीलाओं के बीच सूर ने कहीं - कहीं उनके अलौकिक चरित्र की ओर भी संकेत किये हैं ।[1]

राधा- वल्लभ मत में कृष्ण - 16 वीं शती के कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में वृन्दावन के राधावल्लभ - सम्प्रदाय का विशेष महत्व है। इसके संस्थापक रसाचार्य गुसाइँ हितहरिवंश जी हैं जो कृष्ण की मुरली का अवतार माने जाते हैं ।

इस मत के कवियों ने राधा- कृष्ण कुंज- केलि का सुमधुर चित्रण किया है। इस सम्प्रदाय का कोई दार्शनिक मतवाद प्रसिद्ध नहीं है। यह तो विशुद्ध रसमार्गी सिद्धान्त है जिसमें प्रेम ही परमार्थ के रूप में प्रतिष्ठित है। गोस्वामी हित हरिवंश ने इसमें राधा को कृष्ण की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है । राधा सम्प्रदाय की प्राण संजीवनी है। सम्प्रदाय की उपासना तो मधुर भाव की है किन्तु युगल- स्वरूप में प्राधान्य राधा का ही है। श्रीकृष्ण राधावल्लभ हैं, अजन्मा हैं, परब्रह्म हैं। यहां राधा श्रीकृष्ण की उपासिका या आराधिका नहीं है वरन् उनकी उपास्या और आराध्या है। कृष्ण की उपासना आनुषंगिक रूप से होती है।

हितहरिवंश जी का ` हित- चौरासी ` ब्रजभाषा के समस्त माधुर्य और वैभव से युक्त एक ऐसा सरस पद- संग्रह है जिसके आधार पर परवर्ती भक्तों ने राधावल्लभीय तत्व को हृदयंगम किया । इनके द्वारा रचित ` स्फुट-वाणी ` भी ब्रजभाषा का समृद्ध और प्रांजल रूप लिये भक्ति रस से आप्लावित है ।माधुर्य-भक्ति होने के कारण उनकी वाणी का मूलाधार रस है और इस रस- निर्झरिणी में स्नान कर उनकी राधा नख- शिख तक सौन्दर्य और प्रेम की प्रांजल मूर्ति बन कर भक्तों की आराध्या बन गयी है। हित हरिवंश जी ने राधा- भक्ति द्वारा आत्म-तृप्ति करने के लिये ही कविता को साधन बनाया था ।

तदन्तर सेवक जी की ` सेवक- वाणी ` आती है जो आज ` हित - चौरासी ` की पूरक वाणी मानी जाती है और इसमें सम्प्रदाय की मूल भावना को व्यक्त करना ही कवि का साध्य रहा है ।

1- सूर की काव्य साधना — डॉ. गोविन्दराम शर्मा — पृ - 347 /

राधा - वल्लभ मत में कृष्ण रस- रूप ब्रह्म के अवतार हैं । ` उनके इस रसात्मक रूप का पूर्णत्व राधा के साथ मधुर केलि क्रीड़ा में ही प्रकट होता है । राधा - वल्लभ का यह रसमय रूप दो प्रकार का होता है - (1) ब्रजरस और (2) निकुंज रस । ब्रजरस में गोपियों का जार- प्रेम प्रकट होता है । यह परकीया प्रेम के अन्तर्गत है और केवल कृष्ण की अवतार- दशा में ही प्रकट होता है। अत: यह अनित्य है। इससे भिन्न निकुंजरस है जो नित्य, अखण्ड और एकरस है। इसमें ` स्व ` और ` पर ` का कोई भेद नहीं ।[1]

हरिदासी सम्प्रदाय में कृष्ण - 16 वीं शती के अन्त में श्री कृष्ण के युगल स्वरूप की उपासना को ले कर विकसित होने वाले ब्रज के कृष्ण- भक्त सम्प्रदायों में स्वामी हरिदास का ` सखी- सम्प्रदाय ` एक प्रसिद्ध रस- सम्प्रदाय है जिसका एक मात्र उद्देश्य राधा- कृष्ण की निकुंज लीला का सखी- भाव से विस्तार करना है । इस सम्प्रदाय के कृष्ण निकुंजबिहारी लाड़लीलाल हैं ।

स्वामी हरिदास ललिता सखी के अवतार माने जाते थे अत: उनकी दृष्टि से देखी गयी राधा- कृष्ण की केलि क्रीड़ाएं सम्प्रदाय की अतुल सम्पत्ति हैं। इनकी रचनाओं के विषय में हिन्दी के इतिहासकार एकमत नहीं हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार- ` इनके अनेक संग्रह प्राप्त हैं जिनमें ` हरिदास जी की बानी ` और ` हरिदास जी के पद ` प्रमुख हैं ।[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तीन (हरिदास जी के ग्रन्थ, हरिदास जी के पद और हरिदास जी की बानी) रचनाओं का उल्लेख किया है ।[3]

1- हिन्दी काव्य में कृष्णचरित का भावात्मक स्वरूप-विकास- डॉ० तपेश्वरनाथ-पृष्ठ 307 ।

2- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-डॉ० रामकुमार वर्मा-पृ07 4।

3- हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य शुक्ल - पृष्ठ- 186 ।

वास्तव में हिन्दी कृष्ण- काव्य को कृष्ण के निकुंजविहारी स्वरूप से रंजित करने वाले कवियों में स्वामी हरिदास का एक महत्वपूर्ण स्थान है । हरिदास जी जैसे अनन्य रसिक भक्त थे वैसे ही सुर- साधक भी थे । इनके शिष्यों में विट्ठल विपुलदेव, नरहरिदास, रसिकदेव, ललित किशोरी, ललित मोहिनी, चतुरदास, सखीशरण, भगवानदास आदि हैं ।

इस सम्प्रदाय में राधा कृष्ण की ह्लादिनी तथा प्राणेश्वरी है जो सहस्त्रों सखियों से परिसेवित है। भक्तजन पहले इसी सखी- भाव को प्राप्त कर राधा का सान्निध्य प्राप्त करते हैं और राधा को प्रसन्न कर लेने पर कृष्ण आप ही आप प्रसन्न हो जाते हैं ।

वस्तुत: हरिदासी सम्प्रदाय एक रस भक्ति सम्प्रदाय है जिसमें दर्शन की प्रधानता न होकर हृदय(रस) पक्ष की प्रधानता है। इसमें प्रेम की गंभीरता और मधुररस की विशेषता है। कृष्ण का समस्त विलास राधाहेतु और राधा की समस्त लीलाएं कृष्णहेतु हैं। इनकी आनन्द- केलि सखियों की प्रसन्नता का कारण है । अपने लिये इनका कोई सुख- स्वार्थ नहीं है। तत्सुखी भाव ही इन सखियों की आनन्द- साधना का चरम हेतु है। डॉ० तपेश्वरनाथ के शब्दों में - " राधावल्लभ मत से भक्ति राधा- प्रधान हो गयी है। सखी- सम्प्रदाय में आ कर तो यह भावना इतनी घनीभूत हो उठी है कि भाव- पुरूष कृष्ण भी इस स्त्रैण भाव- धारा में पड़कर अपने विराट चरित्र की प्रखरता खो बैठे हैं ।[1]

सम्प्रदाय-मुक्त कवियों के कृष्ण - वैसे तो प्राय: समस्त मध्ययुगीन कवियों की काव्य- साधना धार्मिक होने के कारण सम्प्रदाय बद्ध रही है किन्तु कुछ ऐसे भी भाव- साधक भक्त कवि हुये हैं जिन्होंने अपने को किसी सम्प्रदाय विशेष की सीमा में न

1- हिन्दी कृष्ण काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप और विकास - डॉ० तपेश्वरनाथ - पृष्ठ - 313 (

बांध कर स्वतन्त्र रूप से काव्य-रचना की है। इनकी यह भाव- प्रधान रचनाएं किसी विशेष दार्शनिक विचार से प्रभावित न होकर सहज आत्मपरक है। इसके अतिरिक्त इनकी भावोपासना की एक लक्षणीय विशेषता यह है कि कृष्ण के साथ इनका सम्पर्क सीधा है, लीला- माध्यम से नहीं । वैसे, भगवान् कृष्ण के प्रति अपनी अनुरक्ति प्रकट करने के प्रसंग में उनकी शक्ति (असुर-वध-परक),शील (वात्सल्य- परक), या सौन्दर्य प्रधान(शृंगार- परक) लीलाओं का समन्वित प्रसंग मिल जाना अस्वाभाविक नहीं । भक्तियुग में मीरां और रसखान इस स्वच्छन्द भावोपासना के प्रतिनिधि कवि हैं ।

मीरां की प्रेम- साधना से श्रीकृष्ण के प्रियतम रूप की पूर्णाहुति होती है। मीरां के कृष्ण केवल मीरां के ही कृष्ण हैं - ब्रजवल्लभ, गोपीवल्लभ या राधा-वल्लभ कृष्ण नहीं । यहां प्रेम के आश्रय और विषय के बीच रूपक की कोई परत नहीं है। मीरां का प्रेम एवं प्रेमजन्य वेदना उधार ली हुई नहीं । अपनी भावना को तीव्र करने के लिये वह अपनी निजी वेदना को ही व्यक्त करती हैं न कि कृष्ण के विरह में गोपियों की वेदना को । मीरां का समस्त जीवन कृष्णमय है।

मीरां के काव्य में कृष्ण के दो रूप स्पष्ट होते हैं। प्रथम रूप ` भक्तवत्सल गोपाल, नन्दलाल या गिरिधर लाल ` का है जिन के चरणकमल पर दासी मीरां तन,मन, धन से न्योछावर रही है। दूसरे रूप में कृष्ण का स्वरूप नितान्त मधुर है। और वास्तव में यही मीरां की प्रेम- वेदना की अनाविल धारा है।

मीरां के काव्य में ऐतिहासिक कृष्ण ईश्वरता के दिव्यासन से उतर कर मानवीय धरातल पर आ गये हैं। इससे पहले भी कृष्ण को मानवीय रूप में देखने का प्रयत्न हुआ लेकिन उस रूप को ईश्वर की नर-लीला का ही नाम दिया जा सकता है। मीरां के आंसुओं में उतरने वाले कृष्ण तो पूर्ण भाव- प्रवण पुरूष हैं ।कृष्ण प्रेम में दीवानी मीरां गा उठती है।- "अली री मेरे नैणां बाण पड़ी ।
चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरत उर बिच आन अड़ी ॥
कब की ठाढ़ी पंथ निहारूं अपने भवन खड़ी ॥
कैसे प्राण पिया बिन राखूं जीवन मूर जड़ी ।
मीरां गिरधर हाथ बिकानी लोग कहैं बिगड़ी ॥"

इन सम्प्रदाय मुक्त कवियों के प्रतिनिधि के रूप में दूसरे कवि आते हैं - रसखान । इनको रसपूर्ण सवैये हिन्दी- कृष्ण - काव्य की अमूल्य निधि है । इनके काव्य में ब्रजेश्वर कृष्ण का आत्म- साक्षात्कार विशुद्ध भाव के धरातल पर हुआ है। रसखान के कृष्ण भी ब्रजभाषा के अन्य कृष्ण- भक्त कवियों की तरह ही शैशव की स्वाभाविक सुषमा एवं बाल- सुलभ चपलता से युक्त, कैशोर्य की कमनीय क्रीड़ा में लीन, राधिका- रमण एवं गोपीजन वल्लभ हैं। हास- विलास एवं केलि- क्रीड़ाओं में संलग्न होते हुए भी वह ब्रह्म के प्रतीक हैं। रसखान के कृष्ण साक्षात् ब्रह्म हैं पर वही ब्रह्म ब्रज में गोचारण के लिये भक्तों के साथ लीलाएं करने के लिये एवं ` छछिया भर छाछ ` पर नाचने के लिये ब्रज में अवतरित हुये हैं। तभी तो रसखान कहते हैं :-

` ब्रह्म में ढूंढयो पुरानन गानन वेदरिचा सुनी चौगने चायन ।
देख्यौ सुन्यौ कबहु न किनु वह कैसे सरूप और कैसे सुभायन ।
टेरत हेरत हार पर्यो रसखान बतायो न लोग लुगायन ।
देखौ दुरौ वह कुंज कुटीर में बैठ्यौ पलोटत राधिका पायन ।।

इनके अतिरिक्त कृष्ण भक्त सम्प्रदाय - मुक्त कवियों में अब्दुर्रहीम (मदनाष्टक, रासपंचाध्यायी) नरोत्तमदास(सुदामा चरित), कृपाराम (हित - तंरगिनी), केशवदास(कविप्रिया, रसिकप्रिया) और आलमशेख (आलम केलि) की रचनाएं आती हैं ।

मध्ययुगीन कृष्ण- काव्य के अन्तर्गत एक रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि भी आते हैं, वह हैं - तुलसीदास । इन्होंने कृष्ण के भावात्मक स्वरूप से प्रभावित होकर कृष्ण की लीलाओं का गान किया है। अत: सम्प्रदाय मुक्त कवियों की अन्तिम शृंखला में इनकी कृष्ण- भावना का उल्लेख किया जाता है । इनके कृष्ण भी भागवत के ही कृष्ण हैं जिनका लीला- गान ` कृष्ण- गीतावली ` के 61 पदों में आबद्ध है। इसमें कृष्ण की बाल-लीला, रूप-माधुरी, गोपी-प्रेम और

प्रमरगीत आदि का मनोरम चित्रण हुआ है । हाँ, तुलसी ने अपने कृष्ण को रास रचाने का अवसर नहीं दिया ।

वस्तुत: मध्ययुग के भक्तों ने कृष्ण के भागवत- वर्णित ललित चरित्र को ही अपने भावों का आलम्बन बनाया अत: उनके लोकरक्षक रूप के स्थान पर लोकरंजक रूप ही अधिक व्यापक हुआ । मर्यादा पुरुषोत्तम राम का शौर्य- पूर्ण चित्रण करने वाले तुलसी भी अपने कृष्ण को वीर- देव न बना सके, उनके कृष्ण भी ब्रजेश्वर और भाव- देव ही बनकर रह गये । मथुरा और द्वारिका वासी कृष्ण कर्ममय, बौद्धिक या वीर रूप तो उनके काव्य में भी नहीं उभर सका । तद्-युगीन कृष्ण का मधुर स्वरूप उनके मर्यादावादी शील- संस्कारों को भी प्रभावित कर ही गया ।

अत: यह स्पष्ट है कि मध्ययुग के कृष्ण भाव- देव से आगे नहीं बढ़ सके ।

रीतिकालीन कृष्णकाव्य- हिन्दी- साहित्य में सन् 1700 से 1900 की काव्यावधि को ऐतिहासिकों ने रीतिकाल या शृंगार काल भी संज्ञा दी है। वस्तुत: रीतिकालीन कृष्ण- काव्य की पृष्ठभूमि भक्तिकाल में ही स्पष्ट होने लगी थी। कृष्ण के लीला-गान ने शृंगार के विस्तार के लिये पर्याप्त सहयोग दिया । दास्य, सख्य तथा वात्सल्य की अपेक्षा माधुर्य ने हिन्दी-भक्ति-साहित्य को अधिक प्रभावित किया । डॉ० तपेश्वरनाथ के शब्दों में - " निम्बार्क सम्प्रदाय के राधा- स्वामी कृष्ण, चैतन्य सम्प्रदाय के राधा- कृष्ण, वल्लभ सम्प्रदाय के गोपी- वल्लभ कृष्ण और बालकृष्ण, हरिवंश सम्प्रदाय के राधा- वल्लभ कृष्ण तथा हरिदासी- सम्प्रदाय के सखी परिसेवित कुंजविहारी कृष्ण मानवीय मधुर भावनाओं के सार्वभौम प्रतीक हैं । मधुर भावों के उद्रेचक और मानवीय भावों के उद्भावक होने के ही कारण वे इस युग में सर्वजनसंवेद्य बन बैठे थे। उनके व्यक्तित्व का ठोस ऐतिहासिक पक्षू हजारों वर्षों के अन्तराल में इतना भाव तरल हो चुका था कि भावुक भक्तों और सहृदय-जनों के अन्तर्गत में वह ज्ञानमूर्ति या देवमूर्ति नहीं वरन् प्रेममूर्ति बनकर मूर्द्धाभिषिक्त

हो चुके थे। एक प्रकार से उनके समस्त पौराणिक चरित्र का साधारणीकरण ही मानवीय मनोरागों में हो गया था । यही कारण है कि मध्ययुग के लीला नायक ही प्रकारान्तर से कला नायक भी बन गये ।[1]

मध्ययुगीन भक्त कवियों ने राधा- कृष्ण की मधुर लीलाओं के सरस चित्रण को ही मधुर रस या उज्जवल रस की संज्ञा दी थी लेकिन उनके शिष्यों की परम्परा इस उदात्त-भाव की रक्षा अधिक समय तक न कर सकी। अत: कालान्तर में रीतियुग के लैहिक वातावरण के कारण भक्तिभाव के रीतिभाव में परिवर्तित हो जाने से यह उज्जवल रस भी शृंगार रस में बदल गया और श्री कृष्ण अलौकिक प्रेम-नायक न होकर लौकिक काम नायक बन गये। भक्ति का आवरण ज्यों ही कुछ झीना पड़ा कि शृंगारिक भावनाओं ने पुन: कवि हृदय पर अपना आसन जमा लिया। प्रेम के दिव्य युगल (राधा- कृष्ण) सामान्य नायक- नायिका के पर्याय मात्र बन कर रह गये । वस्तुत: रीतिकाल का काव्य- साहित्य ऊपर- ऊपर तो कृष्ण - काव्य प्रतीत होता है लेकिन ` कृष्ण ` या ` भगवान ` नाम का स्मरण उनके विशुद्ध अन्त:करण की वृत्ति गहन नहीं, अपितु परिपाटी- परिवहन मात्र है। इस प्रकार ` राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो ` बन गये । रीतिकालीन कवियों के कृष्ण अब भाव- देव से शृंगार देव बन गये ।

रीतिकालीन शृंगारिकता के तीन आधारभूत तत्व हमें उपलब्ध होते हैं:- 1) भक्ति- शृंगार, 2) स्वच्छन्द प्रेम - शृंगार और 3) रीति- शृंगार ।

भक्ति - शृंगार- इस मत के रीति कवियों (हितरूप, रसिकदेव, अलबेली अली, हित- वृन्दावनदास, हठी जी और लाडलीदास आदि) ने कुंजबिहारी राधा-वल्लभ कृष्ण की शृंगार लीलाओं का भरपूर चित्रण प्रस्तुत किया है । ` इन कवियों को व्रजाश्रित या कृष्णाश्रित कवि कह सकते हैं। इनके सम्प्रदाय- गौड़ीय, राधा-वल्लभ, सखी या टट्टी सम्प्रदाय हैं। इन्हें मोटे तौर पर सखी भाव- प्रधान रसिक सम्प्रदाय

1- हिन्दी- काव्य में कृष्णचरित का भावात्मक स्वरूप और विकास - डॉ० तपेश्वरनाथ - पृष्ठ- 343 ।

भी कह सकते हैं।[1] इन शृंगारी कवियों ने भक्त कवियों की भांति ही कृष्ण की - वृन्दावन लीला, वंशी माधुरी, केशोयं, दान-लीला, युगल- लीला रास-लीला, हिंडोल, होली, कुंजलीला, संयोग-वियोग आदि का मनोरम चित्रण किया है। इन कवियों ने कृष्ण का शृंगारिक वर्णन तो किया है लेकिन बिहारी ,मतिराम और पद्माकर आदि की परिपाटी से हट कर । उदाहरण के लिये मतिराम आदि के कृष्ण काम वश बांसुरी बजाते हैं लेकिन भक्ति-शृंगार की परम्परा में आने वाले रीतिकालीन कृष्ण भक्तों ने अपने को इस अतिरेक से बचाया है चैतन्य मतवादी मल्लू जी ने कृष्ण की मुरली से राधा नाम का संकेत सुना कर उनकी वादन- कला विदग्धता का परिचय दिया है ।

वृन्दावन लीला और वंशी -माधुरी आदि से भक्तिकालीन कवियों के कुछ निकट होने पर भी इन भक्ति- शृंगार के कृष्ण-भक्त कवियों के कृष्ण रास-लीला और कुंजलीला से रीतिबद्ध कवियों के काम नायकों के विशेष समीप हैं।कृष्ण चरित का यहां रति भाव से पूर्ण तादात्म्य हो गया है। वस्तुत: तत्कालीन विलासिता के दो प्रमुख अंग - कनक और कामिनी से इनका पिण्ड नहीं छूटा था। कृष्ण- दरबार का राजसी ऐश्वर्य इसका कनक पक्ष है और सखिसेवित युगल विहार इसका कामिनी पक्ष है। सच तो यह है कि तत्कालीन वृन्दावन के गोस्वामियों का जीवन संसार- विरक्त साधु का जीवन ही नहीं था और न आज ही है । वह तो सदा से ग्रहस्थ भक्त बने रहे हैं। एक ही युग में भक्ति की धारा और शृंगार की धारा बिना एक दूसरे के कूल- किनारों का स्पर्श किये कैसे बहती ? भक्ति ने शृंगार पर कृष्ण- पर्यायी नामों का आरोप किया और शृंगार ने भक्ति पर रीति-लीलाओं और नानाविध काम- चेष्टाओं की रंगसाज़ी की। यह एक मनोवैज्ञानिक दिग्भ्रम है

1- हिन्दी- साहित्य - डॉ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - पृष्ठ 213 से उद्धृत ।

जिससे कृष्ण का स्वरूप गठित हुआ । इन कवियों ने भक्ति की शृंगारमयी रचना का भक्ति वाला अंश त्याग दिया । आवरण के रूप में भक्ति रह गयी ।[1] "

स्वच्छन्द- शृंगार- जिन रीतिकालीन कवियों ने रीतिबद्ध काव्य परिपाटी से अलग हट कर स्वच्छन्द प्रेम के भाव- तरल उद्गार प्रकट किये हैं, वे ' स्वच्छन्द - शृंगार ' शीर्षक के अन्तर्गत रीतिमुक्त कवियों की गणना में आते हैं। आचार्य शुक्ल ने इस भाव- धारा का संकेत करते हुये कहा था - " बात यह है कि इन्हें कोई बन्धन नहीं था । जिस भाव की कविता जिस समय मुफी ये लिख गये । .... अधिकांश में ये भी शृंगारी कवि हैं और इन्होंने भी शृंगार रस के फुटकल पद्य कहे हैं। .... ऐसे कवियों में घनानन्द सर्वश्रेष्ठ हुये हैं । रसखान, घनानन्द, आलम, ठाकुर आदि जितने प्रेमोन्मत्त कवि हुये हैं उनमें किसी ने लक्षण- बद्ध रचना नहीं की ।[2] " इन कवियों के सम्बन्ध में ब्रजनाथ की निम्न उक्ति प्रवृत्ति- बोधिनी मानी गई है:-

" नेही महा, ब्रजभाषा- प्रवीन औ सुन्दरतानु के भेद को जानै ।
योग- वियोग की रीति में कोविद, भावना भेद स्वरूप को ठानै ।।
चाह के रंग में भीज्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सांति न मानै ।
भाषा- प्रवीन, सुच्छन्द सदा रहै सो। घन जू के कवित्त बखानै ।।[3] "

वास्तव में इन कवियों की भावधारा का नियामक तत्व उनका लौकिक प्रेम प्रतीत होता है । जो परिस्थितिवश असफल हो कर अन्तर्मुख हो गया था और बाद में इसका पर्यवसान कृष्ण- प्रेम हुआ तो इन कवियों ने कृष्ण- प्रेम की गहन

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप और विकास - डॉ० तपेश्वरनाथ पृष्ठ- 370-371 पर उद्धृत

2- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य शुक्ल- पृ०-322 ।

3- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप और विकास — डॉ० तपेश्वरनाथ - पृ० - 374 पर उद्धृत ।

प्रवाहित वरूणा में अपने अन्तर्मन की करूण रागिनी को मिला दिया । घनानन्द के कृष्ण- प्रेम का आधार ` सुजान ` प्रेम है जिसका आदि लौकिक और अन्त अलौकिक है। लेकिन इन कवियों की लौकिक प्रेमानुभूति में जो सूक्ष्मता है और जो मार्मिकता है, वह रीतिबद्ध कवियों के मांसल प्रेम में नहीं । स्वच्छन्द कवियों की सूक्ष्म कोमल प्रेमानुभूति ही कृष्ण- मूर्ति बनकर सामने आयी है।

रसखान वस्तुत: ऐसे कृष्ण- भक्त कवि है जो अपनी कालावधि के कारण भक्ति काल और रीतिकाल की मध्यवर्ती शृंखला के रूप में स्मरण किये जा सकते हैं। कृष्ण- भक्ति की माधुर्य भावना के कारण वह मीरां के समकक्ष हैं तो अपनी स्वच्छन्द प्रेमोन्मग के कारण स्वच्छन्द- शृंगार-धारा के आदिपुरूष हैं। ब्रजेश्वर कृष्ण की मनोरम लीलाओं, ब्रजभूमि के प्रति ममत्व और असीम भक्ति के कारण यदि वे मध्ययुगीन कृष्ण- भक्त कवियों के समीप हैं तो वहीं नायिका-भेद, विपरीत रति की उद्दामताओं और लण्ठताओं की उक्तियों के कारण रीति-प्रवृत्ति भी उन पर स्पष्ट झलकती है।

स्वच्छन्दमार्गी कवियों के शृंगार वर्णन को देखने पर कहा जा सकता है कि उन्होंने कृष्ण का मुख्यत: भावात्मक चित्रण किया है।जहां भक्ति- शृंगार के कृष्ण लीला- पुरूष हैं,रीति के कृष्ण काम- नायक हैं, तो वहां स्वच्छन्द-शृंगार के कृष्ण विशुद्ध प्रेम पुरूष हैं। राधा और कृष्ण- दोनों ही यहां विशुद्ध मानवीय प्रेम के प्रतीक हैं। प्रेम को लौकिक क्षेत्र से उठाकर अलौकिक से जोड़ने की प्रेरणा इन कवियों को सूफियों की ` प्रेम की पीर `से ही मिली ज्ञात होती है। घनानन्द इस वर्ग के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं। इनके कृष्ण प्रेम-स्वरूप हैं और इनकी

---

* किसी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप और विकास- -डॉ० तपेश्वरनाथ-पृष्ठ- 314 पर उद्धृत ।

विरह- भावना अत्यन्त तीव्र और वेदनामयी है। वास्तव में इन कवियों का प्रेम उनके अन्तरतम की पुकार है, ` सुमिरन को बहानो ` नहीं । इन्होंने अपने कृष्ण को - जान, सुजान, सुभान, मोहन, लाल, कान्ह और श्याम आदि नामों से अभिहित किया है । घनानन्द के कृष्ण - विरह में अनुभूति की तीव्रता है, सात्विक वेदना की प्रचुरता है, बिहारी की तरह बाह्य आडम्बर का लेश मात्र भी नहीं, उस में हृदय पक्ष की प्रधानता है, वह स्वानुभूत है। वह अपने कृष्ण को पाने के लिये अत्यंत व्यग्र हैं:-

` अंतर ही किधौ अंत रही दृग फारि फिरौं कि अभागिनि भीरौं ।
आगि जरौं अकि पानि परौं अब कैसी करौ हिय का विधि धीरौं ।
जौ घनआनन्द ऐसी रुचि, तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं ।
पाऊं कहां हरि हाय तुम्हें, धरती में धंसौ के अकासहिं चीरौं ।।[1]

कवि बोधा ने कृष्ण को साक्षात् प्रेम स्वरूप माना है। ये इश्क मिजाजी और इश्क हकीकी में कोई अन्तर नहीं मानते । वह कृष्ण के प्रेम में पूर्णतः आसक्त हैं ।

इसी परम्परा में ठाकुर भी रीतिमुक्त स्वच्छन्द शृंगारी कवि हैं । ठाकुर के कृष्ण भक्तोद्धारक हैं। इन्होंने अन्य रीतिकालीन कवियों की भांति मानवीय शृंगार लीलाओं को अपने राधा- कृष्ण पर लादा नहीं । उनके कृष्ण अपने ऐश्वर्य में भगवान् और प्रेम में मानव हैं। ठाकुर ने राधा- कृष्ण के मानस- संयोग के बड़े मनोमुग्धकारी बिम्ब प्रस्तुत किये हैं :-

---

1- हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि - डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना - पृष्ठ-440 पर उद्धृत ।

अपने अपने निज गेहन में, चढ़े दोऊ सनेह की नाव पै री ।
अंगनान में मींजत प्रेम मरे समयो लखि मैं बलि जांव पै री ।।
कह ठाकुर दोउन की रूचि सों रंग द्वै उमड़े दोऊ ठांव पै री ।
सखि कारी घटा बरसै बरसाने पै गोरी घटा नंद गांव पै री ।।[1]

वियोग की स्मृति दशा का मार्मिक एवं विह्वलकारी चित्रण भी इन कवियों ने किया है। इस दृष्टि से आलम का यह सवैया द्रष्टव्य है :-

" जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल कांकरी बैठि चुन्यो करैं ।
जा रसना सों करि बहु बात सु ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं ।।
आलम जौन से कुंजन में करी केलि वहां अब सीस धुन्यों करैं ।
नैनन में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं ।।[2] "

वस्तुत: स्वच्छन्द मार्गी रीतिकालीन कृष्ण-भक्त कवियों का कृष्ण-प्रेम अनूठा और अनन्य है। इन्होंने कृष्ण के भावात्मक स्वरूप को दूर तक सुरक्षित ही नहीं रखा, कहीं- कहीं पल्लवित और पुष्पित भी किया है।

महाकवि भूषण और लाल के समकालीन कवि गुरू गोबिन्दसिंह भी रीतिकालीन स्वच्छन्द-मार्गी कृष्ण-भक्त कवियों के ही अन्तर्गत आ जाते हैं । उनके द्वारा रचित सभी अवतार काव्यों में " कृष्णावतार " ही सर्वाधिक सरस रचना है। इसके कथानक में एक विशालनद की गम्भीरता, वेग एवं प्रवाह है।गुरू जी के कृष्ण न तो भक्तिकालीन कवियों के भाव- देव हैं, न भक्ति- शृंगार के शृंगार-देव

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण-चरित का भावात्मक स्वरूप और विकास - डॉ० तपेश्वरनाथ , पृष्ठ- 389 पर उद्धृत ।

2- हिन्दी काव्य में कृष्ण -चरित का भावात्मक स्वरूप और विकास- -डॉ० तपेश्वरनाथ , पृष्ठ- 390 पर उद्धृत ।

और न ही स्वच्छन्द- शृंगार के कवियों के प्रेम- देव ही हैं। वरन् वे अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को लेकर प्रस्तुत हुये हैं। उनके कृष्ण भाव, शृंगार और प्रेम का स्पर्श करते हुये वीरता के उच्च आसन पर आसीन होते हैं। उनके कृष्ण वस्तुत: वीरदेव हैं। कृष्ण का योद्धा रूप में चित्रण कवि की मौलिकता का परिचायक है। गोबिन्दसिंह का ' कृष्णावतार ' भागवत के दशम स्कंध पर आधारित 2492 छन्दों का एक बृहदाकार एवं उत्कृष्ट प्रबन्ध काव्य है। डॉ० जयभगवान गोयल तो यहां तक कह देते हैं कि -- " सम्भवत: हिन्दी के कृष्ण - काव्य में यह पहला ग्रन्थ है, जिसमें कृष्ण के युद्धों का इतनी विशदता और विस्तार से वर्णन किया गया है। सम्भवत: पहली बार इसी रचना में कृष्ण एक असुर- संहारक, धर्म- संस्थापक, धर्मवीर एवं युद्धवीर लोक-रक्षक के रूप में चित्रित किये गये हैं। कृष्ण के इतने विशद, व्यापक चरित्र को ले कर लिखा जाने वाला भी सम्भवत: यह पहला और अकेला प्रबन्ध है। ब्रज के कृष्ण -भक्त- कवियों ने तो उसके रसेश्वर रूप की रसिक लीलाओं में ही रस लिया है, वे उनकी युद्धवीरता से उत्साहित नहीं हुये[1]। "

वस्तुत: गोबिन्दसिंह वीर रस के ही कवि थे। भारतीय परम्परा का निर्वाह करते हुये उन्होंने श्रीमद्भागवत से ही कृष्णावतार- कथा को लिया है और उसके कई अंशों को छोड़ कर उन्होंने कुछ मौलिक उद्भावनाएं भी की हैं। रूप- वर्णन में उन्होंने नायिकाओं की अपेक्षा कृष्ण के रूप का अधिक वर्णन किया है। यद्यपि गुरुजी मूलत: शृंगार के कवि नहीं फिर भी रास- क्रीड़ा में संयोग-शृंगार और गोपी- विरह में वियोग- शृंगार का बड़ा सरस चित्रण किया है।

1- वीर कवि दशमेश- डॉ० जयभगवान गोयल - पृष्ठ - 12 ।

रीति- शृंगार- रीति-शृंगार के कला- कोविद कवि निश्चित रूप से राज्याश्रित थे । और यही राज्याश्रय तत्कालीन पतनशील मुगल दरबार की स्त्रैण और विलासी सभ्यता का केन्द्रबिन्दु था जिसके फलस्वरूप इन राज्याश्रित कवियों की अभिरुचि ऐहिक- शृंगार वर्णन की अति में ही प्रवृत्त हुई और राधा- कृष्ण की अलौकिक माधुर्य- लीला लौकिक शृंगार में परिवर्तित हो गई । राधा- कृष्ण सामान्य नायक- नायिका के पर्याय बन कर ही रह गये ।

इस काल में सर्वप्रथम बिहारी ने अपनी ` सतसई ` में राधा की स्तुति इस प्रकार की है -

- ` मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोइ।जा तन की झाँई परत स्याम हरित द्युति होइ ॥"

बिहारी- सतसई में शृंगार-शिला के गुरु - भार के नीचे भक्ति सिसकती-सी प्रतीत होती है। दूसरे कवि पद्माकर तो उनसे भी आगे बढ़ गये हैं। इन्होंने अपने आश्रयदाता जयपुर- नरेश जगतसिंह की दान- शीलता की प्रशंसा करते हुये उन्हें ही कृष्ण बता दिया है । देव का ` अष्टायाम ` इन कामुक सामन्तों की विलासी प्रवृत्ति, नागर- चेष्टा और सूफियाना रंग- ढंग का जीता- जागता चित्र है।

वस्तुत: भानुदत्त की ` रसतरंगिणी ` शृंगार रस प्रधान ग्रन्थ है जिसके प्रभाव से ` रसिक प्रिया ` आदि ग्रन्थों की रचना केशवदास तथा उनके अनुयायी देवादि अन्य रीति कवियों ने ली । केशवदास ने तो शृंगार को रस का नायक और कृष्ण को शृंगार का नायक कहा है :-

` नवहू रस को भाव बहु, तिनके भिन्न बिचार ।
सबको केशवदास हरि, नायक है शृंगार ।। `

केशव , बिहारी, मतिराम, पद्माकर, देवादि सभी दरबार से सम्बंधित थे । अत: इस दरबारी वातावरण के कारण कृष्ण का स्वरूप भी परिवर्तित हो गया । कृष्ण अपना समस्त रूप भूल कर शृंगार के नायक ही शेष रह गये ।

34)

प्रत्येक युग में एक न एक अपवाद हो ही जाता । सेनापति भी इस रीति-शृंगार के कवियों में अपवाद स्वरूप हैं। इनकी कृतियों में कृष्ण- प्रेम के मार्मिक-प्रसंगों का अन्तर स्पर्श है । अपनी विरह - वेदना और प्रेम की तन्मयता के कारण यह मीरां, घनानंद और रसखान के समकक्ष प्रतीत होते हैं। लेकिन अधिकांशत: तो इस काल में प्रधानता शृंगारदेव कृष्ण की ही है।

" इस प्रकार, वैष्णवाचार्यों के मधुर रस और वैष्णव रसिकों के कृष्ण-रस को काव्य शास्त्रियों के शृंगार रस में घोल कर रीति कवियों ने कृष्ण - लीला का ऐसा चित्रण प्रस्तुत किया जिससे वह पूर्णत: काम रस ही सिद्ध हुआ । अत: कृष्ण- चरित्र में स्खलन का रहस्य, रसराज के अपने उज्ज्वल पद से च्युत हो काव्यादर्श से भी नीचे विषय वासना के गर्त में गिर जाने तक के इतिहास में स्वत: सन्निहित है ।[1] "

इस प्रकार रीतिकालीन कृष्ण भक्ति- शृंगार में सखी परिसेवित कुंजबिहारी, स्वच्छन्द- शृंगार में प्रेमदेव, भावदेव और वीरदेव तथा रीति- शृंगार में मात्र शृंगारदेव के रूप में प्रस्तुत हुये हैं ।

आधुनिक काव्य में कृष्ण - आधुनिक युग में विज्ञान ने भारत के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये । देववाद के स्थान पर मानववाद और आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकता की प्रतिष्ठा हुई । 19 वीं शती के आन्दोलनों ने नवजागरण की सूचना दे दी । साहित्य में भी परिवर्तन हुआ और परिणाम स्वरूप उसका प्रभाव कृष्ण- काव्य पर भी पड़ा । साहित्य में कृष्ण की लोकप्रियता अब भी कम नहीं हुई थी। नई परिपाटी में कृष्ण का स्वरूप कुछ इस तरह उभरा कि आधुनिक प्रवृत्तियों को भी अपने में समेट चला । बुद्धिवाद, आदर्शवाद, जनवाद,

---

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप और विकास -
- डॉ० तपेश्वरनाथ-पृष्ठ- 397 ।

मानववाद, राष्ट्रवाद तथा क्रान्तिवाद इस युग की प्रधान प्रवृत्तियां थी जिनके प्रकाश में कृष्ण को एक नवीन रूप में देखा गया ।

इस काल में सर्वप्रथम कृष्ण- भक्त कवि के रूप में भारतेन्दु आते हैं जिनका कृष्ण- प्रेमी व्यक्तित्व युग-सन्धि के कवि होने के कारण परम्परा और प्रयोग प्राचीन और नवीन का अनूठा मिश्रण है। भारतेन्दु जी ने `दानलीला`, `रानी-कुद्मलीला`, `मानलीला` तथा `फूल-बुफौअल` आदि स्फुट प्रबन्ध लिखे हैं तथा उनके अन्त में राधा- कृष्ण के विलास की दिव्यता का प्रतिपादन किया है। इनकी `प्रेम माधुरी` में कृष्ण के रूप तथा मुद्राओं का वर्णन किया गया है। `प्रेम तरंग` में कृष्ण शठ-नायक के रूप में प्रकट होते हैं। `प्रेम-मल्लिका` में कृष्ण के परकीया प्रेम के अन्तर्गत उनकी विदग्धता, धृष्टता और लम्पटता की अभिव्यक्ति हुई है । भारतेन्दु जी ने `प्रबोधिनी` नामक रचना में कृष्ण का सुदर्शन चक्रधारी वीर रूप अपना कर देश की मूर्खता, दीनता आदि शत्रुओं का विनाश करने की प्रार्थना की है। यहां कृष्ण देश- प्रेम जगाते हैं, अत: वे राष्ट्रोद्धारक अथवा राष्ट्र वत्सल भगवान हैं। कृष्ण का यह रूप आधुनिक युग का नवीन रूप सही, लेकिन कृष्ण के इस वीर- रूप का अवतरण तो रीतिकाल में ही गुरू गोबिन्दसिंह के `कृष्णावतार` में हो गया था । इस दृष्टि से गुरू कृष्ण के इस वीर रूप के आदि-कवि कहे जा सकते हैं जिनका प्रभाव आधुनिक युग के भारतेन्दु , हरिऔध, गुप्त और भारती आदि पर पड़ा ।

वस्तुत: भारतेन्दु ने कृष्ण- काव्य की विशाल- परम्परा का अवगाहन किया था । उनके सामने कृष्ण के विभिन्न रूप बिखरे पड़े थे । इसीलिये तो उनके कृष्ण वल्लभ- सम्प्रदाय के भगवान, रससिद्ध कवियों के शृंगारदेव, भक्त-शृंगारी रसिकों के कुंजबिहारी, स्वच्छंद कवियों के भाव- देव और प्रेमदेव, रीति-शृंगारी कवियों के काम नायक होने के साथ- साथ गोबिंदसिंह के राष्ट्रोद्धारक वीरदेव भी

हैं । किन्तु, अधिकांश में रसेश्वर कृष्ण और काम- विदग्ध कृष्ण का रूप, प्रेमी- कृष्ण, और वीर कृष्ण पर भारी रहा है । शृंगारदेव कृष्ण के व्यापक वितान में वीरदेव कृष्ण का फीका रूप बिल्कुल छिप गया है। इस दृष्टि से गुरू गोबिंदसिंह भारतेन्दु से आगे हैं। उनके शृंगारी कृष्ण, वीर कृष्ण का मार्ग अवरुद्ध नहीं कर सके। गुरू के कृष्ण वीरता की साकार प्रतिमा हैं । फिर भी कुछ अंशों में ही सही भारतेन्दु ने भी राष्ट्रोद्धारक वीर-कृष्ण का उल्लेख किया है

ब्रजभाषा के दूसरे आधुनिक कवि श्री जगन्नाथदास ` रत्नाकर ` हैं । कृष्ण- काव्य के अन्तर्गत इनकी ` हिंडोला `, ` उद्धव - शतक, ` ` शृंगार- लहरी `, श्री कृष्णाष्टक `, श्री सुदामाष्टक, श्री द्रोपदी अष्टक `` श्री कृष्ण दूतत्व `, `श्री राधा- विनय `, श्री ब्रज महिमा ` और स्फुट काव्य- संग्रह प्रमुख रचनायें हैं जिनका सृजन भक्ति शृंगार और वीर भावों की प्रेरणा से हुआ है।

इस काल तक आते-आते पुराणों के कृष्ण लुप्त प्राय: हो चुके थे । कृष्ण के पुराण- कथित ईश्वर-रूप के स्थान पर उनका ऐतिहासिक मानव रूप ही शेष रह गया था । ` हरिऔध ` जी के कृष्ण पर इस मानववाद का पूर्ण प्रभाव है । ` प्रिय- प्रवास ` के कृष्ण अवतार के रूप में नहीं बल्कि लोकनायक के रूप में सामने आते हैं। यहां कृष्ण कर्मयोगी एवं लोकनायक हैं। प्रिय- प्रवास के कृष्ण पर तो दयानन्द सरस्वती जैसेपुनरूत्थान नेता और बंकिमचन्द्र जैसे साहित्य- चिन्तकों की पुराण- विरोधी धारणाओं की छाप स्पष्ट है। उनकी दृष्टि सूर के कृष्ण की तरह केवल ब्रज तक ही सीमित नहीं प्रत्युत सारे विश्व की हित- कामना से उदार है। कथा का विषय कृष्ण का मथुरा- प्रवास है किन्तु यह कृष्ण भी ब्रज के आकर्षण से पूर्ण मुक्त नहीं । प्रिय - प्रवास ` के उद्धव प्राय: मौन हैं । ` प्रिय- प्रवास ` के कृष्ण युगपुरुष हैं ।

हरिऔध जी ने वस्तुत: मानवता के चरम विकसित रूप को अंकित करने के लिये ही कृष्ण- चरित का अंकन किया है। ` वास्तव में ईश्वर की कल्पना मानव

मस्तिष्क के क्रमिक विकास की सूचक है, क्योंकि प्रारम्भिक मत्स्यावतार से लेकर कर श्री कृष्ण के अवतार तक मानवता का क्रमिक - विकास ही समझाया गया है। श्री कृष्ण को सम्पूर्ण कलाओं का पूर्णावतार माना जाता है। अत: श्री कृष्ण मानवता के पूर्ण विकास के द्योतक हैं।[1]

प्रिय- प्रवास में कृष्ण के बाल रूप का भी यत्किंचित वर्णन मिल तो जाता है लेकिन सजीवता उनके किशोर एवं युवा रूपों में ही उभरी है। कृष्ण ब्रज के प्राण हैं, उनके रक्षक हैं, नायक हैं। कृष्ण के मथुरा- गमन की सूचना से समस्त ब्रज शोकाकुल हो जाता है। यहां कृष्ण शील की सुरम्य मूर्ति हैं। कवि ने इसी शील-निर्वाह के लिये चीर- हरण और माखन - चोरी का चित्रण नहीं किया। वह एक श्रेष्ठ महापुरुष हैं, मानवता के पुजारी हैं। उनका अवतार मानवता पर प्रहार करने वाली दानवता के दमन कर के जन- जीवन को सभी प्रकार की बाधाओं से मुक्त करने, उन्हें सुखी बनाने के लिये हुआ है। इसी उद्देश्य से उन्होंने शकटासुर, बकासुर आदि राक्षसों का नाश किया है। इसी उद्देश्य से वह भयंकर वर्षा से ब्रज की रक्षा करते हैं, कालिय- नाग को मारते हैं, जरासंध से युद्ध करते हैं। - वस्तुत: इस दृष्टि से हरिऔध जी के कृष्ण गोबिंदसिंह के कृष्ण से प्रभावित प्रतीत होते हैं। गुरु के कृष्ण के अवतार का उद्देश्य भी- ` दुष्ट- निवारन, संत उबारन, दुखी जनों के कष्ट निवारन ` के लिये ही हुआ है।

` प्रिय- प्रवास ` के कृष्ण कठिन पथ के पथिक हैं, कर्तव्यपरायण लोक-प्रिय नेता हैं। हरिऔध जी ने वस्तुत: आधुनिक विज्ञान- सम्पन्न बुद्धिवादी आत्मा की तुष्टि के लिये, लोकहित की भावना को लेकर, उसे मानवता से संवार कर अपार शक्ति - सम्पन्न, असीम शीलमान एवं अनन्त सौन्दर्य युक्त कृष्ण - चरित का निर्माण किया है।

1- प्रिय प्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन - डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना - पृष्ठ - 100।

आधुनिक युग में ब्रजभाषा में कथ्य और कथन शैली दोनों ही दृष्टियों से मध्यकालीन आदर्शों को स्वीकार करने वालों में जगन्नाथदास रत्नाकर का स्थान प्रमुख है। इनके काव्य में भावों की रमणीयता के साथ- साथ शैलीगत अलंकरण भी मिलता है। रत्नाकर कृत ` उद्धव- शतक ` प्रमरगीत परम्परा का काव्य है जिसमें उनकी अनूठी सूझ-बूझ, उक्ति- वैचित्र्य तथा चित्रोपम शैली स्पष्टत: परिलक्षित होती है।

` द्वापर ` मैथिलीशरण गुप्त की उन कृष्ण- काव्य रचनाओं में से एक है, जिन्हें कथा की दृष्टि से पुरानी परम्परा में रखते हुये भी विचारों की दृष्टि से शत- प्रतिशत आधुनिक कहा जा सकता है। यहां कृष्ण चरित का वर्णन श्रीमद्भागवत की कथा पर आधारित है। इसमें बीसवीं शती के क्रान्तिकारी राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक विचारों का पूर्ण प्रतिफलन दिखाई देता है। इस दृष्टि से गुप्त जी पर गुरू गोबिंदसिंह की चलाई वीर- परम्परा का प्रभाव स्पष्ट कहा जा सकता है ` कृष्णावतार ` में भी ` द्वापर ` की ही भांति पौराणिक संस्कार आधुनिकता से छन कर काव्य में चमक उठा है। यहां भी कंस ` कृष्णावतार ` के कंस की तरह साम्राज्यवाद और तानाशाही का प्रतीक है और कृष्ण को सशक्त जनतन्त्री आन्दोलन के नेता के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

` द्वापर ` के कृष्ण पर राम का आरोप स्पष्ट प्रतीत होता है। यहां उद्धव प्रेम- विभोर गोपियों से साफ कह देते हैं - ` सच कहता हूं मैंने अपना राम तुम्हीं में पाया। ` और कृष्ण के मथुरा आने पर उन्हें देख कर कुब्जा को भी राम की याद आती है :-

` श्याम रूप हो न हो राम ही पुन: आप आया वह।"

गुप्त जी के कृष्ण नर के स्वरूप में नारायण हैं :-

" हृदय सशंक हुआ पर आहा, बंक भृकुटियां तीखीं,
निज विलास में विश्व नचाती, बंशीधर की दीखी। - - -
खेल रहा था नारायण ही नर के ढांचे में वह। "

जहां ` प्रियप्रवास ` के कृष्ण गोवर्धन धारण न कर उसकी कन्दरा में ले जाकर ब्रजवासियों को बैठा देते हैं, वहां ` द्वापर ` के कृष्ण सचमुच गोवर्धन धारण करते हैं । गोबिंदसिंह की भांति गुप्त जी का कृष्ण- काव्य भी मर्यादित है जिसमें वासना की गंध नहीं । ` द्वापर ` में न केवल द्वापर युग का सजीव चित्रण है अपितु वर्तमान जीवन का भी जीता- जागता अंकन हुआ है । गुप्त जी के कृष्ण वास्तव में ही सराहनीय हैं। इसके अतिरिक्त गुप्त जी ने ` विधृता ` का चरित्र अंकन कर स्वतन्त्रता - पूर्व की उस सामन्ती प्रवृत्ति का स्पष्टीकरण किया जब नारी पर अनेक अत्याचार होते थे । श्रीमद्भागवत में तो केवल एक श्लोक में ही ` विधृता ` का निरूपण हुआ था किन्तु गुप्त जी ने इस ब्राह्मण- पत्नी का वर्णन अपनी कल्पना का आधार लेकर 72 छन्दों में किया है ।

गुप्त जी द्वारा ही रचित ` जयद्रथ वध ` एक खण्ड- काव्य है जिसमें गीता के उपदेष्टा कृष्ण के आदर्श को जनता के सम्मुख रखने की चेष्टा की गई है । इसमें वीर और करुणा प्रधान रस हैं ।

` कृष्णायन ` श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र की रचना है जो सात काण्डों में विभाजित है । इसका कथानक भागवत और महाभारत के आधार पर है। यहां श्री कृष्ण की वीर- भावना तथा शील को प्रमुख स्थान दिया गया है । श्री कृष्ण ` लोक - रक्षक ` धर्म के संस्थापक और आर्य मर्यादा के प्रबल समर्थक के रूप में उपस्थित है । ` कृष्णायन ` की भाषा अवधी है और समूचा काव्य चौपाइयों में लिखा गया है ।

श्री सत्यनारायण ` कविरत्न ` जी का ` भ्रमरदूत ` भ्रमरगीत परम्परा में एक नई परम्परा का सूत्रधार है जिसमें यशोदा भारत माता का प्रतिनिधित्व करती है । अपनी विपदाओं के निवारण के लिये कृष्ण के अवतार की कामना करती है।

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' रचित ` कुरुक्षेत्र ` सात सर्गों का खण्ड-काव्य है। यहां श्री कृष्ण का संकेत एक लोकनायक के रूप में है जो तात्कालिक शासक - वर्ग और

और जन- सामान्य में फैली बुराइयों का प्रतिकार कर रहे थे ।

` कनुप्रिया ` डॉ० धर्मवीर भारती का आधुनिक छन्द- शिल्प में रचित छोटा सा कृष्ण- काव्य है लेकिन इसमें कृष्ण-लीला का स्थूल अंकन नहीं हुआ । फिर भी कृष्ण यहां अनुपस्थित होते हुये भी अपनी चिर सहचरी राधा के माध्यम से भाव- रूप में अवतरित हो ब्रज - वल्लभ, द्वारिकाधीश और योगीराज के रूप को स्पष्ट करते हुये उसी के क्षुब्ध मानस में समा जाते हैं। ` सूर से लेकर भारतेन्दु तक सभी कवियों का लीला- गान भागवत के सम पर बंधा है । बीच- बीच में मीरां, रसखान या घनानंद आदि कुछ ऐसे कवि अवश्य हुये जिन्होंने कृष्ण- चरित के साथ साथ आत्म-चरित को भी अन्तरंग व्यंजना कर ली है। किन्तु इन सबों में भागवत के ही आधार पर भागवत वृत्तियों का प्रतिफलन हुआ । अकेली कनुप्रिया ही ऐसी है जिसमें राधा की भागवत वृत्तियों के आधार पर कृष्ण की भागवत वृत्तियों का संगुम्फन हुआ है। यह शिल्प के चातुर्य का ही परिणाम है कि लगभग(खड़ी रेखा वाले शब्दों के) 75 पृष्ठों में ही कवि ने अत्यन्त बारीकी से- प्रेमी कृष्ण, पुरूषोत्तम, कृष्ण , सामन्त कृष्ण तथा योगी कृष्ण का समवेत अंकन कर दिया है।[1] ` कनुप्रिया ` में कृष्ण चरित के कोमल और कठोर- दोनों ही रूप हैं ।

वास्तव में कृष्ण - चरित का निर्णायक क्षेत्र इतिहास और दर्शन नहीं, विभिन्न कल्पनाओं और अनूठी भावनाओं से प्रसूत रस- कोश - काव्य ही है। इस रस काव्य में विभिन्न सम्प्रदायों के कवियों ने अपने भावना- कुसुम अर्पित कर कृष्ण- काव्य को सुवासित कर दिया है। लेकिन आश्चर्य तो तब होता है जब हम हिन्दी - साहित्य के इतिहास में कृष्ण- काव्य- धारा को विकसित एवं प्रवाहित करने वाले कवियों की शृंखला में गुरू गोबिंदसिंह के नाम को अनुपस्थित पाते हैं । इस का मुख्य कारण स्यात् लिपि का अपेक्षाकृत अल्प प्रभाव ही हो सकता है । वास्तव में गुरू जी

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप और विकास -
- डॉ० तपेश्वरनाथ - पृष्ठ - 335 ।

ने रीतिकाल के उस वासना- जनित वातावरण में अश्लीलता की पंक में धंसे कृष्ण-काव्य को उन्नत कर उसे एक नया मोड़ दिया और कृष्ण शृंगारदेव से वीरदेव बन बैठे । यदि सम्प्रदाय की दृष्टि से देखा जाये तो हम कह सकते हैं कि गुरू गोबिन्दसिंह ने भी हिन्दी- कृष्ण- काव्य को एक नया सम्प्रदाय प्रदान किया जिसे हम वीर - सम्प्रदाय कह सकते हैं । परवर्ती कवि भारतेन्दु, हरिऔध, रत्नाकर और मैथिली-शरण गुप्त आदि इसी सम्प्रदाय में आते हैं । इनके कृष्ण महान् योद्धा हैं, राष्ट्रो-द्धारक हैं, लोक नायक हैं , दुष्ट- दमन कारी हैं, महानतम नीतिज्ञ हैं और युग पुरूष हैं। इन कवियों ने कृष्ण के लोकरंजक रूप के साथ- साथ उनके लोक- रक्षक रूप का भी सुन्दर चित्रण किया है । इनका शृंगार- वर्णन भी मर्यादा में बंधा है। इन्होंने केवल ब्रजेश कृष्ण को ही नहीं देखा, ब्रजेतर द्वारिकाधीश कृष्ण के भी दर्शन किये हैं । सम्भवत: गुरू गोबिंदसिंह ने ही सर्वप्रथम कृष्ण - विषयक प्रबन्ध- काव्य लिखकर कृष्ण को एक नया रूप प्रदान किया । कृष्ण का पूर्णावतार रूप तो वस्तुत: गुरू जी के ` कृष्णावतार ` में ही मिलता है । इनका कृष्ण- काव्य कृष्ण के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की व्यंजना करता है। सम्भवत: परवर्ती आधुनिक कालीन कृष्ण- भक्त कवियों को भी गुरू जी के योद्धा कृष्ण से प्रेरणा मिली और कृष्ण मानवता के उच्च आसन पर आसीन हो गये ।

-0-

चतुर्थ - परिच्छेद

महाकवि सूर : एक परिचय

(अ) व्यक्तित्व

1- जीवन वृत्त

(क) बाह्य साक्ष्य (प्राचीन मुख्य)

(ख) बाह्य साक्ष्य (अर्वाचीन - गौण)

(ग) अन्त: साक्ष्य -

(आ) कृतित्व -

1- सूर - सारावली

2- साहित्य- लहरी

3- सूर - सागर

महाकवि सूरदास: एक परिचय

हिन्दी के अमर गायक, कवि एवं भक्त महाकवि सूरदास, कृष्ण भक्त कवियों की मौलिक लड़ी में कृष्ण लीलाओं के अमर गायक एवं सुमेरू समझे जाते हैं । वस्तुत: ` जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूष-धारा, जो काल की कठोरता में दब गयी थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरसता में परिणत हो कर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल- कंठ से प्रकट हुई और आगे चल कर ब्रज के करील कुंजों के बीच फैल मुरझाए मनों को सींचने लगी । आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएं श्रीकृष्ण की प्रेम- लीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सब से ऊंची, सुरीली और मधुर झंकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी ।[1] ` किन्तु अन्य प्राचीन महाकवियों की भांति ही उनका क्रमबद्ध जीवन वृत्तान्त भी उपलब्ध नहीं है। कदाचित सांसारिक बातों के प्रति उदासीन होने के कारण ही इन कवियों ने अपने भौतिक जीवन के विषय में स्वयं कुछ भी नहीं लिखा है।

अब तक महाकवि सूरदास की जीवनी पर अनेक विद्वानों ने पर्याप्त प्रकाश डालने का प्रयास किया है, किन्तु कोई भी सर्वसम्मत मत प्रचलित नहीं हो सका है। डॉ० मुंशीराम शर्मा, डॉ० दीनदयालु गुप्त, डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा, द्वारिकादास पारीख, प्रभुदयाल मीतल, डॉ० सत्येन्द्र , डॉ० हरिवंश लाल शर्मा प्रभृति विद्वानों ने सूरदास के जीवन- वृत्त की खोज की है। हिन्दी- साहित्य के इतिहास लेखकों ने भी सूरदास का संक्षिप्त जीवन-चरित दिया है, किन्तु इनमें भी काफी मत-भेद हैं। फिर भी, महाकवि सूरदास के जीवन- वृत्त के सम्बन्ध में प्राप्त सामग्री इस प्रकार है :-

(क) जीवन - सामग्री - किसी भी कवि के जीवन- वृत्तान्त के शोध के प्रमुख साधन,

---

1- सूरदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृष्ठ - 149 ।

उसकी रचनाओं के अन्त:साक्ष्य और उसके समकालीन एवं परवर्ती लेखकों के बाह्य-साक्ष्य, ही माने जाते हैं । इस प्रकार सूरदास के जीवन के विषय में प्राप्त सामग्री भी इन भागों में विभक्त की जाती है :-

(1) अन्त:-साक्ष्य के रूप में - सूरदास के आत्म- विषयक कथन, जो सूरसारावली, साहित्य-लहरी, सूरसागर एवं सूरदास के अन्य स्फुट पदों में उपलब्ध है।

(2) बाह्य साक्ष्य के रूप में - समकालीन एवं परवर्ती प्राचीन लेखकों की रचनाओं - जैसे वार्ता साहित्य, वल्लभ- दिग्विजय, संस्कृत वार्ता-मणि-माला , भक्त माल आदि में - सूरदास से सम्बन्धित संकेत ।

(3) आधुनिक सामग्री- उपर्युक्त साधनों द्वारा प्राप्त सामग्री की आधुनिक विद्वानों द्वारा आलोचना ।

अंत: साक्ष्य - यद्यपि सूरदास जी ने स्वयं अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है , तथापि उनकी रचनाओं में कुछ उल्लेख एवं संकेत ऐसे भी मिल जाते हैं जिन्हें हम उनके आत्म - विषयक कथन के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। इसके लिये सूरदास जी के ` सूरसागर ` सूरसारावली एवं साहित्य- लहरी आदि का आश्रय लेना होगा :-

(1) सूरसारावली- सूरदास जी ने ` सूर सारावली ` की रचना होली के बृहद् गान के रूप में की है । इसमें 1107 छन्द हैं । कतिपय विद्वान इसे ` सूरसागर ` की भूमिका मानते हैं । और कुछ तो इसे सूरदास की रचना ही स्वीकार नहीं करते । पर, वास्तव में ` सूर सारावली ` एक स्वतन्त्र रचना है और अधिकांश विद्वान बहुमत से इसे सूरदास कृत ही मानते हैं। ` सूर सारावली ` में महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क में आने से पूर्व सूरदास जी की मानसिक स्थिति का उल्लेख इस प्रकार हुआ है-

` करम- जोग पुनि ग्यान- उपासन, सब ही भ्रम भरमायौ ।
श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायौ, लीला- भेद बतायौ ।। 1102।। `

और -- ` ता दिन ते हरि- लीला गाई, एक लक्ष पद बंद ।। 1103 ।। `

3)

इस से स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि सूरदास वल्लभाचार्य के सम्पर्क में आने से पूर्व कृष्ण की लीलाओं का गान नहीं करते थे। वल्लभाचार्य जी ने ही उन्हें हरि की लीला का रहस्य समझाया और तत्पश्चात् सूरदास जी ने हरि की लीला को लगभग एक लाख पदों में गाया। उन्होंने जिन लीलाओं का गान किया था, उन्हीं के सार- रूप में ही ` सूर सारावली ` की रचना की :-

` ताको सार सूर- सारावली, गावत अति आनन्द ।। 1103 ।। `

सूरदास जी ने अपनी 67 वर्ष की आयु में ` सूर सारावली ` की रचना की थी, इसका उल्लेख इस प्रकार है :-

` गुरू- प्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरष प्रवीन ।। 1102 ।। `

(2) साहित्य- लहरी- ` साहित्य- लहरी ` में सूरदास जी के दृष्टकूट अत्यन्त जटिल एवं क्लिष्ट शैली में दृष्टिगत होते हैं। यह भी एक स्वतन्त्र रचना है। `साहित्य- लहरी ` का रचनाकाल सूरदास ने इस प्रकार स्पष्ट किया है :-

` मुनि पुनि रसन के रस लेख ।
दसन गौरीनन्द को लिखि, सुबल संवत पेख ।।
नंदनंदन मास, कै तें होन त्रितिया, बार -
नंदनंदन जन्म तें हैं बान, सुख - आगार ।।
त्रितिय रीछ, सुकर्म जोग, विचारि ` सूर ` नवीन ।
नंदनंदन दास हित, ` साहित्य- लहरी ` कीन ।। 109 ।। `

इसके अनुसार संवत् 1607 में साहित्य- लहरी की रचना हुई। ` साहित्य- लहरी के 117 पद स्वतन्त्र हैं जो ` सूरसागर ` में नहीं मिलते, किन्तु उपसंहार के 52 पद ` सूरसागर ` से ही संकलित किये गये हैं।

(3) सूरसागर एवं स्फुट पद- ` सूरसागर ` सूरदास जी की प्रमुख रचना है। सूरदास जी की यही एक कृति है जिसकी प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में दो

मत नहीं मिलते हैं। ` सूरसागर ` ही वस्तुत:सूरदास जी के महान् व्यक्तित्व का परिचायक है। अन्त: साक्ष्य के रूप में ` सूरसागर ` के निम्नलिखित पद उल्लेखनीय हैं :-

(1) उच्च जातियता सूचक:-

(क) मेरे जिय ऐसी आय बनी ।
` सूरदास ` भगवन्त भजन लगि तजी जाति अपनी ।। `

(ख) बिकानी हौं हरि- मुख की मुसकानि ।
गई जाति, अभिमान, मोह, मद, पति, हरिजन पहिचानि ।।

(2) जन्मान्धता सम्बन्धी उल्लेख :-

(क) ` किन तेरो गोविंद नाम धर्‌यो ।
` सूर ` की बिरियां निठुर ह्वै बैठे, जनम अंध कर्‌यो ।।

(ख) ` हरि बिन संकट में को का को ।
रह्यो जात एक पतित, जनम को आंधरो, ` सूर ` सदा को । `

(ग) नाथ मोहि अब की बेर उबारो ।
करम हीन, जनम को अंधो, मो तें कौन नकारो ।।

(3) गृह-त्याग के समय -निर्देश एवं प्रारम्भिक जीवन सम्बन्धी उल्लेख -

(क) प्रभु मैं सब पतितन को राजा ।
आयो अबेरो चलो सबेरो, ले कर अपने साजा । `

(ख) मन । तू मूरख क्यों कर रह्यो ।
पहलो पन खेलन में खोयो, वृथा जनम गयो । `

(4) स्वामित्व- सूचक उल्लेख-

(क) प्रभु मैं सब पतितन को टीको ।
मरियत लाज ` सूर ` पतितन में कहत सबै मोहि नीको । `[1]

1- द्वारिका दास पारीक एवं प्रभुदयाल मीतल के ` सूर निर्णय ` पर आधारित - पृष्ठ- 7-8

(5) शरण में आने से पूर्व की रचना का आभास:-

(क) जियरा कौन नींद करि सोयौ ।

` सूर ` हरि को सुमिरन करिले, मिलिजा जातैं(भयौ) बिछोयौ । `

(6) शरणागति सूचक उल्लेख-

(क) ` मन रे ! तू भूल्यो जनम गंवावै ।

` सूरदास ` वल्लभ उर अपने चरन कमल चित लावै ।। `

(ख) मन रे ! तैं आयुष वृथा गंवाई ।

अजहू चेत कृपाल सदा हरि, श्री वल्लभ सुखदाई ।

` सूरदास ` सरनागत हरि की, और न कछु उपाई ।। `

(7) पुष्टि मार्ग का स्पष्ट उल्लेख-

(क) हरि मैं तुम सो कहा दुराऊं ।

जानत को पुष्टि- पथ मोसो कहि- कहि जस प्रगटाऊं ।।

मारग रीति उदर के कार्जे, सीखि सकल भरमाऊं ।

अति आचार, चारू सेवा करि, नीके करि- करि पंच रिझाऊं ।। `

(8) गोकुल, वृन्दावन, मथुरा-गमन सूचक उल्लेख -

(क) ब्रज भूमि मोहिनी मैं जानी ।

मोहन नारि गोकुल की ठाड़ी बोलत अमृत बानी ।। `

(ख) वृन्दावन एक पलक जो रहिये ।

` सूरदास ` बैकुण्ठ मधुपुरी भाग्य बिना कहां ते पइये ।। `

(9) निवास- स्थान और ढाढ़ी विषयक उल्लेख-

नंद जू । मेरे आनन्द भयौ सुनि गोवरधन तैं आयौ ।

हौं तौ तिहारे घर की ढाढ़ी ` सूरदास ` मेरौ नाउं ।[1] `

1- ` सूर- निर्णय ` पर आधारित - पृष्ठ - 9- 10 ।

`सूरसागर` की मुद्रित एवं अमुद्रित प्रतियों में बहुत से प्रक्षिप्त एवं अप्रामाणिक पद भी मिल गये हैं जिनसे प्राय: भ्रम उत्पन्न हो जाता है।

बाह्यसाक्ष्य - बाह्य- साक्ष्य के रूप में उपलब्ध सामग्री का विभाजन मुख्यत: दो वर्गों में किया जा सकता है :-

(1) प्राचीन बाह्याधार(मुख्य)- सूरदास के जीवन- चरित्र तथा रचनाओं का परिचय देने वाले प्राचीन बाह्याधारभूत ग्रन्थों में मुख्य निम्नलिखित हैं:-

1- भक्त- माल ।
2- भक्तमाल पर प्रियादास की तथा अन्य टीकाएं(महाराज रघुराजसिंह कृत- रामरसिकावली, मियांसिंह कृत- भक्त विनोद)।
3- 252 वैष्णव की वार्ता ।
4- भक्त नामावली(ध्रुवदास कृत) ।
5- 84 वैष्णव की वार्ता ।
6- अष्ट सखान की वार्ता ।
7- श्री गुसाईं जी के सेवकन की वार्ता ।
8- चौरासी भक्त नाम माला (सन्तदास कृत) ।
9- वल्लभ दिग्विजय ।
10- सम्प्रदाय कल्पद्रुम ।
11- निज वार्ता, घर वार्ता तथा 84 बैठक के चरित्र ।
12- श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता ।
13- श्री द्वारिकानाथ जी के प्राकट्य की वार्ता ।
14- श्री गिरधर लाल जी महाराज के 120 वचनामृत ।
15- नागर समुच्चय (नागरीदास) ।
16- आइने अकबरी ।
17- मुन्तखिब उलतवारिख ।
18- मुन्शियात अबुलफ़ज़ल । 19- मूल गुसाईं चरित ।
20- व्यास- वाणी ।

7)

(2) अर्वाचीन बाह्याधार (गौण)- बाह्य- साक्ष्य के रूप में उपस्थित आधुनिक सामग्री इस प्रकार है :-

1- खोज रिपोर्ट (काशी नागरी प्रचारिणी सभा)।
2- ` इस्तबार दे ला लितेरा, ` त्यूर ऐन्दुवे ऐन्दुस्तानी(गारसे द तासी)।
3- शिवसिंह सरोज(शिवसिंह सेंगर)।
4- ` मिश्र बंधु विनोद ` और ` हिन्दी साहित्य का इतिहास ` (मिश्र बन्धु)।
5- हिन्दी साहित्य का इतिहास(आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)।
6- हिन्दी भाषा और साहित्य(डॉ० श्यामसुन्दर दास)।
7- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास(डॉ० रामकुमार वर्मा)।
8- हिन्दी- नवरत्न(मिश्र बन्धु)।
9- सूरदास (डॉ० जनार्दन मिश्र)।
10- सूर- साहित्य(पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी) ।
11- भक्त शिरोमणि महाकवि सूरदास (श्री नलिनी मोहन सान्याल)
12- सूर: एक अध्ययन (श्री शिवरचन्द्र जैन) ।
13- सूर- साहित्य की भूमिका (श्री रामरतन भटनागर और श्री वाचस्पति त्रिपाठी)।
14- सूर- सौरभ (डॉ० मुंशीराम शर्मा)।
15- सूरदास(डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा)।
16- सूरदास: एक अध्ययन (श्री रामरतन भटनागर)।
17- अष्टछाप- परिचय(प्रभुदयाल मीतल)।
18- अष्टछाप और वल्लभ- सम्प्रदाय(डॉ० दीन दयालु गुप्त)।
19- सूर- निर्णय (श्री द्वारिकादास पारीख एवं श्री प्रभुदयाल मीतल)।

बाह्य- साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत की जाने वाली समसामयिक एवं परवर्ती सामग्री में ` भक्तमाल ` में सूर से सम्बन्धित एक ही पद उपलब्ध है :-

8) 9080

` उक्ति, चोज,अनुप्रास, वरन अस्थिति अति भारी ।
वचन प्रीति, निर्वाह , अर्थ अद्भुत तुक धारी ।
प्रतिबिम्बित दिवि दिष्टि, हृदय में लीला भासी ।
जनम करम गुनरूप सबै रसना परकासी ।
विमल बुद्धि गुन और की जो वह गुन श्रवननि धरै ।
सूर कवित्त सुनि कौन कवि जो नहिं सिर- चालन करै ।[1] `

इस पद से केवल सूरदास जी के अन्धत्व और कवितत्व वैशिष्ट्य का ही परिचय मिलता है। इन सूरदास के अतिरिक्त ` ` भक्तमाल ` में बिल्वमंगल सूरदास और मदनमोहन सूरदास का भी विवरण दिया गया है। भक्तमाल पर की गई प्रियादास की टीका में अष्टछाप के सूरदास( हमारे आलोच्य कवि- सूरदास ) के विषय में कोई टिप्पणी नहीं की गई है। महाराज रघुवीरसिंह कृत ` राम रसिकावली ` एवं कवि मियांसिंह कृत ` भक्त- विनोद ` में सूरदास का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। ` भक्त- विनोद ` में लेखक ने प्रचलित जनश्रुतियों को ही क्रमानुसार एकत्रित कर के सूर के जीवन-वृत पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इस कृति से भी मुख्य रूप में यही ज्ञात होता है कि सूरदास जन्मांध थे । ` राम- रसिकावली ` से ज्ञात होता है कि सूरदास उद्धव के अवतार थे और जन्मान्ध थे ।

ध्रुवदास कृत ` भक्त नामावली ` में सूरदास का अत्यन्त संक्षिप्त उल्लेख मिलता है, जिसमें उनकी भक्ति- भावना की ही प्रशंसा की गई है ।महाराज सावन्त-सिंह उपनाम ` नागरीदास कृत ` नागर समुच्चय ` में सूरदास का वर्णन पर्याप्त मात्रा में हुआ है किन्तु वह जनश्रुतियों पर ही आधारित है। हित हरिवंश जी के शिष्य हरिराम व्यास ने अपनी ` व्यास- वाणी ` में सूरदास और परमानंददास के कीर्तनों की प्रशंसा की है।

1- द्रष्टव्य - ` सूर- निर्णय ` - पारीख, शीतल - पृष्ठ, 28 ।

आइने अकबरी, मुन्तखिब उलतवारीख, मुंशियात अबुलफज़ल और मूल गुसांई चरित में भी सूरदास सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं, किन्तु वे अभी अप्रामाणिक ही हैं ।

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता - सूरदास के जीवन से सम्बन्धित सामग्री के लिये गोस्वामी गोकुलनाथ जी कृत ` चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता ` अत्याधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । इसमें पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के बाद का ही सूर का जीवन - चरित उपलब्ध होता है। इससे स्पष्ट होता है कि वल्लभ सम्प्रदाय में आने से पूर्व सूरदास जी विनय के पद बना कर गाया करते थे । वल्लभाचार्य ने सूरदास को ` पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम ` सुनाया, जिसके फलस्वरूप सूर को सम्पूर्ण भागवत का स्फुरण हुआ और उन्होंने भागवत की प्रथम स्कंध से दशम स्कंध तक की कथा को पद बद्ध किया । ` चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता के रचना काल एवं लेखक के विषय में सन्देह अभी तक है ।

भाव - प्रकाश - श्री हरिराय कृत ` भावप्रकाश ` से ज्ञात होता है कि सूरदास का जन्म दिल्ली के पास ` सीही ` ग्राम में हुआ था । वह जन्मान्ध थे,किन्तु उन्हें ज्ञान-चक्षु प्राप्त थे । सूरदास के चार नामों का उल्लेख भी ` भाव प्रकाश ` में हुआ है - सूरदास, सूरजदास, सूरज और सूर श्याम ।

अन्य वार्त्ता- साहित्य- ` निज वार्त्ता ` में सूरदास जी को वल्लभाचार्य जी का समव्यस्क मानकर सूरदास का जन्म समय सम्वत् 1535 वि० माना गया है । ` अष्टसखामृत ` में सूरदास सम्बन्धी उल्लेख इस प्रकार हुआ है :-

` श्री वल्लभ लाड़िले, सीही - सर- जलजात ।
सारसुती - दुज तरू- सुफल , सूर भगत विख्यात ।।
\+ + +
बाहिर नैन विहीन सो, भीतर नैन विसाल ।
तिन्हें न जग कछु देखिवो, लखि हरि रूप निहाल ।।
\+ + +

10)

सारद बैठी कंठ तेहि, निस दिन करै कलोल ।
हरि- लीला - रस पद कथत, नित नए सूर अमोल ।।[1] `

इस उल्लेख से सूरदास के जन्म- स्थान सीही, उनकी जाति सारस्वत ब्राह्मण और उनके अन्धत्व का परिचय प्राप्त होता है। ` संस्कृत- वार्ता- मणि- माला ` से भी ज्ञात होता है कि सूरदास ब्राह्मण थे और जन्मान्ध थे ।

वल्लभ दिग्विजय - इसके अनुसार भी सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे एवं वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे । सूरदास सम्वत् 1567 के आस- पास ही वल्लभ - सम्प्रदाय में प्रविष्ट हुये थे ।

सम्प्रदाय- कल्पद्रुम:- सम्वत् 1729 वि० में यह ग्रंथ ब्रजभाषा में श्री हरिराय जी के शिष्य श्री विट्ठलनाथ भट्ट द्वारा लिखा गया था । इसमें वल्लभाचार्य एवं विट्ठलनाथ जी के जीवन सम्बन्धी उल्लेख प्राप्त होते हैं। इस ग्रंथ के निम्नलिखित उल्लेख से ज्ञात होता है कि वल्लभाचार्य जी ने अपनी तृतीय यात्रा की समाप्ति पर सूरदास को शरण में लिया था :- ` सूरदास को सरन लै, तीर्थराज प्रभु आय ।
भू प्रदक्षिणा पूर्ण किय, ब्रज भोज करवाय ।[2] `

धोल- श्री जमुदास जी द्वारा रचित यह ग्रंथ गुजराती भाषा में है जिसमें सूरदास जी का जीवन- चरित पद्य-बद्ध किया गया है, लेकिन यह ग्रंथ मूलत: हरिराय जी की ` भाव- प्रकाश ` की टीका पर ही आधारित है ।

भाव- संग्रह -इसमें सूरदास से सम्बन्धित उल्लेख इस प्रकार है :-

` सो सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभुन तें दस दिन छोटे हते । लीला में उनको स्वरूप कृष्ण- सखा, चंपकलता- सखी, श्री जी के वाक् को स्वरूप, गिरिराज के चन्द्रसरोवर द्वार के अधिकारी, स्वामी की छाप, सारस्वत ब्राह्मण, सीही गाम के वासी ।[3] `

1- सूर- निर्णय - श्री द्वारिकादास पारीख एवं प्रभुदयाल मीतल-पृष्ठ, 29 ।
2- ,, ,, पृष्ठ, 30 ।
3- ,, ,, पृष्ठ, 32 ।

11)

बाह्य साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत की जाने वाली अर्वाचीन (आधुनिक) सामग्री को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :-
1- इतिहास ग्रन्थों में और 2- आलोचनात्मक प्रबन्धों में ।

वस्तुत: यह इतिहास ग्रन्थ खोज रिपोर्टों(नागरी प्रचारिणी सभा : ब्रज साहित्य मण्डल एवं हिन्दी विद्या पीठ) एवं कुछ प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर ही रचे गये हैं , किन्तु इन खोज रिपोर्टों से सूरदास के जीवन चरित पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता । यह अन्वेषण केवल उनकी रचनाओं का ही उद्घाटन करते हैं । हां, आचार्य शुक्ल के ` हिन्दी- साहित्य का इतिहास ` डॉ० रामकुमार वर्मा के ` हिन्दी साहित्य ` का आलोचनात्मक इतिहास' डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का ` हिन्दी- साहित्य ` आदि इतिहास ग्रन्थों में सूरदास के जीवन चरित पर कुछ आलोचनात्मक विवरण अवश्य मिलता है । आचार्य शुक्ल तो स्वयं अपने इतिहास- ग्रंथ में लिखते हैं कि सूरदास के जीवन से सम्बन्धित जो अल्प- सामग्री हमें प्राचीन ग्रन्थों से मिलती है, उसी पर ही संतोष करना पड़ता है । आचार्य शुक्ल ने सूरदास के जन्म एवं निधन काल के संवत् क्रमश: 1540 और 1620 का अनुमान किया है और उनके वल्लभाचार्य में प्रविष्ट होने का सम्वत् 1580 लिखा है लेकिन नवीन सामग्री के अनुसंधान से यह सभी सम्वत् अप्रामाणिक सिद्ध हो गये हैं । वस्तुत: आचार्य शुक्ल ने इस सम्बन्ध में मिश्रबन्धुओं का ही अनुकरण किया है।

हिन्दी- साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास(डॉ० रामकुमार वर्मा)-

अन्य इतिहास ग्रंथों की अपेक्षा इसमें सूरदास सम्बन्धी सामग्री अधिक विस्तार पूर्वक दी गई है । डॉ० वर्मा लिखते हैं :- ` यदि हम ` सूर- सारावली ` और ` साहित्य- लहरी ` का रचनाकाल एक ही मानें( जैसाकि बहुत सम्भव है क्योंकि दोनों पुस्तकें ` सूरसागर ` के बाद ही बनीं) तो संवत् 1607 में सूरदास जी की आयु 67 वर्ष की रही होगी अर्थात् उनका जन्म संवत् 1540 में हुआ होगा । जितना अन्तर ` सूर- सारावली ` और ` साहित्य- लहरी ` के रचनाकाल में होगा

उतना ही अन्तर ` जन्म- संवत् में पड़ जायेगा । किन्तु अनुमान से यह कहा जा सकता है कि दोनों के रचनाकाल में अधिक अन्तर नहीं हो सकता । अतएव सूरदास के पदों के अनुसार उनका जन्म संवत् 1540 अथवा उसके आस- पास ठहरता है ।[1] `

हिन्दी- साहित्य(डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी)-

डॉ० द्विवेदी कृत ` हिन्दी- साहित्य से ज्ञात होता है कि - ` चौरासी वैष्णवन की वार्ता के अनुसार इनका जन्म स्थान रूनकता या रेणुका क्षेत्र है । ये मथुरा और वृन्दावन के बीच गऊघाट पर रहते थे ।[2] ` डॉ० द्विवेदी सूरदास को जन्मान्ध भी नहीं मानते । इसके साथ ही उनके मतानुसार सूरदास सन् 1523 ई० के आस- पास आचार्य वल्लभ के सम्पर्क में आये । जबकि सूरदास इससे बहुत पहले आचार्य जी के शिष्य हो चुके थे ।

आधुनिक आलोचकों में भारतेन्दु जी ने अपने लेख में ` साहित्य लहरी ` के 118 संख्यक पद को प्रामाणिक मानकर सूरदास के वंश का वर्णन किया है और सूर को जन्मान्ध माना है। मुंशी देवीप्रसाद जी ने सूर को अकबर का दरबारी गायक माना है। डॉ० जनार्दन मिश्र ने सूरदास सूरसागर, सूरसारावली एवं साहित्य- लहरी तीनों को सूर- कृत माना है। ` सूर-साहित्य की भूमिका `(श्री रामरतन भटनागर एवं श्री वाचस्पति त्रिपाठी) में लेखक द्वय ने सूर का जन्म सम्वत् 1540 माना है और लिखा है कि सूरदास जन्म से ही नेत्र-विहीन नहीं थे, कदाचित् वृद्धावस्था के साथ ही नेत्र - विहीन हो गये थे ।

डॉ० मुंशीराम शर्मा ने अपने ` सूर- सौरभ ` में सूर के जीवन -पक्ष पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। उन्होंने ` मुनि पुनि रसन के रस लेख ` वाले पद से उसका रचनाकाल संवत् 1627 निश्चित किया है और उसके वंश- परिचयात्मक पद को

1- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ० रामकुमार वर्मा - पृष्ठ - 740 ।

2- हिन्दी साहित्य- डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - पृष्ठ - 172 ।

को प्रामाणिक माना है। मुंशी जी ने सूर का जन्म- स्थान ` गोपाचल ` माना है। सूरदास के अन्धत्व के विषय में वे इतना ही कहते हैं :- कि ` सूरसागर ` की रचना से पूर्व ही वह (सूरदास) अन्धे हो गये थे । सूरदास के जन्म एवं मरण के सम्बन्ध में वे लिखते हैं :- " सूर संवत् 1515 के लगभग उत्पन्न हुये और संवत् 1628 के आसपास तक जीवित रहे ।[1] "

सूरदास जी के जीवन, सिद्धान्त एवं सम्प्रदाय का विवेचन करते हुये डॉ० दीनदयालु गुप्त ने अपने ` अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय ` में वार्ता- साहित्य को विशेष रूप से प्रामाणिक माना है। गुप्त जी ने सूरदास का जन्म संवत् 1535 और मरण संवत् 1638-39 माना है। सूरदास के अन्धत्व के विषय में गुप्त जी यह तो कहते हैं कि सूरदास निपट अन्धे थे, किन्तु वे जन्मान्ध थे या नहीं, इस विषय में गुप्त जी मौन ही हैं ।

सूरदास के जीवन वृत का विश्लेषण करते हुये डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा अपने प्रबंध ` सूरदास ` में सूरदास की जाति के सम्बन्ध में लिखते हैं कि - " यदि वे ब्राह्मण होते तो अपने उपास्यदेव के जन्मोत्सव पर दीन ब्राह्मण का भी रूप धारण कर सकते थे । अन्त में अन्य पुष्ट प्रमाणों के मिलने तक यही कहकर संतोष किया जा सकता है कि सूरदास कदाचित् ब्राह्मण नहीं थे, सम्भव है वे ढ़ाढ़ी, जगा या ब्रह्म-भट्ट हों । यह भी सम्भव है कि ब्रह्म भट्ट होने के नाते परम्परागत कवि वंशज सूर सरस्वती पुत्र और सारस्वत नाम से विख्यात हो गये हों, जो कालान्तर में सहज ही भक्तों द्वारा सारस्वत-ब्राह्मण कर लिया गया हो ।[2] " डॉ० वर्मा भी सूरदास को जन्मान्ध न मानते हुये उनकी नेत्रविहीनता की संभावना वृद्धावस्था के निकट करते हैं ।

1- सूर- सौरभ - डॉ० मुंशीराम शर्मा - पृष्ठ -80 ।

2- सूरदास - डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा - पृष्ठ - 9 ।

श्री द्वारिकादास पारीख एवं प्रभुदयाल मीतल अपने ग्रंथ ` सूर- निर्णय ` में सूरदास के जन्मस्थान के विषय में लिखते हैं कि - ` हम सूरदास का जन्म-स्थान दिल्ली के निकटवर्ती सीही ग्राम को मानने के लिये विवश हैं । हिन्दी के माननीय इतिहासकार भी अब इसी मत को मानने लगे हैं ।[1] ` इन लेखक द्वय ने सूरदास की जन्मतिथि संवत् 1535 और देहावसान संवत् 1640 में निश्चित किया है।

डॉ० हरिवंश लाल शर्मा अपने ग्रंथ ` सूर और उनका साहित्य ` में सूरदास का जन्म- स्थान ` सीही ` को मानते हुये उनका जन्मकाल संवत् 1535 और मरण- काल संवत् 1640 के आसपास मानते हैं। डॉ० शर्मा सूर को जन्मान्ध मानते हैं।

इस प्रकार सूरदास जी के सम्बंध में अनेक उक्तियां सूर के समकालीन तथा परवर्ती लेखकों की कृतियों में उपलब्ध हैं और आधुनिक इतिहास ग्रंथों एवं विभिन्न आलोचनात्मक रचनाओं द्वारा भी सूरदास के जीवन- वृत पर प्रकाश डाला गया है फिर भी अभी तक सूरदास के प्रमाणिक एवं विश्वसनीय जीवन- वृत के निर्धारण में पूरी सफलता नहीं मिल पाई है । अत: इस अन्त:साक्ष्य एवं बाह्य- साक्ष्य के रूप में प्राप्य सामग्री के आधार पर सूरदास जी का जीवन- वृत इस प्रकार है :-

(क) व्यक्तित्व - महाकवि सूरदास के जीवन- वृत को जानने के लिये निम्नांकित तथ्यों का विवेचन आवश्यक है :- 1- जन्म-स्थान, 2- जन्म-तिथि , 3- जाति, 4- अन्धत्व, 5- वैराग्य एवं सम्प्रदाय- प्रवेश तथा 6- गोलोकवास इत्यादि ।

जन्म- स्थान - सूरदास के जन्म स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रचलित हैं। उनके जन्म स्थान के विषय में चार स्थानों का उल्लेख किया जाता है - - गोपाचल, रूनकता, गौघाट, सीही अथवा साही ।

साहित्य- लहरी के तथाकथित वंशपरिचयात्मक पद में सूरदास के पिता का निवास- स्थान आगरा के निकटवर्ती स्थान ` गोपाचल ` को माना गया है । अत:

1- सूर- निर्णय - डॉ० द्वारिकादास पारीख एवं प्रभुदयाल मीतल - पृ०-83 ।

1 5)

कई विद्वान सूरदास का जन्म- स्थान गोपाचल बतलाते हैं । पर अब जब कि ` साहित्य- लहरी ` के उक्त पद की अप्रामाणिकता सिद्ध हो चुकी है ` गोपाचल ` को सूरदास का जन्मस्थान नहीं माना जा सकता ।

कई विद्वानों का मत है कि गौघाट और गोपाचल दोनों एक ही हैं[1] अत: सूरदास का जन्म स्थान गौघाट भी नहीं कहा जा सकता ।

हिन्दी साहित्य के प्रमुख इतिहास लेखकों ने सूरदास का जन्म- स्थान ` रुनकता ` लिखा है[2] । लेकिन इस सम्बन्ध में अभी तक कोई भी विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिल पाया है । अत: प्रामाणिक तथ्यों के अभाव में इस स्थान को भी सूरदास का जन्म- स्थान नहीं माना जा सकता ।

इस प्रकार सूरदास के जन्म- स्थान के सम्बन्धित जो मत प्राप्त हैं, उन में निम्नांकित दो ही प्रधान कहे जा सकते हैं :- (1) ` सीही ` मत (2) ` साही ` मत ।

डॉ० हरिवंशलाल शर्मा[3], डॉ० सत्येन्द्र[4], द्वारकादास पारीख एवं प्रभुदयाल मीतल[5], सीही- मत के समर्थक हैं। ये सभी विद्वान दिल्ली- मथुरा सड़क पर वल्लभगढ़ के निकटवर्ती ` सीही ` ग्राम को सूरदास का जन्म- स्थान मानते हैं ।

इस सम्बन्ध में डॉ० हरिवंशलाल शर्मा का मत उल्लेखनीय है :- ` दिल्ली के आस पास इस ( ` भाव प्रकाश ` में उल्लिखित) सीही ग्राम का आज कहीं पता नहीं है। कहा जाता है कि आज जहां नई दिल्ली है, वहां के छोटे- छोटे गांव उठा

1- ` वार्ता ` में उल्लेख है - ` सो गऊघाट आगरे और मथुरा के बीचों बीच है `(अष्टछाप - सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ,पृ०- 1)
` साहित्य- लहरी ` में गोपाचल को आगरा के निकट कहा गया है(पद सं- 113)

2- आचार्य रामचन्द्र-हिन्दी साहित्य का इतिहास-पृ०-127।
डॉ० श्याम सुन्दरदास- हिन्दी भाषा और साहित्य-पृ०- 322 ।

3- डॉ० हरवंशलाल शर्मा- सूर और उनका साहित्य-पृ०-23 ।

4- डॉ० सत्येन्द्र-सूर की झांकी- पृ०-86 ।

5- पारीख एवं मीतल - सूर- निर्णय - पृ०- 53 ।

दिये गये थे और वे दूसरे ज़िलों में जाकर आबाद हो गये । दिल्ली- मथुरा सड़क पर वल्लभगढ़ के निकट सीही नाम का एक ग्राम है । वहां यद्यपि सूर संबन्धी कोई स्मारक अब विद्यमान नहीं है, तथापि वहां के लोगों में यह अनुश्रुति प्रचलित है कि महाकवि सूरदास का जन्म उसी सीही ग्राम में हुआ था । इसके साथ- साथ वहां भी कथा प्रचलित है कि जनमेजय ने सर्पयज्ञ उसी स्थान पर किया था । इन दोनों अनु-श्रुतियों से ` भाव- प्रकाश ` वाले ` सीही ` ग्राम की संगति तो ठीक बैठ जाती है परन्तु दूर वाली बात का समाधान नहीं हो पाता । दिल्ली के अनेक बार बसने और उजड़ने के कारण भी दूरी में अंतर आ सकता है, दूसरे दिल्ली से दिल्ली राज्य की भी कल्पना की जा सकती है, तीसरे आज भी दिल्ली के निकटवर्ती ग्रामों की दूरी ग्रामीण माप के रूप में प्रचलित है। लेखक का ग्राम दिल्ली से 16 मील की दूरी पर है किन्तु ग्रामवासी दिल्ली को वहां से 6-7 कोस ही बताते हैं । वर्तमान सीही को सूरदास जी का जन्म- स्थान मान लेने पर कवि मियांसिंह वाले मत की भी संगति बैठ जाती है। इसलिये सूरदास जी का जन्मस्थान सीही ही ठहरता है ।[1] "

डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा लिखते हैं - " सीही ग्राम में सूरदास के जन्म- स्थान की जन-श्रुति गोस्वामी हरिराय के द्वारा संकलित और तदन्तर सम्प्रदाय में प्रचलित जान पड़ती है। अष्टछाप के सूरदास ही सीही ग्राम में उत्पन्न हुये थे अथवा अन्य कोई सूरदास, इसका कोई असंदिग्ध प्रमाण नहीं है ।[2] "

डॉ० तोता राम शर्मा ने अपनी रचना ` महाकवि सूरदास- जन्मभूमि और जीवन परिचय में ` सीही मत ` का खण्डन किया है ।[3] उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि सूरदास का जन्म- स्थान ` सीही ` नहीं ` साही ` ग्राम है

1- डॉ० हरिवंशलाल शर्मा - सूर और उनका साहित्य - पृ०- 22- 23 ।

2- डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा - सूरदास - पृष्ठ - 45 ।

3- पं० तोताराम शर्मा - ` पंकज ` - महाकवि सूरदास - पृ०-13- 16 ।

जो प्राचीन काल में तो मथुरा में था और अब आगरा से भारतपुर जाने वाली सड़क पर है जो रेणुका (रूनकता) से 3-4 मील दूर है। आचार्य शुक्ल एवं डॉ० श्यामसुन्दर दास ने भी सूर का जन्म-स्थान रूनकता ही माना है। शर्मा जी के अनुसार बाबा राधाकृष्ण दास कृत ` सूर- शतक ` से भी इसकी पुष्टि होती है :-

` गोपांवल अंचल बिखे, है साही इक ठांव ।
गोचारन हरि करत जहं, सारस्वत की गांव ।।[1] `

कवि मियांसिंह कृत ` भक्त - विनोद ` में सूरदास के जन्म - स्थान के सम्बन्ध में कहा गया है :- ` मथुरा प्रांत विप्रवर गेहा ।
म ो उत्पन्न भक्त हरि नेहा ।।[2] `

इससे प्रकट होता है कि सूर की जन्म- भूमि मथुरा- प्रांत है। पं० तोताराम शर्मा लिखते हैं कि प्राचीनकाल में ` साही ` ग्राम मथुरा प्रांत के अन्तर्गत था जो अब आगरा ज़िले में है। शर्मा जी यह भी कहते हैं कि सूरदास की भाषा ठेठ ब्रजभाषा है और वह आगरा एवं मथुरा के बीच की भाषा है। उसमें दिल्ली के आस - पास की भाषा का स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता।[3] ` इस दृष्टि से, सूरदास की जन्म- भूमि ठेठ ब्रजभाषा प्रांत ही प्रमाणित होती है।

इस प्रकार अब तक के प्राप्त विवरण से यही स्पष्ट होता है कि सूरदास जी की जन्मभूमि ` साही ` ग्राम थी, हो सकता है कि ` सीही ` ` साही ` का ही बिगड़ा हुआ रूप हो। फिर भी, यह सच है कि अभी इस विषय में पर्याप्त शोध

1- पं० तोता राम शर्मा, पंकज ` महाकवि सूरदास , पृ० - 14 ।

2- ,, ,, ,, , पृ० - 13 ।

3- ,, ,, ,, , पृ० - 14 - 15 ।

की आवश्यकता है, अब तक के प्राप्त प्रमाणों से किसी निश्चित मत तक नहीं पहुंचा जा सकता ।

जन्म- तिथि - सूर के जन्म- काल के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। लेकिन अब तक की अन्त:साक्ष्य एवं बाह्य:साक्ष्य के आधार पर प्राप्त सामग्री के अनुसार सूर- साहित्य के अधिकांशत: आलोचक यह मानते हैं कि महाकवि सूरदास का जन्म सम्वत् 1535 वि0 में हुआ । इन आलोचकों के अनुसार सूरदास जी महाप्रभु वल्लभाचार्य जी से 10 दिन छोटे थे,[1] और यही मत अधिक प्रामाणिक एवं विश्वास योग्य प्रतीत होता है ।

जाति एवं वंश - महाकवि सूरदास की जाति के विषय में विद्वानों ने पर्याप्त चर्चा की है। प्राप्त सामग्री के अनुसार उन्हें - सारस्वत ब्राह्मण, ढाढ़ी, अथवा जाट कहा गया है। यहां इस विषय का विस्तार अनावश्यक है। बहुमत से सूरदास सारस्वत ब्राह्मण ही प्रमाणित होते हैं ।

सूरसागर में ` सूर ` और ` सूरदास ` छाप वाले पद ही सूरदास के प्रतीत होते हैं । कई पदों में ` सूरज ` अथवा ` सूरजदास ` का नाम मिलता है, जैसे सूरसागर के 216 पद की अन्तिम पंक्ति:-

` ऐसे कुमति जाट सूरज कौं प्रभु बिनु कोउ न धात्र ` ।

इस प्रकार के पदों की प्रामाणिकता संदिग्ध है। इस सम्बन्ध में डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा कहते हैं:- " हमारे सूरदास ने विकल्प से ` सूरज ` या ` सूरजदास ` का व्यवहार नहीं किया, वरन् किसी अन्य ` सूरजदास ` नामक कवि ने सूर के पदों में अपनी छाप लगा दी तथा कुछ स्वरचित पद ` सूरसागर ` में सम्मिलित कर दिये ।[1] "

1- डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा - सूरदास - पृष्ठ - 5 ।

अत: बहुमत से सूरदास सारस्वत ब्राह्मण ही सिद्ध होते हैं ।

अन्धत्व- सूरदास के अन्धत्व के विषय में तो विद्वानों में कोई मतभेद नहीं है, मतभेद तो इस बात में है कि वह (सूरदास) जन्म से ही अन्धे थे या बाद में अन्धे हो गये थे । वैसे तो अब लोक- प्रचलित भाषा में भी ' सूर एवं ' अंधत्व ' समान अर्थ वाची माने जाते हैं और ' सूरदास ' शब्द प्रत्येक अन्धे व्यक्ति के लिये रूढ़ सा हो गया है । अत: यह तो स्पष्ट है कि सूरदास अन्धे थे ।

श्री द्वारिकादास पारीख, श्री प्रभुदयाल मीतल, डॉ० सत्येन्द्र, डॉ० हरवंशलाल शर्मा आदि सूरदास को जन्मान्ध मानते हैं[1] । इसके विपरीत आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा, डॉ० दीनदयालु गुप्त, नलिनी मोहन - सान्याल, पं० तोताराम शर्मा आदि विद्वान सूर को जन्मान्ध स्वीकार नहीं करते[2] ।

इसके अतिरिक्त सूरसागर के कुछ पदों में सूरदास के अंधत्व का उल्लेख है, यथा :-

(1) ' कहावत सबसे त्यागी दानि ।
चारि पदारथ दिए सुदामहिं अरू गुरू के सुत आनि ।।
\+ + +

1- (i) पारीख एवं मीतल - सूर निर्णय - पृष्ठ - 64-78 ।
(ii) डॉ० सत्येन्द्र - सूर की झांकी - पृष्ठ - 92-93
(iii) डॉ० हरवंशलाल शर्मा- सूर और उनका साहित्य, पृष्ठ- 27-29 ।

2- (i) आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी- सूर- सन्दर्भ - पृष्ठ - 34 ।
(ii) डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा - सूरदास पृष्ठ - 13 ।
(iii) डॉ० दीनदयालु गुप्त - अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ०-202 ।
(iv) नलिनी मोहन सान्याल - भक्त शिरोमणि सूरदास-पृ०- 10
(v) पं० तोताराम शर्मा - महाकवि सूरदास - पृ० 19 ।

20)

` सूरदास ` सों बहुत निठुरता, नैननि हू की हानि `।।

(2) - ` किन तेरो गोविन्द नाम धर्‌यौ ।

\+ + +

सूर की बिरियाँ निठुर होर बैठे, जन्म अन्ध कर्‌यौ । `

(3) ` हरि बिन संकट में को का की ।

\+ + +

रही जात एक पतित जनम की आंधरी सूर सदा की । `

(4) ` नाथ मोहि अबकी बेर उबारी ।

तुम नाथन के नाथ सुवामी, दाता नाम तिहारी ।

करमहीन जनम की अंधी मोते कौन नकारी ।।[1] `

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट जान पड़ता है कि सूर जन्म से ही अन्धे थे। लेकिन ` सूरदास ` जी के काव्य में दृश्य जगत् के ऐसे यथार्थ वर्णन हैं कि उन्हें जन्मान्ध मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता । डॉ० श्यामसुन्दरदास कहते हैं:-

-- ` सूर वास्तव में जन्मान्ध नहीं थे, क्योंकि शृंगार तथा रंग- रूपादि का जो वर्णन उन्होंने किया है, वैसा कोई जन्मान्ध नहीं कर सकता ।[2] `

श्री नलिनी मोहन सान्याल कहते हैं:- ` सूरदास ने अपने काव्य में जिस प्रकार से ज्योति का, नाना प्रकार के वर्णों का तथा नाना हाव- भावों का वर्णन किया है और प्रकृति से जिस ढंग से नाना प्रकार की उपमाएँ कथन की हैं, वह

1- सूरनिर्णय :- डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव एवं प्रभुदयाल मीतल - पृ० 77, 78, 79 से उद्धृत

2- सूर- साहित्य - डॉ० श्यामसुन्दर दास - पृष्ठ - 188 ।

21)

चक्षुष्मान व्यक्ति के अतिरिक्त अन्धे के द्वारा केवल श्रुति की सहायता से संगृहीत नहीं हो सकता । - - सम्भवत: वह जन्मान्ध नहीं थे और पीछे वह अन्धे हो गये थे, ऐसा अनुमान होता है ।[1] "

श्री नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं :- " सूरदास की रचनाओं में प्रकृति का और मनुष्यों के भावों के उतार- चढ़ाव का जैसा सूक्ष्म चित्रण है, उसे देख कर यह कहने का साहस नहीं होता कि सूरदास ने बिना अपनी आंखों के देखे केवल कल्पना से यह सब लिखा है ।[2] "

' सूरसागर ' से उद्धृत पदों को लेकर डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी सूरदास के अन्धत्व के सम्बन्ध में लिखते हैं :- " परन्तु सूरदास के प्राकृतिक शोभा और रूप वर्णन को देखकर अधिकांश विद्वान यह नहीं मानना चाहते कि वे जन्मान्ध थे । सूरसागर के कुछ पदों से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि सूरदास अपने को जन्म का अन्धा एवं कर्म का अभागा कहते हैं पर सब समय इसके अक्षरार्थ को ही प्रधान नहीं मानना चाहिए । यह मानसिक ग्लानि की अवस्था में कही हुई बात है जिसमें अपनी हीनता को अतिरंजित करने की प्रकृति काम करती रहती है ।[3] " द्विवेदी जी सूरदास के अन्धत्व के विषय में यह निष्कर्ष रखते हैं कि " ऐसी आत्म ग्लानि की अवस्था में अपनी हीनता को अतिरंजित करने की प्रवृत्ति मनुष्य में आ जाती है । ऐसे ही अवसरों पर सूरदास अपने को जन्म का अन्धा और कर्म का अभागा कह देते हैं। इसके अक्षरार्थ को बहुत अधिक महत्व नहीं देना चाहिये ।परवर्ती पुस्तकों में केवल सुनी- सुनाई बातों का उल्लेख है । सूरदास का साहित्य कभी जन्मान्ध व्यक्ति का लिखा साहित्य नहीं हो सकता ।[4] "

1- भक्त शिरोमणि सूरदास श्री नलिनी मोहन सान्याल-पृष्ठ- 10 ।

2- सूर सन्दर्भ - श्री नंददुलारे वाजपेयी - पृष्ठ - 34 ।

3- हिन्दी- साहित्य - डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - पृष्ठ - 173 ।

4- हिन्दी साहित्य - डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - पृष्ठ - 175 ।

इस प्रकार आज के वैज्ञानिक युग में यही मत अधिक युक्ति- युक्त एवं यथार्थ प्रतीत होता है कि सूरदास जन्मान्ध नहीं थे, बाद में ही वह किसी कारण-वश चक्षुविहीन हो गये थे ।

वैराग्य एवं सम्प्रदाय-प्रवेश - सूरदास जी के प्रारम्भिक जीवन के विषय में मात्र श्री हरिराय जी का ` भाव- प्रकाश ` ही उपलब्ध साधन है। इसके अनुसार यह ज्ञात होता कि सूरदास अपनी छः वर्ष की आयु तक ही घर पर रहे, तत्पश्चात् 18 वर्ष की आयु तक वे अपने ग्राम से चार कोस की दूरी पर एक तालाब के तट पर वृक्ष के नीचे रहे । ` भक्तविनोद ` में भी मियांसिंह ने आरम्भिक अवस्था में उनके गृहत्याग का उल्लेख किया है[1] । जिस स्थान पर सूर रहते थे वहां इनकी प्रसिद्धि एक शकुन बतलाने वाले के रूप में अधिक रही । यहीं पर सूरदास स्वामी जी कहलाने लगे और अनेक व्यक्ति उनके सेवक हो गये । गायन कला में कुशलता भी सूर ने यहीं पर प्राप्त की ।

18 वर्ष की आयु में आप वैराग्य की ओर पूर्णरूपेण प्रवृत्त हो गये । वैराग्य की दृढ़ता में वे अपने को सच्चे त्यागी सेवकों के साथ मथुरा होते हुये गौघाट पर जा कर रहने लगे । सूर के इस समय के पदों में दीनता, विनय और वैराग्य का दर्शन होता है।

गौघाट पर ही सूरदास जी का साक्षात्कार महाप्रभु वल्लभाचार्य से, उनके अपने सेवकों सहित अडेल से ब्रज की ओर जाते हुये, हुआ[2] । वल्लभाचार्य का गौघाट पर आगमन सुनकर सूर उन से मिलने आए और अपने विनय के पदों का गायन

1- मियांसिंह का वर्णन प्रामाणिक नहीं माना गया । विस्तृत विवेचन के लिये द्रष्टव्य ` सूर- निर्णय ` - पारीख, शीतल ,पृष्ठ 80-81 ।

2- ` चौरासी वैष्णवों की वार्ता ` में यहीं से कथा प्रारम्भ हुई है ।

23)

किया । इस पर उनके दैन्य- वर्णन की ओर संकेत करते हुये आचार्य ने उन्हें भगवद्लीला का वर्णन करने के लिये कहा । सूर के उस विषय में अज्ञानता जताने पर वल्लभाचार्य ने लीला का यथार्थ ज्ञान उन्हें करवाया और अष्टाक्षर मन्त्र का नाम तथा ब्रह्म सम्बन्ध कराते हुये उनसे समर्पण कराया । इस प्रकार संवत् 1567 या 68 में विधिवत् सूरदास वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हुये ।[1]

सूरदास एक त्यागी और विरक्त प्रेमी भक्त थे । उन्होंने जो कुछ अपने जीवन में अनुभव किया उसी का ज्ञानोपदेश उनके काव्य में हमें मिलता है। दीनता और नम्रता की साक्षात् प्रति मूर्ति महाकवि सूर ने सत्संग की महिमा गाई है। गोस्वामी विट्ठलनाथ द्वारा संस्थापित अष्टछाप के आप प्रमुख थे । कुछ इतिहासकारों ने संवत् 1623 में आपकी, तत्कालीन मुगल सम्राट अकबर से, भेंट का उल्लेख भी किया है।[2] गोस्वामी तुलसीदास से आपकी भेंट का उल्लेख भी कतिपय ग्रन्थों में हुआ है ।

गोलोकवास- सूरदास जी का गोलोकवास परासौली स्थान पर संवत् 1640 वि० के लगभग हुआ ।[3]

इस प्रकार महाकवि सूर अपने जीवन में कृष्ण के जिस रूप के उपासक रहे वह साहित्य का सौरभमय रूप बन गया । अपने जीवन को कृष्ण के प्रेम में रंग कर सूर ने जो कुछ हमें दिया है वह शाश्वत है और उसके माध्यम से सूर अमर हैं ।

1- विस्तृत विवेचन के लिये द्रष्टव्य (अ) सूरदास- हरवंश लाल शर्मा-पृ० 19-21
(आ) सूर- निर्णय- पारीख , मीतल- पृष्ठ 84-88 ।

2- सूर- साहित्य - सन्दर्भ - पृष्ठ -14 तथा सूरदास-सम्पादक हरवंशलाल शर्मा - पृष्ठ - 21- 22 ।

3- विस्तृत विवेचन के लिये द्रष्टव्य - सूरदास - पृष्ठ- 23,24, अष्टछाप और वल्लभ- सम्प्रदाय, पृष्ठ- 209, 12 ।

24)

(2) प्रेरणा स्त्रोत - महाकवि सूरदास के साहित्य का सम्यक् अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वल्लभाचार्य द्वारा पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पूर्व जब सूरदास जी गौघाट पर रहते थे, तब विनय एवं दास्य भाव के पद बनाकर अपनी भक्ति - भावना का परिचय दिया करते थे । महाकवि सूर उच्चकोटि के भक्त तो थे ही, उन्होंने गला भी बहुत अच्छा पाया था । सूर की प्रकृति में काव्य एवं संगीत मूर्तिमान होकर घुल मिल गये थे । - तत्पश्चात् जब सूरदास जी वल्लभाचार्य जी के समक्ष गये और अपने दैन्य एवं कार्पण्य का प्रदर्शन करते हुये बड़े विनीत एवं करुण स्वर में यह पद:- - ` प्रभु हौं सब पतितन को टीकौ ` - गाकर सुनाया तो उनसे प्रभावित होकर महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उनसे कहा - ` जो सूर है के ऐसो घिघियाते काहे को हैं । ` तब सूरदास जी वल्लभाचार्य की शरण में आ गये और उन से दीक्षा ग्रहण की । महाप्रभु जी ने सूरदास को कृष्ण- लीला सुनाई और उसे पद- बद्ध करने के प्रेरणा दी और सूरदास जी ने श्रीमद्भागवत की प्रथम स्कंध से दशम स्कंध तक की कृष्ण -लीला को पद- बद्ध कर प्रस्तुत किया । सूर- सारावली में सूरदास जी स्वयं कहते हैं:-

` करम- जोग पुनि ग्यान - उपासन, सब ही भ्रम भरमायौ ।
श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायौ, लीला- भेद- बतायौ ।। 1102 ।। `

श्री वल्लभाचार्य जी की शरण में आने के पश्चात् ही उन्होंने लीला विषयक पदों का गायन किया था, इसका उल्लेख वे इस प्रकार करते हैं:-

` ता दिन तें हरि- लीला गाई, एक लक्ष पद बंद ।। 1103 ।। `

राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति की रासलीला का दर्शन सूरदास जी को वस्तुत: श्री वल्लभाचार्य जी की प्रेरणा एवं प्रसाद- स्वरूप ही प्राप्त हुआ था । इस प्रकार सूरदास जी द्वारा वल्लभाचार्य जी की प्रेरणा से प्राप्त श्रीकृष्ण के सगुण रूप का भागवत के आधार पर किया गया लीला- वर्णन सुनते ही जनमानस आनन्द के ज्वार से उफन उठा और ऐसा प्रतीत हुआ मानों सूर की वाणी में श्याम की मूर्ति साकार हो उठी ।

DD5

25)

वास्तव में इसमें कोई सन्देह नहीं कि काव्य और संगीत के गुण सूरदास में जन्मजात थे , एवं प्रकृति ने ही उन्हें बुद्धि और विवेक प्रचुर मात्रा में प्रदान किया था । दैवी प्रेरणा से ही वे इतने सिद्ध हो गये थे, तथापि महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की प्रेरणा ने सूरदास के काव्य को एक नई दृष्टि दी, एक नया मोड़ दिया, जिसके परिणामस्वरूप सूर का यह विशाल एवं अथाह सागर आज हमारे सामने है। डॉ० मुंशीराम शर्मा भी लिखते हैं :- " सूर का संयत हृदय और मन, बुद्धि एवं आत्मा पहले से ही किसी वस्तु के ग्रहण की पूरी तैयारी किये बैठे थे - भूमि तैयार थी, केवल बीज पड़ने की देर थी । यह बीज सूर को वल्लभ के आध्यात्म शक्ति- गर्भित उपदेशों में सुलभ हो गया ।[1] "

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सूरदास के काव्य को इतना सुन्दर, प्रौढ़ , प्रांजल एवं परिमार्जित रूप महाप्रभु वल्लभ की प्रेरणा स्वरूप ही प्राप्त हुआ ।

बहुज्ञता - सूर- काव्य धार्मिक , सामाजिक एवं साहित्यिक विशेषताओं का विपुल भंडार है। सूरदास में जहां जन्मजात कवित्व शक्ति, विलक्षण प्रतिभा एवं काव्य-कला का अपार ज्ञान है वहां उनमें संगीतात्मकता, भाव- प्रवणता एवं लौकिक अनुभव भी पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगत होते हैं । महाकवि सूरदास जी काव्यशास्त्र एवं संगीतशास्त्र के अपूर्व पंडित होने के साथ- साथ शब्द- कोष के भी बड़े धनी थे । सूरदास जी ज्योतिष- विज्ञान के भी ज्ञाता थे और शकुन भी बताया करते थे ।

महाकवि सूरदास संगीत की प्रत्येक राग- रागिनी से परिचित थे । संगीत शास्त्र के अन्तर्गत सूरदास जी ने 6 राग और 36 रागिनियां मानी हैं :-

" मुरली हरि को भावै री ।
छहौं राग छत्तीसौ रागिनि इक इक नीकै गावै री ।।(४५६)"

1- सूर- सौरभ - डॉ० मुंशीराम शर्मा - पृष्ठ - 5 ।

निम्न लिखित पद में सूरदास जी ने विभिन्न रागों के नाम गिनवाये हैं:-

` ललिता ललित बजाय रिझावत मधुर बीन कर लीने ।
जानि प्रभात राग पंचम, षट, मालकौंस रसभीने ।।
सुर हिंडोल, मेघमालव पुनि सारंग सुर नट जान ।
सुर सांवत, भूपाली, इमन करत कान्हरौ गान ।।` (सूर सारावली)

सूरदास जी को विविध अंगों के आभूषण और नाना प्रकार के शृंगारों से भी परिचय था। वे यह भी जानते थे कि किस अंग पर कौन सा आभूषण शोभा देता है। सूरसागर के पृ० 236 और 244 पर क्रमश: सूरदास जी ने मोतीमाला, कण्ठी कर्णफूल, तिलक, हमेल, कर्धनी आदि आभूषणों के नाम गिनवा दिये हैं ।

सूरसागर में व्यंजनों के नाम की परिगणना भी कई स्थानों पर हुई है। सूरदास जी श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तनाध्यक्ष थे और मन्दिर में भगवान को भोग लगाने के लिये विविध प्रकार के व्यंजन बनते होंगे । कदाचित् तभी सूरदास जी ने व्यंजनों के नामों का वर्णन बड़ी सुरुचितापूर्वक किया है । यथा :-

` भोजन भयो भावते मोहन । तातोइ जेंइ जादु गोदहन ।।
खीर खांड सीचरी सँवारी । मधुर महेरि सो गोपन प्यारी ।।
राइ भोग लियो भात पसाई । मूंग ढरहरी हींग लगाई ।।
सद माखन तुलसी दै तायौ । घिरत सुवास कचोरा बनायो ।।
पापर बरी अचार परन शुचि । अदख अरू निबुआनि है है रुचि ।।
सूरन करी तरि सरस तोराई । सेमि सींगरी छौंकि फोराई ।।
+ + + +
बने बनाइ करेला कीने । लोन लगाई तुरत तलि लीने ।।
फूले फूल सहीजन छौंके । मन रुचि होइ नाजु के औके ।।१३१।।`

वास्तव में इस प्रकार की नाम - परिगणन- शैली से काव्य की मधुरिमा उपेक्षित सी हो जाती है। सूरदास ने कुछेक पदों में गिनती भी गिनवाई है :-

` नन्द नन्दन दरसन जब पैहों ।
एक द्वै तीन तजि, चारि बानी, पाँच छह निदरि, तबहिं सातैं भुलरहौ ।
+ + + +
जपत अठारहौं भेद उनईस नहि - बीसहू बिसौ ते सुखहिं पैहैं ।।2357।।"

महाकवि सूरदास जी को कृषि, वाणिज्य, ज्योतिष एवं शकुन-विद्याओं का भी पर्याप्त ज्ञान था। सूरसागर में उनके ज्योतिष- ज्ञान- विषयक कई पद मिल जाते हैं । उदाहरण के लिये :-

` नंद जू । मेरे मन आनन्द भयौ सुनि मथुरा तैं आयौ ।
लगन सोधि ज्योतिष कौं गिनिकै, चाहत तुम्हैं सुनायौ ।। `

इस प्रकार विभिन्न शकुन- अपशकुनों के उदाहरण भी सूरसागर में मिलते हैं। भ्रमरगीत के अन्तर्गत ` जोग ठगोरी ब्रज न बिकै है `, ` आयौ घोष बड़ौ व्यापारी ` मूली के पातन के क्वेना को मुक्ताहल देहैं आदि पदों ने सूरदास के वाणिज्य-विषयक ज्ञान का पता चलता है।

सूरदास जी का शब्द- कोष भी अपरिमित है। कभी- कभी तो वे एक ही शब्द को पकड़ कर ही अनेक वस्तुओं के नामों का उल्लेख करने लगते हैं ।

सूरदास जी को पौराणिक - शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था । सूरसागर का तो मुख्याधार ही पौराणिक उपाख्यान है। यद्यपि सूरदास जी गृहस्थ नहीं थे, तथापि गार्हस्थिक रीति- रिवाजों एवं सामाजिक प्रथाओं से भी पूर्णतया परिचित थे । कृष्ण के जन्मोत्सव, नाम-करण , अन्न प्राशन , वर्ष गांठ, कर्ण - छेदन, यज्ञोपवीत, विवाहादि एवं विविध अवसरों पर किये जाने वाले व्रत, पूजा,उत्सवादि का वर्णन भी सूरदास जी ने बड़ी सजीवता से किया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि महाकवि सूरदास विविध विद्याओं एवं कलाओं के ज्ञाता थे और उन्होंने अपनी विलक्षण बहुज्ञता एवं प्रकांड पांडित्य के फलस्वरूप ` सूर सागर ` के रूप में हिन्दी- साहित्य को एक ऐसा सागर प्रदान किया जिसमें

28)

10180

अवगाहन करने वाला आनन्द- विभोर हो उठता है ।

विशेष- प्रभाव- वस्तुत: प्रत्येक कवि अपने समकालीन एवं पूर्ववर्ती कवियों से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में प्रभावित अवश्य होता है,लेकिन महाकवि सूरदास एक ऐसे प्रतिभा - शाली कवि थे जिनके काव्य से उनके समकालीन एवं परवर्ती कवि तो पर्याप्त मात्रा में प्रभावित हुये, किन्तु उन पर उनके युग एवं पूर्ववर्ती कवियों का अधिक प्रभाव नहीं पड़ सका । कदाचित् इसका कारण यह रहा हो कि चक्षुविहीन होने पर सूरदास जी का समस्त साहित्यिक ज्ञान तो श्रुति परम्परा से ही सम्बद्ध रहा और उन्हें अपने पूर्ववर्ती कवियों के साहित्य के श्रवण का अवसर प्राप्त नहीं हो सका । श्रीमद्भागवत (जिसपर सूर का सारा काव्य आधारित है) का ज्ञान भी सूरदास जी को महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने ही करवाया था । फिर भी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि संस्कृत विविध ग्रन्थों, पुराणों एवं काव्यों का अप्रत्यक्ष रूप में सूर- साहित्य पर कुछ प्रभाव तो अवश्य पड़ा है लेकिन सूरदास जी ने उनका कोरा अनुकरण नहीं किया । जहां भी उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों से कोई भाव- ग्रहण किया है तो उसे ज्यों का त्यों ही अपने काव्य में नहीं रख दिया, अपितु अपनी विलक्षण प्रतिभा से उसे सजा संवार कर नूतन एवं मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिये श्रीमद्भागवत को ही देख लें । सूरदास जी ने वस्तुत: श्रीमद्भागवत के आधार पर ही काव्य रचना की, और सूरसागर को अब भी कई लोग श्रीमद्भागवत का अनुवाद ही मानते हैं, लेकिन सूरसागर और श्रीमद्भागवत की तुलना करने से ज्ञात होता है कि भागवत पर आधारित होते हुये भी सूरसागर उसका अनुवाद मात्र ही नहीं है, अपितु एक मौलिक रचना है । सूरदास जी ने सूरसागर में, भागवत में वर्णित कृष्ण- लीलाओं को सरस, मधुर, प्रांजल , परिमार्जित एवं नूतन रूप देकर, सर्वथा मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है ।

श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त सूरदास जी संस्कृत- काव्य की परम्परा से भी परिचित थे । सूरसागर में, राधा- कृष्ण के नख-शिख वर्णन एवं संयोग और वियोग वर्णन में संस्कृत कवियों की काव्य शैली ही परिलक्षित होती है। संस्कृत के प्रसिद्ध गीतिकार जयदेव का भी कहीं- कहीं सूर के काव्य पर प्रभाव दिखाई देता है।

सूरदास जी ने सूर- सागर में कहीं- कहीं जयदेव का- सा ही पदलालित्य एवं नाद सौन्दर्य प्रस्तुत किया है जैसे:-[1]

जयदेव:- ` ललित लवंगलता परिशीलन कोमलमलय समीरे ।
मधुर- निकट -करम्बित कोकिल कूजित कुंज कुटीरे ।। `

सूरदास:- ` नवल निकुंज नवला मिलि, नवल निकेतन रचिर बनाए ।
बिलसत बिपिन बिलास बिबिध बर, बारिद- बदन बिकच सबु पाए ।। `

सूरदास जी पर सबसे अधिक प्रभाव विद्यापति की पदावली का ही दिखाई देता है और विद्यापति सर्वाधिक जयदेव से ही प्रभावित थे । आचार्य शुक्ल तो यहां तक कहते हैं कि -- ` जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूष धारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्र के करील कुंजों के बीच फैल मुरझाए मनों को सींचने लगी । आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएं श्रीकृष्ण की प्रेम- लीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सब से ऊँची सुरीली और मधुर झनकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी ।[2] ` वस्तुत: सूर को ` गीतिकाव्य ` की जो परम्परा जयदेव और विद्यापति से मिली, वह शृंगार की ही थी और शृंगार के क्षेत्र में तो सूरदास अपना कोई सानी नहीं रखते । सूरदास के दृष्टकूट पदों पर भी कहीं- कहीं विद्यापति का प्रभाव लक्षित होता है । जैसे :- ` सारंग ` शब्द को ही देखिये -

विद्यापति :- ` सारंग नयन बयन पुनि सारंग सारंग तसु समधाने ।
सारंग ऊपर उगल दस सारंग केलि करथि मधुपाने ।। `

1- सूर की काव्य साधना - डॉ० गोविन्दराम शर्मा - पृष्ठ - 388-89 ।

2- सूरदास - आचार्य शुक्ल - पृष्ठ- 149 ।

सूरदास - ` संग सोभित वृषभानु किशोरी ।
सारंग नैन, बैन बर सारंग, सारंग बदन, कहै छबि को री ।
सारंग अधर, सुधर कर सारंग, सारंग जाति , सारंग मति मोरी ।।`

विद्यापति और सूरदास के अनेक पदों में कहीं शिल्प- साम्य, कहीं शब्द - साम्य और कहीं भाव- साम्य स्पष्ट दिखाई देता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विद्या- पति का काव्य सूर के लिये अनेक रूपों में प्रेरणा स्त्रोत बना रहा है। सूरदास जी श्रीमद्भागवत से भी यथेष्ट रूप में प्रभावित हुये लेकिन उनकी मौलिकता कहीं भी खण्डित नहीं हुई है । डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा लिखते हैं :- ` भागवत की घटनाओं के निर्वाचन भागवत की विभिन्न कृष्ण लीलाओं को नवीन प्रबन्धात्मकता देन, सर्वथा मौलिक प्रसंगों की कल्पना करने, कृष्ण - लीला की विविध अवस्थाओं और परिस्थितियों का काव्यपूर्ण चित्रण करने और सम्पूर्ण कृष्ण लीला को एक नवीन एवं मौलिक प्रबन्ध के रूप में गूंथ कर उसके द्वारा प्रेम- भक्ति की अनुभूति का क्रमविकास उपस्थित करने के कारण सूरदास की यह कृति उनकी पूर्णतया मौलिक रचना समझी जायेगी, भले ही उसका प्रबन्ध और भाव दोनों के सूत्र भागवत से प्राप्त हुये हों ।[1] `

सूर- साहित्य का अपने समकालीन एवं परवर्ती साहित्य पर अत्याधिक प्रभाव पड़ा । डॉ० भगीरथ मिश्र लिखते हैं :- ` सूर- साहित्य का प्रभाव किन- किन रूपों में साहित्य की अन्य धाराओं पर पड़ा है, यह तभी भली- भाँति जाना जा सकता है, जब हम सूर-साहित्य की अपनी विशेषताओं का विश्लेषण करें । ऐसा करने पर हम यह स्पष्टतया देखेंगे कि सूर- साहित्य के भीतर जो भी अपनी निजी विशेषताओं की मान्यता प्राप्त कर सकती हैं, वे सभी बातें हैं जिनका प्रभाव

१- सूरदास - डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा - पृष्ठ - 81 ।

अन्य समवर्ती एवं परवर्ती कवियों एवं काव्य- धाराओं पर पड़ा है। सूर- साहित्य की इन विशेषताओं को हम निम्नलिखित रूपों में देख सकते हैं :- (क) गेय मुक्तकत्व, (ख) नखशिख- सौंदर्य चित्रण, (ग) उन्मुक्त संयोग- शृंगार- वर्णन, (घ) मार्मिक विरह, (ङ) राधा- कृष्ण का नायिका- नायकत्व, (च) आलंकारिक शैली । - सूर - साहित्य की इन विशेषताओं का प्रभाव समवर्ती कृष्ण और राम- काव्य पर तो पड़ा ही, परवर्ती भक्ति और शृंगार- काव्य पर विशेष रूप से पड़ा है। समवर्ती प्रभाव के प्रसंग में यह सर्वविदित तथ्य है कि सूर- साहित्य का प्रभाव किस प्रकार अष्टछाप के तथा वल्लभ- सम्प्रदाय के अन्य कवियों तथा राधा- वल्लभ सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय के कृष्ण- काव्य पर पड़ा है । इतना ही नहीं, गोस्वामी तुलसीदास की ` रामगीतावली ` और ` कृष्णगीतावली ` भी मूलत: सूर- साहित्य से प्रेरित हैं। ` गीतावली ` के अनेक पद केवल नाम- भेद से ` सूर- सागर ` के ही पद हैं। - - - इतना ही नहीं, आधुनिक काल तक सूर की पद- परम्परा चली आयी है ।[1] `

रीतिकालीन गेय- पद- साहित्य वस्तुत: सूर- साहित्य से ही प्रभावित है। रीतिकालीन - साहित्य सूरदास की इस गेय- मुक्तक शैली में रचे नखशिख- सौन्दर्य वर्णन से अत्यधिक प्रभावित एवं प्रेरित हुआ है। इन रीतिकालीन- कवियों के उन्मुक्त संभोग- शृंगार वर्णन को संस्कृत के काव्यशास्त्र एवं काम शास्त्र के साथ- साथ विद्यापति एवं सूर- साहित्य से भी काफी प्रेरणा मिली है। कहीं - कहीं पर तो सूर के संयोग- शृंगार के पद रीतिकालीन शृंगारी कवियों के तत्सम्बन्धी पदों की अपेक्षा अधिक अश्लील प्रतीत होते हैं। जैसे सूरदास का यह पद:-

---

1- सूरदास- सं डॉ० हरवंश लाल शर्मा (सूर- साहित्य का रीतिकालीन - काव्य पर प्रभाव - डॉ० भगीरथ मिश्र,) पृष्ठ- 236 ।

32)

- ` तहँइ जाउ जहं रैनि बसे हौ ।
काहे कौं दाहन हौ आये, अंग- अंग चिन्ह लसे हौ ।
अरुनज अंग मरगजी माला, बसन सुगन्ध मरे हौ ।
काजर अधर कपोलन बन्दन, लोचन अरुन धरे हौ ।
पलकनि पीक, मुकुर लै देखौ , ये कौने ही करे हौ ।
सूरदास प्रभु पीठि वलय गड़े, नागरि अंग भरे हौ ।[1] `

सूरदास से प्रेरित होकर बिहारी भी कह उठते हैं:-

` पलक पीक अंजन अधर, दिये महावर भाल ।
आजु मिले सो भली करी, भले बने हौ लाल । `

जीवन के मार्मिक चित्रणों एवं संयोग की मधुरता के साथ-साथ सूरदास की कल्पनाशील अलंकृत वर्णन शैली का यथेष्ट प्रभाव भी रीतिकालीन काव्य पर पड़ा देखा जा सकता है । इस प्रकार रीतिकालीन कवियों ने सूर- साहित्य से यथेष्ट मात्रा में प्रेरणा प्राप्त की लेकिन सूरदास ने जहां राधा- कृष्ण के रूप में उस अलौकिक परम्परा को हमारे जीवन के बीच उतार कर अलौकिक प्रेम का प्रांजल रूप प्रस्तुत किया था, वहां रीतिकालीन कवियों ने राधा- कृष्ण पर आरोपित जीवन की विशेषताओं को लौकिक नायक- नायिकाओं पर आरोपित कर लिया । फिर भी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूर- साहित्य का प्रभाव परवर्ती काव्य पर प्रचुर मात्रा में देखा जा सकता है ।

जीवन दृष्टि अथवा धार्मिक मान्यताएं- कविता कवि के व्यक्तित्व की ही अभिव्यक्ति है। कवि की मान्यताएं एवं उसकी अनुभूति जिस जीवन- दृष्टि का निर्माण करती है वह उसके काव्य में प्रकट होती है। किसी भी व्यक्ति के दर्शन से उसके जीवन सम्बन्धी

1- सूरसागर (ना० प्र० स०) - पद संख्या - 3120, पृष्ठ- 1088 ।

33)

विचारों का भाव ही प्रकट होता है। महाकवि सूर मूलत: सन्त और भक्त थे । उन का लक्ष्य दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन कभी भी नहीं रहा । परन्तु वे एक विशेष सम्प्रदाय में दीक्षित थे और उसकी सेवा- पद्धति को उन्होंने अपनाया । वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार ही उनके ईष्ट श्री कृष्ण परब्रह्म हैं। ` सूरसागर ` में, श्रीकृष्ण के पूर्ण पुरुषोत्तम रस- रूप श्रीकृष्ण, का गान ही व्यक्ति के जीवन को सफल कर सकता है - का उल्लेख हुआ है।

पुष्टिमार्गीय अनुग्रह भी सूर के काव्य में उनकी मान्यताओं के रूप में हमें दिखाई देता है। प्रभु का अनुग्रह जीव के लिये आवश्यक है ।

महाकवि सूर ने निर्गुण को अगम जानकर सगुण को मान्यता प्रदान की है:

रूप- रेख- गुन - जाति जुगति बिनु निरालम्ब कित धावै ।
सब विधि अगम विचारहिं तातै सूर सगुन पद गावै ।। 2 ।।

(सूरसागर)

सूर की जीवन दृष्टि और धार्मिक मान्यताएं भागवत पर भी आधारित हैं। उनकी दृष्टि में यह सम्पूर्ण जगत् भगवान की रास है। इसमें उन्होंने लीला-पुरुषोत्तम भगवान कृष्ण तथा उनकी आह्लादिनी शक्ति राधा के नित्य रास का दर्शन किया है । अनुग्रह प्राप्त कुछ जीवात्माएं ही गोपिकाएं हैं जो इन सांसारिक सम्बन्धों से ऊपर उठकर इस नित्य रास में भाग लेती हैं। प्रभु की प्राप्ति के लिये सूर ने रागानुगाभक्ति को महत्व दिया है और इस प्रकार पुष्टिमार्ग में पूर्ण निष्ठा प्रकट की है।

सूर की धार्मिक मान्यताओं में ज्ञान, भक्ति और कर्म का पूर्ण सामंजस्य दिखलाई पड़ता है । इन तीनों का समन्वय कृष्ण के अनुग्रह से ही होता है । सूर ने परब्रह्म ईश्वर, जीव, जगत् सम्बन्धी सभी तत्वों का साक्षात्कार हृदय से किया था । उन्होंने तार्किक प्रतिपादन में मन कम ही रमाया है । सूर की यह स्पष्ट मान्यता थी कि प्रभु अनुग्रह से प्राप्त एकनिष्ठ प्रेम, ज्ञान और योग की सिद्धियों से कहीं ऊपर है ।

34)

गोपियों का कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम सूर के जीवन दृष्टिकोण को स्पष्ट करने में समर्थ है। वियोग हो या संयोग प्रेम की तन्मयता ही सूर की मान्यता है ।

वल्लभ मत में श्रीमद्भागवत की नवधा भक्ति के अतिरिक्त दसवीं प्रेम - लक्षणा भक्ति कही गई है । सूर के प्रेममय भगवान प्रेम के पाश में आबद्ध हैं और कहीं प्रेम उनकी मान्यताओं में सर्वत्र उपलब्ध होता है ।

सूर की दृष्टि में भक्त गृहस्थ भी हो सकते हैं और विरक्त भी । इन दोनों ही कोटि के भक्तों के लिये कामनाओं एवं विषय- वासनाओं के परित्याग तथा भगवच्चरणों में प्रगाढ़ एवं अनन्य प्रेम की आवश्यकता पर महाकवि सूर ने बल दिया है ।

सूर का दृष्टिकोण , उनके स्वयं के सम्प्रदाय में होते हुये भी, सम्प्रदाय की परिधि से बाहर रहा । उनकी भक्ति और उनकी मान्यताएं सार्वदेशिक बनी और साहित्य में भक्ति और काव्य का समन्वय उनकी अमृतमयी मान्यताओं से अमर बन गया।

(ख) कृतित्व[1] - महाकवि सूर की सब रचनाएं गेय- पदों में हैं । दोहे और चौपाई छन्द भी यत्र- तत्र मिलते हैं परन्तु उनके कृतित्व में प्रधानता पदों की ही है । काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज एवं इतिहास ग्रन्थों के अनुसार सूरदास के ग्रन्थों की संख्या 25 मानी जाती है :- (1) सूरसारावली,(2) भागवत् भाषा,(3) सूर - रामायण , (4) गोवर्धन -लीला(सरस- लीला),(5) भंवरगीत,(6) प्राणप्यारी (7) सूरसाठी,(8) सूरदास के विनय आदि के स्फुट पद,(9) एकादशी माहात्म्य, (10) साहित्य- लहरी,(11) दशम- स्कंध भाषा,(12) मानलीला(13) नामलीला

1- प्रस्तुत विवेचन निम्न ग्रंथों पर आधारित है :

(i) सूर साहित्य- सन्दर्भ - डॉ० रामस्वरूप आर्य,
(ii) सूर- निर्णय- पारीख, मीतल,
(iii) सूरदास का काव्य- वैभव, तथा सूर- सौरभ- डॉ० मुंशीराम शर्मा,
(iv) सूरदास- डॉ० हरवंश लाल शर्मा ।

35)

(14) दृष्टकूट के पद,(15) सूर पचीसी, (16) नल- दमयन्ती(17) सूरसागर, (18) सूरसागर- सार,(19) राधा- रसकेलि कौतूहल, (20)दानलीला,(21) व्याहलो (22) सूरशतक, (23) सेवाफल,(24) हरिवंश टीका (संस्कृत),(25) रामजन्म ।

डॉ० मुंशीराम शर्मा सूरदास कृत 15 ग्रन्थ मानते हैं :-

(1) सारावली, (2) साहित्य- लहरी,(3) सूरसागर,(4) गोवर्धन लीला, (5) दशमस्कंध- टीका,(6) नागलीला, (7) पदसंग्रह ,(8) प्राणप्यारी,(9) व्याहलो, (10) भागवत, (11) सूर- पचीसी,(12) सूरसागर सार, (13) एकादशी महात्म्य, (14) रामजन्म, (15) सेवाफल ।

डॉ० दीनदयाल गुप्त के अनुसार- (1) सूरसागर, (2) सूर- सारावली और (3) साहित्य- लहरी- ही सूरदास की रचनाएं हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ० हरवंश लाल शर्मा, डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय प्रभृति विद्वानों ने भी उपरोक्त तीन रचनाओं को ही प्रामाणिक माना है । इस विषय में डॉ० गोवर्धनलाल शुक्ल का कथन द्रष्टव्य है:- " प्रामाणिकता की कोटि में आने वाले सूर के तीन ही ग्रन्थ हैं, जिन में दो तो उनकी स्वतन्त्र रचनाएं कही जायेंगी और तीसरी(साहित्य - लहरी) सागर की ही लहरियां सागर से ही उपजीव्य अथवा एक पृथक् संग्रह कही जायेगी ।[1] "

डॉ० द्वारिकाप्रसाद पारीख और प्रभुदयाल मित्तल ने सूर कृत सात रचनाओं को प्रामाणिक माना है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने सूर कृत सोलह ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है, परन्तु ' सूरसागर ' को ही पूर्ण प्रामाणिक माना है ।[2] इस प्रकार महा-कवि सूर की लोक विश्रुत रचना ' सूरसागर ' ही है । इसी में उनकी सम्पूर्ण विचार-

---

1 - सूरदास- सम्पादक डॉ० हरिवंशलाल शर्मा - पृष्ठ - 75 ।

2- द्रष्टव्य- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृष्ठ -620 ।

पद्धति और समग्र भाव- धारा समाविष्ट है । उस सागर की कुछेक उर्मियां साहित्य-लहरी में है और कुछ ` सूरसारावली ` में ।

1- सूरसागर - सूरसागर सूरदास की एकमात्र ऐसी कृति है जिसकी प्रामाणिकता पर सभी विद्वान एक मत हैं । इसका प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से बाबू राधाकृष्ण दास के निर्देशन में हुआ । नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से भी इसकी प्रति प्रकाशित हुई । ये दोनों प्रतियां पूर्णत: शुद्ध न थी । काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर के सम्पादन में ` सूरसागर ` का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ,परन्तु वे अपने जीवनकाल में इसे पूर्ण न कर सके । इसे पूरा करने का श्रेय मिला आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी को । सभा ने दो खण्डों में ` सूरसागर ` को प्रकाशित किया है। इसमें 4936 पद संगृहीत हैं और परिशिष्ट के रूप में 270 और पद दिये गये हैं ।

भागवत पर आधारित ` सूरसागर ` के पदों को भी द्वादश स्कन्धों में विभाजित किया गया है।[1] प्रथम स्कन्ध में आत्मनिवेदन सम्बन्धी पद हैं । इन पदों में सूर के हृदय का दैन्य पश्चाताप, ज्ञान और वैराग्य, अज्ञान और अन्धकार, संसार की असारता आदि विषयों को जिस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, वह सूर को उच्च कोटि का सन्त सिद्ध करती है।

द्वितीय स्कन्ध के प्रारम्भ में भक्ति और सत्संग की महिमा गाई गई है। और शेष पदों में भागवतानुसार सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है । तृतीय स्कन्ध में उद्धव- विदुर- संवाद, विदुर को मैत्रेयी से ज्ञान, सप्तऋषि, कर्दम - देवाहुति का विवाह तथा भक्ति की महिमा का वर्णन है । चतुर्थ स्कन्ध में भागवतपुराण के चतुर्थ स्कन्ध के विषयों को संक्षिप्त किन्तु मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया गया है । इसी प्रकार पंचम, षष्ठ तथा आठवें स्कन्ध में भी भागवत पुराण की कथाओं को ही

1- व्यास कहे सुकदेव सौं द्वादश स्कंध बनाइ ।
सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाइ ।। 225 ।।
- सूरसागर, पृष्ठ- 73 ।

37)

क्रमशः, संक्षिप्त रूप में वर्णित किया गया है ।

नवम् स्कन्ध में भागवत के अनुसार राजा पुरूरवा और उवशी का आख्यान, हलधर विवाह, गंगावतरण, परशुराम और रामावतार आदि का वर्णन है। भागवत पुराण में रामावतार का संक्षिप्त रूप लिया गया है जबकि ` सूरसागर ` में उसका विस्तृत वर्णन मिलता है। इस वर्णन में राम के बाल- रूप का वर्णन सूर ने बहुत मनोयोग से किया है। सीता का विरह- वर्णन भी बहुत मार्मिक बन पड़ा है।

दशम स्कन्ध ` सूरसागर ` का सर्वस्व तथा महाकवि सूरदास का कीर्ति स्तम्भ है। सूर की काव्य- प्रतिभा , भावुकता, व्यंग्य- विदग्धता एवं कमनीय कला, सभी ने इस स्कन्ध में चरम का स्पर्श किया है। सूरसागर में इसके दो भाग हैं - पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध । पूर्वार्द्ध में कृष्ण जन्म से ले कर उद्धव के मथुरा लौट जाने तक का वर्णन किया गया है । भ्रमरगीत - प्रसंग भी इसी के अन्तर्गत आता है जिसमें सूर ने गोपियों के विरह का हृदय द्रावक चित्र खींचा है। इसी प्रसंग में उद्धव- गोपी- संवाद के रूप में निर्गुण पर सगुण की, योग पर प्रेम की और ज्ञान पर भक्ति की विजय का निरूपण कवि ने किया है। उत्तरार्द्ध में जरासन्ध युद्ध तथा कृष्ण के विवाहों का वर्णन किया गया है ।

एकादश और द्वादश स्कन्ध भी भागवताधारित हैं और बहुत संक्षिप्त हैं ।

सम्पूर्ण ` सूरसागर ` एक गीतिकाव्य है। इसके पद पूर्ण तन्मयता के साथ गाये जाते हैं । कई प्रसंगों की पुनरावृत्ति से ऐसा लगता है कि यह अलग-अलग समय पर गाये या लिखे गये हैं जिन्हें बाद में एकत्रित किया गया है।

2- सूर- सारावली - सूर सारावली भी एक विवादास्पद रचना रही है । इस में कुल 1107 छन्द हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार यह ` सूरसागर ` का सार अथवा सूची पत्र है। डॉ० मुंशीराम शर्मा इसका सम्बन्ध होली से बताते हैं जबकि डॉ० हरवंश लाल शर्मा के अनुसार - ` यह तो एक स्वतन्त्र रचना है और इस प्रकार की रचनाओं

की भक्त कवियों में परिपाटी भी रही है।[1] सारावली में महाकवि सूर ने सृष्टि की उत्पत्ति, तीन गुण, पंच महाभूत, पंच तन्मात्र, चार अन्त:करण, दस प्राण, आठ लोक पाल, सात लोक, नव खण्ड , सात द्वीप आदि का वर्णन किया है। कुछ दृष्टकूट पद भी हैं और वसन्त तथा होली के उत्सवों का वर्णन विशेष रूप से किया गया है। अन्त में भगवान -लीला की शाश्वतता का उल्लेख करते हुये आचार्य वल्लभ द्वारा ज्ञान प्राप्ति का वर्णन कवि ने किया है।

3- साहित्य- लहरी- साहित्य- लहरी में महाकवि सूर के कृष्ण- लीला से सम्बन्धित 118 दृष्टकूट पद है। इसमें किसी एक विषय की विवेचना नहीं हुई है। मुख्य रूप से नायिकाओं एवं अलंकारों की विवेचना की गई है। बीच - बीच में कहीं - कहीं कृष्ण की बाल- लीलाओं का वर्णन है। एकाध स्थल पर महाभारत की कथा के अंशों की झलक भी दिखती है।

इस कृति में सूरदास के वंश का परिचय है और कृति का रचनाकाल भी दिया गया है।

-0-

1- सूर की साहित्य साधना - पृष्ठ 41।

पंचम - परिच्छेद

गुरू गोबिंदसिंह : एक परिचय

(अ) व्यक्तित्व

(क) जीवन वृत्त

(ख) प्राचीन बाह्याधार (मुख्य)

(ग) अर्वाचीन बाह्याधार (गौण)

(आ) कृतित्व -

गुरू गोबिन्दसिंह : एक परिचय

भारतीय संत परम्परा में सिक्ख मत एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। यह सम्प्रदाय समय- सागर की उत्ताल- तरंगों पर अठखेलियां करता हुआ आज भी एक सुदृढ़ता की डोर से बंधा हुआ है। सिक्ख- सम्प्रदाय की गुरू परम्परा की दशम ज्योति गुरू गोबिंदसिंह जी सम्प्रदाय के गुरू मात्र ही न थे प्रत्युत इनका स्थान राष्ट्र एवं मानवता के उन्नायकों में भी अग्रगण्य है ।

विदेशियों द्वारा आक्रान्त भारत के इतिहास में राष्ट्रीय नेता के रूप में जिन महापुरूषों का नाम आता है उन में गुरू गोबिंदसिंह सर्वोपरि हैं। आक्रान्ताओं से देश को मुक्त कराने का जो युद्ध पृथ्वीराज चौहान ने प्रारम्भ किया था और जिस की सफलता गांधी जी के हाथों हुई, उसको निरन्तर गतिशील एवं शक्तिशाली बनाने में, सोई मानवता को दानवता के पाशविक अत्याचारों से मुक्ति के लिये जाग्रत करने में, नीलाकाश में उज्ज्वल नक्षत्रों के समान कुछ महानुभावों का विशेष योगदान है गुरू गोबिंदसिंह इस वर्ग के शिरोमणि नेता हैं। उन्होंने भारतीय जनता को नवीन जीवन प्रदान किया और राष्ट्र- धर्म के लिये परम्परा, संस्कार एवं शक्ति को आवश्यक ठहराया । सन्तों को वेद पुराणों से जोड़कर, लुप्त संस्कारों को शक्ति द्वारा पुन जाग्रत कर एवं शस्त्रजीवी राष्ट्रजीवी राष्ट्र- रक्षकों का समाज- निर्माण करने के कारण गुरू गोबिंदसिंह के कलीधारी रूप का सभी ने स्वागत किया । गुरू ने अपने समय में तो कार्य किया ही था, अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व से समय की धारा को नवीन मोड़ देने में भी समर्थ हुये । उनकी चिन्तन- धारा आज भी मानवता के उत्थान में सहायक है ।

मध्ययुग के साहित्य का वर्णन करते हुये कबीर, सूर, तुलसी, गुरूनानक तथा गुरू गोबिंदसिंह की वाणी विशेष रूप से प्रभावित करती है। उस युग के धार्मिक

इतिहास में शंकर, रामानुजाचार्य, कबीर और गुरू गोबिंदसिंह का स्थान अविस्मरणीय है । राजनैतिक दृष्टि से बाबर, हुमायूं, अकबर, औरंगज़ेब और गुरू गोबिंदसिंह का नाम अमिट अक्षरों में लिखा जाता है। उस युग में सामाजिक क्रान्ति लाने वालों में कबीर, तुलसी अकबर और गुरू गोबिंदसिंह है। सारे युग को सांस्कृतिक दृष्टि से परिचालित करने वाले कबीर, तुलसी और गुरू गोबिंदसिंह हैं। कुल मिलाकर गुरू गोबिंदसिंह का ही सर्वतोमुखी व्यक्तित्व ऐसा है जो राजनैतिक , धार्मिक, सामाजिक,साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से सबसे प्रखर है ।[1]

सिक्ख - सम्प्रदाय(संक्षिप्त परिचय)-

सिक्ख- सम्प्रदाय की नींव श्री गुरू नानकदेव जी ने रखी, जिनका समय सन् 1469 से 1539 था । अंधविश्वासों और सामाजिक रूढ़ियों की क्रोड़ में निमग्न तत्कालीन जनता को जागृति एवं कर्म-परायणता का संदेश देने के लिये गुरू जी ने एक सुव्यवस्थित और परिमार्जित परम्परा की आधारशिला रखी जिसमें मनुष्य को मानवता का पाठ पढ़ाया जाता था । गुरू जी की इस परम्परा को उनके पश्चात् श्री गुरू अंगददेव जी(सन् 1539- 52 ई0) , अमरदास जी(सन् 1552-74 ई0) तथा रामदास जी (सन् 1574 -81 ई0) ने उन्हीं के सिद्धान्तानुसार आगे चलाया, जिनके उपदेश का मूल मन्त्र ` आचरण की शुद्धता ` था । पंचम गुरू श्री गुरू अर्जुनदेव जी (सन् 1581 -1606 ई0) के बलिदान के पश्चात् जब श्री हरगोबिंद जी(सन् 1606 -45ई0 गद्दी पर बैठे तो आपने धर्म के साथ-साथ अत्याचार के विरुद्ध तलवार का सहारा भी लिया । इनके उपरान्त श्री गुरू हरराय जी(सन् 1645-61 ई0) तथा श्री गुरू हरकृष्ण जी (सन् 1661-64 ई0) का समय शांतिमय रहा और उनका कार्य मात्र धार्मिक उपदेश ही रहा । नवम गुरू श्री तेगबहादुर जी (सन् 1664-75 ई0) के समय में मुगल-सम्राट औरंगज़ेब दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ था । उसके अत्याचारों की गाथा नित

1- गुरू गोबिंदसिंह के साहित्य में भारतीय संस्कृति के तत्व - डॉ0 धर्मपाल मैनी- पृष्ठ 1 ।

3)

नूतन आकृति से सुसज्जित होती थी, हिन्दू जनता पिस रही थी । श्री गुरू तेगबहादुर जी ने अपने धर्म के अस्तित्व को बनाये रखने के लिये अपनी आहुति दे दी । तत्पश्चात् श्री गोबिंदराय (गोबिन्दसिंह)(सन् 1675-1708 ई0) गद्दी पर बैठे जिन्होंने आध्यात्मिक एवं बाह्य जीवन में सामंजस्य स्थापित किया ।

(क) व्यक्तित्व -

सिक्खों के दशम एवं अन्तिम गुरू गोबिन्दसिंह 17 वीं शती की महान् विभूति हैं जिन्होंने राष्ट्र- धर्म और भारतीय- संस्कृति की रक्षा के लिये भक्ति और शक्ति के समन्वय द्वारा अन्याय, अनाचार, अनीति और अनास्था का विरोध किया । ` ऐसा नर- नाहर श्रीमद्भागवद् गीता में श्री कृष्ण द्वारा दिये गये वचन ` अभ्युत्थानधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ` की निश्चित पूर्ति था, यह कहने में कोई अत्युक्ति न होगी ।[1] `

जहां कृष्ण ने अपने जन्म का उद्देश्य बताते हुये गीता में अर्जुन से कहा था कि:-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।। 7 ।। अध्याय 4 ।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।। 8 ।। अध्याय 4 ।

वहीं गुरू गोबिंदसिंह भी अपने ` विचित्र - नाटक ` में अपने जन्म का उद्देश्य बताते हुये कहते हैं कि :-

` हम इह काज जगत मो आए ।
धरम हेतु गुरूदेव पठाए ।
जहां तहां तुम धर्म विचारो ।
दुसट दोखियन पकरि पछारो ।। 42 ।।

---

1 - गुरू गोबिंदसिंह : जीवन और व्यक्तित्व - डॉ0 मनमोहनसहगल- परिशोध(अंक -5) - पृष्ठ 136 ।

यही काज धरा हम जनमम् ।
समझ लेऊ साधु सब मनमम् ।
धरम चलावन सन्त उबारन ।
दुसट सबन को मूल उपारन ।। 43 ।।

इसमें संशय नहीं कि गुरू जी की इस वाणी में गीता की स्पष्ट छाया दीख पड़ती है। लेकिन गुरू ने अपने को अवतार नहीं माना, वे तो उस परम पुरूष के दास ही बने रहे जिसने सोलह- कला - सम्पूर्ण श्री कृष्ण का अवतार लेकर युद्ध-भूमि में अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था । फिर भी इतना तो हम कह सकते हैं कि गुरू गोबिन्दसिंह का जीवन श्रीकृष्ण के चरित के गुरूत्व एवं गौरव से प्रभावित अवश्य था । या फिर हम यह भी कह सकते हैं कि महाभारत का गोबिन्द(कृष्ण) ही इस युग में फिर आया लेकिन प्रभु का अवतार बनकर नहीं, दास बन कर ।

गुरू गोबिन्दसिंह एक राष्ट्र - निर्माता थे। वे जानते थे कि राष्ट्रनिर्माण के लिये शस्त्र और शास्त्र में समन्वय करना आवश्यक है । उन्होंने अपने व्यक्तित्व द्वारा परशुराम की उस परिकल्पना को फिर से साकार कर दिया :-

` मुख में वेद, पीठ पर तरकस, कर में कठिन कुठार `।

(।) जन्म:- गुरू गोबिंदसिंह का जन्म बिहार के पटना नगर में पूस सुदी सप्तमी, संवत् 1723 वि० को हुआ था । पटना के शिरोमणि गुरूद्वारे, तख्त श्री हरमन्दिर साहब के तहखाने में अंकित स्मारक प्रस्तर पर भी यही तिथि अंकित है तथा साथ ही वहां पर प्राप्त अन्य हस्तलिखित ग्रन्थों में भी इसी तिथि का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त विभिन्न इतिहासकारों ने भी इसी तिथि को स्वीकार किया है[1] । इन

1- गुरू जी का जन्म पटना में होने का संकेत उनके ` विचित्र -नाटक में इस प्रकार मिलता है -

(।)` मुर पित पूरब कियसि पयाना । भान्ति भान्ति के तीरथ नाना ।
जब ही जात त्रिवेणी भये । पुण्य दान दिन करत बितए ।
तही प्रकाश हमारा भयो । पटना शहर बिखे भव लयो ।-अध्याय 7,पृ045।

(।।) जन्म संवत के विषय में भाई सुखासिंह जी `गुरू-विलास `में लिखते हैं:-
संवत् सत्रह सहस भनीजे । बीस तीन संग बरख गनीजे ।
महि पोख पुन अधिक सुदीने । जगत प्रवेस कृपानिधि कीने । -पृ०-46 ।

(।।।) हिन्दी साहित्य कोश - भाग 2- सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा -पृ० 126

(।V) जीवन-कथा श्री गुरू गोबिन्दसिंह - प्रो०करतारसिंह - पृष्ठ- 28 ।

सभी प्रमाणों के आधार पर जन्मतिथि सम्बन्धी कोई सन्देह नहीं रह जाता ।

(11) बाल्यकाल:- गुरू तेगबहादुर और माता गुजरी के पुत्र गोविन्दराय(गोविन्दा सिंह) के जीवन के आरम्भिक 5,6 वर्ष पटना में ही व्यतीत हुए । सिक्खों के छठे गुरू श्री हरगोबिन्द के नाम से साम्य होने के कारण आपकी माता आपको ` श्याम ` के नाम से सम्बोधित करती थी ।

आरम्भिक जीवन शुद्ध हिन्दी- प्रदेश में व्यतीत करने के कारण हिन्दी इनकी मातृभाषा सरीखी हो गई थी । शायद इसीलिये काव्य- क्षेत्र में अपनी रचनाओं का अधिकतर अंश इन्होंने बिहारी प्रभाव लिये ब्रजभाषा में लिखा ।

बचपन से ही गुरू में अलौकिकता दिखाई पड़ती थी । बाल- सखाओं की सेना बना कर एवं स्वयं सेनापति बनकर युद्ध करना, दुर्ग- तोड़ना इत्यादि इनके प्रिय खेल थे । बाल्य- काल से ही उन में स्वाभिमान, साहस और निर्भीकता कूट- कूट कर भरा था। एक बार पटना के नवाब की सवारी आती देख कर चोबदार ने खेलते गोविन्दराय एवं बच्चों को सलाम करने के लिये कहा, इसे गुरू का स्वाभिमान सहन न कर सका और विद्रोही स्वर में न केवल उन्होंने स्वत: झुक कर सलाम करने की मनाही कर दी, अपितु अन्य बच्चों को भी ऐसा करने से रोक दिया ।

कुछ समय पश्चात् गोविन्दराय अपनी माता के साथ अपने पिता तेगबहादुर के पास आनन्दपुर आ गये जहां इनकी युद्ध प्रवृत्ति को देख कर तेगबहादुर जी ने इन्हें शस्त्र और शास्त्र विद्या सिखाने का उचित प्रबन्ध कर दिया ।

उन दिनों पंजाब की स्थिति दोलायित थी । औरंगज़ेब की नीति का पालन करते हुये शेर अफगान काश्मीर के हिन्दुओं पर अत्याचार करता हुआ उन का धर्म परिवर्तित कर उन्हें मुसलमान बनने पर विवश कर रहा था । तब वे ब्राह्मण अपने धर्म की रक्षा के लिये गुरू तेगबहादुर के पास गये और अपनी करूण- गाथा कह सुनाई । तब गुरू अपने पिता को उदास एवं चिन्तित देखकर नववर्षीय बालक गोबिन्द- राय ने इसका कारण पूछा तो पिता के यह कहने पर कि धर्म की इस प्रचण्ड द्वेषाग्नि

6)

में किसी महान् आत्मा की आहुति एवं बलिदान की आवश्यकता है तो बालक गोविन्द-राय अनायास ही बोल उठे - ` आपसे बढ़कर महान् और कौन हो सकता है, आपका बलिदान ही सर्वोत्कृष्ट होगा । यह सुनकर गुरू तेगबहादुर निश्चित हो गये कि उनका यह उत्तराधिकारी अवश्य ही प्रतिभा- सम्पन्न, साहसी, शक्तिशाली अत्याचार का विरोधी और बलिदान एवं त्याग की साकार मूर्ति होगा । तब गुरू तेगबहादुर ने ब्राह्मणों द्वारा कहला भेजा कि जब गुरू तेगबहादुर मुसलमान हो जायेंगे तो वे भी इस्लाम स्वीकार कर लेंगे । गुरू ने जीवन का बलिदान दे दिया पर इस्लाम स्वीकार नहीं किया ।

पिता के इस महान् बलिदान ने जहां एक ओर हिन्दू- धर्म में उनकी आस्था, निष्ठा और श्रद्धा को बढ़ाया, वहां अत्याचार का विरोध करने के लिये अत्याचारियों से डट कर मुकाबला करने की शक्ति और प्रेरणा भी दी । तभी गोविन्दराय, गुरू - गोबिन्दसिंह बने और वास्तव में योद्धा रूप में साकार हुए । उन्होंने शक्ति-संघटन के लिये हिमालय की शरण ली और वहीं पहाड़ियों में अपना निवास बना 20 वर्ष तक ऐकान्तिक साधना की । इस एकान्तिक साधना के फलस्वरूप गुरू जी ने फारसी और संस्कृत के पौराणिक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों का व्यापक अध्ययन किया, वीर- रस के काव्य का प्रणयन किया, घुड़सवारी एवं तीरांदाज़ी में निपुणता प्राप्त की और देश जाति एवं धर्म के उत्थान को दृष्टि में रखते हुये अपना भावी कार्यक्रम बनाया । गुरू ने भावी युद्ध की तैयारी के लिये सभी प्रकार के अस्त्र- शस्त्र एकत्रित करने आरम्भ कर दिये । आसाम नरेश का देहान्त होने पर गुरू के दर्शन के लिये आया उसका पुत्र गुरू के लिये, पांच घोड़े, एक हाथी, एक विचित्र सा अस्त्र जिसे दबाने से पांच विभिन्न अस्त्र निकल आते थे, तथा एक चौकी जिसमें चार पुतलियां थी जो कल दबाने पर पासा फेंकती थी, भेंट - स्वरूप लाया । इस हाथी का नाम ` प्रसादी ` रखा गया । गुरू ने एक दीर्घकाय नगाड़ा बनवाया जिसे ` रणजीत ` नाम से अभिषिक्त किया गया । उस समय नगाड़ा मात्र राजाओं के पास ही होता था । इस प्रकार सिक्ख सम्प्रदाय

भक्ति और शक्ति की ओर अग्रसर हुआ । गुरू के प्रभुत्वशाली व्यक्तित्व से मात्र हिन्दू ही नहीं, मुसलमान भी श्रद्धान्वित हो गये । बुद्धशाह जैसा पठान जो औरंगज़ेब की सेना से निष्कासित हो गया था, वह गुरू का परिचय पाकर, अपने साथ पाँच सौ सशस्त्र पठान लेकर गुरू की सेवा में प्रस्तुत हो गया और गुरू की शरण ली ।

गुरू गोबिंदसिंह की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर पहाड़ी राजाओं को ईर्ष्या होने लगी । पहाड़ी राजा भीमचन्द जो गुरू का गहरा मित्र था, ` प्रसादी-हाथी ` को देखकर विमुग्ध हो गया और उस हाथी को माँगा लेकिन गुरू ने इन्कार कर दिया, इस पर वह भी गुरू के विरुद्ध हो गया ।

(111) पारिवारिक- जीवन - सन् 1677 ई० में गुरू का प्रथम विवाह आनन्दपुर के पास ` गुरू का लाहौर ` में लाहौर निवासी सुभिखिया क्षत्री की पुत्री जीतो देवी से हुआ और दूसरा विवाह रामसरन क्षत्री की पुत्री सुन्दरी से सन् 1681 ई० में हुआ[1] ।

गुरू गोबिंदसिंह के चार पुत्र थे - अजीतसिंह , जुझारसिंह, ज़ोरावरसिंह और फतह सिंह । चारों ही अपने पिता के समान वीर, निर्भीक और धर्म की रक्षा के लिये प्राणों की आहुति देने को तत्पर रहने वाले थे । अजीतसिंह और ज़ोरावरसिंह चमकौर के युद्ध में बलिवेदी पर अर्पित किये गये तथा जुझारसिंह और फतहसिंह को सरहिन्द के नवाब वज़ीरखां ने अपनी धर्मान्धतावश जीवित ही दीवार में चुनवा दिया था ।

गुरू गोबिंदसिंह के कार्यकाल की प्रसिद्ध घटनायें

1- पांवटा में - अपने जीवन के तीन वर्ष गुरू गोबिंदसिंह ने यमुना के समीप पांवटा

1- (1) दि सिक्ख रिलिजन (भाग- 5) - पृ० 2,3 ।

(11) श्री दशमेश चमत्कार - पृ० 80, 82 ।

नामक स्थान पर बिताये । उनके साहित्यिक जीवन में इन तीन वर्षों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। ` कृष्णावतार ` जैसी वृहद् रचना पांवटे में ही रची गई थी। ` कृष्णावतार ` में दो स्थानों पर इसका स्पष्ट उल्लेख है। ` गोपी- विरह ` खण्ड में ` गोपी - उद्धव ` अध्याय के अंत में उन्होंने लिखा है:-

` सत्रह से चवताल मै सावन सुदि बुधवार ॥
नगर पांवटा मों सु मैं रच्यो ग्रन्थ सुधार ॥ 983 ॥

सम्पूर्ण कृष्णावतार की समाप्ति पर भी वह लिखते हैं कि :-

` सत्रह से पैताल महि सावन सुदि स्थिति दीप ।
नगर पांवटा सुभ करण जमना बहै समीप ॥ 2490 ॥
दसम कथा भागौत की भाखा करी बनाइ ।
अवर वासना नाहि प्रभ धरमजुद्ध को चाइ ॥ 2491 ॥

2- भंगाणी का युद्ध - अप्रैल, सन् 1689 में (संवत् 1746 वि० में) गुरू जी को अपने जीवन का प्रथम युद्ध लड़ना पड़ा ।[1] गुरू गोबिंद सिंह ने अपने

1- (I) तेजा सिंह गंडासिंह ने ` A Short History of Sikhs ' में लिखा है कि यह युद्ध फरवरी 1686 ई० में हुआ(पृ०-64) डॉ० इन्दुभूषण बनर्जी Evolution of Khalsa भाग- 2,पृ०- 170 में मैकालिफ का समर्थन करते हुये इस युद्ध को 1687 में माना है।
(II) डॉ० महीपसिंह (गुरूगोबिंदसिंह और उनकी हिन्दी कविता,पृ०-24) के शब्दों में- ` लगता है कि इन इतिहासकारों ने इस सम्बन्ध में दशम-ग्रन्थ के अन्त: साक्ष्य पर अधिक ध्यान नहीं दिया । पांवटे में सन् 1688 ई०(संवत् 1745 वि०) में कृष्णावतार का रचना- कार्यपूर्ण किया जाना असंदिग्ध है। उधर भंगाणी का युद्ध समाप्त होते ही गुरू गोबिन्दसिंह पांवटा छोड़कर काहलूर आ गये।आनन्दपुर की स्थापना का उल्लेख वे ` विचित्र नाटक ` में स्वयं करते हैं:-
` युद्ध जीति आये जबै टिके न त्रिन पुरि पांव।काहलूर महि बांधयो,आनि आनंदपुर गांव ॥ 36 ।
इससे स्पष्ट है कि भंगाणी का युद्ध कृष्णावतार की रचना के पश्चात् हुआ ।
(III) भाई सुक्खासिंह ने अपने ` गुरूविलास (सन् 1797 में रचित) में इस युद्ध का 1689 में होना माना है ।
सत्रह सहस छियालीस मधि,
भयो पावटे प्रथम युद्ध । - पृ०- 160 ।
(IV) भाई काहनसिंह ने अपने महान कोष में (पृ०-277 पर) भी इस युद्ध की तिथि अप्रैल, सन् 1689 ई० दी है जो दशम ग्रन्थ के अन्त:साक्ष्य के आधार पर उचित है ।

9)

` विचित्र - नाटक[1] ` और कवि सेनापति ने भी अपने ` गुरू- शोभा[2] ` में इस युद्ध का कोई विशेष कारण नहीं दिया है लेकिन सिख- इतिहास के लेखकों (मैकालिफ लतीफ, आर्चर, गारडन, डॉ० बेवजी , डॉ० नारंग आदि) ने इस युद्ध के कई कारण दिये हैं ।

एक कारण तो यह था कि गुरू गोबिंदसिंह ने निम्न कही जाने वाली जातियों (चमार, जाट इत्यादि) को ऊपर उठाने का प्रयास किया और उन्हें अपने संगठन में, सवर्ण कहे जाने वाले वर्गों के बराबर स्थान देने का क्रान्तिकारी प्रयत्न किया जिसके फलस्वरूप जाति अभिमानी पहाड़ी राजपूत राजा उनके विरुद्ध हो गये। गुरू की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर ईर्ष्या से तो वह पहले ही भरे बैठे थे, अब गुरू के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बांध कर उन्हें नीचा दिखाने की योजना बनाने लगे ।

दूसरी बात जो सिख- इतिहास में सर्वत्र मिलती है कि राजा भीमचन्द, जो अब गुरू का पक्का शत्रु बन बैठा था, के पुत्र का विवाह गढ़वाल(श्रीनगर) के राजा फतहशाह की पुत्री के साथ निश्चित हुआ । इस अवसर पर आस-पास के सभी राजा

1- ` देस चाल हम ते पुनि भई । शहिर पांवटा की सुधि लई ॥
कालिन्द्री तट करे बिलासा । अनेक भांति के पेख तमासा ॥
तहिं के सिंह घने चुनि मारे । रोझ रीछ बहु भांति बिदारे ॥
फतह शाह कोपा तब राजा । लोह परा हमसों बिनु काजा ॥ `
छन्द 2-3,अध्याय- 8 ।

2- ` अनेक भांति लीला तह करी ॥
फतहशाह सुनि के मनि धरी ॥
बहुत कोप मन माहि बसायो ॥
फउज बनाइ जुद्ध कउ आयो ॥ ` 1 ॥ 50 ॥

10)

उपस्थित थे। विवाहोपरान्त सब ने मिलकर गुरु जी से युद्ध की योजना बनाई, उस समय गुरु जी पावंटा में थे । उन्हें किसी तरह इस षड्यन्त्र की सूचना मिल गयी इसलिये उन्होंने पांवटा से छः मील की दूरी पर, युद्ध के लिये उपयुक्त स्थान भंगाणी में प्रतिरोध की तैयारी की ।

इस युद्ध में जीत गुरु गोबिंदसिंह की हुई । ` विचित्र - नाटक ` में वह लिखते हैं :- रणं त्याग भागे । सबै त्रास पागे ॥ भई जीत मेरी । कृपा लाल केरी ॥

रणं जीति आये । जयं गीत गाये ॥ यनं धार बरखे । सबै सूर हरखे ॥ P. 51

3- नादौन का युद्ध - वस्तुतः नादौन के युद्ध का गुरु से सीधा सम्बन्ध नहीं था । डॉ० नारंग ने इस युद्ध का कारण बताते हुये कहा है कि - गुरु जी के पढ़ते हुये बल को देख कर पहाड़ी राजाओं (भंगाणी के युद्ध के बाद) ने गुरु जी से सन्धि कर ली और युद्धों में उनका साथ देने की प्रतिज्ञा की । गुरु के सहारे पर इन राजाओं ने मुगल - सम्राट की सेवा में अपना वार्षिक कर भेजने से इन्कार कर दिया । उन दिनों औरंग-ज़ेब दक्षिण में गोलकुण्डा की छोटी सी स्वर्णमयी रियासत को अपनाने की चेष्टा में लगा था । वहां से दिल्ली वापिस आने पर उस ने मियां खां, अलिफ खां और जुलफिकार खां को बहुत बड़ी सेना के साथ विद्रोही राजाओं से कर उगाहने के लिये भेजा जिसके परिणामस्वरूप नादौन के निकट एक घोर संग्राम हुआ जिसमें राजाओं ने खालसा की सहायता से सम्राट की सेनाओं को पूर्णतया पराजित किया ।

1- ट्रांसफारमेशन आफ सिखिज़्म - पृष्ठ - 148 ।

11)

गुरू गोबिंदसिंह ने अपने ` विचित्र नाटक[1] ` और कवि सेनापति ने ` गुरू- शोभा[2] ` में भी राजा भीमचंद के निमन्त्रण पर युद्ध में भाग लेने की बात कही है । गुरू जी ने ` विचित्र - नाटक ` में लगभग 22 छन्दों में इस युद्ध का वर्णन किया है ।

युद्ध में जीत जाने पर भी हिन्दू- राजाओं ने अनुभव किया कि वह अब भविष्य में मुगल- सेना का प्रतिरोध नहीं कर सकते, अत: उन्होंने सन्धि की तैयारियां आरम्भ कर दीं । लेकिन इन राजाओं का साथ देने पर गुरू जी मुगल- साम्राज्य के विरोधी घोषित हो चुके थे अत: औरंगज़ेब ने लाहौर के सूबेदार दिलावर खां के पुत्र रुस्तम खां को आक्रमण के लिये भेजा । जब उसकी सेना नदी के उस पार आ गई तो गुरू जी को इसकी सूचना मिली और वह नगाड़े बजवा युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गए लेकिन नदी में बाढ़ आ जाने से ` रुस्तमखां की सेना बुरी तरह से उसकी लपेट में आ गई और मुगल सेना बिना युद्ध किये ही भाग खड़ी हुई ।

4- हुसैनी का युद्ध - उपरोक्त घटना से लाहौर का सूबेदार दिलावर खान बड़ा क्रोधित हुआ । उसने अपने एक सेनापति हुसैन खां को गुरू पर आक्रमण करने के लिये भेजा । यह सेना पहाड़ी राजाओं को पराजित कर उनसे कर वसूल करती हुई आगे बढ़ने लगी । राजा भीमचन्द और कटौच के राजा कृपालचन्द हुसैन खां से ही मिल गये । लेकिन गुलेर के राजा गोपाल ने अपनी पराजय स्वीकार नहीं की और गुरू जी से सहायता मांगी । इस पर गुरू ने संगतियासिंह नामक वीर योद्धा को अपनी सेना के

1- ` बहुत काल इह भान्ति बितायो । मियां खान जम्मू कह आयो ॥
अलफ खान नादौन पठावा । भीमचन्द तन बैर बढ़ावा ।। 1 ॥
जुद्ध काज नृप हमें बुलायो । आपि तवन की ओर सिधायो ।
तिन कठ गढ़ नवरस पर बांधो । तीर तुफंग नरेसन सांधो ।। 2 ॥

2- ` राजन के हित कारने कीउ जुद्ध हम जान । कथा जुद्ध नदवण को बर्नत तहि बिआन ।1 ॥
मीयां खान की तरफ ते अलफ खान सिरदार।आ नादवण में रहिउ सोनी धूम अपार।। 2 ॥
भीमचन्द कहलूरिआ हुतो राव इक जान।तिहको तिहकी नहि बनी रचिउ जुद्ध घमसान ॥ 3 ॥
देसदेस के राव सब लीने तिनह हकार।सतिगुरू को कीना लिखा दया करो करतार ।4 ॥
2-शोभा 0- 15 ।

साथ राजा गोपाल की सहायतार्थ भेजा । इस युद्ध में हुसैनखां बुरी तरह परास्त हुआ और मारा गया । संगतियासिंह भी अपने कुछ साथियों सहित शहीद हो गया इस युद्ध को गुरू ने अपने ` विचित्र - नाटक ` के ग्याहरवें अंक में ` हुसैनी युद्ध ` का नाम दिया है और इसका वर्णन बड़े विस्तार से किया है ।

5- दुर्गा - पूजा - दशम ज्योति ने अपने यहां रामायण और महाभारत की शिक्षा देने के लिये कुछ ब्राह्मणों को नियुक्त कर रखा था । इन सभी ने युद्धों में विजय-श्री प्राप्त करने के लिये दुर्गा- यज्ञ को आवश्यक बतलाया । गुरू जी ने इसकी आज्ञा दे दी । यज्ञ में पूर्णाहुति का चालीसवां दिन आ जाने पर भी देवी- प्रकट होने के कोई लक्षण नहीं दिखाई दिये। गुरू जी ने प्रमुख पण्डित से इसका कारण पूछा तो उसने किसी कुलीन पुरूष की बलि देने के लिये कहा, इस पर गुरू जी उसी पंडित की बलि देने को तत्पर हो गये तो वह बहाना बनाकर चलता बना । इसके बाद अन्य पंडित भी धीरे-धीरे वहां से खिसक गये । तत्पश्चात् गुरू जी ने समस्त अवशिष्ट सामग्री को अग्नि में डाल दिया परिणामत: एक तीव्र ज्योति का आविर्भाव हुआ तो लोगों ने इसे देवी का प्रकट होना समझा । गुरू जी नंगी तलवार लेकर बाहर आए और शिष्य समूह के समक्ष उसे ` देवी ` कहा । सामान्य जनता ने उस तलवार को वरदान स्वरूप समझा और गुरू जी के प्रति उनके हृदयों में और भी विश्वास व श्रद्धा हो गई ।

6- खालसा-पंथ की स्थापना - गुरू गोबिंदसिंह के जीवन की सबसे महान् घटना है - ` खालसा - पंथ की स्थापना ` बैसाख बदी । संवत् 1756, तदनुसार सन् 1699 ई० में आनन्दापुर के केशगढ़ नामक स्थान पर गुरू जी शिष्य समुदाय के सम्मुख नंगी तलवार लेकर डेरे से बाहर आये और धर्म की रक्षार्थ बलि देने के लिये पांच व्यक्तियों की आवश्यकता बताई । पहले तो सभा में चुप्पी रही परन्तु तीसरी बार जब पुकार

लगाई तो पहले लाहौरवासी दयाराम खत्री प्रस्तुत हुए । तत्पश्चात् दिल्ली के जाट धर्मदास, द्वारका के धोबी हुकुमचन्द, विदर के नाई साहबचन्द तथा जगन्नाथपुरी के कहार हिम्मतराय शीशापर्ण हेतु प्रस्तुत हुए । गुरू ने इन पांच वीर, साहसी, निर्भीक एवं त्यागी व्यक्तियों को अन्दर ले जाकर वहां पहले ही से बंधे पांच बकरों को मार दिया । यही पांचों व्यक्ति ` पंच- प्यारे ` कहलाये । गुरू ने सर्वप्रथम इन्हें दीक्षित किया और फिर स्वयं उनसे दीक्षा ली । इस प्रकार गुरू गोबिंदसिंह ने अपने पूर्व की नौ पीढ़ियों के सिख- समुदाय को ` खालसा ` में परिवर्तित किया। उन्होंने सब को आज्ञा दी कि वे अपने नाम के साथ ` सिंह ` शब्द का प्रयोग करें । वह स्वयं भी ` गोबिंदराय ` से ` गोबिंदसिंह ` बन गए । उन्होंने पांच ककार(कड़ा, कच्छ, कंघा, केश, कृपाण) को धारण करना प्रत्येक ` सिंह ` के लिये अनिवार्य बताया ।

` खालसा ` निर्माण की प्रतिक्रिया बड़ी तीव्र हुई । पहाड़ी राजा आतंकित हो उठे । इसमें सबसे अधिक चिन्ता कहिलूर के राजा को हुई, जिसके क्षेत्र में आनन्दपुर पड़ता था। उसने गुरूजी को आनन्द पुर छोड़ कर जाने को या फिर उस भूमि का किराया देने के लिये एक पत्र लिखा। गुरूजी ने इसका मुंहतोड़ उत्तर दिया कि यह भूमि गुरूजी की ही है और उनके पिता ने पूरा मूल्य दे कर खरीदी है। इसी बात को ले कर विवाद उठ खड़ा हुआ ।

पहाड़ी राजाओं ने औरंगज़ेब से सहायता मांगी और पैंदे खान एवं दीनाबेग नामक दो पंचहज़ारी मुगल सरदारों की सहायता से गुरूजी पर आक्रमण किया । लेकिन उन्हें मुंह की खानी पड़ी ।

इसके पश्चात् एक बार फिर लाहौर और सरहिंद की सम्मिलित सेनाओं ने एक ओर से गुरू जी पर आक्रमण किया और पहाड़ी राजाओं ने दूसरी ओर से ।गुरूजी ने उनका पूर्ण प्रतिरोध किया और अंत में जीत फिर गुरूगोबिंदसिंह की ही हुई ।

गुरू गोबिंदसिंह की सैनिक शक्ति दिन- प्रति - दिन बढ़ती ही जा रही थी ।

उनकी यह बढ़ती हुई शक्ति औरंगज़ेब की आंखों में भी कांटे की तरह खटकने लगी। वह बार- बार अपने सरहिंद और लाहौर के सूबेदारों को पहाड़ी राजाओं की सहायता करने और गुरू पर आक्रमण करने का आदेश दे रहा था और बार- बार ही उनकी सेनाएं पराजित होकर लौट रही थीं।[1]

औरंगज़ेब पंजाब के अपने सूबेदारों और पहाड़ी राजाओं की बार- बार की इस पराजय से क्षुब्ध हो उठा। उसने एक विशाल सेना गुरू पर आक्रमण करने के लिये भेजी। इसमें सरहिंद, लाहौर और जम्मू के सूबेदारों की सेनाएं भी सम्मिलित हुईं और इसके अतिरिक्त पहाड़ी राजाओं ने भी इस विशाल सेना को सहयोग दिया। `सेना की संख्या तीन लाख से भी ऊपर हो गयी`।[2] दूसरी ओर अकेले गोबिंदसिंह, लेकिन परमात्मा के दास गोबिंद, और उनके पांच सौ के करीब सैनिक। यहां महाभारत लौटता-सा लगता है, वहां भी एक ओर थी कौरवों की असंख्य सेना और दूसरी ओर थे गोबिन्द(कृष्ण) और उनके प्यारे पांच पाण्डवों की सीमित-सी सेना।

भयंकर युद्ध हुआ। खालसा सेना ने बड़े आत्मविश्वास, साहस, वीरता और निर्भीकता से मुग़ल सेना का प्रतिरोध किया। मुगल - सेना और पहाड़ी राजाओं की सेना ने कुटिल नीति अपनाई और थोड़ा सा दूर हट कर आनन्दपुर के चारों ओर कड़ा घेरा डाल दिया। आनन्दपुर से किसी का भी आना- जाना पूर्णतः बन्द हो गया। रसद की समस्या पैदा हो गयी। धीरे-धीरे भोजन की बिगड़ती हुई अवस्था के साथ- साथ सिख सेना की व्याकुलता भी बढ़ने लगी। प्रतिदिन उनका आनन्दपुर छोड़ देने का आग्रह तीव्र होता गया। अंत में दुर्ग छोड़ने का निश्चय हुआ। कुछ मूल्यवान सामग्री, अस्त्र-शस्त्र एवं स्वरचित तथा अन्य दरबारी कवियों द्वारा रचित कुछ रचनाओं

---

1. Large Imperial forces were sent from Sarhind to co-operate with the quotas of the Hill Rajas and suppress the Guru, but they were usually worsted. —— History of Aurangzeb, J.N. Sarkar, Vol III Page 31

2. The Sikh Religion, Vol IV, Page 136.

15)

सहित गुरू ने दुर्ग छोड़ दिया । अपने चालीस सैनिकों और दो बड़े पुत्रों सहित गुरू अपने बाकी परिवार से बिछुड़ कर चमकौर की गढ़ी तक जा पहुंचे । दो छोटे पुत्र अपनी दादी, माता गुजरी सहित अपने रसोइये गंगाराम के साथ उसके गांव चले गये । लेकिन लालचवश गंगाराम ने दोनों बच्चों को सरहिंद के सूबेदार वज़ीरखां को सौंप दिया, जिसने उन दोनों बच्चों को, इस्लाम स्वीकार न करने पर ज़िन्दा दीवार में चुनवा दिया । इस शोक में माता गुजरी ने भी अपने प्राण दे दिये ।

चमकौर का युद्ध - उधर चमकौर की गढ़ी भी शत्रुओं द्वारा घेर ली गई । गुरू गोबिंद-सिंह , उनके पुत्रों और चालीस सैनिकों ने वीरतापूर्वक प्रतिरोध किया । खून की नदियां बह निकली । मुग़ल सेना का सेनापति नाहर खां मारा गया । गुरू के दोनों पुत्रों ने भी इस युद्ध में वीर गति पाई । एक- एक कर के गुरू के साथी समाप्त होते चले गये । अंत में अपने बाकी बचे तीन सैनिकों के साथ गुरू ने चमकौर भी छोड़ दिया ।

खिदराणा का युद्ध - धीरे-धीरे गुरू के और भी बहुत से शिष्य उनसे आ मिले । इस प्रकार शक्ति प्राप्त करते हुए गुरू खिदराणा में पहुंच गये । सरहिंद के सूबेदार वज़ीर खां की सेना भी उनका पीछा करते हुये वहां आ पहुंची और दोनों सेनाओं में फिर से संग्राम हुआ ।

इस युद्ध में उन चालीस सिखों ने, अद्भुत पराक्रम का परिचय देते हुए वीरगति प्राप्त की, जो आनन्दपुर में क्षुधा से व्याकुल हो गुरू का साथ छोड़ आये थे । इस युद्ध में उन्होंने अपनी भूल का प्रायश्चित किया तब से इन्हें ` चालीस मुक्ते ` कहकर श्रद्धा से स्मरण किया जाता है और खिदराणा को भी तब से ` मुक्तसर ` कहते हैं।

इन युद्ध के बाद गुरू ने औरंगज़ेब को एक पत्र लिखा जिसे ` जफ़रनामा ` का नाम दिया जाता है । इसकी चर्चा तत्सम्बन्धी इतिहासों में भी मिलती है । ` गुर-शोभा ` में कवि सेनापति ने भी इसका उल्लेख किया है और ` दशम - ग्रन्थ ` में भी यह पत्र संग्रहीत है।

तत्पश्चात् गुरू गोबिंदसिंह ने राजस्थान की ओर से दक्षिण जाने का विचार किया।[1] जब वह बघौर- नामक स्थान पर पहुंचे तो उन्हें औरंगज़ेब की अहमदनगर में मृत्यु(20 फरवरी, 1707 ई०) का समाचार मिला। अब दक्षिण जाने का कोई अर्थ न जान वह दिल्ली की ओर अग्रसर हो गये।

औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल- सिंहासन के लिये उसके शहज़ादों में विवाद उठ खड़ा हुआ। उसके दूसरे पुत्र आज़म ने स्वयं को बादशाह घोषित कर दिया और उत्तर की ओर चल पड़ा। इस पर उत्तर- में रहने वाले औरंगज़ेब के ज्येष्ठ पुत्र मुअज्ज़म ने आज़म के प्रतिरोध करने के लिये गुरू जी से सहायता की मांग की।[2] इन दोनों का युद्ध आगरा के निकट 18 जून, सन् 1707 ई० में हुआ जिसमें आज़म के मारे जाने पर मुअज्ज़म की जीत हुई जो बहादुरशाह के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा।

कुछ समयोपरान्त 2 अगस्त, सन् 1707 ई० को बहादुरशाह के निमन्त्रण पर गुरू जी ने उससे भेंट की[3] और उसने उन्हें मूल्यवान भेंटों के अतिरिक्त एक कलगी भेंट की।

12 नवम्बर, सन् 1707 , ई० को बहादुरशाह राजपूतों का विद्रोह दबाने के लिये राजस्थान की ओर चल पड़ा। गुरू जी भी अपने सैनिकों सहित उसके साथ हो

1- गुरू- शोभा - सेनापति - पृष्ठ - 81।

2- भाई संतोषसिंह ने अपने `गुरू प्रताप सूरज`(पृ०-615-19) और मैकालिफ ने `सिख- रिलीजन`(भाग 5, पृ०- 230) पर लिखा है कि गुरू ने भाई धर्मसिंह के नेतृत्व में सैनिकों की एक टुकड़ी मुअज्ज़म की सहायता के लिये भेजी।

3- सिख इतिहास बारे - डॉ० गंडासिंह - पृष्ठ- 45 ।

लिये [1]। यहीं उसे ज्ञात हुआ कि दक्षिण में उसके छोटे भाई कामबख्श ने विद्रोह कर दिया है तो वह दक्षिण की ओर प्रस्थान कर गया । शाही सेना जून 1708 ई० में ताप्ती पार कर के बुरहानपुर पहुंची । अगस्त 1708 ई० में बाणगंगा को पार कर सितम्बर के आरम्भ में यह सेना गोदावरी के किनारे बसे स्थान नान्देड़ में पहुंच गई। यहां से शाही सेना हैदराबाद की ओर कामबख्श का विद्रह- दमन करने के लिये चली गयी । गुरू गोबिंदसिंह अपनी सैन्य टुकड़ी के साथ वहीं टिके रहे [2]।

नान्देड़ में ही गुरू की भेंट माधोदास वैरागी से हुई जिसे उन्होंने कर्म का संदेश देकर ` बन्दा वैरागी ` का नाम दिया ।

नान्देड़ पहुंचने के लगभग एक मास के अन्दर ही 7 अक्तूबर सन् 1708 को प्रात:काल गुरूगोबिंद सिंह का देहावसान हो गया [3]।

` गुरू - शोभा ` में लिखा है कि एक पठान बदले की भावना से एक दिन शाम के समय गुरू के पास आया ।उस समय वहां कोई रक्षक न था उसने अवसर देख कर विश्राम करते गुरू पर छुरे का वार किया । प्रत्युत्तर में गुरू ने भी अपनी तलवार से उसका काम तमाम कर दिया । कुछ दिनों पश्चात् गुरू ने यह नश्वर शरीर त्याग दिया ।

42 वर्ष की अल्प आयु में ही गुरू के कार्य इतनी विविधता को अपने अन्दर संजोए हैं कि उनकी गणना विश्व की उन महान् विभूतियों में की जा सकती है जिन्होंने मानव- कल्याण हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया ।

1- गुरू गोबिंदसिंह और उनकी हिन्दी कविता - डॉ० महीपसिंह - पृ० 55 ।

2- ,, ,, ,, - पृ० 56 ।

3- A Short History of Sikhs —तेजासिंह, गंडासिंह- पृ०- 78 ।

वस्तुत: गुरू जी का जन- वन्दनीय रूप है एक वीर पुरूष का, एक ऐसे सिंह का जिसने जिधर मुंह किया उधर ही शत्रु शृंगालों की भीड़ दुम दबाती भागती गई, जिधर उसके रक्तिम नयन उठे, उधर ही आकाश रक्तिम होता चला गया, जिस ओर खड्ग की नोक उघड़ी, उधर ही प्रलय उमड़ी। उसका बाज़ इस बात का प्रतीक था कि शत्रुओं को लावा कुण्ड से अधिक क्या समझना है । उस महान् वीर ने देश की आत्मा में एक ही रस रहने दिया : वह था- वीर- रस । जन-जीवन में गुरू गोबिन्दसिंह उस युग में उपमेयोपमान थे और अपने वीर व्यक्तित्व में गुरू गोबिंदसिंह अनन्वय थे । अनन्वय अलंकार उनसे अलंकृत था, स्वनाम धन्य था ।[1]

गुरू गोबिंदसिंह जी का व्यक्तित्व आध्यात्मिक वीरता का प्रतीक है । उन की आध्यात्मिकता भगवान कृष्ण की भांति सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक अन्याय का दमन कर न्याय की स्थापना करने वाली थी ।हिन्दुओं को ` गीता ` का ज्ञान देने वाले ` गोबिंद ` और `गुरू गोबिन्द ` में कोई भेद न दिखाई दिया । गुरू जी को हिन्दू- जाति ने अपना तन- मन- धन समर्पित कर दिया ।

(ख) कृतित्व(साहित्यिक परिचय)-

वस्तुत: स्वानुभूति की सशक्त अभिव्यक्ति ही उत्कृष्ट काव्य कहलाने का गौरव रखती है और व्यक्ति की यह अनुभूति उसके व्यक्तित्व के अनुरूप ही होती है । गुरू गोबिन्दसिंह के व्यक्तित्व के अनुरूप ही उनका काव्य भी विविधता को अपने में समेटे हुये है। उनके काव्य में जहां एक ओर तो वेदों के अनुरूप ब्रह्म के ` नेति ` और पुन: सगुण रूप का वर्णन मिलता है तो वहीं दूसरी ओर अत्याचार विरोधिनी

1- परिशोध(अंक - 5) - डॉ0 ओमप्रकाश शास्त्री- पृष्ठ- 23 ।

19)

कृपाण की फंकार भी सुनाई पड़ती है। उनके काव्य में सरस्वती और भवानी, दोनों ही एकाकार हो गई हैं । उनकी कलम, कलगी और खड्ग वस्तुत:- ब्रह्मा, विष्णु , महेश का ही प्रतीक थी ।

गुरू की समस्त रचनाएं ` दशम - ग्रन्थ ` में संगृहीत हैं। कुछ विद्वानों को इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता में सन्देह है। शायद इसका कारण यह है कि गुरू ने अपना सारा काव्य स्वयं न लिख कर अपने अनुयायियों से लिपिबद्ध करवाया था । केवल कुछ ही प्रतियों में इनके हस्तलिखित पद मिलते हैं । अत: हो सकता है कि लिपिकारों ने लिखते समय इसमें कुछ घटा- बढ़ा दिया हो । कुछ विद्वान श्याम और राम, नामों से युक्त कृतियों को किसी अन्य की मानते हैं लेकिन कुछ विद्वान इन्हें गुरू के ही उपनाम स्वीकार करते हैं। इस दिशा में अभी भी सूक्ष्म- विश्लेषण की आवश्यकता बनी हुई है । बहुमत से ` दशम- ग्रन्थ ` में अंकित निम्न रचनाओं को इनकी कृति माना जाता है :-

1- जापु
2- अकाल- स्तुति
3- विचित्र नाटक
4- चण्डी-चरित्र उक्ति विलास
5- चण्डी चरित्र
6- वार श्री भगवती जी दी
7- चौबीस अवतार
8- मीर मैंहदी
9- ब्रह्मा- अवतार
10- रूद्र अवतार
11- शस्त्रनाम माला
12- ज्ञान- प्रबोध
13- पारस्यान चरित्र

14- हजारे दे शब्द

15- सवैये

16- ज़फ़रनामा 17. हिक्काया

1- जापु- ` दशम- ग्रन्थ ` की संकलन योजना में ` जापु साहिब ` को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। यह गुरू जी की दार्शनिक कृति है । जापु का एक मात्र लक्ष्य एक ऐसा ब्रह्म है जो मानव- सुलभ दैहिक तत्वों से परे है और काल-समय और मरण दोनों से सर्वथा मुक्त है । वेदों में कथित ब्रह्म के ` नेति ` स्वरूप का अनुकरण करते हुये उन्होंने भी इसी रूप में ब्रह्म का वर्णन करने का प्रयास किया है ।

` चक्र चिन्ह अरू वरण जाति अरू पाति नहिन जिह ।
रूप रंग अरू रेख भेख कोऊ कहि न सकत किह ॥ 32 ॥[1]

गुरू गोबिंदसिंह ने ` जापु ` के निर्गुण ईश्वर को ` अकाल ` की उपाधि प्रदान की है । उनका ` अकाल- पुरूष ` अजन्मा है , अनादि है ।[2] वह अस्त्रों का स्वामी है, अजेय और अभय है ।[3] उसका तेज प्रचण्ड है और उसका ओज अखण्ड है। काल, मृत्यु, जरा आदि से आमूल पृथक होने के कारण ही वह अकाल है । अपने इस अकाल- ब्रह्म को वह नम्रतापूर्वक नमस्कार करते हैं :-

` नमो सरब माने । समसती निधाने ॥
नमो देव देवे । अभेखी अभेवे ॥ 44 ॥
नमो काल काले । नमो सरब पाले ॥
नमो सरब गउणे ।नमो सरब अभेवे ॥45 ॥[4] `

1- दशम- ग्रन्थ(प्रथम - भाग) - पृष्ठ- 2 ।

2- ` अनील है। अनादि है ॥ अजे है । अजादि है ॥ 33 ॥ (अजनम है। अबरन है ॥ अभूत है। अमरन है ॥ 34 ॥ (पृष्ठ- 2-3 ।

3- नमो ससत्रपाणे । नमो असत्र माणे
+ + + + + +
नमसतं अजीते । नमसतं अभीते । - परिशोध(5)-पृ075 पर उद्धृत ।

4- दशम- ग्रन्थ(प्रथम भाग) - पृ0- 3 ।

21)

` जापु ` कवि की मुक्तक रचना है। प्रत्येक छन्द स्वतंत्र और अपने में पूर्ण हैं एवं उसमें पूर्वापर सम्बन्ध की कोई अपेक्षा नहीं है । ग्रन्थ की भाषा ब्रज है जिसमें अवधी का भी आभास मिलता है। कहीं- कहीं अरबी- फारसी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसकी शैली भी बहुत कुछ ` विष्णु ` सहस्त्रनाम ` पर आधारित है जिसमें ब्रह्म को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है ।

2- अकाल- स्तुति - ` जापु ` के अनन्तर 271 छन्दों में आबद्ध ` अकाल-स्तुति ` गुरू गोबिंदसिंह की विशुद्ध भक्ति- परक रचना है। आरम्भ में गुरू जी ने ब्रह्म के निराकार एवं सर्वव्यापक रूप का वर्णन किया है । वह उसकी स्तुति करते- करते उसी में तल्लीन हो जाते हैं। लेकिन इसमें ब्रह्म से अधिक सगुण ईश्वर और उसके अवतारी रूप का वर्णन हुआ है । त्रिगुणातीत होते हुए भी वह सारी सृष्टि में रमा हुआ है । वही समस्त सृष्टि का नियन्ता है ।

ईश्वर की महिमा के अतिरिक्त बीच- बीच में कवि ने बाह्याडम्बर में फंसी हुई जनता को उलझाने वाले मूर्ति- पूजक ब्राह्मणों, पाखण्डी पण्डितों, जटाधारी साधुओं तथा शारीरिक कष्टमयी साधना में फंसाने वाले योगियों को ब्रह्म-प्राप्ति में अवरोधक- शक्ति बताते हुए इनका खण्डन किया है और जनता को इन से सतर्क भी किया है । आंखें मूंद कर बगुले की भांति ध्यान लगाने, सात समुद्रों में स्नान करने और पत्थर को पूजने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती । वह तो केवल प्रेम- भावना से ही प्राप्त हो सकता है ।[1]

1- ` कहा भयो दोऊ लोचन मूंद के बैठि रह्यो बक ध्यान लगायो ।
न्हात फिरयो लिए सात समुद्रन लोक गयो परलोक गंवायो ॥
बास कियो बिखियान सो बैठ के ऐसे ही ऐसे सु बेस बनायो ।
सांच कहो सुन लेहु सबै जिन प्रेम कियो तिनही प्रभु पायो ॥ 29 ॥ `

दशम -ग्रन्थ(प्रथम भाग) - पृष्ठ- 14 ।

गुरू ने भारतीय परम्परानुसार भगवत् - प्राप्ति के सर्वोत्कृष्ट साधन ज्ञान, भक्ति और कर्म के सुन्दर समन्वित रूप में से भक्ति को प्रधानता देते हुए ज्ञान और कर्म का महत्व भी स्वीकार किया है । वस्तुत: वह ज्ञानाधारित प्रेम-पूर्ण भक्ति को ही ईश्वर- प्राप्ति का प्रमुख साधन मानते हैं ।

गुरू का कहना है कि संसार के समस्त मानव एक ब्रह्म द्वारा ही रचे गये हैं । अत: हिन्दू, तुर्क आदि में कोई भेद नहीं । यहां कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। काव्य ही क्या, जीवन में भी तो उन्होंने सिख- धर्म के नायक पांच-प्यारों को धर्म ; देश और जाति के बन्धन तोड़कर ही चुना था । वस्तुत: उनके मन- वाणी और कर्म में अद्भुत एकता थी । ब्राह्मण, क्षत्री , वैश्य, शूद्र आदि के जाति- धर्म की शिथिलता का भी इस रचना में उल्लेख हुआ है । इसके अतिरिक्त, एक छन्द में उनकी पुनर्जन्म सम्बन्धी आस्था का भी परिचय मिलता है।

इस रचना के 201 से 210 छन्दों में आत्मा- परमात्मा, जीवन-मरण,पाप-पुण्य, ज्ञान - अज्ञान आदि के सम्बन्ध में प्रश्नावली के रूप में शंकाएं तो उठाई गई है किन्तु इनका समाधान ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता । ग्रन्थ के अन्त में प्राप्त आधा छन्द सम्भवत: इसकी अपूर्णता की ओर ही संकेत करता है ।

यह रचना मुक्तक- काव्य में आबद्ध है और इसमें ईश्वरीय नामों एवं गुणों का वर्णन प्रत्येक छन्द में स्वतंत्र रूप से हुआ है। इसमें ब्रजभाषा के परिमार्जित एवं प्रौढ़ रूप का अंकन हुआ है। और भाषा प्रसाद- गुण सम्पन्न है । प्रस्तुत रचना में छन्द प्रयोग में वैविध्य होते हुये कवित्त और सवैया छन्दों का आधिक्य है। संस्कृत, फारसी एवं पूर्वी हिन्दी के शब्दों का प्रयोग भी यहां - वहां देखने को मिल जाता है । हिन्दी- साहित्य के सन्त- काव्य के अन्तर्गत इस रचना की गणना की जा सकती है ।

3- विचित्र - नाटक - `विचित्र - नाटक` वस्तुत: गुरू जी की आत्मकथा है, जो उनके आरम्भिक जीवन के कार्य- कलाप की वास्तविक गाथा है । तटस्थ आत्म-

23)

निरीक्षण एवं प्रभावपूर्ण आत्माभिव्यक्ति की दृष्टि से, 14 अध्याय और 471 पदों में आबद्ध , यह एक आदर्श, उत्कृष्ट एवं विशिष्ट रचना है।

पहले अध्याय में गुरू जी ने निर्गुण ब्रह्म की स्तुति करते हुये उसके सूक्ष्म रूप के सहज बोध- गम्य न होने के कारण उसके सगुण रूप का वर्णन भी प्रारम्भ कर दिया है ।

दूसरे और तीसरे अध्याय में उन्होंने मर्यादा पुरूषोत्तम राम एवं लव-कुश का उल्लेख कर अपने को उन्हीं के सोढ़ी- वंश की परम्परा में बताया है ।

चौथे अध्याय में वेदी- वंश का वर्णन है जिसमें कुल 10 छंद हैं । पांचवें अध्याय में सिख-धर्म के प्रवर्तक गुरू नानक एवं उनके बाद के अन्य आठ गुरूओं का उल्लेख 16 छन्दों में वर्णित है। छठे अध्याय में गुरू जी ने अपने जन्म का कारण बताया है[1] । इस अध्याय में 64 छन्द हैं। सातवें अध्याय में केवल तीन छन्द हैं जिसमें उन्होंने अपने जन्म- स्थान और बाल्यावस्था का वर्णन किया है । आठवें अध्याय में पांवटा के पास हुये भंगाणी के युद्ध का वर्णन है जो 38 छन्दों में है। नवें अध्याय में नादौन के युद्ध का वर्णन 24 छन्दों में हुआ है। दसवें अध्याय में औरंगज़ेब के हाकिम दिलावर खां के साथ हुए युद्ध का वर्णन 10 छन्दों में हुआ है।ग्यारवें अध्याय में हुसैन खां के साथ हुए युद्ध का वर्णन 69 छन्दों में मिलता है। 12 वें अध्याय में पुन: दिलावर खां के साथ उनके पुत्र जुझार-सिंह का वर्णन 12 छन्दों में मिलता है । 13 वें अध्याय में औरंगज़ेब के हाकिम मिज़ाबेग के अत्याचारों और उपद्रवों का अंकन है और 14 वें एवं अन्तिम अध्याय में सर्वकाल की अर्चना की गई है ।

1- (क) हम इह काज जगत मों आए । धरम हेत गुरूदेव पठाए ॥
जहां तहां तुम धरम बिथारो । दुसट दोखियन पकरि पछारो ॥ 42 ॥

(ख) याही काज धरा हम जनमं । समझ लेहु साधू सब मनमं ।।
धरम चलावन संत उबारन ।। दुसट सबन को मूल उपारनि ।। 43 ।।

दशम ग्रन्थ(प्रथम- भाग)- पृ0 57- 58 ।

इस रचना में, भुजंग-प्रयात, रसावत, तोटक, सवैया आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसकी भाषा परिमार्जित - प्रौढ़ - ब्रज है। कहीं- कहीं अवधी के भी शब्द मिलते हैं।

` विचित्र - नाटक ` में इतिवृत्तात्मकता और भावात्मकता का सुन्दर समन्वय है। यह रचना उनकी प्रखर - कल्पना शक्ति , रस- व्यंजना एवं अलंकार- योजना का एक अत्यन्त सुन्दर उत्कृष्ट नमूना है।

4- चण्डी-चरित्र उक्ति-विलास- इस ग्रन्थ में देवी चण्डी की कथा मार्कण्डेय पुराण के आधार पर उत्कृष्ट काव्यपूर्ण शैली में लिखी गई है। इसका वर्णन गुरू ने 7 अध्यायों के 233 छन्दों में किया है। इसमें कथा- प्रवाह पर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना कि युद्ध- वर्णन में मिलता है। वास्तव में गुरू का उद्देश्य असुर- संहार के लिये वीर - भावना का संचार करना ही रहा है अत: उनकी वाणी में भी यही उद्देश्य परिलक्षित होता है।

प्रथम अध्याय में अकाल- पुरुष का स्मरण कर देवी की वन्दना की गई है। तदन्तर द्वितीय अध्याय में मधुकैटभ - दैत्य के वध का वर्णन है । इसके बाद महिषासुर का इन्द्र से उसकी पुरी का छीनना, देवताओं का चण्डी से सहायता मांगना और फिर देवी द्वारा महिषासुर का वध करना वर्णित है। तीसरे अध्याय में इन्द्र के द्वारा देवपुरी के पुन: प्राप्त होने पर देवताओं का उत्सव मनाना वर्णित है। तत्पश्चात शुम्भ-निशुंभ से युद्ध में हार कर देवताओं का पुन: देवी की शरण में आना और फिर निशुंभ का देवी को देख कर मूर्च्छित हो जाना एवं देवी से अपने भाई शुंभ से विवाह करने को कहने की कथा अंकित है । यहां वीर कवि दशमेश ने रीति-कालीन परम्परा का निर्वाह करने के प्रयत्न में चण्डी के नख-शिख का वर्णन भी किया है । चण्डिका को पकड़ने के लिये शुंभ द्वारा भेजा गया धूम्रलोचन मारा जाता है । चौथे अध्याय में मुंड और चंड से देवी का युद्ध होता है और वह मारे जाते हैं । तत्पश्चात् युद्ध के लिये आए शोणित-बिंदु को मार कर उसका रक्त-पान करने के लिये चण्डी ने देवी काली की सहायता ली

(क्योंकि श्रोण-बिंदु को यह वरदान प्राप्त था कि जहां भी उसका रक्त बिन्दु गिरेगा, वहीं एक और श्रोण- पैदा हो जायेगा) यह कथा पंचम अध्याय में है । छठे अध्याय में निशुंभ और सातवें में शुंभ का वध देवी द्वारा होता है। तदन्तर सभी देवता देवी की स्तुति करते हैं और गुरू शिवा से यही वरदान मांगते हैं :-

` देहु शिवा वर मोहि इहै, शुभ करमन ते कबहूं न टरौं ।
न डरौं अरि सौं जब जाइ लरौं, निश्चय कर अपनी जीत करौं ॥
अरू सिख हौं अपने ही मन को, इह लालच हौ गुन तौ उचरौ ॥
जब आव की औध निदान बने, अत ही रन में तब जूझ मरौ ॥[1] `

इस ग्रन्थ का प्रणायन कथात्मक चरित- काव्य के रूप में हुआ है जिसमें मार्कण्डेय पुराण की ` दुर्गासप्तशती ` अध्याय 81 से 90 तक की कथा मिलती है। इसमें कवि ने केवल देवी के युद्धों का ही वर्णन किया है, अन्य किसी भी प्रसंग को महत्व नहीं दिया । प्रस्तुत ग्रन्थ की भाषा ब्रज है जो वीर- रस एवं ओज गुण से युक्त है ।

5- चण्डी-चरित्र - इस ग्रन्थ का कथानक भी लगभग चण्डी-चरित्र उक्ति- विलास के ही सदृश है । 262 छन्दों में थोड़े- बहुत अन्तर के साथ उसी(मार्कण्डेय पुराण की दुर्गासप्तशती पर आधारित कथा) कथा का वर्णन किया गया है। इसमें आठ अध्याय हैं । प्रथम छः अध्यायों की कथा बहुत कुछ उसी प्रकार चलती है। सातवें अध्याय में देवी को उसके गुणों द्वारा स्मरण किया गया है और आठवें अध्याय में चण्डी देवी की स्तुति एवं ग्रन्थ के माहात्म्य का वर्णन है ।

इस रचना में कवि ने वीर-रस से युक्त ओजपूर्ण शब्दावली में ब्रज- भाषा द्वारा युद्धों का सजीव चित्रण किया है। गुरू जी की यह दोनों कृतियां (1- चण्डी चरित्र उक्ति विलास, 2- चण्डी चरित्र) भक्ति और शक्ति के समन्वित मंजुल रूप को प्रस्तुत करती हैं ।

1- दशम ग्रन्थ(प्रथम - भाग) - चण्डी चरित्र - उक्ति विलास- छन्द-231, पृष्ठ- 99 ।

6- वार श्री भगवती जी दी- दुर्गा सप्तशती के आधार पर रची 55 छन्दों की इस कथा की भाषा पंजाबी है । गुरू गोबिंदसिंह के सम्पूर्ण साहित्य में मात्र यही पंजाबी भाषा की रचना है। इसके आरम्भ में भगवती- स्तुति के बाद पूर्ववर्ती गुरुओं को भी स्मरण किया गया है।

7- चौबीस- अवतार- गुरू गोबिंदसिंह ने भी श्रीमद्भागवत में वर्णित 24 अवतारों के आधार पर 24 अवतारों की कथा कही है, जिनमें सात अवतार श्रीमद्भागवत के अवतारों से भिन्न हैं । इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :-

(1) मत्स्य अवतार- इस रचना के 54 छन्दों में आरम्भ के प्रथम 38 छन्दों में ब्रह्म के निराकार एवं सर्वव्यापक रूप का वर्णन है और 39 से 54 छन्दों में भगवान का मत्स्य रूप धारण कर शंखासुर दैत्य के बीच युद्ध और फिर शंखासुर के वध का वर्णन है। इस युद्ध का वर्णन ओजपूर्ण शैली में है। अन्त में शंखासुर के वध द्वारा वेदों के उद्धार का वर्णन किया गया है। श्रीमद्भागवत में शंखासुर के स्थान पर ' ह्यग्रीव ' नामक दैत्य का नाम आता है। चौपाई छन्दों में आबद्ध इस रचना की भाषा ब्रज है ।

(2) कच्छ अवतार- इसके पांच छन्दों में समुद्र- मंथन का वर्णन है जिसमें वासुकि की रज्जु और सुमेरु पर्वत रूपी मथानी को आधार देने के लिये भगवान् कच्छ रूप में अवतरित हुये ।

(3)(4)-नर-नारायण-अवतार- समुद्र मंथन से प्राप्त रत्नों को पाने के लिये देवासुर- संग्राम हुआ जिसमें देवता हार गये, तो उनकी रक्षा के लिये भगवान ने नर और नारायण दो अवतारों का रूप धरा । श्रीमद्भागवत में नर- नारायण के रूप में एक ही अवतार का वर्णन है लेकिन गुरू गोबिंदसिंह द्वारा उक्त अवतार, अलग - अलग रूप में वर्णित है। बीस छन्दों की यह रचना ब्रज- भाषा में है जिसमें मुख्य रूप से तोटक और भुजंगप्रयात छंदों का प्रयोग हुआ है।

5) मोहिनी- अवतार- जब समुद्रमंथन से प्राप्त अमृत घट को , असुरों ने देवताओं को हरा कर अपने हाथ में ले लिया तो देवताओं को अमृत दिलाने के लिये भगवान ने

मोहिनी स्त्री का रूप धरा ।कवि दशमेश ने इस अवतार- कथा में अमृतघट के लिये हुये संघर्ष का कोई वर्णन नहीं किया । उन्होंने तो मंथन से प्राप्त रत्नों के वितरण के लिये भगवान को मोहिनी रूप धरते दिखाया है। इस अवतार का वर्णन आठ छन्दों में हुआ है जिसमें अधिकांश छन्द(5) भुजंगप्रयात हैं जिनका वर्ण्य-विषय शृंगार है । जो कार्य नर- नारायणावतार न कर सके वह मोहिनी- अवतार द्वारा सम्भव हो गया । मोहिनी द्वारा रत्नों का उचित बंटवारा हुआ और संघर्ष समाप्त हो गया।[1]

6) वाराह- अवतार- गुरू गोबिंदसिंह ने इस अवतार वर्णन में हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष नामक दो राक्षसों से भगवान के युद्ध का वर्णन किया है। जब इन दोनों राक्षसों से देवताओं को पराजित कर, सभी लोकों को जीत कर अपना दास बना लिया, तो पृथ्वी रसातल को चली गई । ऐसे समय में विष्णु का वाराहावतार हुआ और बाराह भगवान ने हिरण्याक्ष से आठ दिन तक समुद्र- जल में युद्ध कर के उस का संहार किया और पृथ्वी एवं वेदों का उद्धार किया ।

इस अवतार का वर्णन 14 छन्दों में है । भाषा ब्रज है और भुजंग-प्रयात छन्द ही प्रयुक्त किये गये हैं ।

7) नरसिंह अवतार- इसका वर्णन 42 छन्दों में हुआ है जिसमें भक्त प्रह्लाद की बहुप्रचलित कथा का वर्णन है । राजा हिरण्यकश्यप अपने पुत्र प्रह्लाद द्वारा पाठशाला में गोपाल- नाम का उच्चारण सुनकर क्रोधित हो जाता है और उसका वध करने का प्रयास करता है । तब भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिये खम्भा फाड़कर नरसिंह भगवान अवतरित होते हैं। भगवान और हिरण्यकश्यप में युद्ध होता है और अन्त में दैत्य मारा जाता है ।

1- रहे रीझ ऐसे सबै देव दानं । म्रिगी राज जैसे सुने नाद कानं ॥
बटे रतन सरबं गई छूट गरं । धरयो ऐसे श्री बिसन पंचम अवतारं ॥ 8 ॥
दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग)-पृ0-162 ।

पौराणिक कथाओं में नृसिंह और हिरण्यकश्यप के युद्ध का संकेत नहीं मिलता है । लेकिन गुरू जी ने तो 30 छन्दों में इन दोनों के ससैन्य युद्ध का वर्णन किया है और नृसिंह समस्त सेना का संहार कर फिर हिरण्यकश्यप को मारते हैं और भक्त की रक्षा करते हैं ।[1]

8) वामन अवतार- दैत्यराज बलि के अभिमान को भंग करने के लिये वामन-अवतार हुआ । गुरू गोबिंदसिंह के अनुसार दैत्यराज बलि से भयभीत देवताओं ने रक्षार्थ काल- पुरूष की आराधना की जिसके फलस्वरूप उन्होंने विष्णु को वामन अवतार धरने का आदेश दिया। वामन रूपी भगवान् ने राजा बलि के दरबार में जाकर वेदों का उच्चारण किया और ढाई पग भूमि मांगी । बलि जब कमण्डल लेकर संकल्प करने लगा तो उसे रोकने के लिये उसके गुरू शुक्राचार्य सूक्ष्म रूप में कमण्डल के छेद पर बैठ गये । तब जल के न निकलने पर वामन ने एक तिनका देकर बलि को छेद साफ करने को कहा जिसके फलस्वरूप तिनका शुक्र की आंख में लगा और आंख से जो जल निकला उसी से बलि से संकल्प किया । यह गुरू की मौलिकता का परिचायक है । वामन ने जो ढाई पग पृथ्वी मांगी थी, उसमें एक से उन्होंने पाताल और दूसरे से आकाश नाप लिया । आधे पग के लिये नृप ने स्वयं को प्रस्तुत कर दिया । लेकिन बलि को अद्भुत दानी मानकर उन्होंने उसका द्वार- पाल होकर रहना स्वीकार किया । यह समस्त कथा 26 छन्दों में वर्णित है ।

9) परशुराम अवतार- सहस्त्रार्जुन के अत्याचारों से तंग आकर इन्द्र आदि देवता काल- पुरूष के पास गये और रक्षा की याचना की । तब उनकी कृपा से

1- कीनो नृसिंह दुस्टं संहार । धर्यो सुबिसन सपतम- अवतार ॥
लीनों सु भगत अपनो छिनाइ । सब सिसट धरम करमम चलाइ ॥ 40 ॥
दशम ग्रंथ(प्रथम- भाग) -पृ०- 167 ।

जमदग्नि ऋषि और रेणुका के पुत्र के रूप में विष्णु परशुराम के रूप में अवतरित हुये । जमदग्नि की गाय छीनने के कारण सहस्त्रार्जुन से घोर संघर्ष करके परशुराम ने उसका वध ही नहीं किया अपितु समस्त पृथ्वी को भी 21 बार क्षत्रिय विहीन कर दिया । इस कथा का वर्णन 35 छन्दों में मिलता है।

इसकी ब्रज ओज गुण एवं वीर- रस युक्त ब्रज भाषा में रसावल, नराज, भुजंगप्रयात, चौपाई आदि छन्दों का उपयोग हुआ है। काव्य- शैली की दृष्टि से यह रचना खण्ड- काव्य के अन्तर्गत आती है ।

10) ब्रह्मावतार- इस अवतार का वर्णन केवल सात छन्दों में है जिन में ब्रह्मावतार का उद्देश्य यह बताया है कि जब लोग वेदों से विमुख हो गये और पाषाचार में लग गये तो ब्रह्मा ने उनके लिये धर्म का मार्ग प्रशस्त किया और वेदों का ज्ञान दिया ।[1]

11) रुद्रावतार- गुरु गोबिंदसिंह के अनुसार पाप के ताप से व्याकुल होकर पृथ्वी गाय का रूप धारण कर काल- पुरुष के पास गई और उन्हें अपनी व्यथा सुनाई । इस पर काल- पुरुष ने विष्णु को रुद्रावतार धारण करने का आदेश दिया । तब भगवान् ने रुद्र रूप धारण कर त्रिपुर, अंधक आदि राक्षसों का संहार किया । 39 छंदों में त्रिपुर और अंधक के वध का वर्णन है ।

प्रजापति दक्ष की 10 हजार पुत्रियों में से पार्वती, शिव(रुद्र) को ब्याही गई । एक बार पिता के यज्ञ में अनामंत्रित होते हुए भी पार्वती वहां गई, जहां पर अनादर पाकर यज्ञ- कुण्ड में भस्म हो गई । यह ज्ञात होने पर शिव रौद्र रूप धारण कर आए और घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया । तब दक्ष प्रजापति ने उनके पांव प

1- जब- जब बेद नास होइ जाहीं ॥ तब- तब पुन ब्रह्मा पगटाहीं ॥
ताते बिसन ब्रह्म बपु धरा ॥ चतुरानन कर जगत उचरा ॥ 2 ॥
जब ही बिसन ब्रह्म बपु धरा ॥ तब सब वेद प्रचुर जग करा ॥
सासत्र सिमृत सकल बनाए ॥ जीव जगत के पंथ चलाए ॥ 3 ॥

दशम ग्रन्थ(प्रथम- भाग)-पृ०- 172 ।

कर क्षमा याचना की और तब शरण में आया जान शिव ने उसे क्षमा कर दिया। यह कथा 50 छन्दों में है । इस प्रकार यह सम्पूर्ण अवतार- कथा ब्रजभाषा में 89 छन्दों में वर्णित है ।

12) जलन्धर अवतार- गुरु जी के अनुसार पुन: पार्वती, गिरिराज पुत्री बनी और शिव को ही ब्याही गईं, तब उसका रूप देखकर जलन्धर नामक राक्षस के मन में पाप उत्पन्न हुआ और उसने शिव से पार्वती की मांग की । इस प्रसंग में एक अवान्तर कथा वर्णित है कि एक दिन जब लक्ष्मी ने विष्णु के लिये भोजन बनाया तो कहीं से घूमते हुए नारद भी वहां आ पहुंचे और भोजन की मांग की । लेकिन लक्ष्मी ने यह सोच कर कि विष्णु के आने तक तो भोजन अपवित्र हो जायेगा, नारद को विष्णु के आने तक प्रतीक्षा करने को कहा जिससे नारद ने क्रोधित होकर लक्ष्मी को जलन्धर की पत्नी होने का शाप दिया । इस शाप के बारे में जान कर विष्णु ने लक्ष्मी की छाया लेकर बिन्द्रा की रचना की जो जलन्धर की पत्नी हुई ।

जलन्धर का पार्वती को प्राप्त न कर सकने के कारण शिव से घोर युद्ध हुआ । लेकिन बिन्द्रा के सतीत्व के कारण वह पराजित नहीं हो पा रहा था । तब शिव ने काल की आराधना की तो विष्णु जलन्धर का रूप धर कर बिन्द्रा के पास गये और उसका सतीत्व भंग किया जिसके फलस्वरूप जलन्धर का बल क्षीण हो गया और उसका अन्त हुआ । विष्णु के इस 12वें अवतार का वर्णन 28 छन्दों में 11 वें अवतार के साथ ही हुआ है जो ओजपूर्ण शब्दावली में दोहा, चौपाई, तोटक और भुजंगप्रयात आदि छन्दों में हुआ है ।

13) विष्णु- अवतार- यह अवतार ब्रजभाषा में अत्यन्त संक्षिप्त रूप से चार चौपई और एक छन्द में वर्णित है। पृथ्वी जब पाप- ताप से व्याकुल हो गई तो उसने काल- पुरुष की स्तुति की । तब समस्त देवों का अंश लेकर अदिति के गृह में भगवान् विष्णु का अवतार हुआ और उन्होंने असुर- संहार कर पृथ्वी की व्यथा

दूर की । अंत में गुरू ने इस कथा की संक्षिप्तता की ओर संकेत करते हुये कहा है -

` सकल कथा जउ क्रोर सुनाऊं ।। बिसन प्रबन्ध कहत स्त्रम पाऊं ॥
ताते थोरीरे कथा प्रकासी ।। रोग सोग ते राख अविनासी ॥ 5 ॥

दशम ग्रंथ(प्रथम - भाग)-पृ0- 182

14) काल पुरूष अवतार अथवा मधु- कैटभसंहारक अवतार- इस अवतार का वर्णन कुल सात छंदों में हुआ है और इसका कोई नाम भी कवि ने नहीं दिया, किन्तु यह स्पष्ट कर दिया है कि जिस अवतार ने मधु और कैटभ नामक राक्षसों का वध किया था वही विष्णु का चौदहवां अवतार है[1] । विष्णु के इस अवतार ने इन दोनों दैत्यों से पांच सहस्त्र वर्षों तक युद्ध किया और अन्त में काल- पुरूष की सहायता से उन्हें पराजित किया । यह रचना तीन दोहों और चार चौपइयों में वर्णित है और इसमें ब्रज- भाषा का प्रयोग हुआ है।

15) अरहन्तदेव अवतार- इस कथा का वर्ण्य- विषय इस प्रकार है कि जब अपने गुरू शुक्राचार्य के कथनानुसार दैत्यों ने भी यज्ञ करना आरम्भ कर दिया तो देवताओं ने व्याकुल होकर विष्णु की सहायता मांगी । तब विष्णु ने काल- पुरूष का स्मरण किया और काल- पुरूष ने उन्हें अरहन्तदेव का अवतार ग्रहण करने का आदेश दिया। अरहंतदेव ने असुरों का संहार किया तथा श्रावक मत का प्रचार किया । सबको हिंसा- पूर्ण यज्ञ करने की मनाही कर दी । उन्होंने दस हज़ार वर्ष तक राज्य किया और संसार के सब धर्मों - कर्मों को मिटा दिया । अंत में असुरों की शक्ति क्षीण हो गयी ।

इस अवतार का वर्णन 20 छन्दों में दोहा- चौपई शैली से युक्त ब्रज-भाषा में हुआ है।

1- ` मधु कैटभ बध नमित जा दिन जगत मुरार ॥
सुकवि स्यामि ताको कहे चौदसवों अवतार ॥

दशम ग्रंथ(प्रथम भाग)-पृष्ठ 182 ।

16) मनु अवतार- यह सम्पूर्ण अवतार केवल आठ छन्दों में वर्णित है। अरहंतदेव द्वारा प्रचलित श्रावक मत का विस्तार हो जाने और यज्ञों के बन्द हो जाने के कारण सब धर्म- कर्म बन्द हो गये थे और लोग धर्म- कर्म से विरत हो हरि-भक्ति और वास्तविक ज्ञान से विमुख हो गये थे। तब कालपुरूष की आज्ञा से धर्म- प्रचार करने के लिये मनु अवतरित हुये और उन्होंने मनुस्मृति का प्रचार कर लोगों को पापकर्म से हटा कर सन्मार्ग पर लगाया।

17) धनवंतरि- अवतार- संसार में जब सभी व्यक्ति धन- धान्य से पूर्ण हो गये तो वह नाना प्रकार के पकवानों के प्रयोग द्वारा रोगी होने लगे। तब काल- पुरूष की कृपा से विष्णु ने धनवंतरि का अवतार लेकर आयुर्वेद का प्रचार कर उन्हें स्वास्थ्य प्रदान किया। यह रचना भी आठ छन्दों में है और ब्रजभाष में दोहा एवं चौपई छन्दों में वर्णित है।

18) सूर्य- अवतार- दिति के बलशाली पुत्रों के नाश के लिये तथा संसार से अन्धकार को दूर करने के लिये कालपुरूष की आज्ञा से विष्णु ने सूर्य का अवतार धारण किया। गायत्री और सन्ध्या का पाठ होने लगा। यज्ञ, वेद एवं धर्म की स्थापना हुई। तब दीर्घकाम नामक राक्षस ने अपनी दीर्घ काया के अभिमान में सूर्य का सतत् चलायमान रथ रोक लिया जिसके फलस्वरूप उस राक्षस से सूर्य का घोर युद्ध हुआ। अंत में वह राक्षस मारा गया। इस अवतार- कथा का वर्णन 27 छन्दों में है जिसमें 19 छन्दों में सूर्य के दीर्घकाम के साथ हुए युद्ध का वर्णन है।

19) चन्द्र अवतार- सूर्य के ताप की अधिकता से संसार में अशान्ति छा गयी। खेत सूखने लगे। पत्नी ने पति की सेवा बंद कर दी और वह काम- विरत हो गई। तब काल पुरूष की आज्ञा से विष्णु भगवान् ने चन्द्र का अवतार ग्रहण किया जिसके फलस्वरूप शीतलता छा गई, पुनः पति- सेवा एवं गुरू- पूजा आरम्भ हो गई। लोग सुखी हो गये। अब चन्द्रदेव अपने अपार सौन्दर्य के कारण गर्व में भर गये और वृहस्पति की पत्नी का सतीत्व भंग कर दिया। मुनि इस पर अति क्रोधित हुये

और चन्द्र को शाप दिया । इसी से चन्द्रमा में ग्रहण लग गया और उसका रूप सदा घटने- बढ़ने लगा । इससे चन्द्रमा का अभिमान भंग हो गया । इसका वर्णन 15 छन्दों में हुआ है ।

20) रामावतार- 864 छन्दों में गुरू जी द्वारा रचित ` रामावतार ` उच्च नैतिक स्वर एवं उदात्त वीर-भावना से ओत- प्रोत एक उत्कृष्ट प्रबन्ध - काव्य है। आरम्भ में गुरू जी ने रामावतार के मूलभूत कारण को स्पष्ट किया है कि असुरों का प्रभाव बढ़ने पर देवता ब्रह्मा को साथ लेकर विष्णु के पास गये और सहायता के लिये कहा । तब विष्णु ही राम के रूप में अवतरित हुये । इनकी यह राम - कथा `बाल्मीकि रामायण `, पद्म पुराण, श्रीमद्भागवत, हनुमान नाटक आदि राम- काव्यों से कुछ अन्तर रखते हुये भी श्रीमद्भागवत के कुछ अधिक समीप जान पड़ती है।

राम- जीवन की यह सम्पूर्ण कथा लगभग 26 अंशों में बंटी हुई है जिन में राम का जन्म, सीता- स्वयंवर, अवध- प्रवेश, बनवास, वन- प्रवेश, खट- दूषण वध , सीता- हरण, सीता की खोज, बालि- वध , हनुमान का मिलना, प्रहस्त- युद्ध , कुम्भकरण- वध, इन्द्रजीत - युद्ध रावण युद्ध , अन्य कई दैत्यों से युद्ध,सीता- मिलन, अयोध्या - आगमन, सीता- वनवास, लव-कुश से युद्ध और पुन: अवध - प्रवेश आदि प्रसंगों का वर्णन है ।

` रामावतार ` के बहुत संक्षिप्त होने के कारण इसमें रामायण के बहुत से अंश लगभग छूट गये हैं अत: कथा में संतुलन एवं प्रवाह पूरा नहीं आ पाया । किष्किंधाकाण्ड तथा सुन्दर काण्ड का तो उल्लेख मात्र हुआ है।बहुत सी अप्रासंगिक घटनाओं के साथ कहीं- कहीं तो मार्मिक - स्थल भी छूट गए हैं, जैसे- चित्रकूट-प्रसंग, मातृ-मिलन तथा मार्ग-यात्राओं का वर्णन आदि । वस्तुत: ` रामावतार ` में कवि की रूचि युद्ध- वर्णन में ही अधिक है । ` वह मार्ग की भूमियों - घाटियों पर

नज़र ज़रूर डालता है । मगर वहां उतरता नहीं । उतरता वह युद्ध-भूमि में ही है ।[1] प्रबन्ध-कथा की दृष्टि से इस कथा में शिथिलता होते हुये भी यह एक सफल, विशुद्ध वीर- काव्य है । सर्वत्र ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है । और काव्य में ओज-प्रसाद एवं माधुर्य गुण भी यथा स्थान परिलक्षित होते हैं ।

21) कृष्णावतार- गुरु की कृतियों में यह सबसे बड़ी रचना है जिसका वर्णन गुरु ने 2492 छन्दों में बड़े व्यापक धरातल पर किया है। यह ब्रज- भाषा में कृष्ण जीवन पर आधारित उस युग का एक महत्वपूर्ण और सम्भवत: प्रथम महाकाव्य है । ' कृष्णावतार ' उनकी अन्य अनेक रचनाओं की भांति स्थूल अध्यायों में विभाजित न हो कर लगभग एक सौ लघु परिच्छेदों में विभाजित है। स्थूल रूप से डॉ० महीपसिंह इस सम्पूर्ण रचना को पांच मुख्य भागों में विभाजित करते हैं :-

1-	बाल- लीला	440 छन्द तक
2-	रास- मण्डल	441 से 756 छन्द तक
3-	मथुरा- गमन, गोपी- विरह	757 से 1028 छन्द तक
4-	युद्ध- प्रबन्ध	1029 से 1962 छन्द तक
5-	स्फुट घटनाएं	1963 से 2492 छन्द तक [2] ।

डॉ० हरभजनसिंह ' स्फुट घटनाओं ' को इस विभाजन में स्थान न देते हुए प्रथम चारों भागों को यही नाम देते हैं । वस्तुत: दूसरे और चौथे अध्याय के नाम का संकेत इस ग्रंथ में मिल जाता है। बाल- लीला ' में अंतिम 20 छन्द (421 से 440 तक) देवी स्तुति के हैं इसलिये इस भाग का अन्त देवी स्तुति से ही होता है और यहीं से द्वितीय भाग आरम्भ होता है । अंश के आरम्भ में

1- वीर कवि दशमेश - डॉ० जयभगवान गोयल - पृष्ठ - 11 ।

2- गुरु गोबिन्द सिंह और उनकी हिन्दी कविता, - पृष्ठ 150

` अथ रास- मण्डल ` अंकित है और अन्त में ` इति श्री दसमस्किन्धे पुराणे विचित्र ~ नाटक ग्रन्थे क्रिसनावतारे रास-मण्डल बरननं धिआर समापतमसतु सुभमसतु ` लिखकर इस भाग को पूर्ण किया है। इसी प्रकार चौथे भाग का प्रारम्भ ` अथ - जुद्ध प्रबन्ध ` से होता लेकिन इसकी समाप्ति का उल्लेख नहीं है । इस प्रकार दूसरे और चौथे भाग का नामकरण हो जाने से मध्य के तृतीय भाग की सीमा - रेखा स्वमेव ही निर्धारित हो जाती है ।

प्रथम- भाग- बाल-लीला - प्रारम्भ में कवि कृष्ण जन्म का कारण देता है कि ब्रह्मा जी के नेतृत्व में सभी देवता क्षीर- सागर गए और विष्णु को अपनी व्यथा कही । तब विष्णु ने उन्हें अपने अवतार ग्रहण करने का आश्वासन दिया और साथ ही सभी देवताओं को भी पृथ्वी पर जन्म लेने की आज्ञा दी ।

इधर महाराजा उग्रसेन के यहां देवकी का जन्म हुआ । देवकी का विवाह वासुदेव से सम्पन्न हुआ तब देवकी के भाई कंस को आकाशवाणी हुई कि देवकी का 8 वां पुत्र तेरा काल होगा । इस पर जब कंस देवकी को मारने को तत्पर हो गया तो वासुदेव ने कहा कि यदि देवकी का पुत्र तुम्हारे संकट का कारण है तो उसका वध कर देगा । कंस ने इसे स्वीकार कर देवकी और वासुदेव को बंदीगृह में डाल दिया ।

कुछ समयोपरान्त जब देवकी के पुत्र हुआ तो वासुदेव उसे कंस के पास ले कर आये । उसे देख कंस ने करूणावश होकर उसे नहीं मारा तो नारद जी ने आ कर आठ लकीरें खींच कर कंस पर भेद प्रकट किया । नारद की बातों के प्रभाव में आ कर कंस ने उस बच्चे को मार दिया । इसी प्रकार कंस ने देवकी के छः पुत्रों की हत्या कर दी । सातवें पुत्र के रूप में जब बलराम गर्भ में आए तो वासुदेव और देवकी ने विचार कर मंत्र के प्रभाव से उसे देवकी के गर्भ से निकाल कर वासुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ में स्थित कर दिया ।

अन्त में जब आठवें पुत्र कृष्ण का जन्म हुआ तो भगवान् की आया से सारे पहरेदार सो गये, नदी का जल कम हो गया और वासुदेव ने कृष्ण को व्रज में नन्द के पास पहुंचा दिया और यशोदा की नवजात पुत्री योगमाया को लेकर कारागृह में लौट आये । कंस उस कन्या को पटकने को ही था कि वह जा कर आकाश में स्थित हो गई और उसके शत्रु के अन्यत्र जन्म लेने की बात कही । यह सुन कर कंस ने देवकी- वासुदेव को मुक्त कर दिया ।

कंस ने कृष्ण के वध के लिये पूतना, तृणावर्त, बकासुर, अघासुर और धेनुकासुर आदि राक्षसों को भेजा लेकिन कृष्ण ने सब को मार दिया ।

तदन्तर कृष्ण के बाल रूप का चित्रण गुरू गोबिंदसिंह ने पूर्ण तन्मयता से किया है। सहज-बाल चापल्य तथा शिशु- हृदय की नैसर्गिक अनुभूतियों का चित्रण करते - करते वे स्वयं उसमें खो जाते हैं । गुरू जी ने बाल- मनोविज्ञान, मातृ - मनोविज्ञान एवं सखा- मनोविज्ञान- इन सभी की स्वाभाविक एवं यथेष्ट व्यंजना की है । उनके कृष्ण भोले, अबोध किन्तु नटखट है ।

द्वितीय भाग- रास-मण्डल- 316 कवित्त सवैयों में आबद्ध इस खण्ड में कृष्ण और गोपियों की रास-लीला का वर्णन है जो कार्तिक ऋतु से आरम्भ होती है । गोपियों ने लोक- मर्यादा का उलंघन करके कृष्ण के साथ निरन्तर रास- क्रीड़ा में भाग लिया । लेकिन घोर शृंगारी और ऐन्द्रिय वातावरण के बीच भी कवि इस प्रकार के छन्दों की योजना करता है जिससे कृष्ण के शृंगार- देव होने के साथ-साथ ही उनका वीर- देव और लोक- रक्षक रूप भी दिग्दर्शित होता रहता है। कवि ने राधा और कृष्ण के प्रेम का अनूठा वर्णन किया है । कृष्ण की बांसुरी सुन कर गोपियां बावरी होकर कृष्ण की ओर दौड़ी चली आती हैं। इस खण्ड में अनेक गोपियों के नामों का उल्लेख हुआ है लेकिन प्रमुख नायिका राधा ही है । इस भाग में गोपियों के साथ रास- लीला के संयोग शृंगारमय वातावरण का निर्माण कवि ने बड़ी सफलतापूर्वक किया है । प्रसंगानुसार अभिसार, मान,

दूती आदि का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। यह संयोग - शृंगार इन्द्रिय स्थूलता की दृष्टि से भी परिपूर्ण है ।

तृतीय- भाग- मथुरा-गमन, गोपी- विरह - कंस के आदेश पर अक्रूर कृष्ण को मथुरा लिवा ले जाते हैं । कृष्ण के मथुरा- गमन से पहले, सुदर्शन नामक ब्राह्मण के सर्प योनि से उद्धार, वृषभासुर एवं केशी दैत्य के वध का वर्णन है ।

कृष्ण के मथुरागमन पर यशोदा, नंद एवं गोपियों के करूण विलाप का वर्णन है। लेकिन करूण घटनाओं के विस्तृत चित्रण में गुरू का मन अधिक नहीं रमा है अत: इस प्रसंग में भी यशोदा विलाप के कुल दो तीन दृश्य ही उपलब्ध होते हैं । किन्तु इस विरह खण्ड की अपनी ही एक विशिष्टता और मौलिकता है और वह है - नन्द का विरह । यशोदा और गोपियों के विरह वर्णन का कृष्ण-साहित्य में कहीं भी अभाव नहीं लेकिन नन्द ने अपने पुत्र- वियोग-पीड़ित हृदय की कथा केवल गुरू गोबिंदसिंह के ` कृष्णावतार ` में ही कही है। - गोपियों का विरह- वर्णन बहुत ही प्रभावशाली ढंग से हुआ है और उसमें रीति-निर्वाह का पूर्ण प्रयास है । गोपी- विरह वर्णन बारहमासा के रूप में वर्णित है ।

कृष्ण गोपियों के अशान्त मन को शान्त करने के लिये उद्धव को ब्रज भेजते हैं । लेकिन उनके निर्गुण ईश्वर का उपदेश गोपियों को रास नहीं आता । यहां राधा एवं अन्य गोपियां अपने प्रेम की अनन्यता और तन्मयता का परिचय देते हुए उद्धव को भी अपने प्रेम से अभिभूत कर लेती हैं । उद्धव मथुरा पहुंच कर कृष्ण को गोपियों की विरह- व्यथा कह सुनाते हैं ।

इस खण्ड में कुब्जा के उद्धार का प्रसंग भी रोचक है। इसके अतिरिक्त इस खण्ड में, धोबी को दण्ड, माली का उद्धार, धनुष- भंग, कुवलापीड़ हाथी का वध , चंडूर, मुस्ट पहलवानों का वध, कंस- वध, माता- पिता को मुक्त कराना, नंद बाबा को वापिस ब्रज भेजना, यज्ञोपवीत, उग्रसेन को राज्य देना, धनुर्विद्या शिक्षण, कुब्जा गृह- प्रवेश, अक्रूर गृह प्रवेश, अक्रूर को कुन्ती के पास भेजना आदि प्रसंग यथास्थान वर्णित हैं ।

चतुर्थ भाग- युद्ध- प्रबन्ध- लगभग 900 छन्दों का यह वृहत् खण्ड कृष्णावतार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग है। वस्तुत: इसी भाग की रचना के लिये सम्पूर्ण कृष्ण-काव्य की सृष्टि की गयी है ।

` युद्ध - प्रबन्ध ` का प्रारम्भ जरासिंध के युद्ध से होता है। कंस की मृत्यु के बाद कंस की पत्नी अपने पिता जरासिंधु के पास जाकर विलाप करती है जिससे क्रोधित होकर जरासिंध अन्य राजाओं को एकत्र कर कृष्ण पर आक्रमण कर देता है। इस युद्ध का वर्णन कवि ने सविस्तार किया है। जरासिंध के अनेक सेनापति इस युद्ध में मारे जाते हैं ।

" कृष्णावतार का यह विस्तृत युद्ध प्रसंग पौराणिक आधार पर खड़ा किया गया काल्पनिक भवन है। पृष्ठभूमि के कुछ पात्र, जरासिंध, कालयमन आदि तो पुराण उल्लिखित है किन्तु इन कुछ पात्रों को लेकर इतना विशाल भवन खड़ा करना तो सम्भव नहीं था, इसलिये कवि ने अनेक काल्पनिक पात्रों की रचना की । लगता है कि इस काल्पनिक पात्रों की रचना करते समय कवि के मन में यह भी विचार रहा हो कि यह कल्पित पात्र तत्कालीन जनता की कल्पना के बिल्कुल निकट हों । उन्हें वे काल्पनिक न लग कर सत्य लगे और यह सम्पूर्ण युद्ध प्रसंग उनके लिये किसी दैवी, अमानवीय और पूर्ण कल्पना लोक की ही वस्तु न बन कर रह जायें वरन् वे उसे अपने इतने निकट अनुभव कर सकें कि वह सब कुछ उनके लिये प्रत्यक्ष प्रेरणा का माध्यम बन जाय । "

वास्तव में ` कृष्णावतार ` आदि अवतारों की कथा का पुराणों के आधार पर गायन कर देना ही गुरू गोबिंदसिंह का उद्देश्य नहीं था, उन्हें तो केवल ` धर्म - युद्ध की चाह ` थी जिसके लिये उन्होंने अपनी काव्य- रचना की । ` कृष्णावतार ` की रचना का उद्देश्य भी उन्होंने स्पष्ट दिया है -

` दशम कथा भागौत की भाखा करी बनाइ ।
अवर वासना नहीं प्रभ धर्म युद्ध की चाइ ।। `

22) नर- अवतार- विष्णु के बाइसवें अवतार अर्जुन हैं जिन्हें नरावतार कहा गया है ।[1] इसका वर्णन कुल सात छन्दों में हुआ है जिन में शिव के साथ अर्जुन के युद्ध का वर्णन है। अर्जुन की वीरता से प्रभावित होकर शिव उन्हें वरदान स्वरूप पाशुपत अस्त्र प्रदान करते हैं । अर्जुन ने इन्द्र के संकट को भी दूर किया और कौरवों को भी पराजित किया ।

23) बुद्ध- अवतार- यह अवतार केवल तीन दोहों में वर्णित है। यहां तात्पर्य भगवान के उस बुद्धावतार से है जिसका वर्णन पुराणों में है । गुरू जी ने इस अवतार का बड़ा अस्पष्ट सा वर्णन किया है ।[2]

24) कलिक अवतार- 588 छन्दों की इस अवतार- कथा में कलयुग के दुराचार, अनाचार एवं अत्याचार का व्यापक वर्णन किया गया है। पृथ्वी जब इस प्रकार के अनेक पापों से आक्रान्त हो जाती है तो वह कालपुरूष से अपने इस गुरू- भार को हल्का करने के लिये कहती है। काल-पुरूष कहते हैं कि कलियुग के बाद सतयुग का आगमन होगा और भगवान् कल्कि अवतरित होंगे जो समस्त पापों का नाश कर, धर्म- कर्म की स्थापना करेंगे और दुष्टों का संहार कर न्याय का मार्ग प्रशस्त करेंगे । इस अवतार- कथा का वर्णन गुरू जी ने चार अध्यायों में किया है ।

गुरू जी के अनुसार पाप- तापमय वातावरण में एक व्यभिचारिणी स्त्री के सदाचारी पति ब्राह्मण का वध करने के लिये जब अन्यायी और अत्याचारी राजा ने बधिक को भेजा तो उस ब्राह्मण की रक्षा के लिये कल्कि को अवतरित होना पड़ा । शूद्र राजा का वध कर उसने विश्व में शान्ति स्थापित की । कल्कि और शूद्र राजा

---

1 - अब बाइसवों गनि अवतारा ।। जैस रूप कहु धरो मुरारा ॥
नर अवतार भयो अरजना ।। जिह जीते जग के भर गना॥
दशम ग्रंथ(भाग-1)-पृष्ठ-570 ।

2- अब मैं गनौ बउध अवतारा । जैस रूप कह धरो मुरारा ॥
बउध अवतार इही कौ नाउ ।जाकर नाव न थाव न गाउ ।। 1 ॥
जाकर नाव न ठाव बखाना। बउध अवतार वही पहचाना ॥
सिला सरूप रूप तिह जाना । कथा न जाह कलू अहि माना । 2॥
रूप रेख जा करन कछु अस कछु नाहि नाकार ।
सिला रूप बरनत जगत सौ बऊध अवतार ॥ 3 ॥
दशम ग्रंथ(प्रथम भाग)-पृष्ठ -571 ।

के युद्ध का वर्णन भी इसमें विस्तार से उपलब्ध है ।

सम्पूर्ण संसार को विजित कर कल्कि ने संसार पर दस- लाख बीस सहस्त्र वर्ष राज्य किया । शक्ति पाकर कल्कि ने अभिमान में रचना की और उसके द्वारा कल्कि का संहार कराया ।

इस प्रकार गुरू गोबिंदसिंह ने अपने इन चौबीस अवतारों के माध्यम से पुराणों का आधार लेकर विशृंखलित होती हुई भारतीय- संस्कृति को पुनरूज्जीवित करने का प्रयास किया । सभी अवतारों का योद्धा रूप ही उभर कर सामने आया है। दशमग्रंथ में संगृहीत इन चौबीस अवतारों में सर्वाधिक विस्तृत चित्रण ' कृष्णावतार ' का ही हुआ है । सबसे बड़ी बात तो यह है कि गुरू जी से पूर्व कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण- कथा का विस्तृत एवं क्रमबद्ध चित्रण न करके केवल कतिपय विशिष्ट प्रसंगों को ही अपना आधार बनाया है लेकिन गुरू जी द्वारा रचित ' कृष्णावतार ' हिन्दी- साहित्य के कृष्ण- काव्य को एक व्यापक - परिवेश प्रदान करता है।

8- मेंहदी मीर-

हिन्दू अवतारों के साथ- साथ एक शिया- सम्प्रदाय से संबन्धित अवतार ' मीर मेंहदी या मेंहदी मीर ' का संक्षिप्त उल्लेख (11 छंदों में) भी दशम- ग्रंथ में हुआ है । ' भविष्य में जन्म लेने वाले इस इमाम के सम्बन्ध में मुसलमानों की धारणा है कि वह कुमार्ग पर चलने वालों को सत्मार्ग प्रदर्शित करेगा । शिया मुसलमानों के अनुसार मेंहदी मीर का जन्म हो चुका है, परन्तु अभी तक वह गुप्तावस्था में हैं । उपयुक्त समय पर प्रकट हो कर वह दुष्टों को दण्ड देगा और इस्लाम की अवस्था सुधारेगा ।[1] '

1- गुरू गोबिंदसिंह और उनकी हिन्दी कविता - डॉ० महीपसिंह - पृष्ठ - 176 ।

गुरू जी के अनुसार जब कलियुग के अन्त में काल- पुरूष की उपासना बंद हो गई तो ` मेहिंदी मीर ` का उद्भव हुआ । मेहिंदी मीर ने कल्कि का संहार कर दिया और पुन: सतयुग प्रारम्भ हुआ । कालान्तर में अपनी बढ़ती हुई शक्ति को देखकर गर्व करने वाले मेहिंदीमीर के विनाश के लिये काल-पुरूष ने उसके कान में कीड़ा डालकर उसके दंश से उसका भी संहार कर दिया । इस रचना की ब्रज-भाषा में कहीं- कहीं फारसी का भी प्रयोग हुआ है। गुरू जी ने मीर की इस कथा द्वारा वस्तुत: पाप और अहंकार के विनाश की कथा कही है ।

9- ब्रह्मा-अवतार-

गुरू जी ने इस रचना के आरम्भिक 41 छन्दों में ब्रह्म के प्रति अपनी आस्था का वर्णन करता हुआ इन 41 छन्दों के अन्तिम छन्दों में कवि कहता है कि काल- पुरूष की आज्ञा पर जब ब्रह्मा ने वेदों की रचना की तो उसे अपने पर बड़ा अभिमान हो गया जिसके फलस्वरूप काल-पुरूष ने ब्रह्मा को दण्ड देने के लिये पृथ्वी पर भेज दिया । ब्रह्मा ने पृथ्वी पर रह कर लाखों वर्षों तक काल- पुरूष की उपासना की जिससे प्रसन्न होकर काल-पुरूष ने कहा कि पृथ्वी पर सात अवतार धारण करने के पश्चात् तुम्हारा उद्धार होगा । इस प्रकार ब्रह्मा ने पृथ्वी पर- 1) बाल्मीकि, 2) कश्यप, 3) शुक्र, 4) वृहस्पति, 5) व्यास, 6) षट्ऋषि और 7) कालिदास, के नाम पर सात अवतार धारण किये ।

1) बाल्मीकि- अवतार- इस अवतार का वर्णन सात छंदों में मिलता है। राम-भक्ति से प्रेरित होकर बहरे बाल्मीकि ने अपना अमर-काव्य ` रामायण ` लिखा, जिसकी प्रशंसा आलोचकों ने की ।

2) कश्यप- अवतार- कश्यप ऋषि ने वेदों की व्याख्या की। इन्होंने चार विवाह किये जिनसे समस्त देवता और दानव उत्पन्न हुये ।इस अवतार का वर्णन तीन छन्दों में किया है।

42)

3) शुक्र- अवतार- शुक्राचार्य दानवों के सुधार के लिये उनके धर्म-शिक्षक एवं गुरू बन कर अवतरित हुये । इसका वर्णन केवल दो छन्दों में है ।

4) बृहस्पति -अवतार- इस अवतार का वर्णन भी कुल दो छन्दों में है। दैत्यों की शक्ति बढ़ जाने पर और चारों ओर उनका राज्य स्थापित हो जाने पर भयभीत एवं निराश्रित देवताओं ने काल-पुरूष की आराधना की । काल-पुरूष से आदेश पाकर देवताओं के आचार्य के रूप में ब्रह्मा का चौथा अवतार हुआ । अपने आचार्य बृहस्पति से आत्मिक बल पा कर इन्द्र की विजय हुई और वे दानव पराजित हुए ।

5) व्यास-अवतार- इस अवतार का वर्णन ब्रह्मा के अन्य अवतारों की अपेक्षा अधिक विस्तृत है । यह अवतार- कथा 284 छन्दों में आबद्ध है। व्यास ने वेदों को निश्चित स्वरूप दिया । उन्होंने अपनी कृतियों में अपने युग के राजाओं का विवरण लिखा । मनु, पृथु(कवि ने इस नाम का अर्थ राजा दुष्यंत के रूप में लिया है) सगर, ययाति, बेणु, मान्धाता , दिलीप, रघु और अज आदि राजाओं का वर्णन इस प्रसंग में किया गया है । यह व्यासदेव कृष्ण के समकालीन थे ।

6) षट्ऋषि -अवतार- पुराणों की रचना करने पर व्यास के रूप में ब्रह्मा को फिर गर्व हुआ जिसपर क्रुद्ध हो काल-पुरूष ने उनके छः अंश कर दिये और प्रत्येक अंश एक ऋषि के रूप में परिणत हो गया । इन्हीं छः ऋषियों ने छः शास्त्रों की रचना की । इस अवतार का वर्णन कुल 4 छन्दों में मिलता है ।

7) कालिदास- अवतार- कलियुग में ब्रह्मा ने कालिदास के रूप में सातवां अवतार धारण किया । कालिदास राजा विक्रमजीत के संरक्षण में एक उत्कृष्ट कवि एवं लेखक के रूप में अवतरित हुए । उन्होंने रघुवंश एवं संस्कृत की अन्य उत्कृष्ट कृतियों का प्रणयन किया । इसका विवरण भी 4 छन्दों में ही प्राप्त होता है

इन सभी अवतारों की भाषा ब्रज है जो फारसी एवं विदेशी शब्दों को भी अपने में समेटे है। इनमें प्रधानता शान्त रस की है । ` व्यास- अवतार ` में वर्णित अज-स्वयंवर में शृंगार- रस की प्रधानता दृष्टिगत होती है।

इस प्रकार `ब्रह्मा के उपरोक्त सात अवतार प्राय: कोई विद्वान पुरुष, ऋषि और लेखकों के हुये जिन्होंने अपनी लेखनी से मानवता और देवत्व की रक्षा की । विष्णु के (24) अवतार राजा और महाराजाओं के हुये जिन्होंने तलवार से मानवता की रक्षा की ....,। इससे प्रतीत होता है कि मानवता की रक्षा के लिये तलवार और लेखनी अथवा शस्त्र और शास्त्र की समान रूप से आवश्यकता होती है और गुरु गोबिंदसिंह तो लेखनी से भी उतना ही सशक्त प्रहार करते थे जितना कि वह तलवार से करते थे । इसीलिये उनके ` कृष्णावतार ` के कृष्ण भी अपने पूर्व प्रचलित मात्र शृंगार - नायक ही न होकर योद्धा भी हैं । उनके कृष्ण उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही मुरलीधर होने के साथ- साथ कृपाणपाणि भी हैं

10- रुद्रावतार -

दशम- ग्रंथ में रुद्र के दो अवतारों का वर्णन मिलता है जो पर्याप्त विस्तृत(1498 छंदों में) है। प्रथम अवतार दत्तात्रेय का वर्णन 23 परिच्छेदों में विभाजित 498 छन्दों में मिलता है और दूसरे अवतार पारसनाथ का वर्णन 358 छन्दों में है । गुरु जी ने रुद्र के अवतार का कारण भी ब्रह्मा के सात अवतार लेने के समान ही बताते हुये कहा है कि जब अत्याधिक योग- साधना के कारण रुद्र में गर्व उत्पन्न हो गया और वह अपने को सर्वोत्कृष्ट समझने लगा तो काल- पुरुष ने क्रोधित होकर ब्रह्मा ही के समान रुद्र को भी अवतार धारण करने के लिये पृथ्वी पर भेज दिया ।

1- दत्तात्रेय- रुद्रावतार- चारों वेदों और चौदह विधाओं के प्रकाण्ड पंडित अत्रि मुनि ने रुद्र की घोर आराधना करके उनसे उन्हीं के समान तेजस्वी पुत्र

की मांग की जिसके फलस्वरूप कालान्तर में अत्रि मुनि की पत्नी अनुसूया के गर्भ से ब्रह्म दत्त के रूप में अवतरित हुये । दत्त उच्चकोटि का विद्वान, योगी और सन्यासी था । योग- साधना के लिये दत्त ने गृह त्याग दिया और अपनी तपस्या द्वारा काल देव को प्रसन्न किया । काल ने उसे मुक्ति - प्राप्ति के लिये गुरू धारण करने का आदेश दिया । दत्त गुरू की खोज में निकल पड़े । अपने इस गुरू के अनुसंधान में दत्त ने 24 गुरू धारण किये । प्रथम गुरू उन्होंने अकाल- पुरूष को ही बनाया, दूसरा गुरू मन को माना, तीसरा गुरू मकड़ी को धारण किया, चौथा गुरू बगुले को बनाया जो मछली को पकड़ने के लिये एकाग्रता से काम लेता है, पांचवां बिड़ाल को माना[1], इसी प्रकार उन्होंने क्रमश: 6- धुनिक, 7-मक्खी, 8- दासी, 9- बनजारा, 10- काकिन (जो ` सोआचूक ` कहती थी, अर्थात् जो सो गया उसने खो दिया), 11- राजा सुरथ(जो युद्ध- प्रवीण होकर भी सन्यासी तुल्य जीवन बिताते थे) एक पतंग उड़ाती कन्या, 13- पहरेदार भृत्य, 14- पति में ही अनुरक्त पत्नी, 15- एक बाण बनाने वाला, 16- चील, 17- दुधीरा पक्षी, 18- मृगाखेटक, 19 - शुक , 20- शाह, 21- शुक पढ़ाने वाला, 22- किसान की पत्नी, 23- यक्षणी, और अन्त में पर्वत पर जाकर तपस्या करने के उपरान्त उन्होंने 24 वां गुरू ज्ञान को माना । एक बार जब उन्हें ज्ञान रूपी गुरू प्राप्त हो गये तो चौबीसों गुरू इसमें सम्मिलित हो जाते हैं[2] ।

1- ` मूस काज जस लावत धिआनु । लाजत देख महन्त महानु ।।
ऐस धिआन हरि हेत लगईहै । तब ही नाथ निरंजन पईहै ।।86।।
- पृष्ठ 649 ।

2- जै एक के रस मीन । तिन चउबीसों रसि लीन ।।
जिन एक को नहीं बूझ । तिह चउबीसौं नहीं सूझ ।। 480 ।।
दशम ग्रंथ (प्रथम भाग) पृष्ठ- 667 ।

46)

इस अवतार- कथा में वीर और शृंगार- दोनों ही रसों का सुन्दर समन्वय मिलता है । वीर- रस तो उनकी निजी भावना से प्रेरित है और शृंगार- रस युग के प्रभाव स्वरूप उपस्थित हुआ है। इस रचना में शृंगार- रस की अभिव्यक्ति के अवसर गुरु जी को अधिक मिले हैं । सम्पूर्ण रचना में शान्त- रस की प्रधानता है । भाषा ब्रज है जिसमें यहाँ - यहाँ अवधी के शब्द भी देखने को मिल जाते हैं ।

2- पारसनाथ - रूपावतार-इस रचना के अनुसार दत्त ऋषि की मृत्यु के एक लाख दस वर्ष के उपरान्त रोह देश में पारसनाथ अवतरित हुये । पारसनाथ की चतुर्दिक फैली हुई योग्यता और प्रतिभा से प्रभावित होकर वहां के राजा के उन्हें अपना दामाद बना लिया । पारसनाथ ने दुर्गा की घोर उपासना और स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर देवी ने उन्हें कोई वर मांगने को कहा । पारसनाथ ने वर मांगा कि मैं सभी वेदों का ज्ञाता हो जाऊं और सारे शस्त्रों को चला सकूं । सभी देशों को पराजित कर अपना मत चलाऊं । इस प्रकार देवी के वरदान को प्राप्त कर, देश- विदेशों के राजाओं को अपने अधीन कर पारसनाथ एक शक्तिशाली सम्राट बन गये । वेदों और यज्ञादि पर विचार- विनिमय करते हुये उन्होंने यह विश्वास विश्व में प्रसारित किया सन्यास लेकर भी संसार का त्याग न किया जाए । उन्होंने एक विराट सभा का आयोजन कर संसार के राजाओं और योगियों से आग्रह किया कि वे जय न रखें । अनेक राजाओं ने इसका विरोध किया और घोर संग्राम आरम्भ हो गया । विपक्षियों की पराजय हुई और इस प्रकार दत्त के सन्यास और विरक्ति के सन्देश का अन्त हुआ । धन- वैभव से समृद्ध होने पर पारसनाथ ने राजमेध यज्ञ का विचार किया । इस पर उनके एक मंत्री ने कहा कि सभी- संतों, मुनियों और राजाओं से एक उस रहस्यों को जानों जिसे तुम अभी नहीं जानते । सभी के असमर्थता प्रकट करने पर एक राजा से महेन्द्रनाथ नाम का एक मुनि समुद्र में एक बड़े मच्छ के भीतर रहता है वही आपको इसका सही उत्तर दे सकता है । इस पर पारसनाथ की सेना ने समुद्र के सभी जीव-जन्तुओं को मारना शुरू कर दिया तो समुद्र- देवता ने निवेदन किया कि वह मच्छ क्षीर- सागर में रहता है । अन्त में, क्षीर- सागर से ज्ञान के जाल द्वारा वह मच्छ पकड़ा गया और उसकी कठोर चमड़ी को विवेक के

चाकू से काटा गया तो उसमें समाधिस्थ मछेन्द्रनाथ दृष्टिगत हुये । तब उनकी दृष्टि से नीचे सात- धातुओं का एक पात्र रखा गया जो इनकी क्रोधित दृष्टि पड़ते ही भस्म हो गया। जब उनका क्रोध शांत हुआ तो पारसनाथ ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की ।

मछेन्द्रनाथ ने पारसनाथ को बताया कि उसकी सारी विजय- व्यर्थ है क्योंकि वह अभी तक विवेक को नहीं जीत सका । अविवेक का रंग काला है और वह काले घोड़ों वाले काले रथ पर सवार रहता है। उसका सारथी, ध्वजा और धनुष सभी काले हैं । कामदेव, बसन्त, उल्लास, आनन्द, भ्रम वैर, आलस्य, मद आदि अविवेक के मन्त्रीगण हैं और सभी दुर्गुण एवं कुप्रवृत्तियां उसकी सहायिका हैं । इस अविवेक रूपी राजा का मुकाबला केवल विवेक ही कर सकता है । दया, क्षमा, उदारता, विनय, सदाचार, शील, संयम, धैर्य , संतोष सत्संग और सुविचार आदि विवेक की सहायक शक्तियां हैं ।

इसके अनन्तर गुरू जी ने विवेक और अविवेक के युद्ध का विस्तृत वर्णन किया है । यह युद्ध लाखों वर्षों तक चलता रहा किन्तु किसी की भी विजय अथवा पराजय निश्चित नहीं हो सकी । पारसनाथ ने मछेन्द्रनाथ से इसका उत्तर मांगा तो उनके मौन हो जाने पर उनकी दृष्टि से चरपटनाथ का जन्म हुआ जिसने पारसनाथ को उपदेश दिया कि आदिपुरूष ने एक ओंकार का उच्चारण करके पृथ्वी और स्वर्ग की रचना की । उसने अपने दायें भाग से सत्य और बांये से झूठ को बनाया । जन्म लेते ही यह आपस में युद्ध करने लगे और यह युद्ध तभी से चला आ रहा है । सहस्त्रों वर्षों की आयु पाकर, सहस्त्रों रसनाओं से गुणगान कर और सहस्त्रों युगों तक विचार करने पर भी उस ब्रह्म का पार नहीं पाया जा सकता ।[1] वस्तुत:

1- पारसनाथ अवतार - दशम ग्रंथ(प्रथम भाग)- छ0सं0- 109-336, पृष्ठ 681 से 707 ।

ईश्वर के नाम के बिना कुछ भी सत्य नहीं । इस पर पारसनाथ ने विचार किया कि मैं अविवेक को नहीं जीत सका अत: मुझे जीने का कोई अधिकार नहीं । चिता बनाकर उसमें स्वयं अग्नि प्रज्वलित कर पारसनाथ उसमें भस्म हो गए ।

11- ज्ञान- प्रबोध -

पौराणिक कथा एवं पृष्ठभूमि से समन्वित ` ज्ञान प्रबोध ` गुरू गोबिंदसिंह रचित एक तात्विक रचना है जिसमें भव- सागर में भटकते हुये जीव को ब्रह्म- ज्ञान के प्रति प्रेरित करने का सतुत्य प्रयास किया गया है । रचना के पूर्व भाग में निराकार ब्रह्म की स्तुति की गई है। और उत्तर भाग में पौराणिक कथा के आधार पर दार्शनिक तत्वों की विवेचना की गई है ।

125 छन्दों में आबद्ध प्रथम भाग में भक्त ने अपने आराध्य के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है और सभी प्रकार से पूर्ण ब्रह्म की स्तुति की है । इस खण्ड में परब्रह्म परमात्मा के अदृश्य, अनन्त, अभय, अकाम, अताप, अद्वैत और निरपेक्ष आदि गुणों का प्रकाशन हुआ है। वह सर्वशक्तिमान आनन्दस्वरूप सृष्टिकर्ता अनाथों का नाथ है, दुखों का हर्ता एवं जीवों का पालनकर्ता है, दोनों का रक्षक है एवं पतितोद्धारक है। वह कभी रूप, रेखा, वास, वेश तथा वर्ण के अन्दर नहीं आता । वह काल, कर्म तथा सभी योनियों से परे है। परमात्मा का खल-दल खण्डन रूप इस अंश में भी प्रमुख है । उस अकाल- पुरूष की सर्वोच्चता, सर्वशक्तिमत्ता एवं सम्पूर्णता इस छन्द में स्पष्ट है -

` बेद भेद नहिं लखे ब्रह्म ब्रह्मा नाहि बुझै।विआस परासर सुक सनादि सिव-अन्तु न सुझै ।
सनति कुआर सनकादि सरब जिउ समा न पावहि।लख लखमी लख बिसन बिसन-कहं नेत बतावहि ॥
असंख रूप अनेम प्रभा अति बलिस्ट जल थलि करण॥अच्युत अनन्त अद्वैनाथ निरंजन-तव सरण ॥[1]

1- दशम ग्रंथ(प्रथम भाग) - छ0 सं0 12, पृ0- 32 ।

इस रचना के द्वितीय खण्ड का आरम्भ एक तात्विक प्रश्न से होता है जिसमें जीवात्मा परमात्मा से पूछता है कि वह कौन है जिसका तेज अप्रितम है और जो अद्भुत विभूति है। तब परमात्मा उत्तर देते हैं कि वह ब्रह्म है जो गति और कामना से रहित है, जिसमें भेद भ्रम और काल नहीं है, जो पानी में डूबता नहीं, वायु से सूखता नहीं, काटने से काटा नहीं जाता, अग्नि में जलता नहीं । इस प्रकार एक अन्य दार्शनिक प्रश्न के उत्तर में परमात्मा द्वारा संसार के चार वर्गों(धर्मों) की व्याख्या की गई है । ` ज्ञान- प्रबोध में वर्णित यह चार धर्म - 1- राजधर्म,दानधर्म, भोगधर्म और मोक्ष धर्म प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ही हैं । इन धर्मों की लौकिक व्याख्या के प्रयत्न में गुरू जी ने महाभारत से सम्बन्धित कथाओं का उल्लेख करके इसे प्रबन्ध- काव्य का रूप ही प्रदान कर दिया है ।राजसूय- यज्ञ के बाद युधिष्ठर द्वारा ब्राह्मणों को अतुलित धन- दान तथा गजमेध का आयोजन कर यज्ञ के बाद परीक्षित द्वारा अपूर्व दान देने के माध्यम से गुरू जी ने सर्वत्र दान- धर्म के महत्व को प्रतिपादित किया है। परीक्षित की मुनि के शाप से सर्प दंश द्वारा मृत्यु और तत्पश्चात उसके पुत्रों एवं पुन: उनके उत्तराधिकारियों के राज्य का वर्णन इस खण्ड में मिलता है । इस ग्रन्थ के अन्त में राजा ` मुनी ` के यज्ञ का वर्णन हुआ है ।

दशम-ग्रंथ की अन्य रचनाओं की भांति इस रचना की समाप्ति का कोई उल्लेख नहीं मिलता । ग्रंथ के कथा- प्रसंग का अचानक ही समाप्त हो जाना भी ग्रंथ की अपूर्णता की ओर संकेत करता है।

यह रचना प्रश्नोत्तर- शैली में रचित है । सर्वत्र ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है फिर भी कहीं- कहीं फारसी, पंजाबी और भाषा के शब्द- प्रयोग भी मिल जाते हैं ।

12- शस्त्रनाम माला -

वस्तुत: गुरू गोबिंदसिंह का समस्त काव्य वीर- रस पूर्ण, रण- वाद्यों के तुमुल नाद और शस्त्रों की झंकार से झंकरित है। स्फूर्ति एवं शक्ति

प्रदान करने वाले छन्दों की रचना में वह महाकवि कवि चन्द और भूषण से कम न थे। उनका काव्यमय शस्त्र-वर्णन (शस्त्रनाम माला) तो विश्व- साहित्य में अपना सानी नहीं रखता। गुरू जी के कथानुसार संतों में आध्यात्मिक शक्ति के अतिरिक्त प्रचण्ड बाहुशक्ति भी अनिवार्य है। मानव- धर्म के परित्राण के लिये और दानवी शक्ति के हनन के लिये किये गये सारे प्रयत्न जब विफल हो जाएं तो खड्ग उठाना अनिवार्य हो जाता है[1]। युग की मांग के अनुकूल ही भक्त गुरू ने खड्ग को अपना पीर बनाया। 1318 छन्दों के इस ग्रन्थ के आरम्भ में वह कहते हैं :-

` असि कृपाण खांडो खड्ग तुबर अरू तीर। सैफ सरोही सेहथी यही हमारे पीर ॥ `

` तीर तुही सेथी तुही तवर तरवार। नाम तिहारे जो जपै भये सिंध भव पार ॥ `

गुरू जी द्वारा रचित ` शस्त्रनाम माला ` 1318 छन्दों में आबद्ध एक दीर्घ रचना है जो 5 अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में तो उन्होंने शस्त्रों की स्तुति एवं वन्दना साक्षात् ईश्वर के रूप में की है। इस अध्याय में लगभग 30 प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की गणना हुई है। इसमें कुल 27 छन्द हैं जिनमें शस्त्रों का दैवीकरण कर उन की स्तुति की गई है। द्वितीय अध्याय के 47 छन्दों में तलवार, कटार, सेहथी, बरछी आदि अस्त्र- शस्त्रों का वर्णन है। तृतीय अध्याय में 178 छन्द हैं जिन में (सभी छन्दों में) तीर के नामों का वर्णन हुआ है। चतुर्थ अध्याय के 207 छन्दों में ` पाश ` का वर्णन हुआ है जिसे कवि ` पांस ` शब्द से सम्बोधित करता है। पंचम अध्याय में 868 छन्द हैं और यह अध्याय सब से विस्तृत है। इसका वर्ण्य- विषय ` तुपक(बन्दूक) है।

1- ` क्षीनता हो स्वत्व कोई, और तू त्याग तप से काम ले यह पाप है,
पुराय है विच्छिन्न कर देना उसे, बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है।
- दिनकर - - - -

इस रचना के माध्यम से गुरू जी ने भयभीत जनता को खड्ग का आश्रय प्रदान करते हुये उसे अन्यान्य शस्त्रों के प्रयोग से अवगत भी कराया है। इस ग्रंथ में प्रत्येक शस्त्र का मात्र साधारण वर्णन ही नहीं, अपितु उस शस्त्र से सम्बंधित पुरातन कथा और उसका प्रयोग करने वाले देवताओं का भी वर्णन है । सम्पूर्ण रचना दृष्टिकूट शैली में है ।

13- पाख्यान- चरित्र -

गुरू गोबिंदसिंह विरचित ' चरित्रोपाख्यान ' एक वृहत् कथा - संग्रह है। कुल कथाओं में गणना तो 405 की दी हुई है लेकिन इनकी संख्या 404 ही प्राप्त होती है।(धर्मपाल आहूता और रणधीर सिंह आदि विद्वानों ने इस रचना में 404 उपाख्यान माने हैं और हस्तलिखित तथा प्रकाशित ग्रंथों में भी 404 उपाख्यानों का उल्लेख है ।) 325 वीं कथा बीच में है ही नहीं । 324 संख्या के बाद 326 वीं संख्या का उल्लेख किया गया है। इन कथाओं की निम्नांकित कोटियां निर्धारित की जा सकती हैं[1] :-

1) धार्मिक - इस कोटि के अन्तर्गत 25 उपाख्यान मिलते हैं जो भक्ति, स्तुति और वन्दना से सम्बंधित हैं। इन कथाओं में प्रयुक्त पात्रों द्वारा शिव, विष्णु एवं देवी आदि की भक्ति और उपासना वर्णित है ।

2) पौराणिक - इसके अन्तर्गत कृष्ण- चरित, समुद्र-मंथन, देवासुर - संग्राम आदि से सम्बन्धित कथाएं आती हैं ।

3) ऐतिहासिक - इन उपाख्यानों में मुगल सम्राटों, हिन्दू राजाओं एवं राजपूत नारियों के शौर्य की कथाएं अंकित हैं। लेकिन यह कथाएं इतिहास सम्मत नहीं जान पड़ती क्योंकि ऐतिहासिक ग्रंथों में इनका कोई उल्लेख नहीं मिलता ।

1- गुरू गोबिंदसिंह और उनका काव्य- डॉ0 प्रसन्नी सहगल- पृ0 164 से 169 के आधार पर ।

52)

(4) गारिक - इन के अन्तर्गत नल- दमयन्ती, ढोला मारू, सोहनी - महिवाल, हीर- रांझा, रत्नसेन - पद्मावती आदि की प्रेमकथाएं अंकित हुई हैं ।

(5) सामाजिक - इन कथाओं में लोक- मर्यादा के प्रतिकूल आचरण, प्रेम - व्यापार , धन एवं राज्य की लोलुपता, बहु- विवाह, सौत की ईर्ष्या एवं अनमेल - विवाहादि का वर्णन किया गया है ।

(6) विविध - यह उपाख्यान बहुधा आत्मचारित्रिक हैं। उपाख्यान 21, 22 23 और 71 में गुरु गोबिंदसिंह से सम्बन्धित कथाओं का वर्णन मिलता है ।

इस ग्रंथ का विषय - वैविध्य इतना अधिक है कि मानव- जीवन का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र है जो अछूता रह गया है। इसमें शृंगार, वीर, शान्त, हास्यादि रस की प्रधानता है ।

14- हज़ारे दे शब्द -

गुरु जी की स्फुट रचनाओं में शब्दों का विशेष साहित्यिक महत्व है । इन दस ` शब्दों ` में गुरु जी ने निर्गुण ब्रह्म की स्तुति करते हुये जीव को वास्तविक रूप से सन्यास ग्रहण करने का संदेश दिया है :-

` रे मन ऐसो करि सन्यासा ।
बन से सदन सबै करि समझहु, मन ही माहिं उदासा ।
जप की जटा जोग को मंजनु नेम के नखन बढ़ाओ ।
ज्ञान गुरू आतम उपदेसहु नाम विभूति लगाओ ॥ `

अनुपम छंद- योजना, उत्कृष्ट, काव्य कला, संगीत, भाव- गाम्भीर्य और रचना कौशल की दृष्टि से यह ` शब्द ` अनूठे हैं और हिन्दी सन्त काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

15- सवैये -

इस मुक्तक रचना में गुरु जी ने ` अकाल - स्तुति ` और ` शब्द - हज़ारे के सदृश ही ईश्वर के स्वरूप की महिमा का गुणगान किया है। तीर्थों एवं मठों

आदि के आडम्बरों और पाखण्डों का विरोध करते हुये उन्होंने नाम का गान करने का संदेश दिया है। तीन सवैयों में गुरू जी ने तथाकथित ब्राह्मणों को दान न दे कर निम्न-वर्ग के उपयुक्त पात्रों को दान देने का औचित्य समझाया है। इन सवैयों की संख्या 33 है। सर्वत्र ब्रजभाषा का प्रयोग मिलता है।

16- ज़फ़रनामा -

` ज़फ़रनामा ` का शाब्दिक अर्थ है ` विजय - पत्र ` । यह गुरू जी की अन्तिम रचना मानी जाती है जो उन्होंने औरंगज़ेब को पत्र के रूप में लिखी थी । यह एक फारसी रचना है। प्रथम भाग में ईश्वर की सर्वव्यापकता तथा उत्तरार्द्ध में औरंगज़ेब से उसके अन्याय और अत्याचार का वर्णन किया गया है। गुरू की इस रचना में उन का भारतीय संस्कृति में पनपा हुआ व्यक्तित्व विशेष रूप से उभर आया है। इस कृति में 111 छन्द प्राप्त होते हैं ।

17- हिकायतें -

इसमें 11 हिकायतों का वर्णन है जिसमें गुरू जी ने पौराणिक तथा अन्य कथाओं द्वारा औरंगज़ेब को उपदेश दिये हैं ।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि गुरू गोबिंदसिंह ` एक आदर्श थे, वे जवां मर्द भी थे और महात्मा भी, वे सन्त भी थे और सिपाही भी, वे भावुक कवि भी थे और विवेकशील पथ-प्रदर्शक भी । सार यह कि वे भारतवर्ष के इतिहास में ऐसा अद्वितीय व्यक्तित्व थे जिसमें भक्ति और शक्ति, उदात्तता और तेजस्विता, कविता और कर्त्तव्य तथा मीरी और पीरी सब एक स्थान पर समन्वित हो गये थे । उनकी सरलता और उदारता उनकी प्रचण्डता और दृढ़ता के तौल में बराबर बैठती है। इसलिये उनके आचरण का प्रत्येक पहलू अनुसरणीय और प्रत्येक नीति समर्थनीय कहे जा सकते हैं ।

1- परिशोध (अंक -5)- गुरू गोबिंदसिंह विशेषांक - गुरू गोबिंदसिंह जीवन और व्यक्तित्व -डॉ० मनमोहन सहगल- पृ०- 141

षष्ठ - परिच्छेद

तुलनात्मक - अध्ययन

(क) वर्ण्य - वस्तु

(ख) दार्शनिक पक्ष

(ग) भाव - पक्ष

1- शृंगार - वर्णन

2- भक्ति एवं उसका स्वरूप

(घ) कला - पक्ष

(ङ) साहित्य- सन्देश

तुलनात्मक - अध्ययन

(क) वर्ण्य - वस्तु

1- कृष्ण का स्वरूप - बाल रूप में, युवा रूप में, लोकनायक रूप में

2- कृष्ण काव्य के अन्य पात्र - बलराम, नंद- यशोदा, राधा, गोपियां एवं उद्धव आदि ।

3- भ्रमरगीत

4- प्रकृति - चित्रण

वर्ण्य- वस्तु से हमारा अभिप्रेत है कि विवेच्य कवियों ने अपने काव्यों में किन भावों को किन रूपों में उठाने का प्रयास किया है। महाकवि सूर और गुरु - गोबिन्दसिंह दोनों ने ही अपने कृष्ण- काव्य में कृष्ण को अपने काव्य का प्रमुख विषय बनाया है। कृष्ण से सम्बन्धित कथाएं, कृष्ण के साथ आए विविध पात्र और उनके विविध रूप दोनों के वर्ण्य विषय रहे हैं। कृष्ण की लीलाएं अपने कई रूपों में प्रकृति को भी साथ समोए रही और वैसे भी प्रकृति अपने विविध रूपों में किसी न किसी दृष्टि से कवि को प्रभावित करती ही है। महाकवि सूर का भ्रमरगीत - प्रसंग उनकी सगुणोपासना के महत्व को प्रतिपादित करने वाला प्रसंग है और यही सब वर्ण्य - विषय के विषय हैं।

1- कृष्ण का स्वरूप:- श्रीकृष्ण वस्तुत: परब्रह्म के पूर्णावतार हैं। उनका बाल्यकाल यदि वात्सल्य, उमंग, चंचलता, चपलता और उल्लास का प्रतीक है तो कैशोर्य शृंगार - लीलाओं का, प्रौढ़ावस्था में यदि वह अलौकिक क्षमता, कुशाग्र बुद्धि और नीति-कुशलता की साकार प्रतिमा हैं तो इसके साथ ही साथ वह गीता के उपदेशक एवं स्थितप्रज्ञ योगेश्वर तथा कर्मयोगी भी हैं।

हिन्दी- साहित्य की परम्परा में आने वाले कवियों ने कृष्ण के इन सभी रूपों में से किसी न किसी रूप को अपना काव्य- विषय बनाया है। हमारे आलोच्य कवियों ने श्रीकृष्ण के स्वरूप का उद्घाटन इस प्रकार किया है :-

बाल्यावस्था - कृष्ण की बाल्यावस्था ही वात्सल्य- रस की मधुर एवं पावन- धारा का उद्गम - स्त्रोत है। हमारे दोनों कवियों ने ही कृष्ण- जन्म की कथा के लिये श्रीमद्भागवत का ही आधार ग्रहण किया है। उनके अनुसार यद्यपि देवकी - वासुदेव ने कृष्ण को जन्म दिया, परन्तु कृष्ण की निरूपम बाल- लीलाओं की आनन्दानुभूति का सौभाग्य यशोदा एवं नन्द को ही प्राप्त हुआ।

कृष्ण बचपन से ही अपने रूप- लावण्य से समस्त ब्रजवासियों को आकृष्ट कर लेते हैं। कृष्ण की विविध बाल- लीलाओं का एवं बाल- मनोवृत्तियों का दोनों

2)

कवियों ने अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है। सूर के बाल- कृष्ण हों अथवा गुरु गोबिन्दसिंह के बालक - कृष्ण, अपने नटखटपन से माता को खिझाना अथवा रिझाना उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है ।

सूरदास वस्तुत: बाल- मनोविज्ञान के महान- पारखी कहे जाते हैं । उन के बाल- वर्णन में बाल- स्वभाव की एक भी बात छूटने नहीं पाई है । ` सूरसागर ` में लगभग सात सौ पद इसी सन्दर्भ में रचे गये हैं। बाल- मन की कोई भी मूक अंतर्दशा एवं माता के हृदय की सहज स्निग्ध ममता की कोई भी भावना ऐसी नहीं जो सूर के पदों में अधूरी रह गई हो ।

गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा रचित सभी अवतार- काव्यों में से ` कृष्णावतार ` ही सबसे अधिक सरस एवं हृदयग्राही रचना है और ` कृष्णावतार ` की इस सरसता का श्रेय अधिकांशत: इसमें वर्णित कृष्ण की बाल- लीलाओं को ही जाता है । ` कृष्णावतार ` 2492 छन्दों में आबद्ध कृष्ण विषयक एक उत्कृष्ट प्रबन्ध - काव्य है जिसमें 2492 छन्दों में से 500 छन्दों में तो कृष्ण के बाल- रूप का ही चित्रण हुआ है । गुरु जी ने कृष्ण- लीला वर्णन द्वारा अधिकांशत: श्रीमद्भागवत पुराण के कथा- क्रम को ही स्वीकार किया है। कृष्ण जब अपने जन्म से पूर्व देवकी को कारागार में दर्शन देते हैं, उस समय उनका रूप श्रीमद्भागवतानुसार साक्षात् ब्रह्मतुल्य दृष्टिगत होता है :-

` संख गदा कर और त्रिशूल धरे
तन कउच बहु बड़भागी ।
नंद गहे कर सारंग सारंग
पीत धरे पट पै अनुरागी ।
सोई हुती जनग्यी इह के गृह
के डरपै मन में उठ जागी ।
देवकी पुत्र न जान्यो लख्यो
हरि के के प्रणाम सुपाइन लागी ॥ 57 ॥

श्रीकृष्ण का यह विराट एवं वन्दनीय रूप उनके लोकरक्षक स्वरूप को भी प्रत्यक्ष कर देता है । वास्तव में गुरू जी की दृष्टि कृष्ण के जन्म से ही उनके दुष्ट- विनाशक रूप पर ही बराबर बनी रही है । वे आरम्भ में ही कहते हैं :-

` काल पुरख के बदन ते संतन हेत सहाइ ।
मथुरा मंडल के बिखे जन्म धरयौ हरिराइ ।। 3 ।।

लेकिन इसके साथ- साथ ही जहां कहीं भी कृष्ण की बाल- क्रीड़ा का कोई प्रसंग उपस्थित हुआ है वहां गुरू जी उसमें पूर्णत: तन्मय हो गये प्रतीत होते हैं

महाकवि सूर ने तो कृष्ण की बाल- लीलाओं की जैसी मनोहर झांकी प्रस्तुत की है, वैसी झांकी विश्व- साहित्य की किसी भी भाषा में मिलनी असंभव है । इस विषय में डॉ० हरगुलाल लिखते हैं कि :-

- ` निश्चय ही इस दृष्टि से सूर एक महान् कवि हैं। सब कवि उन से पीछे हैं और वे सबसे आगे हैं तथा उनका ` सूरसागर ` यशोदा के वात्सल्यपरक हृदय की अप्रीतम झांकी प्रस्तुत करने के कारण काल के पट पर एक अमिट चिन्ह बन गया है ।[1] ` सूरदास की यशोदा बाल- कृष्ण को झूले में झुलाती हुई मधुर गीत गा रही है :-

` जसोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ - सोइ कछु गावै ।
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहे न आनि सुवावै ।
तू काहे न बेगिहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै ।
-+ + +
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ, सो नंद भामिनी पावै ।। 66 ।। `

1- सूरकाव्य: नया परिदृश्य - डॉ० हरगुलाल- पृष्ठ 46 ।

अब पलने में झूल रहे बाल- कृष्ण का गुरू जी द्वारा चित्रित एक चित्र द्रष्टव्य है:-

` बालक रूप धरे हरि जी,
पलना पर झूलत हैं तब कैसे ।
मात लजावत है तिह को श्री
झुलावत है करि मोहित कैसे ।।
ता छबि की उपमा अति ही
कवि स्याम कही ते फुनि ऐसे ।
भूमि दुखी अति ही मन में
जनु पालत है रिपुदैतन जैसे ।। 103 ।। `

वास्तव में यह गुरू गोबिन्दसिंह के विलक्षण व्यक्तित्व का ही परिणाम है कि शिशु को पालने में झुलाती हुई मां मन में यही आशा करती है कि उसका यही नन्हा सा बेटा, जो अब पालने में झूल रहा है, बड़ा होकर दैत्यों का संहार करेगा । माता के हृदय में पुत्र के प्रति नाना अभिलाषाओं का होना स्वाभाविक ही है । लेकिन जहां गुरू जी की यशोदा मन में यही एक आशा लिये है कि उसका पुत्र दैत्य- संहार करेगा, वहां सूर की यशोदा एक सरल - हृदया जननी मात्र है । माता यशोदा के हृदय के भावों को सूर ने जिस प्रकार अभिव्यक्ति दी है, उससे मातृ- स्नेह का अजस्त्र स्त्रोत प्रवाहित हो रहा है :-

` जसुमति मन अभिलाष करै ।
कब मेरो लाल घुटुरुवनि रेंगे, कब धरनि पग द्वैक धरै ।
कब द्वै दांत दूध के देखौं, कब तोतरै मुख बचन झरै ।
कब नंदहिं बाबा कहि बोलै, कब जननी कहि मोहिं ररै ।
कब मेरो अंचरा गहि मोहन, जोइ- सोइ मोसौं झगरै ।
कब धौं तनक- तनक कछु लेहै, अपने कर सौं मुखहिं भरै ।
कब हंसि बात कहैगो मोसौं, जा छबि तैं दुख दूरि हरै ।। 694 ।। `

माता की अभिलाषा पूर्ण होने लगती है। कृष्ण ` घुटुरुनि ` चलने लगते हैं और सूर तन्मय होकर गा ही तो उठते हैं :-

5)

` सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटुरुनि चलत रेनु- तन - मंडित मुख दधि लेप किए ।
चारु कपोल, लोल, लोचन, गोरोचन- तिलक दिए ।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप- गन मादक मधुहिं पिए ।
कठुला- कंठ, बज्र केहरि- नख राजत रुचिर हिए ।
धन्य सूर एकौ पल इहि सुख, का सत कल्प जिए ।। 717 ॥ `

कृष्ण को घुटनों के बल रेंगते देख कर गुरु जी के नंद- यशोदा ` धन्य हो जाते हैं । स्वयं ` त्रिभंगी ` लाल जिनके घर अवतरित हुए हों, वे भला प्रसन्न क्यों न होंगे-

` कान्ह चले घुटुआं करि भीतर
मात करै उपमा तिहि चंगी ।
लालन की मन ख्याल किधौं
नंद धेनु सभै तिहिं के सम संगी ।।
लाल भई जसुदा पिख पुत्रहिं
जिउ धनि मैं चमके दुतरंगी ।
किउ नहीं होवै प्रसन्न सुमात
भयो जिनके गृह तात त्रिभंगी ।।
- कृष्णावतार , छं0 114

बाल- कृण के घुटनों के बल चलने का जितना स्वाभाविक चित्रण सूर के काव्य में हुआ है उतना किसी अन्य भाषा के साहित्य में मिलना सम्भव नहीं है । मणि जड़ित कनक प्रांगण में कृष्ण अपनी ही छाया को पकड़ने का प्रयास करते हुये सबको अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं :-

` किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत ।
मनिमय कनक नंद के आंगन, बिंब पकरिबैं धावत ।
कबहुं निरखि हरि आपु छांह कौं, कर सौं पकरन चाहत ।
किलकि हंसत राजत द्वै दतियां, पुनि- पुनि तिहिं अवगाहत ।।728 ।। `

कृष्ण के कुछ और बड़े होने पर माता यशोदा उन्हें हाथ पकड़ कर चलना सिखाती है और पांव लड़खड़ाने से कृष्ण गिर- गिर पड़ते हैं , कितना स्वाभाविक चित्रण है :-

` सिखवति चलन जसोदा मैया ।
अवलंबाइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरे पैया । 733 । `

गुरू गोबिन्दसिंह के कृष्ण को तो गोकुल के बाल- गोपाल ` गडियारे ` में बैठा कर गांव भर में घुमाते हैं :-

` राह सिखावन काज गडीहर, गोप मनो मिलके सु बनायो ।
कान्हहिं को तिह ऊपै बिठाइ के, आपने आंगन बीच धवायो ।।
फेरि उठाइ लयो जसुधा उर, मों गहि के पय पान करायो ।
सोइ रहे हरि जी तब ही, कवि ने अपने मन में सुख पायो ।। 115 ।। `

यहां ` गडियारे ` का वर्णन देश एवं कालानुसार बदलते हुये उपकरणों के प्रति कवि की सजगता का ही उदाहरण है। आज भी तो पंजाब के घरों में लकड़ी के गडियारों पर खेलते हुये बच्चे देखे जा सकते हैं । अत: सूर के कृष्ण जहां अंगुली पकड़- पकड़ कर चलना सीखे थे, वहां गुरू जी के युग ने उन्हें चलना सिखाने के लिये गडियारा प्रस्तुत कर दिया ।

प्राय: देखने में आता है कि छोटे बच्चे जो भी वस्तु अपने सामने पाते हैं, अज्ञानवश अपने मुंह में डाल लेते हैं। मिट्टी तो प्राय: सभी बच्चे खाते हैं और मां के धमकाने पर छगल देते हैं । बालक कृष्ण भी इससे नहीं बच सके । सूर की पैनी दृष्टि ने उन्हें मिट्टी खाते देख ही लिया और माता यशोदा छड़ी लेकर कृष्ण को धमकाने लगी-

` मोहन काहे न उगिलौ माटी ।
बार- बार अनरुचि उपजावति, महरि हाथ लिए सांटी ।। 872 ।। `

गुरू जी के बाल- कृष्ण भी मिट्टी खाते हुये पकड़े गये और गुरू जी ने भी झट से माता यशोदा को छड़ी लिए हुए वहां पहुंचा दिया :-

` गोपी गईं अपने गृह में तब ते हरि जी इक खेल मचाई ।
संग लयो अपने मुसलीधर देखत ता मिटिआ इन खाई ।। 131 ॥

+ + +

मात गह्यो रिस के सुत को तब ले छिंटीआ तन ताहि प्रहार्यो ।
तऊ मन मधि डर्यो हरि जी जसुधा जसुधा करिके जु पुकार्यो ॥ 132 ॥ `

बालक के रूठने- मचलने के सौन्दर्यपूर्ण चित्र देकर सूर ने बाल- प्रकृति के चित्रण में अनोखा एवं अनूठापन भर दिया है । चांद को चमकते देख कर कृष्ण उसे लेने के लिए मचलने लगते हैं:

` भैया, मैं तो चंद- खिलौना लैहौं ।
जैहो लोटि धरनी पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं ।। 811 ॥ `

किसी प्रकार थाली में पानी डाल कर माता यशोदा चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब उन्हें दिखा देती है तो बालक उसे न पकड़ पाने के कारण और अधिक मचलने लगता है तो मां धीरे- धीरे लोरी गा कर उसे सुलाने की चेष्टा करती है। वस्तुत: महाकवि सूर ने बाल -कृष्ण के माध्यम से बच्चे की सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेष्टाओं एवं कार्यों का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है । सभी बालकों की भांति कृष्ण को भी दूध नहीं भाता । बच्चों में स्पर्धा का भाव तो होता ही है, तो माता यशोदा कृष्ण को बलराम जैसी बड़ी चोटी हो जाने का लालच दे कर दूध पिलाती है :-

` कजरी को पय पियहु लाल जासौं तेरी बेनि बढ़ै ।
जैसे देखि और ब्रज बालक, त्यौं बल- बैस चढ़ै ।। 792 ॥ `

किन्तु जब कुछ दिन दूध पीने पर भी चोटी जैसी की तैसी रही तब फिर शिकायत होती है :-

` भैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ।
कितौ बेर मोहिं दूध पियत भई यह अबहूं है छोटी ॥ 796 ॥ `

इसी प्रकार तरह - तरह की क्रीड़ाएं करते हुए कृष्ण बड़े होने लगते हैं । उनके साथ- साथ उनके कार्यकलाप भी बढ़ने लगते हैं । चपलता और विनोदप्रियता बालकृष्ण के स्वभाव की सुन्दर पहचान है । अपनी आयु के अन्य बालकों के साथ क्रीड़ा करते समय उनकी चपलता देखी जा सकती है। गुरू जी के बाल- कृष्ण तो अपनी ग्वालमंडली सहित

8)

यमुना- तट पर जा कर पक्षियों की भांति चहचहाते हैं, पशु- शावकों की भांति कलौंचें भर - भर कर उछलते - कूदते हैं और फिर तालियां बजा- बजा कर नाचने लगते हैं । देखिए कितना स्वाभाविक चित्र है :-

` गोपन सों मिलि के हरि जी, जमनातट खेल मचावत हैं।
जिम बोलत हैं खग बोलत हैं जिम धावत हैं तिम धावत हैं।
फिर बैठ वरेतन मध्य मनी, हरि सों वह ताल बजावत हैं।
कवि स्याम कहै तिनकी उपमा सुभगीत भले मुख गावत हैं ॥ ॥१॥

बालक- कृष्ण ग्वाल- बालों से मिलकर खेलने के साथ- साथ एक ऐसी युक्ति भी निकालते हैं जिससे कुछ मनोरंजन भी हो जाये और खाने को भी मिल जाये । बस अब माखन- चोरी का धंधा आरम्भ हो जाता है जो आगे चल कर उपद्रव का रूप धारण कर लेता है । सूरदास जी कहते हैं :-

` हरि सब भाजन फोरि पराने ।
हांक देत पैठे दै पेला नैकु न मनहिं डराने ।
सींके छोरि मारि लरिकनि कौं माखन- दधि सब खाइ ।
भवन मच्यौ दधि कांदौ, लरिकनि रोवत पाइ जाइ ।। 946 ॥

कृष्ण का यह उपद्रव बढ़ता ही जाता है और जब गोपियां उलाहना देने आती हैं तो बड़ी चालाकी एवं तर्क संगत उत्तर द्वारा वे अपने को निर्दोष साबित करते हैं :-

` मैया मैं नहिं माखन खायौ ।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायौ ।
देखि तुही सींके पर भाजन, ऊंचे धरि लटकायौ ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपनैं मैं कैसे पहिचायौ ।
मुख दधि पोंछि बुद्धि इक कीन्ही, दोना धरि दुरायौ । 952 ॥ `

उपद्रव मचाने एवं माखन- चोरी करने में तो गुरू गोबिन्दसिंह के बाल- कृष्ण भी पीछे रहने वाले नहीं हैं। आखिर तंग आकर गोपियां माता यशोदा को उलाहना देने आती हैं :-

` खाइ गयो हरि जी जब माखन तौ गोपियां सब जाइ पुकारी ।
बात सुनो पत की पत्नी तुम हार गई दधि की सख सारी ।
कान्ह के डर ते हम चोर के राखत है चढ़ ऊँच अटारी ।
ऊखल के धरके मनहा पर खात है लंगर दै कर गारी ॥ 124 ॥
होत नहीं जिहके घर में दध दै कर मारन सोर करै हैं ।
जो लरका जनि के खिझ है जन तो मिल सोटन साक भरै हैं ।
आर परै जु त्रिया तिह पै सिर ते तिह वार उखाड़ टरै हैं ।
बात सुनो जसुधा सुत की सु बिना उत्पात न कान्ह टरै हैं ॥ 125 ॥

और जब यशोदा कृष्ण को डांटने लगती है तो वे एक सुन्दर सा बहाना बनाते हैं । वे कहते हैं कि मां, गोपियां मुझे बहुत तंग करती हैं कभी तो वो मेरी टोपी उतार लेती हैं और अपने नाक पर उंगली रखकर मुझे नाक रगड़ने के लिये कहती हैं, तब कहीं जाकर मुझे टोपी मिलती है :-

` मात कह्यो अपने सुत को कहु किंउकरि तोहिं खिझावत गोपी ।
मात की बात कही सुत यों करि सौ गहि मांगत हैं मुहि टोपी ।
डार के नास बिखे अंगुरी सिर मारत हैं मुहि को वे धोपी ।
नाक घसाइ हसाइ उनैं फिर लेत जबै वे देत हैं टोपी ।। 127 ।। `

तब बालक की परेशानी देखकर माता अधीर हो उठती है और उसे सान्त्वना देने के लिए गोपियों को डांटती हैं :-

` मात खिझो उन गोपिन सौं, तुम क्यों सुत मोहि खिझावत हो री ।
बोलत हो अपने मुख तैं हमरे धन है दधि दाम सु गोरी ।
मूढ़ अहीरन जानत है बढ़ बोलत ही सु रही तुम ठोरी ।
कान्हहिं साध बिना अपराधहिं बोलहिंगी जु मई कछु बौरी ।। 129 ॥ `

और साथ ही गोपियों से यह भी कहा कि अगर मेरा कान्ह एक सेर दूध या दही बिगाड़े तो तुम मेरे से आकर एक मन ले लेना :-

` विनती कै जसुधा तबै दोऊ दये मिलाइ ।
कान्ह विगारे सेर दध लेहु मन क तुम आइ ॥ 129 ॥`

10) वस्तुत: बाल- मनोविज्ञान की ऐसी सूक्ष्म अभिव्यक्ति एवं माता की ममता का ऐसा सुन्दर उदाहरण (जैसाकि कृष्णावतार में है) सूर के अतिरिक्त अत्यन्त अत्यल्प ही दृष्टिगत होता है ।

हमारे इन विवेच्य कवियों ने जिस प्रकार वात्सल्य के संयोग पक्ष का हृदय-स्पर्शी वर्णन किया है, उसी प्रकार वियोग-पक्ष का भी उन्होंने बड़ा सजीव वर्णन किया है । इन भावों का चित्रण अक्रूर के आगमन से ही प्रारम्भ हो जाता है। कृष्ण के मथुरा जाने की बात सुनकर सूर की यशोदा व्याकुल हो उठती है :-

` जसुदा बार- बार ज्यौं आखै ।
है कोऊ ब्रज में हितु हमारौ चलत गोपालहिं राखै ।३३८। ।

सूरदास की उपरोक्त पंक्तियां गुरू गोबिन्दसिंह की निम्न पंक्तियों से कितनी मिलती जुलती हैं । द्रष्टव्य है:-

` रोवन लाग जलै जसुधा अपने मुख ते इह भांत सो भाखै ।
को है हितु हमरो ब्रज में चलते हरि को ब्रज में फिरि राखै ॥ 794 ॥ `

सूर की यशोदा कृष्ण के वियोग को सहन नहीं कर पाती । मक्खन को देखकर उसके हृदय में हूक सी उठती है और वो मधुवन को संदेशा भेजती है जिसकी निम्न पंक्ति में उसके हृदय की मर्मान्तिक पीड़ा मुखर हो उठती है :-

` सूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख जोग । 3784 । `

और वे उपालम्भ के स्वर में कहती है :-

` संदेसौ देवकी सौं कहियौ ।
हौं तो धाइ तिहारे सुत की दया करत ही रहियौ । 3793 । `

सूरदास जी ने वियोग- वात्सल्य के अनेक अप्रतिम- चित्र उपस्थित किये हैं जिन में माता की ममता एवं मातृ-हृदय की विरहजनित व्याकुलता साकार क हो गई है । महाकवि सूर माता के सहज हृदय के अतुलनीय स्नेह को व्यक्त करने में पूर्ण सक्षम हुए हैं । लेकिन गुरू गोबिन्दसिंह के का सर्वाधिक वैशिष्ट्य एवं मौलिकता उस बात में है जो हिन्दी में कृष्ण चरित्र में सदैव उपेक्षित रही है। ` माता यशोदा तथा प्रेमिका गोपियों के विलाप

11)

और विरह पर कृष्ण साहित्य में उक्तियों का अभाव नहीं । परन्तु मां और प्रेमिका के अतिरिक्त भी एक व्यक्ति है जो वियोग की पीड़ा से पीड़ित होता है परन्तु मुंह से बहुत कम बोलता है और वह है पिता । गुरु गोबिंदसिंह ने नंद बाबा की मनः स्थिति का परिचय देने वाले कुछ पद लिखे हैं जो अपनी मार्मिकता एवं मौलिकता में हिन्दी- साहित्य में अद्वितीय हैं ।[1] कृष्ण का संदेश लेकर उद्धव ब्रज आते हैं तो पुत्र प्रेम से व्याकुल नन्द उनसे यही प्रश्न करते हैं कि क्या कभी कृष्ण उनकी याद करते हैं, और यह कहते - कहते वे मूर्च्छित हो जाते हैं :-

प्रात भए तै बुलाइके उद्धव मैं ब्रिज भूमहि भेज दयो है ॥
सो चलि नन्द के धाम गयो बतियां कहि सेक असोक भयो है ।
नन्द कह्यो संगि उद्धव के कबहूं हरि जी मुहि चित्त कयो है ॥
यौ कहिके सुधि स्यामहि के धरनी पर सो मुरझाइ पयो है ॥ 894 ॥

निरीह पिता विधि की इस विडम्बना पर रो उठता है कि उनका एकमात्र पुत्र बिना किसी अपराध के उनसे दूर हो गया :-

स्याम गए तजिके ब्रिज को ब्रिज लोगन को अति ही दुख दीनो ॥
उद्धव बात सुनौ हमरी तिह के बिनु भ्यो हमरो पुर हीनो ॥
दै विधि नै हमरे गृह बालक पाप बिना हमते फिर छीनो ॥
यौ कहि सीस झुकाइ रह्यो बहु लोक लह्यो अति रोदन कीनो ॥896 ।

पुत्र- वियोग में व्याकुल नंद उद्धव से यह जानना चाहते हैं कि उनके किस पाप के कारण कृष्ण उनसे रुष्ट हो गये । वे बार- बार उद्धव से यही पूछते हैं :-

कहि के इह बात पर्‌यो धरि पै उठ फेर कह्यो संग उद्धव इउ ॥
तजि के ब्रिज स्याम गए मथुरा हम संग कहो अब कारन किउ ॥
तुमरे अब पाइ लगौ उठि के सुभई बिरथा सु कही सभ जिउ ॥
तिहते नहिं लेत कछू सुधि हैं मुहि पाप पछान कहू रिस सिउ ॥ 897 ॥

1- गुरु गोबिंदसिंह और उनकी हिन्दी कविता -डॉ0 महीपसिंह -पृ0 163 ।

12)

नंद बाबा की व्याकुलता देख कर उद्धव भी विचलित हो जाते हैं और उन्हें सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि कृष्ण तुम्हारे पुत्र नहीं थे वे तो वासुदेव के पुत्र थे । इस कठोर सत्य को सुनकर बाबा नन्द अपना धीरज खो बैठते हैं और उनके साथ - साथ उद्धव भी रोने लगते हैं[1] । इस प्रकार गुरू गोबिन्दसिंह जी ने यशोदा के मातृ- हृदय की सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति के साथ- साथ पिता के हृदय की मर्मान्तक पीड़ा को भी मुखरित किया है जो सूर- काव्य में नहीं है ।

गुरू जी के बाल- कृष्ण भोले, अबोध एवं नटखट हैं। गुरू जी ने कृष्ण की बाल लीलाओं का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है । बाल मनोविज्ञान की अभिव्यक्ति के साथ- साथ मातृ- हृदय की परख एवं पिता का मनोविज्ञान भी इन लीलाओं में व्यंजित हुआ है। गुरू जी ने बाल लीलाओं से उत्पन्न वात्सल्य के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का सुन्दर चित्रण किया है।

इसी प्रकार ` सूरसागर ` का बाल- वर्णन अपने पूर्ण वैशिष्ट्य के साथ बाल मनोविज्ञान और माता के सहज हृदय ' के अतुलनीय स्नेह को व्यक्त करने में पूर्ण सक्षम है। इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की उक्ति सर्वथा युक्तिसंगत प्रतीत होती है - " जितने विस्तृत और विशद् रूप में बाल्यजीवन का चित्रण इन्होंने किया है उतने विस्तृत रूप में और किसी कवि ने नहीं किया । शैशव से लेकर कौमार्यावस्था तक के क्रम से लगे हुये न जाने कितने चित्र मौजूद हैं । उन में केवल बाहरी रूपों और चेष्टाओं का ही विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन नहीं है, कवि ने बालकों की अन्तःप्रकृति में भी पूरा प्रवेश किया है और अनेक वात्सल्य- भावों की सुन्दर अभिव्यंजना की है ।[2] "

वास्तव में ही चक्षुविहीन सूर ने बालक कृष्ण की जिन सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोवृत्तियों के दर्शन किये हैं तथा हू बहू उन्हें अपने काव्य में उतारा है, वह एक कुशल चित्रकार

1- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` - दशमग्रंथ(प्रथम भाग) - छं0 सं0 - 898 ।

2- सूरदास - आचार्य शुक्ल - पृ०-107 ।

द्वारा भी सम्भव नहीं । इस सम्बन्ध में डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा लिखते हैं कि - ` सांप्रदायिक सिद्धान्त की बात कुछ भी हो, जहां तक सूरदास की बात है, उनके काव्य में हम जहां यह देखते हैं कि उन्होंने वात्सल्य और सख्य भावों को कृष्ण - लीला के वर्णन में ऐसा चित्रित किया जैसा कभी कोई और कवि नहीं कर सका, वहां माधुर्य या कांता - भाव की लीलाओं का अपेक्षाकृत और भी अधिक विस्तार और गहराई के साथ सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण करने में कुशलता की चरम- सीमा प्रस्तुत कर दी गई है ।[1] `

गुरु गोबिन्दसिंह के बाल - वर्णन के विषय में डॉ० संसारचन्द्र लिखते हैं कि - ` गुरु जी ने जहां भी कृष्ण की बाल- लीला का कोई प्रसंग प्रस्तुत किया है, वहां वे उसमें पूर्णत: तन्मय हो गये प्रतीत होते हैं । सहज बाल- चापल्य तथा शिशु - हृदय की नैसर्गिक अनुभूतियों का चित्रण करते - करते वे स्वयं उसमें खो जाते हैं एवं उन की लेखनी पाठक को अनायास ही स्थिति का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करा देती है ।[2] `

गुरु जी ने अपने 2492 छन्दों में आबद्ध ` कृष्णावतार ` के लगभग 500 छन्दों में कृष्ण के बाल- रूप का चित्रण किया है परन्तु खेद की बात यह है कि अत्यल्प परिचित गुरमुखी लिपि होने के कारण हिन्दी- आलोचकों को उन से अवगत होने का अवसर नहीं मिल सका । अत: आज तक भी हिन्दी की कृष्ण- काव्य- शृंखला में गुरु गोबिंद- सिंह जी को कोई स्थान प्राप्त नहीं हो सका ।

यह निर्विवाद सत्य है कि बाल- वर्णन की दृष्टि से सूर एक महान् कवि हैं और बाकी सब कवि उन से पीछे हैं। वात्सल्य के क्षेत्र में उनका कोई सानी नहीं है। ` आदि कवि बाल्मीकि के पश्चात् संस्कृत के कवियों ने तो इसपर कलम ही नहीं उठाई । हिन्दी में भी, केवल दो - चार कवियों ने ही बालकों की स्वाभाविक सरलता, सुकुमारता और निष्कपटता का वर्णन किया है ।हां, विश्वकवि रविन्द्रनाथ टैगोर ने बंगला में उन

1- सूरदास- डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा - पृष्ठ 58 ।
2- परिक्षोध (गुरु गोबिंदसिंह विशेषांक) - अंक 5: पृ० - 54।
3- सूर- [illegible] (डॉ० [illegible]
(डॉ० [illegible]

उन भावों को अवश्य व्यक्त किया है। परन्तु सूर की सहजता, स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता को स्पर्श करने में वे भी असमर्थ थे।[1] ` गुरू गोबिन्दसिंह जी द्वारा वर्णित कृष्ण- बाल-लीला की तुलना सूर से करने पर तो तथ्य स्पष्ट होते हैं। एक यह कि गुरू जी द्वारा इन बाल- लीलाओं में सूर का तनिक भी अनुकरण नहीं किया गया। उनके सभी चित्र सर्वथा नवीन और मौलिक हैं। दूसरा यह कि भले ही उनके चित्र मात्रा से कम हैं किन्तु बाल- मनोविज्ञान, शैशव सुलभ चपलता और किशोर अठ-खेलियां - इन सभी की दृष्टि से वे कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। उन्हें बाल- मनोविज्ञान के पारखी के रूप में यद्यपि सूर के समक्ष प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता तथापि उनके काव्य में एक ऐसी नवीनता, सहज ऋजुता एवं सुचारूता सन्निहित है जो उन्हें कृष्ण बाल -लीला के अमर गायकों में एक विशिष्ट स्थान दिलाने के लिये पर्याप्त है।[2] `

2- युवावस्था :- युवावस्था में कृष्ण एक प्रेमी एवं पति के रूप में हमारे सामने आते हैं। कृष्ण वस्तुत: प्रेम स्वरूप हैं और उनका ` मन- मोहन ` नाम पूर्णत: सार्थक है। नर- नारी, बालक, वृद्ध सब उनकी अद्वितीय सौन्दर्य राशी की ओर समान रुप से आकृष्ट होते हैं। कृष्ण की रूप- माधुरी और मधुर - वाणी से समस्त गोपियां मोहित होकर किर्कर्तव्यविमूढ़ हो जाती हैं :-

` कमल सो अंग कुरंग ताके बारे नैन कटि,
सम केहरि मिनाल वाहे सेन है।
कोकिल सो कंठ कीर नासका धनुख भउहैं,
बानी सुरसर जाहि लागे नही चैन है।
त्रीअन को मोहति फिरति ग्राम आस- पास,
बिरहन के दाहवे को जैसे पतरैन है।
पुन मंद मति लोग कछु जानत न भेद याको,
ऐसे पर कहे चारवारी स्याम धेन है।[3] `

1- सूर-साहित्य - सन्दर्भ - सम्पादक डॉ0 गिरिराज शरण अग्रवाल, पृष्ठ 201
2- परिशोध (5) गुरू गोबिन्दसिंह विशेषांक - पृ0 47।
3- कृष्णावतार- छं0 सं0 - 190।

15)

कृष्ण ज्यों- ज्यों बड़े होते जाते हैं उनका रूप- सौन्दर्य और निखरता जाता है। ब्रजबालाएं उनके आकर्षण रूप को देखकर काम विह्वल हो जाती हैं।[1]

श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिये गोपियां व्रताचरण करती हैं। चीरहरण लीला के द्वारा कृष्ण उनके व्रत को सफल करते हैं। इस प्रसंग में हमारे दोनों कवियों ने कृष्ण की बाक्- चातुरी और गोपियों की मानसिक दशा का अच्छा वर्णन किया है।[2]

युवा कृष्ण लोक- कल्याण के लिये कालिय दमन करते हैं और गिरि-धारण करते हैं जिनके हेतु भी उनकी ओर गोपियों का आकर्षण एवं प्रेम बढ़ता ही जाता है। शरद् ऋतु की एक रात्री को कृष्ण के मुरली- वादन को सुनकर गोपियां अपनी सुध - बुध खो कर भागी चली आती हैं। कृष्ण पहले तो उन्हें धर्म की बातें बता कर लौट जाने को कहते हैं।[3] तत्पश्चात् वे सबके साथ रमण करते हैं। पर जब गोपियों के मन में गर्व उत्पन्न हो जाता है तो वे अन्तर्धान हो जाते हैं और उनके प्रेम की परीक्षा लेने के बाद पुन: प्रकट हो उन्हें आनन्द प्रदान करते हैं। कृष्ण कभी तो रसिक प्रेमी की भांति गोपियों से छेड़छाड़ करते हैं और कभी उन्हें धर्म की गम्भीर बातें कहते हैं। रास-क्रीड़ा और जल- क्रीड़ा द्वारा वे गोपियों को स्वर्गिक सुख प्रदान करते हैं।

हमारे दोनों कवियों ने राधा- कृष्ण के प्रेम का विस्तृत वर्णन करते हुए कृष्ण को राधा- वल्लभ के रूप में चित्रित किया है। राधावल्लभ कृष्ण रतिनागर भी हैं और चतुर प्रेमी भी।

तत्पश्चात् कृष्ण प्रवासी नायक के रूप में हमारे सामने आते हैं जो मथुरा में जाकर गोपियों की सुध नहीं लेते। लेकिन वे गोपियों को भूलते नहीं। अपने सखा उद्धव को वे संदेशा देकर ब्रज भेजते हैं। गोपियों के निरीह प्रेम को वे बारम्बार याद करते हैं।

1- कृष्णावतार - छं० सं० - 273,274

2- (1) सूरसागर - पद सं० 1384-1417 तक (2) कृष्णावतार - छं० सं० 251 से 292 तक।

3- सूरसागर - पद सं० 1637 -46 तक।

16)

कृष्ण एक आदर्श पति के रूप में भी हमारे सामने आते हैं। वे अपनी पत्नियों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं। रूक्मिणी का उद्धार कर उसे अपनी पत्नी बना कर अतुल्य आनन्द प्रदान करते हैं। सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही कृष्ण के पति- रूप का चित्रण किया है। सूरदास की तो राधा भी स्वकीया है। रूक्मिणी- विवाह का प्रसंग सूरसागर की अपेक्षा अधिक विस्तार लिए हुए है ।

इस प्रकार हमारे कवियों ने कृष्ण के रसिकेश्वर रूप का सुन्दर चित्रण किया है ।[1]

लोकनायक के रूप में - श्रीकृष्ण का आविर्भाव वस्तुत: लोक- कल्याण के लिये हुआ था । हमारे दोनों विवेच्य कवियों ने कृष्ण के चरित्र में लौकिक लीलाओं के साथ - साथ अलौकिक लीलाओं का भी निरूपण किया है। उनके कृष्ण जगत् के स्वामी, अगम, अगोचर, अविनाशी, पूर्ण ब्रह्म और लीला पुरूषोत्तम हैं। वे चारू गदा, शंख, चक्र और पद्म तथा चतुर्भुजधारी हो कर जन्म लेते हैं ।[2] कृष्ण अपने बाल्यकाल में ही पूतना, शकटासुर, तृणावर्त आदि अनेक असुरों का संहार करते हैं। दावानल-पान, कालिय-दमन, गोवर्धन धारण, माता को मुख में ब्रह्माण्ड दिखाना, यमलार्जुन- उद्धार, नंद को वरूण के पाश से मुक्त कराना, मुचकंद को वरदान देना, बाणासुर के साथ युद्ध करते समय महाकाल शिव को परास्त करना आदि अनेक उदाहरण ऐसे हैं जो कृष्ण के अलौकिक एवं दुष्ट- दमन रूप को उजागर करते हैं। कृष्ण वस्तुत: लोक- कल्याण के लिये ही अनेक लीलाएं करते हैं ।

सूर- साहित्य में लोकनायक कृष्ण का चरित्र- चित्रण भागवत की कथा के आधार पर हुआ है , किन्तु सूर कृष्ण के इस रूप को उतना अधिक उज्जवल एवं आभामय नहीं बना पाये जितना कि उनके लोकरंजक रूप को उन्होंने बनाया है। वास्तव

1- कृष्ण के रसिकशिरोमणि रूप का वर्णन विभिन्न स्थलों पर सन्दर्भानुसार यथेष्ट मात्रा में हो चुका है। अत: यहां उसकी पुनरावृत्ति उचित प्रतीत नहीं होती ।

2- (1)सूरसागर- पदसं0- 491 (2) कृष्णावतार- कं0 सं0- 57 ।

में सूरसागर में कृष्ण की लीलाओं का क्रम नित्य कीर्तन वाला है अत: उसमें कृष्ण का लोकनायक एवं योद्धा रूप उभरने नहीं पाया है । सूर का उद्देश्य तो कृष्ण भक्ति में रम कर उनके वात्सल्य एवं सख्यादि कोमल भावों को दर्शाना ही था। फिर भी, हम यह नहीं कह सकते कि सूर के काव्य में कृष्ण के लोकरक्षक रूप का अभाव है। वत्सासुर, अघासुर एवं बकासुर नामक असुरों का कृष्ण द्वारा वध भी इसका ही प्रतीक है कि निन्दक व्यक्ति को दूर करना ही अच्छा है[1] । इसी में लोक- कल्याण है । और फिर दूसरे अर्थ में बकासुर, वत्सासुर, कागासुर, अघासुर, धेनुकासुर आदि सभी पशु-पक्षियों का प्रतीक हैं जो खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं। अत: इनका वध करके कृष्ण ने अन्न एवं धन के अभाव को दूर कर सामाजिक उन्नति का कार्य किया । देखा जाए तो कालिय- दमन भी यमुना के जल को निरापद करने के लिये ही किया गया है । इस विषाक्त जल का पान करके जीव- जन्तु चिरनिद्रा को प्राप्त हो जाते थे अत: कालिय-नाग का वध कर कृष्ण ने उस विवाक्त जल को निरापद बना दिया । गोवर्धन - धारण की कथा भी प्राचीन रूढ़ियों को तोड़कर नवीनता को अपनाने का ही प्रतीक है। महराने पाण्डे की कथा, जोकि सूर की मौलिक सूझ- बूझ की परिचायक है, जाति- पांति की रूढ़ियों को तोड़ने का ही संकेत देती है। इस प्रकार सूर के कृष्ण की उपरोक्त लीलायें लोक- कल्याण का ही संदेश देती हैं।

इसके अतिरिक्त कृष्ण ने कंस के अन्यायों एवं अत्याचारों से दबे - झुके जन- मानस के खोये आत्माभिमान को जगा कर कंस के विरोध एवं वध द्वारा नवजागरण का संदेश दिया ।

वास्तव में सत्य तो यह है कि सूर- साहित्य की भाव- भूमि वस्तुपरक होते हुये भी आत्मपरक है और सूरदास का अभिप्राय कृष्ण-लीला के माध्यम से अपने

1- ` वद् ` धातु से ` वत्स `, वमक् धातु से ` वक ` और ` अघ् ` धातु से ` अघ बनता है। और यह सर्वविदित है कि ` वद् प्रकाशे `, वमक् - कौटिल्ये ` तथा ` अघ पापे ` के अर्थ में व्यवहृत होता है। अत: वत्सासुर, वकासुर एवं अघासुर से तात्पर्य क्रमश: निन्दक, कुटिल शत्रु एवं पापी से है ।

अंतस्तल का उद्घाटन करना ही था । सम्भवत: यही कारण रहा होगा कि सूर लोक-धर्मप्रधान और अध्यात्म प्रधान भागवत का अवलम्बन करने पर भी भागवत के प्रतिपाद्य अध्यात्म, लोक धर्म एवं लोकनायकत्व की ओर उन्मुख नहीं हो सकी । सूर के काव्य में कृष्ण का लोकनायक रूप मिलता तो है, लेकिन धुंधला सा । उनकी आत्मा पर तो कृष्ण का बाल एवं तरुण रूप ही छाया रहा । कदाचित् एक कारण यह भी रहा हो कि सूर चक्षुहीन थे अत: उनका काव्य- जगत् वास्तव में वही था जो उनकी मौलिक उद्भावना से उत्पन्न हुआ । इसके विपरीत गुरु गोबिन्दसिंह स्वयं एक कुशल सेनानायक, धर्मगुरु एवं वीर योद्धा थे और औरंगजेब की धर्मांधता, असहिष्णुता, अत्याचार एवं अन्याय से आतंकित निर्बल एवं असहाय जनता को धर्मयुद्ध द्वारा उत्साहित करना तथा उन्हें अपमान और अवमानता के जीवन से मुक्त कराना ही उनका उद्देश्य था। वास्तव में अपने अनुयायियों में धर्म- युद्ध का उत्साह उत्पन्न करने के लिये गुरु जी ने अपनी काव्य- शक्ति का भी पूरा उपयोग किया । ` कृष्णावतार ` भी इसी मंगलमय अभियान का एक अंग है ।

` युद्ध- प्रबन्ध ` ` कृष्णावतार ` का मुख्य भाग है जिसमें कवि ने कृष्ण के जरासंध, शिशुपाल आदि के साथ अनेक युद्धों का विस्तृत वर्णन किया है । हिन्दी के कृष्णकाव्य में यही एक पहला ग्रन्थ है जिसमें कृष्ण के युद्धों का वर्णन इतनी विशदता एवं विस्तार में किया गया है । डॉ० महीपसिंह का कथन है कि गोपी-विरह तक कृष्णावतार का कथा प्रसंग पूर्णरूप से श्रीमद्भागवत के समानांतर चला है - - - - युद्ध प्रसंग आते ही मानों कवि को अपना अभिप्रेत प्राप्त हो जाता है । श्रीमद्भागवत अथवा कृष्ण चरित्रों के अन्य स्रोतों का सहारा छोड़ कर अपने काव्य एवं कल्पना जगत् में स्वतन्त्र होकर वह विचरण करना प्रारम्भ कर देता है । कृष्ण चरित्र का भक्ति -भाव से गायन तो होता ही रहा है । कवि को तो इस महान् लोकप्रिय अवतार की प्रभावशाली जीवन गाथा से अपने युग की पीड़ित जनता में शक्ति एवं नवजीवन का संचार करना है। इसलिये इस प्रसंग में कवि का यह उद्देश्य युद्ध-भाव सामयिकता, ऐतिहासिकता, देशकाल आदि सभी बन्धनों को तोड़ कर अबाध गति से

प्रवाहित हो उठता है । भागवत के दशम स्कंध के पांचवें अध्याय में जरासंध से युद्ध का प्रारम्भ और कालयमन के वध तक का वर्णन कुल आठ पृष्ठों में हो गया है। कृष्णावतार में यह युद्ध प्रसंग लगभग उतने ही बड़े 110 पृष्ठों में पूर्ण हुआ है ।[1]

गुरु गोबिन्दसिंह के कृष्ण लोकरक्षक, वीर योद्धा, कुशल राजनीतिज्ञ, लोकनायक एवं कर्मयोगी हैं। कंस, जरासंध आदि असुर वस्तुत: गुरु गोबिन्दसिंह के लिये अत्याचारी मुगल शासकों के ही प्रतीक थे और गुरु जी उनके विरुद्ध उसी प्रकार लड़े जिस प्रकार कृष्ण असुरों के साथ लड़े थे । कृष्ण का वीर रूप ही गुरु गोबिन्दसिंह को अभीष्ट था ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कि गुरु गोबिन्दसिंह के कृष्णावतार में कृष्ण का योद्धा रूप ही अधिक उजागर हुआ है। गुरु जी ने कृष्ण के बाल एवं तरुण रूप का भी सुन्दर, सजीव एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है पर उनकी प्रवृत्ति कृष्ण के लोक - नायक रूप में ही अधिक रमी है । गुरु गोबिन्दसिंह के कृष्ण बाल्यकाल के नटखटपन एवं युवावस्था की रसिकता के साथ- साथ जीवन की व्यावहारिक नीति का सन्देश देने वाले, युद्ध में अत्याचारी का नाश करने में कुशल, निष्काम कर्मण्य- जीवन का सन्देश देने वाले एवं अत्याचारों के प्रबल- विरोधी हैं, क्योंकि युग की पुकार के अनुरूप इसी की विशेष आवश्यक्ता थी ।

महाकवि सूर के काव्य में कृष्ण का बाल और किशोर रूप ही अधिक निखरा है। भागवत पर आधारित होने के कारण सूरसागर में कृष्ण का योद्धा रूप भी दृष्टिगोचर होता है लेकिन कृष्ण के इस रूप का वर्णन सूर ने पूर्ण उत्साह से नहीं किया । फिर भी, उनके कृष्ण, जो बचपन में गांव भर में आफत मचाये रहते हैं और किशोरावस्था में पल भर के लिये भी राधा से अलग नहीं होना चाहते, अक्रूर के आते ही सारी ममता के बन्धन तोड़कर कर्त्तव्य- पथ पर बढ़ जाते हैं। इस प्रकार सूर के कृष्ण मानव मन की दुर्बलता और सबलता लिये आगे बढ़ते हैं ।

महाकवि सूर ने जहां महाभारत के महान राजनीतिक, पुराणों में परमात्मा और कहीं परमात्मा के अवतार, संस्कृत - साहित्य में मात्र किशोर नायक और संस्कृत

1- गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता - डॉ० महीपसिंह — पृष्ठ - 165-66 ।

20)

साहित्य से प्रभावित विद्यापति एवं उनके समकालीन अन्य कवियों के काव्य में चित्रित किशोर एवं रसिक कृष्ण को मानव के अतिनिकट ला कर कृष्ण - काव्य को एक नया मोड़, दिया है वहां गुरु गोबिन्दसिंह ने भी सदियों से चले आ रहे कृष्ण के बाल एवं किशोर रूप की अपेक्षा उनके योद्धा एवं वीर रूप को अधिक प्रमुखता देकर कृष्ण-काव्य को एक नयी दृष्टि और नया चिन्तन दिया है। वस्तुत हमारे दोनों कवियों ने युग की मांग एवं अपनी भावना और कल्पना से प्रेरित होकर कृष्ण चरित्र के सभी पहलुओं का सुन्दर एवं स्वाभाविक वर्णन किया है ।

कृष्ण - काव्य के अन्य पात्र

हमारे इन दोनों कवियों ने कृष्ण के अतिरिक्त कृष्ण काव्य के अन्य पात्रों का वर्णन भी यथोचित , यथास्थान एवं यथासम्भव ढंग से किया है ।

1- बलराम - सूरसागर की भांति ही गुरु जी के ` कृष्णावतार ` में बलराम का चित्रण उपलब्ध है। बलराम कृष्ण के बड़े भाई हैं, साथी हैं और कृष्ण के सदृश ही ` असुर संहारन ` हैं । वे प्रलंबासुर, मुष्टिक एवं द्विविद आदि- असुरों का वध करते हैं । कृष्ण की बाल- लीलाओं में भी बलराम उनके सहकारी हैं । तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि गुरु गोबिन्दसिंह की अपेक्षा सूर ने बलराम के बाल- स्वभाव का अधिक वर्णन किया है। सूर के बलराम खेलते समय कृष्ण को खिझाते हैं और उन से पूछते हैं - तेरी माता कौन है और पिता कौन है ? नंद और यशोदा तो गोरे हैं और तू काला है, तू तो मोल लिया गया है[1] - ` सूर के बलराम में चिढ़ाने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है ।

वस्तुत: बलराम कृष्ण के व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं । बलराम भी वासुदेव-के ही पुत्र हैं जिन्हें कंस के भय से मंत्रोच्चार द्वारा वासुदेव ने रोहिणी के गर्भ में स्थित कर दिया था । सूर और गुरु गोबिन्दसिंह दोनों ने ही इस तथ्य को स्वीकारा है

1- सूरसागर, पद सं- 833 ।

गुरु गोबिन्दसिंह के मुसलीधर(बलराम) भी एक महान योद्धा है। कृष्णावतार में कृष्ण के सदृश ही योद्धा बलराम का रूप खूब निखर कर सामने आया है ।कृष्ण के बाल्यकाल की क्रीड़ाओं में चाहे बलराम इतना साथ नहीं दे पाते लेकिन योद्धा कृष्ण का साथ उन्होंने खूब दिया है। गुरू जी के बलराम युद्ध में साक्षात् यम का अवतार बन जाते हैं ।[1] महाकवि सूर ने भी बलराम को असुर- संहार करते हुये दिखाया है। यह बात वस्तुत: ध्यान देने योग्यहै कि प्राय: असुरों का संहार करते समय बलराम कृष्ण के साथ ही रहते हैं । बलराम में कठोरता और रौद्र रूप की प्रधानता है जो गुरू जी के योद्धा बलराम में खूब उभरी है । सूर के बलराम का रौद्र रूप तब दृष्टिगत होता है जब हस्तिनापुर में वे कौरवों के अशिष्ट व्यवहार से असन्तुष्ट होकर रौद्रावतार धारण कर अपने हल की नोक से हस्तिनापुर को ही गंगा की ओर खींचने लगते हैं - सारी पृथ्वी को कौरवहीन करने के लिये ।[2]

महाकवि सूर के काव्य में बलराम भातृ- प्रेम बड़े सुन्दर रूप में व्यक्त हुआ है, जो ` अलूखल- बंधन ` प्रसंग में अधिक उभर कर सामने आता है जब कृष्ण को बंधे देखकर बलराम की आंख भर आती है और वे पहले तो कृष्ण से कहते हैं कि - ` मैंने कितनी ही बार तुम्हें रोका । पर अब अच्छा हुआ जो तुम्हारे दोनों हाथ बंध गये । अब शरारत नहीं कर पाओगे । ` पर अन्दर यशोदा माता से विनय करते हैं कि - ` स्याम को छोड़ दो, चाहे तो मुझे बांध दो । इसने कितना दूध दहीं पीया ? यह ग्वालिनें तो बौराई हुई हैं और झूठी शिकायत करती हैं ।[3] `

इस प्रकार स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण की भांति ही बलराम का चरित्र भी हमारे दोनों कवियों के कृष्णकाव्य में मानवीय तथा अलौकिक गुणों से परिपूर्ण हो

1- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` छं0 सं0- 1871 से 1881 तक ।

2- द्रष्टव्य ` सूरसागर ` पद सं0 - [illegible]-4827 ।

3- द्रष्टव्य ` सूरसागर ` पद सं0 - [illegible]-988-999 ।

22)

कर प्रस्तुत हुआ है । महाकवि सूर ने जहां बाल- लीलाओं में बलराम को कृष्ण का साथी बनाया है वहां गुरु गोबिन्दसिंह के काव्य में बलराम बाल- लीलाओं की अपेक्षा जीवन के वास्तविक क्षेत्र - युद्ध क्षेत्र में कृष्ण का पूरा - पूरा साथ देते हैं । इस प्रकार बलराम कृष्ण के अभिन्न अंग हैं ।

2- नंद- यशोदा - नंद ब्रज के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं और यशोदा उनकी पत्नी है । दोनों बलराम और कृष्ण जैसे पुत्रों को पाकर अति प्रसन्न हैं। नंद-यशोदा के विषय में पिछले पृष्ठों पर भी संदर्भानुसार काफी कुछ कहा जा चुका है ।

महाकवि सूर और गुरु गोबिन्दसिंह दोनों ने ही नंद बाबा को एक स्नेह-शील पिता के रूप में चित्रित किया है। वे सरल एवं निश्छल स्वभाव के हैं। पुत्र -जन्म के अवसर पर वे वस्त्रादि दान कर खूब आनन्दित होते हैं । यह नंद बाबा की सरल प्रकृति ही है जो वे कंस के कुचक्र पर कुछ भी विचार न करके अपने दोनों पुत्रों को अक्रूर के साथ भेज देते हैं । उद्धव के साथ वार्तालाप करते समय उनकी सहृदयता एवं पुत्र- प्रेम की अभिव्यक्ति होती है । पुत्र वियोग से व्याकुल बाबा नंद के अन्तर का उद्घाटन हिन्दी कृष्ण चरित्र में सदैव उपेक्षित ही रहा है । गुरु गोबिन्दसिंह ने नंद बाबा की मन:स्थिति का परिचय देने वाले कुछ पद लिखे हैं जो अपनी मार्मिकता एवं मौलिकता में हिन्दी साहित्य में अद्वितीय हैं[1] । सूर के नंद भी सजल नेत्रों से श्रीकृष्ण के गुणों का उल्लेख करते हुये उद्धव से जो बातें कहते हैं वे उनके स्नेहशील पितृ-हृदय को सुन्दर ढंग से उद्घाटित करती हैं । जब वे अपने पुत्रों से विदा ले कर अकेले ब्रज लौटते हैं तब भी उनका सरल एवं स्नेहशील स्वभाव ही व्यक्त होता है। वे कृष्ण के प्रेम - पूर्ण वचन सुनकर व्याकुल हो जाते हैं और उनकी आंखों से जलधारा बह निकलती है[2] ।

बाबा नंद और माता यशोदा दोनों का हृदय वात्सल्य रस से आप्लावित है।

1- द्रष्टव्य कृष्णावतार - ना० सं० - 894, 895, 896, 897, 898 ।

2- द्रष्टव्य सूरसागर - पद सं०- [illegible]- 3733 ।

23)

सूरसागर और कृष्णावतार - दोनों में ही नंद की अपेक्षा यशोदा को अधिक महत्व दिया गया है। यशोदा मातृत्व की साकार प्रतिमा है । हमारे दोनों कवियों ने माता के हृदय की ममता एवं वात्सल्य के सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किये हैं जिनका विवेचन पिछले पृष्ठों में ही हो चुका है अत:यहां दुहराना आवश्यक नहीं । सूरसागर एवं कृष्णावतार दोनों में ही हमें माता यशोदा का पावन - पुत्र - प्रेम प्रदर्शित होता है । यशोदा सरल प्रकृति की हैं और कपट- भाव से कृष्ण को स्तनपान कराने आयी पूतना को भी वे रोकती नहीं और अपना बेटा उसकी गोदी में डाल देती है ।

यह ध्यान देने की बात है कि सूरदास और गुरु गोबिन्दसिंह की यशोदा में यह बहुत बड़ा अन्तर है कि जहां सूर की यशोदा कृष्ण पर विपत्ति आती देख कर और हरि को असुरों का संहार करते देख कर मातृ- प्रेम के कारण व्याकुल हो उठती है, वहां गुरु गोबिन्दसिंह की यशोदा तो पलने में सोये हुये बाल- कृष्ण को देख कर यही अभिलाषा करती है कि मेरा यह नन्हा सा पुत्र बड़ा हो कर असुरों का संहार करे [1] । वास्तव में गुरू जी के कृष्ण वीर माता के वीर पुत्र हैं । सच कहा जाए तो गुरू जी के योद्धा कृष्ण यशोदा की अभिलाषाओं की साकार प्रतिमा हैं । वीर माता होने के साथ-साथ गुरू जी की यशोदा ममतामयी नारी भी है । कृष्ण अपने मुंह में समस्त ब्रह्माण्ड को दिखा कर यशोदा को आश्चर्य में डाल देते हैं । तथापि यशोदा का सरल मातृ- हृदय कृष्ण की अलौकिक लीलाओं को भूल जाता है और उनकी मानवीय लीलाओं की ओर ही आकृष्ट हो जाता है । सूर और गुरू जी के कृष्ण वस्तुत: अपने चंचल स्वभाव और नटखटपन से माता को अपनी मानवी लीलाओं की ओर आकृष्ट कर लेते हैं । महाकवि सूरदास ने यशोदा की वियोगावस्था का वर्णन बड़े विस्तारपूर्वक एवं मार्मिक रूप से किया है । सूर की यशोदा इतनी दयनीय हो उठी है कि वे देवकी के पुत्र कृष्ण की धाय बनकर मथुरा में रहने की कामना भी करती है । गुरू गोबिन्दसिंह ने भी यशोदा के

1- (अ) द्रष्टव्य ' कृष्णावतार ' छं० सं० - 103 ।
(ब) द्रष्टव्य सूरसागर, पद सं० 672 ।

वियोग- वत्सल हृदय को अभिव्यक्ति दी है लेकिन उनका वर्णन सूर की भांति मार्मिक नहीं बन पाया है। सच तो यह है कि वियोग का वर्णन करने में गुरू जी का मन अधिक रमा नहीं है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हमारे दोनों विवेच्य कवियों ने नंद और यशोदा को सरल एवं स्नेहशील माता- पिता के रूप में चित्रित किया है और इस वर्णन में उन्हें सफलता भी मिली है ।

3- राधा - कृष्ण काव्य के स्त्री पात्रों में राधा का सर्वाधिक महत्व है। राधा और कृष्ण दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं । राधा के बिना तो कृष्ण महत्व हीन है । वास्तव में कृष्ण की चिरप्रेयसी के रूप में राधा शताब्दियों से ही भारतीय साहित्य को प्रभावित करती आ रही है । हमारे कृष्ण- भक्त कवियों ने राधा- कृष्ण के शृंगार को लेकर जो रस की धारा प्रवाहित की है वही कृष्णकाव्य की प्राणदायिनी शक्ति है। हमारे दोनों कवियों ने राधा के रूप- सौन्दर्य एवं उसके आन्तरिक भावों का चित्रण बड़े सुन्दर ढंग से किया है। राधा वस्तुत: पूर्णावतार पूर्ण ब्रह्म श्री कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति मानी गई है । महाकवि सूर ने तो राधा - कृष्ण के प्रेम को लेकर समस्त सागर लहरा दिया है। बालकृष्ण की ही भांति सूर ने राधाकृष्ण का भी बड़ा प्रभावशाली वर्णन किया है। सूरदास की राधा वृषभानु- तनया चंचल और चतुर बालिका के रूप में हमारे सामने आती है । नीलवस्त्र- समावृता, गोरी एवं विशाल- नेत्रा राधा अपने प्रथम दर्शन में ही कृष्ण को आकर्षित कर लेती है।[1] रसिक शिरोमणि कृष्ण की बातों में आ कर भोली - भाली बालिका राधा उलझ कर रह जाती है । उसे अब घर अच्छा नहीं लगता ।

वस्तुत: राधा महाकवि सूर के भावजगत् की अभूतपूर्व सृष्टि है। राधा औ

1- द्रष्टव्य - सूरसागर - [illegible]- 1290 -91 ।

25)

और कृष्ण का प्रेम दिन- प्रति- दिन बढ़ता ही जाता है । राधा रूप- लावण्य की साकार प्रतिमा है । अपने रूप- सौन्दर्य से वह माता यशोदा को भी सहज ही प्रभावित कर लेती है । महाकवि सूर ने राधा के अप्रतिम सौन्दर्य का चित्रण अनेक पदों में किया है ।[1]

गुरू गोबिन्दसिंह ने भी राधा को अपने कृष्णकाव्य में नायिका का स्थान दिया है । उनकी राधा भी अप्रतिम सुन्दरी, वाचाल एवं सरल बालिका है । महाकवि सूर की भांति तो गुरू जी ने राधा के नख- शिख का वर्णन नहीं किया क्योंकि इस तरफ उनका मन रमा नहीं, फिर भी राधा के सौन्दर्य को ले कर जो छन्द हमें ` कृष्णावतार ` में मिलते हैं , वे अति सुन्दर बन पड़े हैं ।[2]

महाकवि सूर ने राधा और कृष्ण के प्रेम का बड़ा ही अनूठा वर्णन किया है । बाल- क्रीड़ा के सहयोगी ही कालान्तर में यौवन- काल के सखा - सखी बन जाते हैं । सूर की राधा बहाने बनाने में भी बहुत चतुर है । अपने वाक्चातुर्य से वह बाबा नंद और यशोदा माता दोनों से ही कृष्ण के साथ खेलने एवं घूमने की अनुमति प्राप्त कर लेती है । सूरसागर के 1320 से लेकर 1378 तक के पदों में राधा और कृष्ण की

1- द्रष्टव्य ` सूरसागर ` - पद सं० - 1320, 2728-30, 2732 आदि ।

2- एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

सेत धरे सारी छिरकमान की कुमारी,
जस ही को मनो बारी ऐसी रची है न को दई ।
रंभा उरबसी अउर सची से मदोदरी पै,
ऐसी प्रभा काकी जग बीच न कछू भई ।।
मोतिन के हार गरे डार रूप सो सुधार,
कान्हजू पै चली कवि स्याम रस के लई ।।
से तै साज साज चली सांवरे के प्रति काज,
चांदनी में राधा मानो चांदनी सी ह्वे गई ।।

(द० ग्रन्थ० 324)

चेष्टाओं का वर्णन कवि ने किया है । ` गारुहि ` प्रसंग में राधा ने कृष्ण से मिलने का अच्छा बहाना बनाया है । सूर के शृंगार एवं प्रेम चित्रण के विषय में डॉ० हरिवंशराय शर्मा लिखते हैं कि - " अपने शृंगार की प्रतिष्ठा में सूर ने जो वातावरण उपस्थित कियाहै, वह उद्दीप्त - कार्य करता है। उनका प्रेम आदर्श प्रेम है, जिसको हम जीवनोत्सव के रूप में पाते हैं । सहसा उठ खड़े हुये तूफान या मानसिक विप्लव में नहीं, जिसमें अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों और विघ्न- बाधाओं को पार करने की लम्बी - चौड़ी गाथाएं होती हैं । अलौकिकता का पुट होते हुये भी सूर ने इस प्रेम को जीवन से दूर ले जाकर चित्रित नहीं किया है ।[1] " सूर की राधा कृष्ण की बाल- सहचरी है जिसमें सरलता एवं निष्कपटता का भाव है । चीरहरण लीला में तो राधा का वर्णन ही सूर ने नहीं किया । पनघट- लीला में भी राधा नाम- मात्र की ही उपस्थित रहती है। लेकिन , दान लीला के पश्चात् अन्य गोपियों की भांति राधा भी लोक धर्म की मर्यादा को तोड़ डालती है और कृष्ण में एकाकार हो जाती है। प्रणियनी राधा के चित्रण में सूर ने राधा के अंग- प्रत्यंग का चित्रण बड़े अनुपम एवं अद्भुत रूप से किया है । यहां राधा प्रेम की गम्भीरता को समझ लेती है और कृष्ण से मिलने तथा इस मिलन को सखियों एवं गुरुजनों से छिपाने के लिये नित्य नये बहाने तलाश करती है। यहां राधा परकीया है और परकीया भाव में जितनी भी शृंगारिक चेष्टाएं हो सकती हैं, उन सब का वर्णन तथा सुरत- क्रीड़ा के विभिन्न भावों का चित्रण सूर ने राधा- कृष्ण के मिलन में किया है । यहां तो कृष्ण भी राधा से मिलने के अनेक बहाने करते हैं। सूर के कृष्ण को राधा के बिना कल नहीं पड़ता ।

बाल- सहचरी राधा तथा परकीया - राधा के पश्चात् सूर ने राधा के स्वकीया- भाव का चित्रण किया है। यहां राधा मानवती एवं गौरवशालिनी के रूप में

1- सूर और उनका साहित्य- डॉ० हरिवंश लाल शर्मा - पृष्ठ 181 ।

प्रस्तुत होती है। लेकिन कृष्ण यहाँ गोपी- वल्लभ (बहुनायक) भी हैं । ` खण्डिता ` प्रकरण में चार बार राधा के मान का वर्णन है। प्रथम बार तो राधा साधारण स ही मान करती है । वह अभिमान में आकर मान करती है। कृष्ण आते तो हैं पर आ कर लौट जाते हैं तो वह व्याकुल हो उठती है और अपनी सखी ललिता को दूती बना कर कृष्ण को बुलाने भेजती है। दूसरी बार तो राधा भ्रमवश कृष्ण को किसी अन्य गोपी में अनुरक्त जानकर मान करती है। वास्तव में वह कृष्ण के गले में पड़ी मणि में अपना ही प्रतिबिम्ब देख उसे कोई अन्य नारी समझती है [1] । इन दोनों प्रसंगों में तो राधा जल्दी ही मान जातीहै पर उसका तीसरा मान तो वास्तविक कारणों से है रति- चिन्हों से युक्त नटनागर अपने आप को निर्दोष सिद्ध करने के बहुत प्रमाण प्रस्तुत करते हैं पर राधा एक नहीं सुनती । रसिकेश्वर काफी अनुनय- विनय करते हैं सखियाँ भी समझा - समझा कर हार जाती हैं, पर राधा पर कोई प्रभाव नहीं होता। अन्त में कृष्ण अति दीन होकर गुप्त चरित्र का संकेत राधा के प्रति करते हैं तो उसका हृदय पसीज उठता है और मान-भंग हो जाता है । राधा की बड़ी मानलीला बहुत विकट है। यहाँ राधा कृष्ण को किसी गोपी के घर से निकलते हुए रंगे हाथों पकड़ लेती है [2] । अब तो राधा को मनाने के सभी उपाय व्यर्थ जाते हैं। मानिनी राधा का मान बड़ा दृढ़ है [3] । अन्त में कृष्ण एक उपाय ढूंढ ही निकालते हैं । वह एक मणि-दर्पण ला कर राधा के सामने रख देते हैं और स्वयं पीछे जाकर खड़े हो जाते हैं ।प्रति-बिम्ब में दोनों के नेत्र मिल जाते हैं और राधा का चेहरा खिल उठता है ।

राधा का अन्तिम चित्र वियोगिनी राधा का है । इस रूप में वह सूर - काव्य में बहुत कम ही दृष्टिगत होती है। यहाँ पहुंच कर सूर की राधा का प्रेम

1- द्रष्टव्य ` सूरसागर ` (ना० प्र० स०) - पद संख्या 3032 ।

2- द्रष्टव्य ` सूरसागर ` (ना० प्र० स०) - पद संख्या 3353 ।

3- द्रष्टव्य ` सूरसागर ` (ना० प्र० स०)- 3431 से 3442 तक ।

अन्तर्मुख हो जाता है । वह गम्भीर प्रेम की दयनीय प्रतिमा सी जान पड़ती है ।[1] वह अपने प्रियतम को दोष नहीं देती । किसी पथिक द्वारा कृष्ण को भेजती भी है तो कृष्ण के वियोग में डूबे ग्वाल- बाल, गोपियों एवं ब्रज- जनों का ही सन्देश भेजती है। वह तो कृष्ण के इस वियोग का अर्थ अपने प्रेम में ही कुछ कमी होने में लेती है । भ्रमरगीत- प्रसंग में सूर ने राधा की दयनीय दशा के मार्मिक चित्र अंकित किये हैं गोपियां तो उद्धव से अपनी दशा कह सुनाती है पर गौरवशालिनी राधा ` माधव - माधव ` रटते हुये स्वयं भी उसी में खो जाती है । कृष्ण को गोपियों का संदेश देते हुए उद्धव ने राधा की विरहदशा का ही सबसे अधिक हृदय- विदारक चित्र प्रस्तुत किया है :-

` चित दै सुनहु श्याम प्रवीन ।
हरि तुम्हरे विरह राधा मै जु देखी हीन ।।[2]

अन्त में सूर ने कुरूक्षेत्र में राधा- माधव का महा- मिलन करवाया है:-

` राधा - माधव भेंट भई ।
राधा- माधव, माधव राधा, कीट भृंग गति ह्वै जु गई ।
माधव राधा के रंग रांचे, राधा माधव रंग रई ।
माधव राधा प्रीति निरन्तर, रसना करि सो कहि न गई ।
बिहंसि कह्यौ हम तुम नहिं अन्तर यहि कहि के उन ब्रज पठई ।
` सूरदास ` प्रभु राधा- माधव ब्रज बिहार- नित नई - नई ।।[3] `

इस प्रकार सूर की राधा प्रेम की साकार- मूर्ति है,उसका त्याग हिमालय से भी ऊंचा है और उसका मन गंगा से भी पावन, निर्मल एवं सरल है ।

1- द्रष्टव्य ` सूरसागर ` (ना० प्र० स०) पद सं० 4022 ।
2- द्रष्टव्य ` सूरसागर ` (ना० प्र० स०) पद सं० 4725 ।
3- द्रष्टव्य ` सूरसागर ` (ना० प्र० स०) पद सं० 4910 ।

गुरू गोबिन्दसिंह ने सूर की भांति राधा के बालिका रूप का वर्णन नहीं किया । कृष्ण की बाल- क्रीड़ा में राधा हमें कहीं भी नज़र नहीं आती लेकिन युवा-वस्था में राधा ही ` कृष्णावतार ` की नायिका बन कर उपस्थित होती है। गुरू जी की राधा भी चंचल, अद्वितीय सौन्दर्य से युक्त, गौरवशालिनी एवं मानिनी है। सूर की तरह गुरू जी ने राधा के नख शिख की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया । लेकिन इससे सम्बन्धित जो छन्द मिलते हैं वो बहुत सुन्दर हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है :-

` लोचन है मृग के कटि केहरी नाक किधो सुक सो तिह को है ।।
ग्रीव कपोत सी है तिहकी अधरा पीअ से हरि मूरत जो है ।।
कोकिल अउ पिक्से बचनामृत स्याम कहे कवि सुन्दर सो है ।।
पै इहते लजके अब बोलत मूरत लैन करे खग रो है ।। [1] `

गुरू जी के कृष्ण बड़े नटखट हैं, वह खेल- खेल में राधा को कहीं एकान्त में पकड़ लेते हैं । राधा घबराती है और कृष्ण को सखियों का भय दिखाती है [2] । पर कृष्ण भी कहां छोड़ने वाले हैं । वे किसी की परवाह नहीं करते । अन्त में राधा बहाना बनाती है कि आज तो चांदनी रात है, अन्धेरी रात आने दो [3] । पर कृष्ण कोई बहाना नहीं मानते । वे तो कहते हैं कि भूख लगी हो तो भूखा भोजन कैसे छोड़ सकता है [4] ।

गुरू जी ने ` कृष्णावतार ` में ईर्ष्या से उत्पन्न मान का भी व्यापक वर्णन किया है [5] । रास लीला के बीच नाचते नाचते किसी अन्य गोपी की ओर देख भर लेते हैं और उत्तर में वह भी हंस देती है। बस, राधा यह सहन नहीं कर पाती और मान ठान लेती है [6] । राधा को मनाने के लिये कृष्ण दूती को भेजते हैं :-

---

1- ` कृष्णावतार ` - छ0 सं0- पृष्ठ 283 ।
2- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` - छन्द सं0 पृष्ठ- 341 ।
3- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` - छन्द सं0 पृष्ठ -341 ।
4- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` - छन्द सं0 पृष्ठ -341 ।
5- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` - छन्द सं0 701 से 748 तक ।
6- वही, ,, ,, पृष्ठ 342 ।

` सा संग ऐसे कह्यो हरि जू सुन तू ब्रिषभान सुता पहि जाई ।।
पाइन पै बिनती अन के अत हेत के भाव सो लिआउ मनाई ।।[1] `

दूती राधा को जा कर मनाती है, समझाती है पर वो मानिनी भला कहां मानती है।[2] अन्त में कृष्ण स्वयं मनाने के लिये आ पहुंचते हैं और अन्त में राधा मान जाती है।[3] मान के पश्चात् के मिलन का चित्रण भी ` कृष्णावतार ` में मिलता है :-

` दोउ जउ हसि बातन संग ढरे तु हुलास बिलास बढ़े सगरे ।।
हंसि कंठ लगाइ लई ललना गहि गाढ़े अनंग ते अंग भरे ।।
तरकी है तनी दरकी अंगिआ गरमाल ते टूट के लाल परे ।।
पिय के मिलए त्रिय के हिय ते अंगरा बिरहा गिन के निकरे ।। ५५७ ||

` कृष्णावतार ` में विरहिणी राधा का चित्रण बड़े मर्मस्पर्शी छन्दों में मिलता है । राधा की विरह- विकलता बारहमासा के रूप में अत्यन्त भाव-गर्भित रूप में चित्रित की गई है। इसमें राधा की विषम परिस्थिति और उनके गहन का परिचय मिलता हैं । वे निरन्तर कृष्ण की प्रतीक्षा करती रही लेकिन कृष्ण नहीं लौटे । संयोगावस्था में कृष्ण के साथ व्यतीत की प्रेम- क्रीड़ाओं का स्मरण कर वह प्रत्येक मास के आगमन पर खिन्न होती जाती है । बैसाख ऋतु में शीतल, मन्द- समीर जब अपना मकरन्द पृथ्वी पर बिखेरता है तो राधा और भी दुखी हो जाती है । सावन के आने पर जब सरिताएं जा कर सिन्धु में मिल जाती हैं और सूखे ताल भरने लगते हैं, पपीहे की टेर भी सार्थक हो जाती है पर निष्ठुर कृष्ण आकर उसे नहीं मिलते तो राधा कृष्ण- वियोगाग्नि में दग्ध होने लगती है।[4] संयोग की सभी सुख-दायी वस्तुएं विरह में दुखदाई हो जाती हैं । राधा को प्रकृति के सभी उपकरण भी

1- कृष्णावतार - छं० सं० - ६५१ पृष्ठ - ३५३ ।
2- ,, - छं० सं० - ६८१ - ६८५ ,, - ३५३ ।
3- द्रष्टव्य कृष्णावतार - छंसं० - ६८७, ८३३-८४० ,, - ३५१ ।
4- द्रष्टव्य कृष्णावतार - छंसं० - ९१८ ,, - ३४६ ।

31)

उदास से प्रतीत होते हैं । ` कृष्णावतार ` की राधा भी सूर की राधा की भाँति उद्धव को कृष्ण के लिये सन्देश देती है लेकिन इस सन्देश में वह ब्रजवासियों की दयनीय-दशा का वर्णन न करके अपनी ही व्यथा कहती है । राधा उद्धव से कहती है कि उसने एक बार कृष्ण से मान किया था और अब क्या कृष्ण उसी मान का बदला ले रहे हैं :-

` ऊधव को वृखभान सुता बचना इह भांत सो उच यो है ।
त्याग दई जब और कथा मन जो संग स्याम के प्रेम भज्यो है ।
ता संग सोऊ कहां बतियां बन में हमरे जोऊ संग अ यो है ।
मैं तुमरे संग मान क यो तुमहु हमरे संग मान क यो है ॥ 943 ॥

राधा के इस कथन में दैन्य की पराकाष्ठा है। उद्धव भी मथुरा पहुंचने पर राधा का विरह सन्देश कृष्ण को अत्यन्त मार्मिक शब्दों में देते हैं :-

` और कही तुमसो हरि जू वृखभान सुता तुमको जोऊ प्यारी ।
जा दिन ते ब्रज त्याग गये दिन ताकी नहीं हमहु है संभारी ।।
आपहु त्याग अबै मथुरा तुमरे जिनगी अब होय विचारी ।
मैं तुमसो हरि मान क यो तज आवहु मान अबै हम हारी ॥ 963 ॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि हमारे दोनों कवियों ने अपने कृष्ण-काव्य में गोपियों में राधा को प्रधान एवं उच्च पद प्रदान किया है। राधा के बिना कृष्ण का व्यक्तित्व अपूर्ण है। सूर ने तो राधा को कृष्ण की बाल- सहचरी के रूप में भी देखा है। यही ` लरिकाई का प्रेम ` ही युवावस्था में पहुंच कर धीर- गम्भीर प्रेम का रूप ग्रहण कर लेता है । सूर की राधा बाल्यावस्था में ही स्वीय सहज सौन्दर्य से मोहन को मोहित कर लेती है । ` कृष्णावतार ` की राधा कृष्ण की बाल - सहचरी के रूप में दृष्टिगत नहीं होती । यहां राधा अपनी पूर्ण युवावस्था में ही हमारे सामने आती है । ` कृष्णावतार ` में भी राधा और कृष्ण की प्रेम- क्रीड़ा के अनेकों चित्र दृष्टिगत होते हैं । अन्तर केवल इतना है कि जहां राधा के नख- शिख

एवं रूप- सौन्दर्य को ले कर महाकवि सूर ने एक- एक अंग प्रत्यंग को लेकर अनेकों पदों की रचना की है वहां गुरू गोबिन्दसिंह राधा के अप्रतिम सौन्दर्य के विषय में कुछेक छन्द कह कर ही मौन हो गये हैं। सूरदास ने विरहिणी राधा का जो चित्र खींचा है, वह अत्यन्त प्रभावशाली है। संयोगावस्था में कवि ने राधा में जो चंचलता, चतुरता एवं विनोदप्रियता दिखाई है वे सब वियोग काल में दृष्टिगोचर नहीं होती । यहां तो विरहिणी राधा गम्भीर ही दीखती है। वह कभी बोलती नहीं, चित्रलिखित सी देखती खड़ी रह जाती है। उसके इस व्यवहार में उसके अंतर की असीम वेदना ही व्यक्त होती है । वे पंथी से ब्रज की दयनीय दशा का और यमुना के भी कृष्ण वियोग में काली पड़ जाने तक की दशा का निवेदन कृष्ण से करने को तो कहती है, पर स्वयं अपनी वेदना का वर्णन नहीं कर सकती [1] । लेकिन ` कृष्णावतार ` में राधा की विप्रलम्भावस्था का वर्णन विस्तृत रूप से मिलता है। बारहमासे के रूप में राधा का विरह- वर्णन कवि ने अति सुन्दर ढंग से किया है । विरह की अधिकता के कारण सूर की राधा जहां मूक हो जाती है वहां गुरू जी की राधा विरहग्नि से व्याकुल हो कर अपना धीरज खो बैठती है और संयोगावस्था की सुखद क्रीड़ाओं का स्मरण करते हुये बारह मासों के रूप में अपने मन के विरहदग्ध उद्गारों को प्रकट करती हैं ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हमारे दोनों विवेच्य कवियों ने राधा- कृष्ण की युग्लमूर्ति के संयोग, वियोग, मान, उपालंभ आदि के अनेक चित्र दिये हैं। गुरू गोबिन्दसिंह ने भी राधा का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता, सरसता एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है लेकिन राधा की मनोरम मूर्ति का निर्माण करने में महाकवि सूर शाश्वत यश के भागी हैं । उनकी राधा अध्यात्म और साहित्य- जगत् की एक अनोखी वस्तु है जो विस्मृति की छाया में छिपती नहीं ।

1- द्रष्टव्य ` सूरसागर ` - पद सं0- 3414, 3808 - 3809 ।

33)

4- गोपियां - महाकवि सूर और गुरू गोबिन्दसिंह - दोनों कवियों ने ही गोपी- भाव से प्रेरित होकर कई सरसपूर्ण चित्र प्रस्तुत किये हैं । श्रीमद्भागवत में जिस प्रकार गोपियों के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक कहा गया है, उसी प्रकार गुरू गोबिन्द-सिंह और सूर के काव्यों में भी उनके विषय में सविस्तार कहा गया है ।

शब्दार्थ की दृष्टि से तो ` गोप ` जाति की सभी स्त्रियां गोपियां कहलाती हैं। यहां ` गोपी ` शब्द का प्रयोग मुख्यतया उन किशोर कुमारियों तथा नवोढ़ाओं के लिये किया गया है जो कृष्ण के प्रति प्रेम का भाव रखती हैं । हमारे कवियों ने इन के लिये ` ग्वालिनें ` शब्द का भी प्रयोग किया है। सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह ने उनका चित्रण सामूहिक रूप से ही किया है, वैयक्तिक चित्र उन्होंने प्रस्तुत नहीं किये । हां, सूरदास ने ललिता,, चन्द्रावली, कामा, वृंदा , कुमुदा, प्रमदा आदि गोपियों के नामों का उल्लेख किया है तो गुरू गोबिन्दसिंह ने भी अपने कृष्णावतार में चन्द्रप्रभा, चन्द्रकला और मैनप्रभा आदि गोपियों के नाम दिये हैं । अवस्था, परिस्थिति और भावप्रवणता की दृष्टि से भले ही उन में अन्तर हो, पर भावना की दृष्टि से उन सब में समानता दृष्टिगत होती है।

हमारे, कवियों ने गोपियों को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर उनके चारित्र में स्वाभाविकता एवं सजीवता की अवतारणा के माध्यम से ग्रामीण समाज का अच्छा चित्र प्रस्तुत किया है। गोपियों की विशेषता उनकी भावुकता है । वे प्रेम- निहवल नारियां हैं । वे आरम्भ में ही शिशु कृष्ण की ओर आकर्षित हो जाती है । शिशु को खिलाने , सुलाने और लोरी गाने में वे अपार आनन्द प्राप्त करती हैं और यशोदा के भाग्य की सराहना करती है [1] । कुछ बड़े होने पर कृष्ण अपनी चंचल एवं सहज विनोदी प्रकृति द्वारा गोपियों के हृदय में स्थान पा लेते हैं । माखनचोरी की विविध योजनाओं द्वारा वे गोपियों को परेशान करते है वे भी कृष्ण की इन विविध शरारतों

1- सूरसागर - पद सं० - 644 -46 ।

से आनन्द लाभ करती है, पर यशोदा को कृष्ण की शरारतों का उलाहना देने में भी नहीं चूकती [1]। लेकिन जो गोपियां माता यशोदा से श्रीकृष्ण की शिकायत करती थी। वे ही अ उलूखल में बंधे कृष्ण को देखकर विकल हो जाती हैं। वे यशोदा से कृष्ण को छोड़ देने की प्रार्थना करती हैं [2]।

इस प्रकार कृष्ण बाल्यावस्था से ही गोपियों के अनुराग के आलम्बन बन जाते हैं और फिर कालान्तर में कृष्ण के प्रति गोपियों के हृदय में कामेच्छा जाग्रत होने लगती है। सूर के काव्य में पनघट- प्रस्ताव एवं दानलीला प्रसंग में गोपियों का यह प्रेम अधिक प्रकाश में आ जाता है और प्रेम की इस तीव्रता के समक्ष के लोक - लज्जा एवं मर्यादा को भी त्याग कर कृष्ण में अनुरक्त हो जाती है । सूरदास जी लिखते हैं :-

` पलक ओट नहिं होत कन्हाई ।
घर गुरुजन बहुते बिधि त्रासत, लाज करावत लाज न आई ।।
नैन जहां दरसन हरि अटके स्त्रवन थके सुनि बचन सुहाई ।।
रसना और नहीं कछु भाषति, स्याम- स्याम रट इहै लगाई ।।
चित चंचल संगहिं संग डोलत लोक- लाज- मरजाद मिटाई ।
मन हरि लियौ सूर- प्रभु तबहीं, तन बपुरे की कहा बसाई ॥ 2252 ।

गुरु गोबिन्दसिंह की गोपियां भी कृष्ण की बांसुरी सुन कर बावरी हो कर भागी चली आती है । उस समय उन्हें अपनी लज्जा का भी विचार नहीं रहता [3]। गोपियों के मन में कृष्ण के प्रति इस प्रेम का कारण साहचर्य- जन्य प्रेम ही है। कृष्ण

1- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` कं0 सं0 - 123 से 130 तक ।

2- द्रष्टव्य ` सूरसागर - पद सं0- 962 ।

3- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` - कं0 सं0 - 265, 450 ।

के वेणु - वादन को सुनकर तो वे अधीर हो उठती है ।

कृष्ण के रूप - गुण पर मुग्ध होकर गोपियां उन्हें अपने पति रूप में पाने के लिये कालिंदी तट पर (सूरदास के अनुसार शिव और सविता की और गुरू गोबिंदसिंह के अनुसार चण्डिका की) उपासना करती हैं । उनकी अभिलाषा पूर्ण भी होती है कृष्ण द्वारा गोपियों के ` चीरहरण ` प्रसंग का दोनों कवियों ने सुन्दर चित्रण किया है[1] । कृष्ण ` चीर-हरण ` द्वारा गोपियों की लज्जा को दूर कर प्रेम को दृढ़ करते हैं और उनके व्रत को पूर्ण कर उन्हें आनन्द प्रदान करते हैं[2] ।

वास्तव में हम चीर हरण को रास- लीला की भूमिका कह सकते हैं । शरदरात्रि में मधुर मुरली- वादन सुन कर वे लोक- लज्जा को त्याग कर वन की ओर दौड़ पड़ती हैं । लेकिन कृष्ण के मुंह से पति- सेवा और बंधु - जनों की सेवा करने और लौट जाने का आदेश सुन कर कोमल- हृदय गोपियां विकल एवं व्यथित हो जाती हैं। वे कहती है कि - कौन माता- पिता ? कौन पति ? कैसा सुत - मोह ? कैसा धर्म और कैसा पाप ? तुम हमें घर क्यों भेजते हो ? हमें निराश क्यों कर रहे हो ? हम तो केवल तुम्हें ही जानती हैं । बाकी सारा संसार हमारे लिये मिथ्या है[3] । कृष्ण के प्रति गोपियों के यह वचन उनके निश्छल प्रेम के ही प्रमाण हैं। वे सर्वस्व कृष्ण को समर्पित कर देती हैं। तत्पश्चात् कृष्ण गोपियों के साथ रास लीला और जल - क्रीड़ा कर उनको अपूर्व संतोष प्रदान करते हैं[4] । जब वे कृष्ण को पा जाती हैं तब उन्हें थोड़ा रूप- गर्व भी होता है। इस गर्व के निवारण के लिये कृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं । गोपियों का प्रेम- गर्व चूर- चूर हो जाता है और वे व्याकुल हो उठती हैं :-

---

1- द्रष्टव्य(1) सूरसागर - पद सं० 1411 - 16(2) कृष्णावतार-छं०सं०-280-82 ।

2- सूरसागर -पद सं० 1639 ।

3- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` - छं० सं०- 441 से 756 तक ।

` गोपिन को तन की छुटगी सुधि डोलत है बन में जन बौरी ।
एक उठे इक भूमि गिरे व्रज की महरी इक आवत दौरी ।।
आतुर ह्वै अति ढूंढत है तिनके सिर की गिरगी सु पिछौरी ।
कान्ह को ध्यान बस्यो मन में सोऊ जान गहै पुन रूखन कौरी ।।[1]

उनकी आतुरता और विह्वलता के कारण कृष्ण जल्दी ही प्रकट हो जाते हैं और पुन: रास- क्रीड़ा के विधान द्वारा उनको अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं ।

गोपियां सहज सुन्दरियां हैं। वे वेणी गूंथ कर मांग में मोती और सिर पर शीश फूल धारण करती हैं। गोरे भाल पर टीका लगाती हैं। कानों में मणि जड़ित आभूषण, नाक में नथ और गले में हार धारण करती हैं। कलाइयों में कंगन, कटि में घंटिका और पगों में नूपुर धारण करती हैं[2] । उनके लोचन मधुर कटाक्ष करते हैं और उनकी कटि केहरि के सदृश है। उनकी ग्रीवा कपोत समान और वाणी कोकिला की भांति मधुर हैं । वे जहां कृष्ण के रूप - सौन्दर्य से आकर्षित होती हैं वहां उनको भी अपने रूप से प्रभावित करती हैं[3] ।उन में ईर्ष्या की गंध तक नहीं है। वे सब स्याम के रंग में रंगी हैं ।

महाकवि सूरदास ने पनघट- लीला, पान- लीला, झूलन और बसंत - लीला जैसे मौलिक प्रसंगों की मौलिक उद्भावना कर श्रीकृष्ण और गोपियों की प्रेम - गाथा को और भी विस्तार प्रदान किया है । इन प्रसंगों में गोपियां चंचल, चतुर एवं वाचाल हैं। ` कृष्णावतार ` में इन प्रसंगों का अभाव होते हुये भी गोपियों के प्रेम की तीव्रता कवि ने सर्वत्र प्रदर्शित की है ।

भ्रमरगीत - प्रसंग में गोपियों की चरित्रगत विशेषताओं का उद्घाटन

1- कृष्णावतार - कं0 सं0 - 548।

2- द्रष्टव्य ` सूरसागर ` - पद सं0-2116 ।

3- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार - कं0 सं0 - 598 ।

37)

सुन्दर ढंग से हुआ है । महाकवि सूर ने भागवत को आधार मान कर भी गोपियों के चरित्रांकन में पर्याप्त मौलिकता दिखाई है । सूरदास की गोपियां भोली- भाली ग्रामीण नारियां होने पर भी प्रगल्भ वाग्विदग्ध एवं परिहास- कुशल हैं । उन में अल्हड़ता, बांकपन विनोदप्रियता एवं नारी- सुलभ - सरलता प्रचुर परिमाण में विद्यमान है ।वे भक्ति- ज्ञान, निर्गुण - सगुण आदि के विषय में उद्धव से काफी तर्क- वितर्क करती हैं । इसके विपरीत गुरु गोबिन्दसिंह की गोपियां - वाक्चतुर और तीक्ष्ण व्यंग्य करने वाली स्त्रियां नहीं हैं । वे किसी भी तरह के दार्शनिक- विवाद के पचड़े में नहीं फंसती । वे तो सीधी - सादी, सरल, संयमित एवं सदाशय से पूर्ण ग्रामीण महिलाएं हैं। कृष्ण के जाने का समाचार पा कर वे हक्की - बक्की सी खड़ी रह जाती हैं । उन से बोला भी नहीं जाता [1] । इसमें उनका कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम का ही परिचय मिलता है। उद्धव से अपने संवाद में भी गोपियों ने कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का परिचय बड़े कौशल से दिया है । उन में आतुरता भी है और क्रोध भी । वे कृष्ण से मिलना भी चाहती हैं और क्रोध में यह भी कहती है कि यदि कृष्ण वहां जाकर हमें भूल गये हैं तो हम भी उन्हें भुला देंगी [2] । मथुरा में जाकर कुब्जा के प्रेम में सब कुछ भूल जाने वाले कृष्ण पर गोपियों को खीझ भी आती है और खीझ में वे कृष्ण को कोसती भी हैं [3] । वास्तव में कृष्ण के वियोग में बौराई हुई गोपियों के मन में व्याकुलता है, पीड़ा है, खीझ है, क्रोध भी है । वे सभी मिलकर उद्धव से यही कहती हैं कि कृष्ण से कहना कि वे कभी-कभी उनकी भी सुध लेते रहें [4] । साधारण भारतीय ग्रामीण स्त्री की भांति अन्त में वह भाग्यवाद की देहरी पर आ खड़ी होती है और अपनी इस व्यथा का दोषी किसी

1- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` कुं० सं० - ७९७ ।
2- ,, ,, कुं० सं० - 906 ।
3- ,, ,, कुं० सं० - ९११ ।
4- ,, ,, कुं० सं० - 929 ।

38)

अन्य को न ठहरा कर अपने भाग्य को ही इसका उत्तरदायी ठहराती हैं[1]। सूर की गोपियां भ्रमर को सम्बोधित कर अन्योक्ति द्वारा कृष्ण को उलाहना देती हैं। वे मिलकर उद्धव को घेर लेती हैं और उनके निर्गुण के उपदेश को निस्सार कर देती हैं। कुब्जा पर भी वे कटाक्ष करती हैं। उनको उद्धव को ज्ञान भरी बातें सुनकर हंसी आती है वे उद्धव को खूब बनाती हैं और उससे नाना प्रकार के प्रश्न पूछती हैं। भ्रमरगीत प्रसंग में सूर की गोपियों का वाक चातुर्य देखते ही बनता है[2]। लेकिन वियोग दुख की उनकी दयनीय दशा भी छिपी नहीं रहती।

इस प्रकार गोपियों के चरित्र- चित्रण में हमारे कवियों ने अह्लाद - विषाद, अनुराग और विराग का सुन्दर सम्मिश्रण किया है। गोपियों के चरित्र के प्रथम- पक्ष में अत्याधिक संयोग सुख और बाद में अत्याधिक वियोग- दुख के चित्रण द्वारा हमारे विवेच्य कवियों ने जीवन के दोनों पहलुओं का दृश्य अंकित किया है।

रुक्मिणी- सूरसागर और कृष्णावतार दोनों में ही रुक्मिणी का दिव्य चरित्र मिलता है। सूरसागर में रुक्मिणी की अपेक्षा राधा का ही महत्व है। सूर ने तो रुक्मिणी के चरित्र- चित्रण द्वारा भी राधा के प्रेम की ही महत्ता व्यंजित की है।

रुक्मिणी कुंडिन नगर के राजा भीष्मक की पुत्री और रुक्मि अथवा रुक्म की बहन थी। वे बाल्यावस्था से ही हरि- रंग में रंगी थी। रुक्मिणी के पिता श्रीकृष्ण के साथ उसका विवाह करना चाहते हैं पर उसका भाई रुक्मि चंदेरी के राजा शिशुपाल के साथ उसका विवाह करने का विचार रखता है[3]। यह जानकर रुक्मिणी अति व्यग्र हो उठती है और अपनी व्यथा अपनी सखियों से कहती है :-

---

1- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` - कुं0 सं0 - 941 ।

2- द्रष्टव्य ` सूरसागर ` - 4122-4139, 4248, 49, 4256, 4263-64 आदि ।

3- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार - कुं0 सं0 - 1968-69 ।

` संग सहेलन बोलत मी सजनी प्रन एक अबे करिहौं ।।
किती जोगन भेस करौं तज देस नहीं बिरहागन सौं जरिहौं ।।
मोर पिता हठ जिऊ करि है तु बिसेख कह्यो बिख खा मरिहौं ।।
दुहिता कृप की कह्यो न तिह कऊ बरयो तु स्याम ही की बरिहौं ।

तब रुक्मिणी एक ब्राह्मण द्वारा कृष्ण के पास जो संदेश भेजती है, उससे उसका कृष्ण के प्रति प्रेम एवं भक्ति परिलक्षित होते हैं [2]। गुरु गोबिन्दसिंह सिंह ने अत्यन्त प्रभावशाली शब्दों में इस सन्देश का वर्णन किया है । वस्तुत: सूरदास और गुरु गोबिंद-सिंह द्वारा चित्रित रुक्मिणी में दैन्य- भाव है, परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह की रुक्मिणी में दैन्य ही नहीं दृढ़ प्रेम - भाव एवं सर्वस्व समर्पण का भाव भी विद्यमान है। जब तक संदेशवाहक ब्राह्मण द्वारका से नहीं लौटता, तब तक तो उसकी विचित्र दशा हो जाती है। उसका मन चिन्ता और विकलता से पूर्ण हो जाता है। देवी- पूजा के लिये आई रुक्मिणी वहां कृष्ण को न देखकर आत्महत्या के लिये भी प्रस्तुत हो जाती है। उसकी दयनीय दशा को देखकर देवी स्वयं प्रकट होती है और उसे कृष्ण की पत्नी बनने का वरदान देती है [2]। रुक्मिणी - कृष्ण की जोड़ी कुंडिन नगर के सब लोगों को भी प्रिय है और वे देवताओं से प्रार्थना भी करते हैं कि रुक्मिणी कृष्ण का विवाह हो जाए [3]। अन्त में सभी योद्धाओं से युद्ध कर कृष्ण रुक्मिणी का हरण कर लाते हैं और विधिपूर्वक उसे अपनी पत्नी स्वीकार करते हैं ।

रुक्मिणी का भ्रातृ - प्रेम उस समय दृष्टिगत होता है जब वह अपने भाई रुक्मि की दुर्दशा देखकर कृष्ण से उसे क्षमा प्रदान करने की प्रार्थना करती है [4]। गुरु गोबिन्दसिंह ने रुक्मिणी के मातृत्व का भी सुन्दर वर्णन किया है । शंबरासुर का

1- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` - क्रं0 सं0 - 1973 से 1979 तक ।
2- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` - क्रं0 सं0 - 1988-91 तक ।
3- द्रष्टव्य ` सूरसागर ` - प0- 4797 ।
4- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` - क्रं0 सं0 - 2003 ।

40)

वध करके जब प्रद्युम्न रति सहित द्वारका आते हैं तब रुक्मिणी अपने पुत्र को पहचान लेती है और उसका पुत्र- वात्सल्य इस प्रकार व्यक्त होता है :-

` पेखत ताहिं रुक्मणि के सु पयोधरवा पय सौं भरि आये ।।
मोह बढ़्यो अति ही चित मै करुनारस सौं फुरि बैन सुनाये ।।
ऐसे सखी कह्यो मो सुत थो प्रभ दै हमको हमते जु छिनाये ।।
यौं कहि सांस उसांस लयो कवि स्याम कहै दोऊ नैन बहाये ।।[1]

रुक्मिणी रूपवती एवं सती नारी है । वे पति पर अनन्य स्नेह एवं श्रद्धा रखती है। एक दिन उपहास में ही कृष्ण रुक्मिणी से कह देते हैं कि संसार के इतने सुन्दर एवं बलशाली वीरों को छोड़ कर तुमने हमें ही क्यों चुना । हम तो ग्वाले हैं । यह राज-पाट, यह धन- वैभव भी हमारा नहीं, मांगा हुआ है । जरासिन्ध की सेना को देख कर हम भाग खड़े हुये थे । अपना देश त्याग हमने समुद्र में वास किया है । हम से विवाह करके तुमने अपने भाई को भी रुष्ट कर दिया - - - [2] । श्रीकृष्ण की बातें सुनकर रुक्मिणी की आंखों से अश्रुधारा बह निकलती है, उसका मुख कांतिहीन हो जाता है और वह कटे पेड़ की भांति भूमि पर गिर पड़ती है[3] । सूरदास ने भी इस प्रसंग में रुक्मिणी की सरल प्रकृति, अनन्य - प्रेम और सुकुमारता की ही व्यंजक है। तत्पश्चात् कृष्ण रुक्मिणी की प्रशंसा करते हुये उसका मान भंग करते हैं ।

रुक्मिणी और गोपियों के प्रेम में यहां अन्तर है। दोनों ही (गोपियां और रुक्मिणी) कृष्ण को अन्तर्यामी एवं ईश्वर मानकर उनके प्रति समर्पिता का भाव प्रकट करती हैं पर रुक्मिणी में कृष्ण के प्रति जहां दास्य- भाव की प्रधानता है वहां गोपियां कृष्ण को अपने सखा के रूप में देखती हैं । सूरदास ने तो राधा और रुक्मिणी का मिलन भी कराया है। सूरदास की राधा और रुक्मिणी एक बाप की बिछुड़ी हुई

1- कृष्णावतार ` छं० सं० - 2034 ।
2- द्रष्टव्य ` कृष्णावतार ` - छं० सं० - 2152 -54 ।
3- ,, ,, - छं० सं० - 2155 ।

41)

बेटियों की भांति परस्पर मिलती हैं । सूर की रूक्मिणी कृष्ण से बार- बार राधा के विषय में पूछती है और कृष्ण उसे राधा के प्रेम के विषय में समझा नहीं सकते क्योंकि जब भी वे ब्रज का स्मरण करते हैं, वे भाव- विभोर हो जाते हैं [1] । कृष्णावतार में यह प्रसंग दृष्टिगत नहीं होता । इस प्रकार हमारे दोनों कवियों ने रूक्मिणी के चरित्र का बड़े प्रभावशाली ढंग से चित्रण किया है ।

अन्य - पात्र - उपरोक्त प्रधान पात्रों के अतिरिक्त और भी सैंकड़ों पात्रों के संबन्ध में ` सूरसागर ` और ` कृष्णावतार ` में विवरण मिलता है । उन सब पर यहां विस्तार से विचार करना सीमा का अतिक्रमण करना ही होगा । पुरूष- पात्रों में वासुदेव, उद्धव, अक्रूर, कंस, जरासिन्ध सुदामा, युधिष्ठर आदि का चित्रण सूरसागर और ` कृष्णावतार ` दोनों में हुआ है । उद्धव का चित्रण दोनों कवियों ने संदेश - वाहक के रूप में किया है और अक्रूर भी दोनों के काव्य में कृष्ण को लेने के लिये ही ब्रज में आते हैं । परन्तु गुरू गोबिन्दसिंह के ` कृष्णावतार ` में उद्धव एवं अक्रूर साहसी एवं शूरवीर भी हैं ।

अब तक हिन्दी- साहित्य उद्धव के व्यक्तित्व से कृष्ण के संदेशवाहक के रूप में ही परिचित था । अक्रूर भी उनको लिवा लेने के लिये ही ब्रज गये थे, परन्तु यहां वे एक पराक्रमी योद्धा के रूप में सामने आते हैं। हिन्दी - साहित्य में सम्भवत: सर्वप्रथम ये पात्र यहीं योद्धा रूप में चित्रित हुए हैं [2] ।

स्त्री पात्रों में - देवकी, द्रोपदी, कुंती , यज्ञपत्नी, कुब्जा, सत्यभामा आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन स्त्री पात्रों का चित्रण हमारे दोनों कवियों ने यथा

1- सूरसागर - पद सं० 4909, 4903-4904, 4888-90 ।

2- वीर कवि दशमेश - डॉ० जयभगवान गोयल - पृष्ठ 13 ।

42)

सम्भव विस्तार से किया है । कुब्जा का चरित्र सूर और गुरू जी दोनों के काव्यों में श्री कृष्ण की भक्त - वत्सलता दिखलाने के लिये ही चित्रित हुआ है ।

इस प्रकार हमारे दोनों कवियों ने कृष्ण काव्य के पात्रों का चरित्र - चित्रण बहुरूपता, वैविध्य एवं मानव की चित्तवृतियों के आधार पर सुन्दर, सरस एवं सहज रूप से किया है ।

3- भ्रमरगीत :- ` भ्रमर शब्द वास्तव में अत्यन्त प्राचीन काल से ही रस- लोलुप एवं प्रेम- प्रवंचक रसिक पुरुष का प्रतीक बनकर ही प्रयुक्त होता रहा है । पुरुष की प्रवंचकता एवं सुकुमार- नारी की विरह- व्यथा से भरे गीतों को ही साहित्य में ` भ्रमरगीत ` के नाम से अभिहित किया गया है जिसमें प्रतीक शैली के माध्यम से नायक की निष्ठुरता तथा नायिका की विरह- व्यथा एवं उपालम्भ आदि को अंकित किया गया है । ` भ्रमरगीत ` प्रसंग का मूलाधार श्रीमद्भागवत है। कालान्तर में इस ` भ्रमरगीत ` में अनेक परिवर्तन होते रहे और भ्रमरगीत की एक परम्परा सी बनती चली गई । हिन्दी- साहित्य में ` भ्रमरगीत ` का प्रयोग उपालम्भ - काव्य के रूप में किया गया है । कृष्ण गोपियों के प्रियतम हैं और वह उन्हें छोड़ कर मथुरा में चले जाते हैं । कृष्ण के चले जाने पर गोपियां विरह- विह्वल हो उठती हैं । उद्धव कृष्ण के संदेश- वाहक बनकर आते हैं। गोपियां अपने प्रियतम के सखा को अपनी व्यथा कह सुनाती हैं और कृष्ण के प्रति उपालम्भ देने का लोभ - संवरण भी नहीं कर पाती । उपालम्भ के लिये गोपियां ` भ्रमर ` को माध्यम चुनती हैं क्योंकि कृष्ण और उद्धव भी भ्रमर के समान ही श्याम- वर्ण के हैं और फिर उनके प्रियतम कृष्ण और भ्रमर का स्वभाव भी तो कितना मिलता जुलता है । कृष्ण का व्यवहार भी गोपियों के प्रति उतना ही निष्ठुर है जितना कि भ्रमर का पुष्पों के प्रति । और फिर काले उद्धव निर्गुण - ब्रह्म का जो सन्देश गोपियों को देते हैं वो भी भ्रमर की अस्पष्ट गुन- गुन - सा उनके पल्ले नहीं पड़ता । इस प्रकार अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से भ्रमर ही इस उपालम्भ - गीत का माध्यम बनता है ।

हिन्दी- साहित्य के अन्तर्गत शुद्ध ` भ्रमर- गीत ` के प्रणेता महाकवि सूरदास ही हैं । सूर की ` भ्रमरगीत ` में गोपियों की विरह- दशा के अतिरिक्त नंद- यशोदा के वियोग- वात्सल्य की भी अद्भुत झाँकी दृष्टिगत होती है ।

सूरसागर में तीन भ्रमर- गीत मिलते हैं । एक तो लगभग 300 पदों में हैं, जिसमें नन्द, यशोदा और गोपियों का विरह- वर्णन है । इसकी समता हिन्दी - साहित्य का कोई भी शब्द नहीं कर सकता । इस विस्तृत भ्रमरगीत के अतिरिक्त एक भ्रमरगीत की रचना केवल दो पदों में की गई है । प्रथम पद में उद्धव, ब्रजागमन, गोपियों की आशा- निराशा, कुब्जा पर व्यंग्य और कृष्ण के पुनर्मिलन की आशा का वर्णन है, और दूसरे में उद्धव द्वारा ज्ञानोपदेश, गोपियों का प्रतिवाद और उद्धव के भक्त बन कर लौटने का वर्णन है। अन्त में भ्रमरगीत के सुनने- सुनाने का महत्व है। उद्धव का मथुरा - गमन प्रसंग और उससे पहले ब्रज की दशा का चित्रण इसमें नहीं है। निर्गुण- सगुण की चर्चा इसका प्रमुख विषय है और अन्त में उद्धव गोपियों को अपना गुरू मान लेते हैं । तीसरा भ्रमर- गीत केवल एक ही पद में है जो सत्तर पंक्तियों का है । - - - इसके अन्तर्गत गोपियां अधिक व्यवहार - कुशल प्रतीत होती हैं। गोपियों की तल्लीनता देख कर उद्धव के संकोच, पाती- सन्देश और ज्ञान- चर्चा का उल्लेख इसमें भी है । - - - दोनों ही संक्षिप्त भ्रमर-गीतों में भ्रमर के आने का उल्लेख नहीं है । हां, ` अलि ` और ` मधुप ` शब्दों का प्रयोग अवश्य मिलता है[1] । सूर के ` भ्रमरगीत ` में मनोवैज्ञानिक चित्रों द्वारा गोपियों के प्रेम एवं भक्ति - भाव का चित्रण उपलब्ध होता है। इसमें विरह की उत्कृष्ट भावना एवं वियोग की सभी अन्तर्दशाओं का वर्णन हमें प्राप्त होता है। कृष्ण के मथुरा- गमन की बात सुनते ही गोपियां आतुर हो जाती हैं ।

सूर के भ्रमरगीत की मौलिकता एवं विशिष्टता इस बात में भी है कि सूर के कृष्ण उद्धव के मौखिक- सन्देश के अतिरिक्त, लिखित सन्देश भी गोपियों को भेजते हैं ।

1- सूर और उनका साहित्य- डॉ0 हरिवंश लाल शर्मा - पृष्ठ 349-50 ।

वास्तव में महाकवि सूर और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों के कृष्ण काव्यों में भ्रमरगीत की तन्मयता और रसपूर्ण वर्णन हैं। जिस समय कृष्ण को मथुरा ले जाने के लिये अक्रूर ब्रज में आते हैं उसी समय गोपियों की लम्बी- विरह- कथा का आरम्भ हो जाता है :-

` जब ही चलिबे की सुनी बतिया तब ग्वारनि नैन ते नीर ढर्यो ।।
गिनती तिनके मन बीच भई मन को सम आनन्द दूर कर्यो ।।
जितनी तिन में रस जोबन थे दुख की सोई ईंधन माहि जर्यो ।।
तिनते नहिं बोल्यो जात कछू मत कान्ह की प्रीत के संग जर्यो ।।[1]

हमारे दोनों कवियों ने उद्धव के ब्रज- आगमन के पूर्व गोपियों की विरह- दशा का वर्णन भी विस्तार से किया है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों की दशा अत्यन्त करूणार्द्र हो जाती है । वे कभी कृष्ण की क्रीड़ाओं का स्मरण करती हैं तो कभी अपने विरह तप्त जीवन से मेल न खाने वाली प्रकृति को उपालम्भ देती हैं ।[2]

गुरू गोबिन्दसिंह ने भी इस विरह-- वर्णन के अन्तर्गत नंद और यशोदा के वियोग- वात्सल्य का भी चित्रण किया है। लेकिन उनके इस विरह- गीत में भ्रमर का आगमन नहीं होता और ना ही उनकी गोपियां भ्रमर के माध्यम से कृष्ण को उपालम्भ देती हैं। इस वर्णन में गुरू जी की मौलिकता दृष्टिगत होती है कि उन्होंने विरह-व्यथा में सजीवता एवं मनोवैज्ञानिकता की सृष्टि करने के लिये ` बारहमासे ` का प्रयोग किया है । ` कृष्णावतार ` में दो बारहमासे हैं। एक में तो गोपियों की दयनीय दशा का वर्णन है और दूसरे में संयोगावस्था की सुखद स्मृतियों को याद करते हुये राधा की विरह - व्यथा कही गई है । संयोग की वस्तुएं विरह में दुखदायी हो जाती हैं ।प्रकृति भी उदास और शोक ग्रस्त प्रतीत होने लगती हैं :-

` भूम अकास अवास सुवास उदास बढ़ी अति सीतलताई ।।
कूल दुकूल ते सूल उठे सम तेल तमोल लगे दुखदाई ।।

1- कृष्णावतार ` - छं० सं० - 797 |

2- द्रष्टव्य(1) सूरसागर - 10-3820, 3912, 3919 (2) कृष्णावतार - छं०सं०- 797 से 870 तक ।

45)

पोख सन्तोख न होत कछु तन सोखत जिऊ कुमुदी मुरझाई ।।
लोभ रह्यो उन प्रेम गह्यो टसक्यो न ह्यो कसम्यो न कसाई ।।[1]

विरहोन्माद की अवस्था में चारों दिशाओं से उठने वाले बादल भी भीषण रूप में दिखाई पड़ते हैं :-

` भादव माहिं चढ्यो बिन नाहि, दसो दिस माहि घटा घहराई ।।
दयोस निस निहि जान परे तम, बिज्जु छुटा रवि की छवि पाई ।।
मूसलधार छुटे नभि ते अवनी सगरी जल पूरनि छाई ।।
ऐसे समय तजि गये हम को टसक्यो न ही यो कसम्यो न कसाई ।।[2]

सूरदास भी लिखते हैं :-

` देखियत चहुं दिशि तै घन घोरे ।
मानौ मत्त मधुप के हथियनि, बलि करि बंधन तोरे ।
+ + +
अब सुनि सूर कान्ह केहरि बिनु, गरज गात जैसे और ।।[3] `

गोपी- उद्धव संवाद में गुरू जी की गोपियां कृष्ण के प्रति अपने अनन्य प्रेम को प्रकट करती हैं और कुब्जा को कोसने से भी नहीं चूकती ।[4] सूर के भ्रमरगीत में नारी - हृदय की शंकालु प्रवृत्ति, ईर्ष्या, डाह आदि का एवं उपालम्भों के प्रहार का बड़ा सजीव चित्रण मिलता है। हमारे दोनों कवियों ने भ्रमरगीत में प्रकृति के उद्दीप्त रूप के माध्यम से वियोगिनी की विरह- व्यथा का सुन्दर एवं स्वाभाविक चित्रण किया है ।

अब हम सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह के भ्रमरगीत का तुलनात्मक करें तो ज्ञात होता है कि :-

1- सूरसागर में तीन प्रकार के भ्रमरगीत हैं लेकिन गुरू जी के भ्रमरगीत में कोई प्रकार नहीं है ।

1- कृष्णावतार - छं0 सं0 - 923 ।
2- कृष्णावतार - ,, - 819 ।
3- सूरसागर कृष्णावतार - पद सं० 10-3921 ।
4- कृष्णावतार - छं0 सं0 - 911

46)

2- सूर का भ्रमरगीत एक स्वतंत्र खण्डकाव्य का रूप धारण करता है जबकि ` कृष्णावतार ` में वह एक मुख्य अंश अवश्य है, पर उसे ` युद्ध- प्रबन्ध ` के समान स्वतंत्र खण्डकाव्य नहीं मान सकते ।

3- सूर के भ्रमरगीत की भांति ही गुरू जी के भ्रमरगीत अथवा गोपी-विरह में हम गोपियों की वाक्चातुरी का दर्शन कर सकते हैं पर सूर के काव्य में इसके लिये जितना खुला स्थान है उतना गुरू जी के काव्य में नहीं है।

4- श्रीमद्भागवत की भांति ही ` कृष्णावतार में प्रेमाभक्ति और मनोनिग्रह का वर्णन है। उसमें सगुण- निर्गुण का मंडन- खण्डन नहीं, जैसा कि सूरसागर में है। हां, गुरू जी भी उद्धव के ज्ञान पर गोपियों की विजय अथवा प्रभाव दिखा कर प्रेमाभक्ति को महत्ता अवश्य देते हैं :

जब उद्धव सौ इह भांति कह्यो तब उद्धव के मन प्रेम मर्यो है ॥
अउर गई सुध भूल सभै मनते सभ ज्ञात हुतो सु टर्यो है ।।
सो मिलि के संग ग्वारन के अति प्रीति के बात के संग ढर्यो है
ज्ञान के डार मनो कपरे हित की सरिता महि कूद पर्यो है ॥[1]

5- गुरू गोबिन्दसिंह की गोपियां सूर की गोपियों की भांति शक्चतुर एवं तीक्ष्ण व्यंग्य करने वाली नहीं हैं। वे तो सीधी- सादी, भोली - भाली, सरल- हृदय ग्रामीण नारियां हैं ।

6- गुरू गोबिन्दसिंह ने विरहिणी ब्रजबालाओं के करुण क्रन्दन, भग्न हृदय की दयनीय स्थिति, विरह- जन्य कातरता, प्रियतम की निष्ठुरता, दुर्भाग्य, निराशा, उन्माद, प्रलाप, एवं सौन्दर्य- प्रसाधनों की उपेक्षा आदि का बड़ा ही सुन्दर एवं मर्मस्पर्शी वर्णन ` बारहमासे ` के माध्यम किया है। ` सूरसागर ` में बारहमासे का प्रयोग नहीं है।

गुरू गोबिन्दसिंह के कृष्णावतार में भी विप्रलम्भ - शृंगार का अक्षय-भण्डार है पर सूर का भ्रमरगीत वास्तव में विरह एवं प्रेम का एक अगाध पयोधि है, जिसमें

1- कृष्णावतार - छं० सं० - 930 ।

व्यंग्य एवं उपालम्भ की लघु लहरें हैं, उद्धव- सन्देश के झंझावत से आलोड़ित वेदना एवं व्यथा की तरंगे हैं और विरह की बड़वाग्नि है। इसी से सूर के भ्रमरगीत का प्रत्येक पद मार्मिकता एवं सजीवता में अन्य सभी कवियों से अधिक उत्कृष्ट है और परवर्ती सभी कवि ` सूर की जूठन ` से जान पड़ते हैं । सूर के भ्रमरगीत में निस्सन्देह शृंगार का उत्कट रूप विद्यमान है, उसमें निर्गुण साधना पर सगुण- साधना की विजय दिखाई गई है और गोपियों के उत्कट प्रेम, दृढ़ विश्वास एवं उत्कृष्ट भक्ति- भाव की सुन्दर एवं सजीव झांकी प्रस्तुत की गई है जिसे देखकर ज्ञान के प्रकांड आगार उद्धव भी अपना सम्पूर्ण ज्ञान भूल जाते हैं और निर्गुण ब्रह्म का उपदेश छोड़ कर सगुण ब्रह्म के उपासक हो जाते हैं ।[1] ` सूर का भ्रमरगीत उक्ति - वैचित्र्य एवं वाग्विदग्धता की दृष्टि से भी सर्वश्रेष्ठ है। सूरदास की गोपियों की वचन- वक्रता देखते ही बनती है :-

` कहा जो, राजा जाइ भयो ।
हमको कहत और की और, पायो भेव नयो ।
+ + +
बन- बन धेनु चराइ ग्वाल संग, मथि, मथि पियो धयो ।
सूरज प्रभु अब ब्रज बिसरायो, उन यह मतो दयो ।[2] `

गोपियां जब उद्धव से ज्ञान का उपदेश सुनती हैं तो उनके मुख से ऐसे वक्र वचन निकल पड़ते हैं जो बरबस ही हमें आकृष्ट करते हैं :-

` जाके गुन गावत दिन - रात ।
ताकी निरगुन कहत मधुप तुम, नहिं सुनी यह बात ।[3] `

वे निर्गुण ही नहीं, निर्गुण के उपदेशक उद्धव का भी परिहास करती है और उद्धव से पूछती है:-

` निरगुन कौन देश को बासी ?
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दे बूझति सांच न हांसी ।५३५१ ।

1- हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि- डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना-पृ०-179 ।

2- सूरसागर पद सं०-[illegible]- 4246 ।

3- सूरसागर पद सं० [illegible] - 4117 ।

48)

उद्धव पर वे व्यंग्य करती हैं :-

` ऊंचौ जान्यौ ज्ञान तिहारौ ।
जाने कहा राज- गति लीला, अंत अहीर बिचारौ ।
भली भई हम सबै अयानी, स्यानी सो मन मान्यो ।।

उद्धव को बनाती हुई वे कहती है :-

` ऊधौ तुम अपनौ जतन करौ ।
हित की कहत कुहित की लागति, वृत बेकाज ररौ ।[1]

सूर का भ्रमरगीत तो रे सी उक्तियों का भांडागार है जिसमें उनकी झूठी काव्य कला एवं परिहास जनक प्रकृति का परिचय मिलता है ।

अंत में हम कह सकते हैं कि दोनों का भ्रमरगीत विरहिणी गोपियों के करुण- क्रन्दन की मधुर गूंज से आप्लावित है । उनके काव्य में प्रेम- पगी गोपियों के आत्म- विश्वास , अनन्य- प्रेम, उपालम्भ, असमर्थता एवं विरह जन्य सन्ताप आदि का अनुपम एवं अद्भुत निरूपण है। सूर ने निर्गुण- सगुण का प्रकरण अपनी ओर से जोड़ा है और यह उनके युग- दर्शन का प्रमाण है। भ्रमरगीत में सूर ने प्रेमाभक्ति की विजय दिखाई है। गुरु जी के भ्रमरगीत में कोई द्वन्द्व नहीं, पर उसमें भी प्रेमाभक्ति की श्रेष्ठता की गई है । सूर और गुरु जी के काव्यों में वियोग- वर्णन उनके गृहीत काव्य -पद्धति के अनुरूप ही विस्तार लिये हुये हैं। अत: स्पष्ट है कि सूर का भ्रमरगीत अपना कोई सानी नहीं रखता । उसमें गति है, जीवन है, सरसता है और विरह- विधुरा नारी की व्यथा है।

4- प्रकृति - चित्रण - प्रकृति मानव की चिर- सहचरी एवं सौन्दर्य का आगार है । नीलाम आकाश, श्याम घटा, श्वेताम्बरी ज्योत्स्ना, सरिता का कल- कल नाद, आकाश को चूमते हुये शैल-शिखर, क्रीड़ा करते हुये पशु- पक्षी एवं विभिन्न ऋतुएं ऐसे सौन्दर्यम य

1- सूरसागर :- दशम स्कंध - पद सं0- [illegible], 4585, 4229 ।

49)

प्राकृतिक उपकरण हैं जिन से सौन्दर्य उपासक मानव सहज ही आकृष्ट हो जाता है। मानव अपने सुख- दुख के आधार पर ही प्रकृति का अवलोकन करता है । सुख के क्षणों में प्रकृति हमारे उल्लास को बढ़ाती है तो दुख के क्षणों में विषाद को और भी तीव्र-तर बना देती है । सूर और गुरु जी के कृष्ण काव्यों में प्रकृति के नाना रूप दिखाई पड़ते हैं। दोनों ने ही प्रकृति के आलम्बन और उद्दीप्त दोनों रूपों का चित्रण किया है।

कृष्णावतार में ब्रज की प्राकृतिक शोभा का वर्णन भी एक स्थल पर प्रकृति के शुद्ध रूप में हुआ है। गोकुल छोड़ कर ब्रज चलने को उधत ग्वाल बाबा नंद से ब्रज की सुन्दर- सलोनी छटा का वर्णन करते हुये कहते हैं कि -

` घास भलो द्रुम छांह भली जमुना ढिग है नग है तट जाके ।
कोटि फरे फरना तिह ते जग में समतुलि नहीं कछु ताके ।
बोलत है पिव कोकिल मोर किधौं घन में चहुं ओरन वाके ।
वेग चलो तुम गोकुल को तजपुन हजार अब तुम गा के ।।[1] `

इसी प्रकार ` रास- लीला ` प्रसंग में भी एक स्थल पर प्रकृति का शुद्ध रूप से चित्रण उपलब्ध होता है :-

` बेल बिराजत है जिह जागुल चंपक का सु प्रभा अति पाई ।।
मौलसिरी गुल लाल गुलाब धरा तिन फूलन सो छब छाई ।।
चंपक मौलसिरी घट ताल लवंग लता कचनार सुहाई ।।
बार फरे फरना गिर ते कवि स्याम कहे अति ही सुखदाई ।।[2] `

सूरसागर में भी प्रकृति के शुद्ध रूप के अनेकों चित्र मिलते हैं । सूर्योदय का यह वर्णन चित्ताकर्षक है :-

` जागिए, ब्रजराज कुंवर, कमल-कुसुम फूले ।
कुमुद- वृंद - संकुचित भए, भृंग लता भूले ।
तमचुर खग- रोर सुनहु, बोलत बनराई ।

1- कृष्णावतार - छं0 सं0- 150 ।
2- कृष्णावतार - छं0 सं0- 483 ।

रांभति गो खरिकनि मैं, बछरा हित धाई ।
विधु मलीन रवि प्रकास गावत नर- नारी ।
सूर स्याम प्रात उठौ अंबुज - कर धारी ।।[1]

`कृष्णावतार` में तो प्रकृति के अधिकांश वर्णन उद्दीप्त रूप से ही सम्बन्धित हैं। बारहमासा के अन्तर्गत कवि ने विरह- व्यथा की तीव्रता को प्रकट करने के लिये प्रकृति के विविध उपकरणों का उल्लेख किया है। वैसे तो संयोगावस्था का चित्रण भी ऋतु और महीने के अनुसार हुआ है पर उसमें प्रकृति के दृश्यों का उल्लेख नहीं है। कुछेक उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

`एक समैं रहे किंसक फूलि सखी तह पौन बहे सुखदाई ।।
भौंर गुजारत इतते उतते मुरली नन्दलाल बजाई ।।
रीझ रह्यो सुनके सुर मण्डल ता छवि को बरत्यो नहीं जाई ।।
तऊन समैं सुखदाइक थी रित औसर यहि मई दुखदाई ।।[2]`

संयोगावस्था में जो घटाएं एवं बूंदे प्रेम- रस का संचार करती थी और चातऊ, दादुर, मोर आदि के मधुर कलरव जो प्रेम में वृद्धि करते थे अब प्रियतम के वियोग में दुखदाई प्रतीत होते हैं :-

`घोर घटा घन आए जहां सखी बूंदन मेघ झली छवि पाई ।।
बोलत चात्रिक दादर अरु घन मोरन पै घनघोर लगाई ।।
ताही समैं हम कान्हर के संग खेलत थी अति प्रेम बढ़ाई ।।
तऊन समै सुखदाइक थी रित औसर यहि भई दुखदाई ।।[3]`

इसी तरह सुवासित, शीतल, मन्द समीर भी विरहिणी राधा की विरहाग्नि को और भी बढ़ावा दे रहा है :-

---

1- सूरसागर - [illegible]-820 ।

2- कृष्णावतार- क्रं0 सं0- 869 ।

3- कृष्णावतार- क्रं0 सं0- 872 ।

51)

बास सुबास अकाल मिली घर वासत भूमि महा छबि पाई ।।
सीतल मन्द सुगन्ध समीर बटै मकरन्द निसंक मिलाई ।।
पैर पराग रही है बैसाख सबै ब्रज- लोगनि की दुखदाई ।।
मालन लै बकरो रस को टसम्यो न हियो कसक्यो न कसाई ।।[1]

महाकवि सूर ने भी मेघ, चपला आदि का वर्णन प्राय: उद्दीप्त रूप में ही किया है । श्याम के वियोग में व्यथित गोपियों से सूर ने शरद् की शोभा यों कहलायी है :-

अब यह बरबौ बीति गई ।
जनि सोचहि, सुख मानि सयानी, भली रितु सरद भई ।
फुल्ल सरोज सरोवर सुन्दर, नव विधि नीलनि नई ।
उदित चारु चंद्रिका किरन, उर अंतम अमृत मई ।
घटी घटा अभिमान मोह मद, तमिता तेज हई ।
सरिता संजम स्वच्छ सलिस सब फाटी काम कई ।[2]

गोवर्धन - लीला- प्रसंग में ब्रज में उमड़- घुमड़ कर बरतने वाले बादलों का चित्रण सूर ने बड़े स्वाभाविक ढंग से किया है :-

मेघ- दल प्रबल ब्रज लोग देखे ।
चकित जहं - तहं भए, निरखि बादर नए, ग्वाल गोपाल डरि गगन पेखे ।।
ऐसे बादर सजल करत अति महाबल चलत घहरात करि अंधकाला ।
चकित भए नन्द, सब महर चकित भए, चकित नर- नारि हरि करत ख्याला।।
घटा घनघोर घहरात, अररात, दररात, थररात ब्रजलोग डरपे ।
तड़ित- आघात तररात उतपात सुनि नारि- नर सकुचि तन प्रान अरपे ।।[3]

1- कृष्णावतार - कृ० सं० - 915 ।

2- सूरसागर - पद सं. 3960 ।

3- सूरसागर - पद सं. 1473 ।

52)

इसी प्रकार गोवर्धन - लीला प्रसंग में घनघोर - घटा का वर्णन गुरु जी भी करते हैं: -

बूंदन तोरन सी सम ही कुप के ब्रिज के पुर पै जब पइईया ।।
सोऊ सही न गई किह पै सम धानन बेध धरा लग गइईया ।।

और :-

दीसत है न कहूं अरणोदिति धेरि दसो दिस ते घन आवै ।।
कोप भरे जनु केहरि गाजत दामन दांत निकास डरावै ।।

आगे वह कहते हैं :-

आइस पाइ परंदर को घनघोर घटा चहूं ओर ते आवै ।।
कै कर क्रुद्ध किधो मन भाद्धि ब्रिज ऊपर आन कै बहु बल पावै ।।
अउ अति ही चपला चमके बहु बूंदन तोरन सी बरखावै ।।
गोप कहे हम ते भई चूक सु याते हमै गरजै औ डरावै ।।[1]

महाकवि सूर और गुरु गोबिन्दसिंह ने ऋतुओं का सौन्दर्य- वर्णन करने के अतिरिक्त वृन्दावन, द्रुम, लता, पर्वत, यमुना आदि का भी सन्दर्भानुसार मनोहर चित्रण किया है। हमारे कवियों ने अपने काव्य में प्रकृति के उद्दीप्त रूप को ही अधिक स्थान दिया है और प्रकृति का चित्रण करते समय उन्होंने भावों की तीव्रता और सौन्दर्यानुभूति का भी पूरा ध्यान रखा है। उनके काव्यों में वर्णित प्रकृति- चित्रण देख कर हम कह सकते हैं कि दोनों कवि ही प्रकृति - प्रेमी हैं ।

-

1- कृष्णावतार - छं० सं० - 358, 359, 363 ।

तुलनात्मक - अध्ययन

(ख) दार्शनिक - पक्ष

1- ब्रह्म
2- जीव
3- जगत्
4- माया
5- मुक्ति
6- काल

भारतीय संस्कृति में भक्ति- रसामृत सरिता का प्रवाह हृदय की रागात्मक अनुभूतियों के सूक्ष्म भावात्मक धरातल पर सदा से ही प्रवाहित होता चला आ रहा है। मानव की प्राकृतिक प्रवृत्तियों का परिष्कार कर उसमें उदात्त भावनाओं को उद्भूत कर उसे सच्चे अर्थों में मानव बना देने का श्रेय भारतीय संस्कृति को ही है और इस भारतीय- संस्कृति का मूलाधार है - आध्यात्मिक दृष्टि । यह आध्यात्मिक साधन भी अत्यन्त विचित्र वस्तु है। इसकी तुलना किसी भी लौकिक वस्तु से नहीं की जा सकती । आध्यात्मिक- साधना का स्त्रोत वस्तुत: मन और बुद्धि हैं। इस साधना में लीन साधक के लिये इस नश्वर शरीर का कोई महत्व नहीं रह जाता । वह आत्मा की सत्ता का ही अवलोकन करता है । उस का एक ही उद्देश्य रह जाता है - मोक्ष की प्राप्ति । भारतीय -दर्शनों में आत्मा के इसी अवलोकन एवं निरतिशय सुख प्राप्ति के अनेक मार्गों की चर्चा की गई है । अपने आप को जानने के प्रयत्न में इस जगत् और इसके निर्माता को भी जानने का प्रयास एवं ब्रह्म, जीव और जगत् के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण अथवा दर्शन ही इस आध्यात्मिक दृष्टि का कारण है। दर्शनकारों के दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण ही इस साधना के मार्गों में भी भिन्नता दिखाई पड़ती है,(पर साध्य एक ही है) इस कारण दर्शनों की संख्या भी निश्चित नहीं की जा सकती । जितने दृष्टिकोण होंगे दर्शनों की संख्या भी उतनी ही होगी ।

भारतीयदर्शन की यह धारा सुदूर वैदिक काल से अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती चली जा रही है । इस धारा में विराम के दर्शन तो कभी नहीं हुए । इसके विपरीत पाश्चात्य दर्शन की धारा उस नदी के समान है जो कभी दृष्टिगोचर होती है और कभी दृष्टि से ओझल हो जाती है। परन्तु भारतीय दर्शन की धारा उस पुराय सलिला गंगा के समान है जो अनेक क्षुद्र नद तथा विपुलकाय नदियों के जल से परिपुष्ट होती हुई शुष्क स्थानों को जलप्लावित तथा क्षेत्रों को शस्य सम्पन्न बनाती

2)

हुई अपने निश्चित गन्तवय स्थान की ओर समान भाव से सदैव बहती चली जाती है । - - - देश की प्राकृतिक समृद्धि के युग में यहां के सन्तों ने इस चिन्तनधारा को पारलौकिक मोड़ दिया, परन्तु जब कभी उन्होंने लोकपक्ष को उर्वर बनाने की आवश्यकता का अनुभव किया तो यह धारा अपना रूप बदल कर इस ओर प्रवाहित हो कर उसे हरा- भरा करने लगी । इस तरह भारतीय विचार- दर्शन लौकिक तथा पारलौकिक सभी तरह के तत्वों से भरपूर है। उपयोगितावाद के इस आग्रह ने ही भारतीय- जीवन में इस भावना को प्रश्रय दिया कि जब- जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म बढ़ता है तो कोई विशेष शक्ति अवतार लेकर इस अव्यवस्था में व्यवस्था की स्थापना करती है ।[1]

1- सांख्य, योग एवं वेदान्त- दर्शन - सांख्य दर्शन से हमारा अभिप्राय वस्तुत: विवेक से है। इस दर्शन को ` ज्ञानात्मकनिर्पृत्ति ` के नाम से भी अभिहित किया जाता है। सांख्य दर्शन में 25 तत्व स्वीकार किये गये हैं:- ` मूल प्रकृति, महत्, अहंकार, एकादश इंद्रिय, पंच तन्मात्राएं, पंच महाभूत और पुरूष । सांख्य के अनुसार इस चराचर की उत्पत्ति प्रकृति के परिणाम से हुई है ।[2] योग- दर्शन में इन 25 तत्वों के अतिरिक्त एक अन्य तत्व ` परमेश्वर ` माना गया है। योग के अनुसार इन 26 तत्वों से ही सृष्टि का निर्माण हुआ है। योग में 26 वें तत्व ` परमेश्वर ` को जगत् का निर्माण कर्त्ता, सांसारिक प्राणियों पर कृपा करने वाला, स्वेच्छा से अवतार ग्रहण करने वाला, अन्तर्यामी एवं सर्व दुख हर्त्ता माना गया है और योग उसी परमेश्वर को प्राप्त करने का एक साधन है ।

वेदान्त सूत्रों के रचयिता महर्षि व्यास हैं। स्वामी शंकराचार्य ने इन्हीं सूत्रों के आधार पर ही वेदान्त- दर्शन की नींव रखी । शंकराचार्य ` अद्वैतमत

1- गुरू गोबिन्दसिंह और उनका काव्य- डॉ0 प्रसन्नी सहगल- पृ0 286-87 ।

2- हिन्दी और तेलुगु के कृष्णकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन : सूर एवं पोतना के सन्दर्भ में - डॉ0 एस 0 एस 0 दक्षिणामूर्ति - पृ0 230 से

3)

के प्रतिपादक कहे जाते हैं । उनके मतानुसार प्रकृति माया का ही रूप है । अत: इस प्रकार उनके मत में द्वैत- भाव के लिये कोई स्थान नहीं ।[1]

वस्तुत: सूर और गुरू गोबिन्दसिंह का कृष्ण काव्य श्रीमद्भागवत के आधार पर रचा गया है । अत: सूर और गुरू गोबिंदसिंह की दार्शनिक विचार-धारा की तुलना करने से पूर्व श्रीमद्भागवत के प्रमुख तत्वों पर संक्षिप्त- सा विचार कर लेना उपयुक्त होगा ।

2- श्रीमद्भागवत के दार्शनिक तत्व- श्रीमद्भागवत भागवत- धर्म का सर्व श्रेष्ठ ग्रंथ है। उसकी विशेषता यह है कि उसमें मुख्य रूप से भक्ति का निरूपण होते हुए भी ब्रह्म, जीव, मायादि का भी पर्याप्त विवेचन हुआ है। श्रीमद्भागवत में समस्त श्रुतियों का निचोड़ है। ` भागवत के मंगलाचरण के प्रथम तीन श्लोकों में यह संकेत है कि ` श्रीमद्भागवत ` वेदान्तार्थ तथा ब्रह्म-सूत्रों का भाष्य है। पहले श्लोक में ` सत्यं परं धीमहि ` कहा गया है, अर्थात् - ग्रन्थ रचना से पहले भागवतकार भगवान् के उस सच्चे स्वरूप का ध्यान करते हैं, जिससे इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होती हैं, क्योंकि वह सभी सद्रूप पदार्थों में अनुरत है और सभी असत् पदार्थों से पृथक है। जड़ नहीं, चेतन है, परतन्त्र नहीं, स्वयंप्रकाश है -- और जो अपनी स्वयंप्रकाश ज्योति से माया और माया - कार्य से मुक्त रहता है । दूसरे श्लोक में भागवतपुराण को मोक्ष पर्यन्त फल की कामना से रहित परम- धर्म का निरूपक ग्रन्थ बताया है और फिर तीसरे में इस महापुराण को वेद- रूप कल्प-वृक्ष का पका हुआ फल कहा है । इन तीनों श्लोकों में ही भागवत का सार आ गया है ।[2]

ब्रह्म के दो रूप- भागवत में ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का वर्णन हुआ है। ब्रह्म के साकार और निराकार रूप वस्तुत: एक ही वस्तु हैं सगुण दृष्टि से ब्रह्म

1- विशेष विवरण के लिये द्रष्टव्य- हिन्दी विश्वकोश, पृ0 238-40 ।

2- सूर और उनका साहित्य- डॉ0 हरिवंशलाल शर्मा -पृ0 194 ।

4)

जगत के निमित्त और उपादान का हेतु है, पर निर्गुण दृष्टि से वह न कार्य है न कारण । वह गुणातीत, अपरिच्छिन्न, शांत तथा अद्वय है। ब्रह्म के इस निर्गुण रूप को जानना अति कठिन है ।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि भगवान् वस्तुत: रूप रहित हैं, पर भक्तों के लिये वे विविध रूप धारण करते हैं । वे भक्त वत्सल हैं। प्रभु वस्तुत: एक ही हैं, उपासकों के दृष्टि- भेद के कारण उनके नामों में भिन्नता दृष्टिगत होती है।अपनी अचिंत्य शक्ति के कारण ही प्रभु नाना रूप ग्रहण करते हैं और विभिन्न लीला करते हैं । प्रभु की अनन्त शक्तियों में तीन प्रधान हैं:- स्वरूप शक्ति, माया - शक्ति और जीव शक्ति ।

प्रभु वस्तुत: विरोधी गुणों से सम्पन्न हैं । वे निस्पृह होकर भी कर्म करते हैं, अजन्मा हो कर भी जन्म ग्रहण करते हैं। वे स्वयं काल रूप हैं । जीव प्रभु का ही अंश है, पर माया के आवरण के कारण वह अपनी वास्तविकता को नहीं जान सकता और माया के अधीन होकर भटकता रहता है। प्रभु अंश हैं और जीव अंशी । अन्तर केवल इतना है कि भगवान् माया के नियामक हैं और जीव माया द्वारा नियमित होता है ।

` श्रीमद्भागवत में पांच प्रकार की मुक्ति बताई गई है - सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य । भगवान् के नित्य चिन्मय धाम में रहना ` सालोक्य मुक्ति ` है। उनके समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लेना ` सार्ष्टि ` मुक्ति है। भगवान् के समीप रहना ` सामीप्य मुक्ति है, भगवान् के समान रूप प्राप्त कर लेना ` सारूप्य ; और उनके चरणों में समा जाना ` सायुज्य ` मुक्ति है। भागवत में इन पांचों प्रकार की मुक्तियों के अनेक उदाहरण हैं ।[1] `

1- सूर और उनका साहित्य- डॉ0 हरिवंशलाल शर्मा - पृ0 - 194 ।

5)

श्रीमद्भागवत में प्राय: सभी दर्शनों का समन्वय और सामंजस्य हो जाता है । महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ही मूलत: दार्शनिक कवि नहीं थे । तथापि, दोनों की रचनाओं में सन्दर्भानुसार दार्शनिक विषयों की चर्चा अवश्य हुई है। सूरदास जी के वल्लभ- सम्प्रदाय में दीक्षित होने के हेतु उन पर वल्लभाचार्य जी के दार्शनिक- सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है । अत दोनों कवियों की दार्शनिक विचारधाराओं की तुलना करने से पूर्व वल्लभाचार्य जी की दार्शनिक मान्यताओं एवं गुरू गोबिन्दसिंह जी के पूर्ववर्ती सिख गुरूओं के दार्शनिक सिद्धान्तों को जान लेना अभीष्ट होगा ।

आचार्य वल्लभ के दार्शनिक सिद्धान्त - वल्लभ- सम्प्रदाय की सिद्धान्त पक्ष में - शुद्धाद्वैतवादी एवं ब्रह्मवादी तथा आचरण- पक्ष में ` पुष्टिमार्ग ` का नाम लिया जाता है।

वल्लभाचार्य जी के अनुसार ` ब्रह्म ` सत्य, चित् एवं आनन्द स्वरूप है, सर्वशक्तिमान है, स्वतन्त्र है, सर्वात्मा है, सर्वज्ञ है, नित्य गुणों से युक्त है, द्वैत रहित है, अनादि है, सब कहीं होता हुआ भी कहीं नहीं है, वह सम्पूर्ण जगत् का आधार है और माया को वश में रखने वाला है। ` ब्रह्म में आविर्भाव और तिरोभाव की शक्ति है। इसी शक्ति से वह एक से अनेक और अनेक से एक होता रहता है। ब्रह्म से ही पदार्थों का आविर्भाव और ब्रह्म में ही उनका तिरोभाव होता है।[1] ` वल्लभ- सम्प्रदाय की मान्यतानुसार ब्रह्म निर्गुण होते हुये भी सगुण है। जो ब्रह्म मन और वाणी से ` अगम- अगोचर ` है वही शुद्ध - भाव से ध्यान करने पर गम्य और गोचर भी हो जाता है । वल्लभ सम्प्रदाय में ब्रह्म के तीन मुख्य स्वरूप हैं :- (।) पूर्ण पुरूषोत्तम, रस रूप, परब्रह्म श्री कृष्ण ।

1- अष्टछाप और वल्लभ- सम्प्रदाय - डॉ0 दीनदयालु गुप्त - पृ0 - 39 ।

6)

(ii) अक्षर ब्रह्म ,जो गणितानन्द है और अवस्था - भेद से दो प्रका का है :-

(क) पूर्ण पुरूषोत्तम का अक्षर धाम स्वरूप गणितानन्द अक्षर- ब्रह्म ।

(ख) अक्षर ब्रह्म जो काल, कर्म और स्वभाव रूप में प्रकट होता है तथ प्रकृति और जीव तथा अनेक देवादि रूप में परिणत होने वाला तथा सृष्टि कर्ता पालन- कर्ता तथा उसका संहार- कर्ता रूप है।

(iii) अन्तर्यामी रूप ।[1]

वल्लभाचार्य जी ने जीव और जगत् को ईश्वर का अंश मान कर ही सत्य माना है। इस सम्प्रदाय में श्री कृष्ण को ही परब्रह्म की संज्ञा दी गई है जो आनन्द स्वरूप हैं, पूर्ण पुरूषोत्तम हैं, नित्य हैं, लीला- पुरूषोत्तम हैं और अपने अक्षर - धाम गोलोक (ब्रज) एवं अपनी आनन्द प्रसारिणी शक्तियों (गोपियों) सहित इस जगत् में अवतरित हुए हैं ।

वल्लभाचार्य जी के अनुसार, जीव सृष्टि ज दैवी और आसुरी दो प्रकार की मानी गई है। दैवी जीव - सृष्टि पुष्टि तथा मर्यादा- भेद से दो प्रकार की है । पुष्टि सृष्टि के जीव चार प्रकार के होते हैं और उनकी उत्पत्ति पुरूषोत्तम के अंग से मानी गई है । इस सृष्टि के जीवों के चार प्रकार यह हैं - शुद्ध - पुष्ट, पुष्टि- पुष्ट, मर्यादा - पुष्ट तथा प्रवाही - पुष्ट ।[2]

वल्लभाचार्य के मतानुसार जगत् ब्रह्म कृत है, अत: सत्य है। संसार जीवकृ होने के कारण मिथ्या है, अज्ञान मूलक है। इस सम्प्रदाय में माया के भी दो रूप माने गये हैं - विद्या माया और अविद्या माया । अविद्या माया अथवा अज्ञान ही जीव के बन्धन का कारण है और विद्या माया मुक्ति का ।

1- अष्टछाप और वल्लभ- सम्प्रदाय - डॉ0 दीनदयालु गुप्त -पृ0 - 403 ।

2- सूर और उनका साहित्य- डॉ0 हरिवंश लाल शर्मा - पृ0- 200 ।

८)

सिख गुरुओं की दार्शनिक मान्यतायें- जिस सम्प्रदाय से गुरू गोबिंदसिंह का सम्बंध था वह पूर्णतया ईश्वरवादी था । इस सम्प्रदाय के प्रथम गुरू गुरू नानक सन्त - कबीर के परवर्ती थे । अत: गुरू नानक के ईश्वर- सम्बन्धी विचारों पर सन्त मत के महान् उपदेशक कवि कबीर की छाप स्पष्ट दृष्टिगत होती है । कबीर की ही भांति गुरू नानक भी धर्म के व्यावहारिक रूप के कट्टर समर्थक थे । यही कारण है कि सिख गुरुओं ने जाति, एवं सम्प्रदायिक पाखण्डों के स्थान पर व्यक्ति के चरित्र पर विशेष बल दिया ।

मध्यकालीन भक्तों ने ईश्वर को दो रूपों में देखा है - एक वह जो सर्वशक्तिमान, सर्वगुणसम्पन्न, जन्ममरण से रहित सर्वव्यापी ब्रह्म है और दूसरा अवतारों की परम्परा का, जो दुष्टों का विनाश करने एवं सन्तों की रक्षा हेतु इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होता है। सिख गुरुओं ने अधिकांशत: ईश्वर के प्रथम रूप का ही प्रतिपादन किया है। गुरू नानक ने ईश्वर के ` कर्ता पुरूष, वैर- विरोध से विहीन, भय रहित, शत्रुता रहित, समय से परे तथा योनियों से परे होने की बात कही है :-

` एक ओंकार सतिनाम, करता पुरखु, निरभउ निरवैरु,
अकाल मूरति अजूनी सभं गुर प्रसादि ।[1] `

गुरू ग्रंथ- साहब में परमात्मा के सर्वव्यापी रूप का वर्णन स्थान- स्थान पर हुआ है। वह सर्वशक्तिमान है, कारण कारण समर्थ है । वास्तव में सिख - गुरुओं ने आध्यात्मिक साधना को संसार से पृथक कर के कभी नहीं देखा । उनके अनुसार ईश्वर हम से बाहर तो है नहीं, वह तो हमारे भीतर ही समाया हुआ है।

गुरू नानक ने ब्रह्म को ` अकाल- पुरूष ` की संज्ञा दी है। सिख गुरुओं

1- संत काव्य का दार्शनिक विश्लेषण - डॉ० मनमोहन सहगल - पृष्ठ 99 से उद्धृत ।

ने ब्रह्म को निर्गुण स्वीकार करते हुये भी उसके सगुण रूप की उपेक्षा नहीं की । उनके अनुसार ब्रह्म इसलिये निर्गुण है कि वह किसी एक विशिष्ट गुण की सीमा में नहीं बंध सकता । अकाल पुरूष विश्व का रचयिता है और विश्व के अणु- अणु में व्याप्त है। ` वह हर जीव में है, प्रकृति के प्रत्येक अंश में विद्यमान है परन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि हम उसे देख नहीं पाते केवल सतगुरू ही ज्ञान दीपक दे कर उस रहस्यमय तत्व को दिखाने की सामर्थ्य रखता है :-

` इक महि, सरब सरब महि इका, इहि सतिगुरू देखि दिखाइ ।[1] `

अकाल- पुरूष ही सर्वकर्ता है, सर्वज्ञाता है, सर्वप्रदाता है, कृपालु है क्षमा का साकार रूप है । उसके नाम- स्मरण मात्र से ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। सिख गुरूओं का अकाल - पुरूष(ब्रह्म) अवर्णनीय है, गूंगे के गुड़ की भांति अव्यक्त है। वही एकमात्र सत्य है।

सिख गुरूओं के अनुसार ब्रह्म और जीव दोनों एक ही तत्व के दो पहलू हैं, जीव ब्रह्म का ही अंश है । ब्रह्म का अंश होते हुये भी जीव माया के भ्रम के कारण ब्रह्म से पृथक हो जाता है। सिख - सम्प्रदाय में आत्मोपलब्धि के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु ईश्वरीय कृपा का भी उच्च स्थान है। प्रभु के अनुग्रह के बिना जीव को मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता । इस सम्प्रदाय में प्रभु के ` अनुग्रह ` को नदरि ` कहा गया है और इस ` नदरि ` की प्राप्ति भी गुरू- कृपा से ही सम्भाव्य है।

सिख- सम्प्रदाय में त्रिगुणात्मक माया का वर्णन सभी स्थलों पर हुआ है । इस माया से ` अहंकार ` उत्पन्न होता है जिसे गुरूओं ने ` हउमै ` कहा है। यही माया मन को विकृत कर देती है अत: सिख गुरू प्रारम्भ से ही मन को नियन्त्रण में रखने का सन्देश देते आए हैं ।गुरू नानक कहते हैं :-

` मनि जीते जगु जीतु ` । (श्री गुरू ग्रंथ साहिब, पृ0 1103)

1- संतकाव्य का दार्शनिक विश्लेषण - डॉ0 मनमोहन सहगल-पृ0100 से उद्धृत ।

9)

अपने पूर्ववर्ती गुरुओं की ही भांति गुरू गोबिन्दसिंह ने भी सर्वत्र मन को जीतने का ही सन्देश दिया है :-

` फोकट कर्म जिते जग कर ही । नरक कुण्ड भीतर ते पर हीं ।।
हाथ हिलाइ सुरग न जाहू । जो मन जीत सका नहिं काहू ।[1] `

गुरू गोबिन्दसिंह को ईश्वर के सगुण एवं निर्गुण - इन दोनों स्वरूपों की अनुभूति अपनी परम्परा से ही प्राप्त हुई थी । गुरू जी के पूर्ववर्ती गुरुओं ने ईश्वर के इन दोनों रूपों को स्वीकार तो किया, लेकिन उनकी भक्ति- भावना में इन दोनों स्वरूपों में कोई स्पष्ट अन्तर दृष्टिगत नहीं होता । परन्तु गुरू गोबिन्दसिंह की रचनाओं में प्रभु का सापेक्ष और निरपेक्ष रूप बड़े मुखर रूप में प्रस्तुत होते हैं । सिख गुरुओं ने ईश्वर को सर्वत्र देखा है और उसके निराकार रूप पर ही अधिक आग्रह किया है। गुरू गोबिन्दसिंह इसी परम्परा के अन्तिम एवं विद्वान संत कवि थे ।

सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह की दार्शनिक विचार धारायें -

1- ब्रह्म - सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही परब्रह्म के साकार तथा निराकार स्वरूपों का वर्णन किया है। दोनों के ब्रह्म ही विरोधी गुणों से विभूषित हैं । वे साकार इसलिये हैं कि वे रस- रूप हैं, दिव्य गुणों से युक्त हैं, सच्चिदानन्द हैं, और निराकार इसलिये हैं कि वे शारीरिक गुणों से हीन हैं । भगवान् के निर्गुण रूप का वर्णन करते हुये सूरदास जी कहते हैं :-

(1) ` आदि सनातन, हरि अविनासी । सदा निरन्तर घट- घट वासी ।
पूरन ब्रह्म, पुरान बखाने।चतुरानन, सिव अन्त न जानें ।[2] `

1- दशम ग्रंथ(प्रथम भाग) - विचित्र नाटक- छ0 सं0 - 58 ।

2- सूरसागर - पद सं0 -621, पृष्ठ - 256 ।

10)

(II) ` अच्छर अच्युत अविकार है, निराकार है जोर ।
आदि अन्त नहिं जानियत, आदि अंत प्रभु सोर ।[1] `
अच्छर आदि अनील अनाहद, सन्त सदैव तुही करतारा ।
जीव जिते जल में थल में, सम के सम पेट को पोखनहारा ।।5।।
(तैंतीस सवैये, द० ग्र० पृ०-)

(III) अविगत आदि अनन्त अनूप, अलख पुरूष अविनासी ।
पूरन ब्रह्म, प्रकट पुरूषोत्तम, नित नित लोक बिलासी ।[2] `
गुरू गोबिन्द सिंह जी भगवान् के निर्गुण रूप का महत्व इस प्रकार स्पष्ट करते हैं :-

(1) अमित तेज जग जोति प्रकासी । आदि अछेद अभै अविनासी ।
परम तत्स परमार्थ प्रकासी । आदि सरूप अखंड उदासी ।।5।।25
(द० ग्र० ग्र० - 129)

(2) प्रणवों आदि एकं कारा । जल थल महीअल कीओ पसारा ।
आदि पुरूष अविगति अविनासी । लोक चर्तुदस जोति प्रकासी ।। 1 ।
(अकाल-स्तुति, द०ग्र० ग्र० - 1)

महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों का ही यही कथन है कि परमात्मा सर्वत्र है, प्रत्येक जीव में व्याप्त है, सभी उस एक परमेश्वर के ही अंश हैं । सूरदास जी कहते हैं :-

` सकल तत्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब विधि काल ।
प्रकृति पुरूष श्रीपति नारायन सब हैं अंश गुपाल ।[3] `

1- सूरसागर - पद सं० - 1793, पृष्ठ 663 ।
2- सूरसारावली (वे० प्रे०)- पृष्ठ- 1 ।
3- सूरसागर सूरसारावली (वे० प्रे०) - पृ० - 38 ।

तो गुरू गोबिन्दसिंह जी कहते हैं :-

` जितिक जगति के जीव बखानो।एक जोत सबही महि जानो ।
काल रूप भगवान मनैवो । ता महि लीन जगति सब है बो ।।34 ।।
(चौबीस अवतार, द0ग्र0 पृ0- 158)

परब्रह्म पुरूषोत्तम प्रभु तो बीज- बीज में रमा हुआ है। वह एक होकर भी अनेक रूपों में संसार में दिखाई देता है, लेकिन माया के वशीभूत हुआ जीव उलझ क र रह जाता है और उसे पहचान नहीं पाता । गुरू जी कहते हैं:-

` सबही महि रम रह्यो अलेखा ।।आंगत भिन्न भिन्न ते लेखा ।।36 ।।
` एकह रूप अनूप सरूपा । रंक भयो राव कहूं भूपा ।
भिन्न- भिन्न समझन उरझायो।समते जुदो न किनहु पायो ।।37 ।।
(चौबीस अवतार, द0 ग्र0 पृ0- 158)

महाकवि सूरदास ने भी सूरसागर के प्रारम्भ में कहा है कि उस परब्रह्म को ` अविगत- गीत ` है और वह ` मन- बानी को अगम- अगोचर `है

` अविगत - गीत कछु कहत न आवै ।
ज्यौं गूंगे मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै ।।
परम स्वाद सबहीं जु निरंतर अमित तोष उपजावै ।।
मन- बानी कौ अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ।।
रूप- रेख- गुण- जाति- जुगति बिनु निरालम्ब कित धावै ॥
सब विधि अगम विचारहिं ताते सूर सगुण- लीला पद गावै ।।[1] `

गुरू गोबिन्दसिंह ने भी ब्रह्म को रूप- रेख - गुण- जाति - वर्ण एवं

1- सूरसागर- पद सं0 - 2, पृष्ठ- 1 ।

किसी भी प्रकार के चिन्ह से विहीन माना है। उसके किसी निश्चित स्वरूप का वर्णन कर पाना मनुष्य के सामर्थ्य की बात नहीं है। वह तो अचल मूर्ति है, प्रकाश स्वरूप है, अमित ओज से युक्त है। करोड़ों इन्द्र, इन्द्राणियों के सौन्दर्य से भी बढ़ कर है :-

` चक्र, चिह्न अरू बरन जात और पात नहिन जिंह ।
रूप रंग अरू रेख भेख कोउ कहि न सकति किंह ।।
अचल मूरति अनुभउ प्रकास अमितोजि कहिज्जे ।
कोटि इन्द्र इन्द्राणि साहु साहणि मणिज्जे ।।` (द० ग्र० पृ०- 11)

पुन: गुरू जी कहते हैं -

` जिह जात पात नहिं भेद भरम ।।
जिह रंग रूप नहिं एक धरम ।। `

और - ` जिह राग रूप न रेख रखं ।
जिह ताप न साप न सोक सुखं ।[1]

और - ` अलेखं अभेखं अभूतं अदेखं ।
न रागं न रंगं न रूपं न रेखं ।।[2] `

परब्रह्म सर्व गुण सम्पन्न , सर्व समर्थ हैं। वे क्या नहीं कर सकते । उनके स्वरूप का पार पाना अति कठिन है। उनके सर्व- भवन- समर्थ रूप का वर्णन सूरदास ने इस प्रकार किया है :-

` दयानिधि तेरी गति लखि न परै ।
+ + + +
अविगत गति करूनामय तेरी, सूर कहा कहि गावै ।।[3] `

1- दशम ग्रंथ(प्रथम भाग) - अकाल स्तुति - छं० सं०- 144, पृ०- 26 ।
2- ,, ,, - विचित्र नाटक- ,, 20 , पृ०- 3 ।
3- सूरसागर पद सं० - 104, पृष्ठ- 33 ।

प्रभु के सर्व- समर्थ रूप का वर्णन करते हुये गुरू जी कहते हैं कि तुम्हारी सामर्थ्य कोई क्या जाने । ` ज्ञान- प्रबोध ` में गुरू जी कहते हैं :-

` नहीं जान जाई कछु रूप रेखं ।।
कहा बासु ताको फिरे कौन भेखं ।।
कहा नाम ताको कहा का कहावै ।।
कहा मैं बखानो कहै मैं न आवै ।।6 ।।[1] `

तभी तो गुरू जी कहते हैं :-

` निरबुझ है ।। अबुझ है ।। अकाल है।।अजाल है ।। `(द0ग्र0 प्र0-3)

इस निर्गुण रूप के साथ- साथ ही गुरू गोबिन्दसिंह जी ने ब्रह्म के सगुण- साकार रूप का वर्णन भी अपनी रचनाओं में किया है :-

(1) ` बिसाल लाल लोचनं ।। मनोज मान मोचनं ।।
सुमंत सीस सुप्रभा ।। चकृत चारू चन्द्रका ।।11।। ।9 ।। `
(द0 ग्र09 प्र0 128)

(2) ` कृपा दिआल लोचनं ।। मयंक बाण मोचनं ।।
सिरं किरीट धारीयं ।। दिनेस कृत हारीयं ।।10 ।।18 ।।
(द0 ग्र0 प्र0 128)

गुरू गोबिन्दसिंह का ` अकाल- पुरूष ` जो ` रूप- रेख ` से विहीन है, वही अब रूप धारण कर लेता है :-

` कंजलक नैन कंबू ग्रीवहि कटि केहरि कुंजर गवन ।
कदली कुरंक्षा करपूर गत बिन अकाल दूजो कवन॥ 6 ॥ 37 ॥
(द0 ग्र0 पृ0 131)

महाकवि सूरदास तो वस्तुत: भगवान् के साकार रूप के ही उपासक हैं।

1- दशम ग्रंथ(प्रथम भाग) - ज्ञान- बोध - क्ष0 सं0 - 6 ।

14)

ब्रह्म विरोधी गुणों के आश्रय हैं। हमारे कवियों ने ब्रह्म की इस विशेषता का उल्लेख अपनी रचनाओं में स्थान- स्थान पर किया है । ` सूरसागर ` की निम्नांकित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

` अगम अगोचर लीलाधारी । सो राधा बस कुंज बिहारी ।
बड़भागी वे सब ब्रजवासी । जिनके संग खेले अविनासी ।[1] `

कुछ इसी तरह का भाव गुरु गोबिन्दसिंह कृत ` कृष्णावतार ` में भी मिलता है कि जिस(कृष्ण अथवा ब्रह्म) का सामीप्य बड़े- बड़े योगी घोर तपस्या करके भी नहीं पा सके उसे ब्रजवासियों ने सहज ही पा लिया है :-

` जाको मुनि नहिं अंत लहै, इह ताहि सो खेल करैं बड़भागी ।[2] `

इसी प्रकार ` कृष्णावतार ` में ` युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ ` के प्रसंग में भी परब्रह्म कृष्ण स्वयं ब्राह्मणों चरण धोते हैं :-

` सूरज चन्द गनेस महेस सदा उठके जिह धिआन धरै ।
अरु नारद सो सुक सो द्विज व्यास सो स्याम मनै जिह जाप करै ।
जिह मार दियो सिसपाल बली जिहके बल ते सब लोकु डरै ।
अब बिप्पन के पग धोवत है ब्रिज ऐसी कउन करै ।।[3] `

वस्तुत: गुरु गोबिन्दसिंह ने ईश्वर के निराकार और साकार रूप में एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण की स्थापना की है। उनके ब्रह्म एक साथ ही निर्गुण भी हैं और सगुण भी । द्रष्टव्य हैं :-

---

1- सूरसागर - पद सं0 621 , पृष्ठ - 256 ।

2- दशम ग्रंथ (प्रथम भाग) - कृष्णावतार - क्र0 सं0 - 553, पृ0-326 ।

3- दशम ग्रन्थ (प्रथम भाग) - कृष्णावतार - क्र० सं० - 2352, पृ० -553।

15)

" कहूं गीत के गवैया कहूं बेनु के बनैया । कहूं नृत्य के नचैया कहूं नर को अकार हो ।
कहूं बेद - वाणी कहूं लोक की कहानी ।कहूं राजा कहूं रानी कहूं नार के प्रकार हो
कहूं बेनु के बजैया कहूं धेनु के चरैया । कहूं लाखन लवैया कहूं सुन्दर कुमार हो ।
सुद्धता की सान हो कि सन्तन के प्रान हो कि दाता महादान हो कि निरदोष
निरंकार हो ।।9।।[1]

महाकवि सूर के अनुसार भी निर्गुण ब्रह्म ही सगुण होकर इस लोक में अवतार धारण करता है :-

" वेद उपनिषद यश कहैं निर्गुनहिं बतावैं ।
सोइ सगुन होय नन्द की दावरी बंधावै ।[2] "

और - " गोविन्द तेरोइ स्वरूप निगम नेति - नेति गावै ।
भक्तन के वश श्यामसुन्दर देह धरै आवै ।।[3] "

इसके अतिरिक्त परब्रह्म असुरों के संहार के लिये भी इस लोक में देह धारण करते हैं। सूरदास जी कहते हैं :-

" जब- जब हरि माया ते दानव प्रकट भये हैं आय ।
तब- तब धरि अवतार कृष्ण ने कीन्हों असुर संहार ।[4] "

ऐसा ही भाव गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा रचित ` अवतार कथाओं ` में भी मिलता है। गुरु जी के अनुसार जब- जब पृथ्वी संकट आता है , तब- तब ईश्वर अवतार धारण करते हैं । राम- कृष्णादि विष्णु के ही अवतार हैं ।

1- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) - अकाल स्तुति अकाल- छं० सं० - 8॥18॥ — पृ० - 13 ।

2- सूरसागर(प्रथम स्कन्ध) - वे० प्रे०- पृष्ठ - 2 ।

3- सूरसागर (दशम स्कन्ध) ,, पृष्ठ - 147 ।

4- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय - डॉ० दीनदयालु गुप्त - पृ० 409 पर उद्धृत ।

जब जब होत अरिष्ट अपारा ।
तब तब देह धरत अवतारा । (द० ग्र० पृष्ठ 155)

(1) परम पाप ते भूमि हरानी ।। हगमगात विधि तीर सिधानी ॥ 1 ॥
ब्रह्मा गयो क्षीर निधि जहां ।। काल पुरुष स्थित ते तहां ।।
कह्यो विसन को निकट बुलाई।। कृष्ण अवतार धरो तुम जाई।।2।।[1]

और - अब मैं कहों राम अवतारा । जैस जगत मो करा पसारा ।।
बहुत काल बीतत भयो जबै । असुरन वंश प्रगट भयो तबै ।। 1 ।।
असुर लोक बहुकरें विषादा । किनहुं न तिन्हें तनिक में साधा ।।
सकल देव इकठे तव भये । क्षीर सिन्धु जहं थो तहं गये ।। 2 ।।
वह चिर वसत भये तिह ठामा।।विष्णु सहित ब्रह्मा जिह नामा ।।
बार- बार ही दुखित पुकारत ।।कान परी करन सो धुनि आरत ।।3 ।।
विसनादिक देव लखे विसनं ।।मृदु हास करी कर काल धुनं ।।
अवतार धरो रघुनाथ हरे ।। चिर राज करो सुख सों अवधे ।।4।।[2]

महाकवि सूरदास ने अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण के व्यूहात्मक तथा गुणावतार में भी पूर्ण आस्था दिखलाई है । `सूरसागर` के नवम स्कन्ध में सूरदास जी ने राम की लीलाओं का गान करते हुये राम की स्तुति की है।[3] राम कृष्ण के ही व्यूहात्मक अवतार हैं। गुरू गोबिन्दसिंह ने भी `चौबीस अवतार` में राम और कृष्ण को एक ही माना है :-

---

1- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) - कृष्णावतार - पृष्ठ 254 ।

2- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) रामावतार - पृष्ठ - 188 ।

3- द्रष्टव्य सूरसागर - पद सं० - ५६१.

" कूप के मधिकैटभ तान भरे मुर दैत्य मर्‌यो अपने जिन हाथा ।
जाहि विभीषण राज दियो, रिस रावन काट दए जिंह माथा ।
सो तिह की तिहुं लोगन मध कहे कवि स्याम चले जैसे गाथा ।
सो ब्रिज भूमि विखे इसके हित खेलत है फुन गोपन साथा ।।[1] "

सूरदास जी ने गोपियों द्वारा परब्रह्म के गुणावतार ' शिव ' की स्तुति भी कराई है। गुरू जी ने भी अपने ' दशम ग्रंथ ' में परब्रह्म के गुणावतार ' रूद्र ' का वर्णन स्वतन्त्र रूप से किया है ।

महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही भगवान् के विराट रूप का वर्णन कियाहै। तदनुसार वे घट- घट व्यापी हैंल विश्वमूर्ति हैं, सर्वान्तर्यामी एवं सत्य स्वरूप हैं। समस्त चराचर पदार्थ उन्हीं के स्थूल शरीर के अंग हैं । यथा,

(1) " नैननि निरखि स्याम स्वरूप ।
रह्यो घट- घट व्यापि सोई, जोति- रूप अनूप ।
चरन सप्त पाताल जाके, सीस है आकास ।
सूर- चन्द्र - नक्षत्र - पावक, सर्व तासु प्रकास ।।[2] " (सूरदास)

बन तण महीप जल थल महान। जहं तहं प्रसोह करूणा निधान ।।
जग मगत तेज पूर्ण प्रताप । अम्बर जमीन जिह जपत जाप ।।
सातों अकास सातों पतार । विथरिउ अदृष्ट जिह कर्मजाटि । "
(अकाल स्तुति,द0 ग्र0 हं0 सं0- 271)

1- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग)- कृष्णावतार । पृ0 सं0 - 564 ।

2- सूरसागर - पद सं0 - 370, पृष्ठ - 123 ।

(2) ` अमित तेज जग ज्योति प्रकासी ।
आदि अछेद अभै अविनासी ।
परम तत्व परमार्थ प्रकासी ।
आदि सरूप अखण्ड उदासी ।।[1] ` (गुरू गोबिन्दसिंह)

तुलनात्मक रीति से विचार करने पर स्पष्ट होगा कि यद्यपि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही ब्रह्म के सगुण तथा निर्गुण रूप का वर्णन किया है तथापि दोनों के मतों में अन्तर है।

सूरदास ने वल्लभ- सिद्धान्त को स्वीकार करते हुये तदनुसार ब्रह्म का वर्णन पूर्ण- पुरूषोत्तम, अक्षर- ब्रह्म और अन्तर्यामी के रूप में किया है, और उन के पूर्ण- पुरूषोत्तम, सर्वान्तर्यामी एवं अक्षर- ब्रह्म , पर ब्रह्म स्वयं श्री कृष्ण ही हैं । सूरदास के कृष्ण ही अव्यक्त हैं, अविनाशी हैं, त्रिगुणातीत हैं, सच्चिदानन्द हैं, सृष्टि के रचयिता हैं। यह समस्त जगत् उन्हीं से ही उत्पन्न होता है और उन्हीं में ही समा जाता है। यही निराकार परब्रह्म श्रीकृष्ण ही दुष्टों के विनाश और सन्तों की रक्षा के लिये अवतार ग्रहण कर सगुण- साकार रूप में ब्रज में लीलाएं करते हैं । सूरदास जी को निराकार की अपेक्षा परब्रह्म श्रीकृष्ण का साकार- लीला - पुरूषोत्तम रूप ही अभीष्ट है और उन्होंने अपने इष्टदेव श्री कृष्ण की बाल एवं यौवन लीलाओं का ही वर्णन अत्यन्त रोचकता से किया है।

इसके विपरीत गुरू गोबिन्दसिंह ने ब्रह्म को सर्वान्तर्यामी, अविनाशी, त्रिगुणातीत, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अगम, अगोचर, अव्यक्त एवं सच्चिदानन्द तो माना है , परन्तु उनके परब्रह्म श्री कृष्ण नहीं हैं। उन्होंने उस महाशक्ति को अर्थात् पूर्णब्रह्म को ` अकाल पुरूष ` का नाम दिया है। भगवान् विष्णु इसी ` अकाल पुरूष ` अर्थात् परब्रह्म के अनुचर हैं और अकाल- पुरूष की आज्ञा से ही

1- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) - ज्ञान प्रबोध, छं0 सं0- 25 ।

अवतार धारण करते हैं । राम, कृष्णादि सब विष्णु के ही अवतार हैं और गुरू गोबिन्दसिंह जी ने विष्णु को ही ब्रह्म न मान कर ब्रह्म का अनुचर माना है। इस दृष्टि से गुरू गोबिन्दसिंह के कृष्ण पुरूषोत्तम तो हैं और परमात्मा भी हैं लेकिन पूर्ण ब्रह्म नहीं हैं अपितु उस अकाल सत्ता का ही एक अंश हैं। गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में निराकार ब्रह्म के साथ ही साकार ब्रह्म का वर्णन किया गया है, लेकिन गुरू जी ने सगुण ब्रह्म को स्वीकार करते हुये भी ईश्वरीय अवतारों को ब्रह्म के समकक्ष नहीं माना है। उनकी दृष्टि ` ईश्वर ` और ` ब्रह्म ` दोनों एक नहीं हैं। डॉ० महीपसिंह के अनुसार :- यह दृष्टिकोण अद्वैतवादी दृष्टिकोण के निकट है अद्वैतवादियों ने ईश्वर को ब्रह्म नहीं माना, वरन् उसे विशिष्ट शक्तियों से सम्पन्न जीव स्वीकार किया है । उन्होंने विकास के क्षेत्र में ईश्वर को ब्रह्म से नीचा स्थान दिया है ।[1] ~

गुरू गोबिन्दसिंह ने निराकार परमात्मा की भक्ति का आग्रह करते हुये भी अवतारवाद को भी स्वीकार किया है। उन्होंने पौराणिक कथाओं के अनुसार ही प्रभु के दयालुता, कृपालुता एवं भक्तवत्सल रूप पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है, परन्तु अवतारी ईश्वर को ब्रह्म के समकक्ष नहीं माना है। ध्रुव, प्रहलाद, अजामिल, गणिकादि की पौराणिक कथायें प्रभु के रक्षक भाव एवं भक्ति की महत्ता को सिद्ध करने के लिये बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। गुरू गोबिन्दसिंह की विशुद्ध भक्ति परक रचनाओं में भी ऐसे कुछेक उदाहरण मिल जाते हैं । यथा,

` आदि अनादि अगाधि कथा ध्रुअ से प्रहलाद अजामिल तारे ।
नामु उचार तरी गनिका सोई नामु अधार बीचार हमारे।।
(द० ग्रं० पृ० 913)

1- गुरू गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता - डॉ० महीपसिंह -पृ० 223

20)

गुरू गोबिन्दसिंह जी ने अवतार कथाओं का वर्णन करते हुये अनेक स्थानों पर स्पष्ट किया है कि अवतारों को जन्म देने वाली शक्ति ` काल ` है। सभी अवतार इस महाकाल की आज्ञा से ही देह धारण करते हैं । कोटि - कोटि ब्रह्मा, विष्णु और महेश एवं इन्द्रादि इसी ` महाकाल ` में ही समाहित हैं :-

` काल पुरख की देहि मो कोटिक बिसन महेश ।
कोटि इन्द्र ब्रह्मा किते रवि ससि कोट जलेस ।। `(द० ग्र० पृ०- 182)

` पौराणिक साहित्य में जो स्थान विष्णु को प्राप्त है, कवि ने लगभग वही स्थान ` काल ` को अपनी रचनाओं में दिया है। विष्णु के समान ही वह क्षीर सागर में शेष नाग की शैया पर शयन करता है। लक्ष्मी उसकी दासी है। विपत्ति पड़ने पर देवता क्षीर सागर में इसी ` काल पुरूष ` के पास जाते हैं । अन्तर केवल इतना है कि जहां पौराणिक साहित्य में विष्णु सर्वोच्च देवता हैं और पृथ्वी पर असुरों की विजय और देवताओं की पराजय से उत्पन्न आर्तनाद से प्रेरित होकर स्वयं अवतार ग्रहण करते हैं वहां दशम ग्रन्थ में ` काल ` विष्णु को अवतार धारण करने की आज्ञा देता है ` ।[1]

1) वामनावतार - ` दीयो आइसं काल पुरखं अपारं ॥
धरो बावना बिसन अष्टम वतारं ॥
लई बिसन आगिआ चल्यो धाइ ऐसे ॥ `(द० ग्र० पृ० 167)

(अर्थात् - काल पुरूष ने विष्णु से कहा कि तुम वामन रूपी आठवां अवतार धारण करो । आज्ञा पाकर विष्णु चल पड़े ।)

2) रूद्रावतार- ` सु कह्यो तुम रूद्र सरूप धरो ॥
जग जीवन को चलि नास करो ॥
तबही तिह रूद्र सरूप धर्यो । `(द० ग्र० पृ० 173)

1- गुरू गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता - डॉ० महीपसिंह , पृष्ठ - 225 ।

(अर्थात् - काल पुरूष ने तब कहा (विष्णु से) कि तुम रूद्र का स्वरूप धारण कर ` जीवन ` का नाश करो अर्थात् मृत्यु के देवता बनो, तब उसने (विष्णु ने) रूद्र (शिव) का अवतार धारण किया ।)

3) जालन्धरावतार- ` कह्यौ बिसन जलन्धर रूप धरौ ।।
पुनि जार रिपेस को नास करौ ।(द० ग्र० पृ० 181)

(अर्थात् - (काल पुरूष ने विष्णु से) कहा कि तुम जलन्धर- स्वरूप धारण कर शत्रुओं का नाश करो ।)

4) विष्णु - अवतार - दशम ग्रंथ में विष्णु के तेरहवें अवतार के रूप में ` काल - पुरूष ` ने विष्णु को विष्णु रूप में ही अवतार धारण करने की आज्ञा दी:-

` करत पुकार धरण भर भारा ।।
काल पुरस तब होत क्रिपारा ।।
सब देवन को अंस ले तत आपन ठहराइ ।।
बिसन रूप धार तत दिन ग्रह अदिन्त के आई ।। `(द० ग्र० पृ० 182)

इसी प्रकार अरहन्त देव, मनु, धन्वन्तरि, सूर्य, चन्द्रादि अवतारो के सम्बन्ध में भी दशम ग्रंथ में इसी प्रकार की उक्तियां कही गई हैं। यद्यपि राम और कृष्ण के अवतार भी इसके अपवाद नहीं, लेकिन इन दोनों अवतारों का वर्णन करते हुये कवि ने इनके प्रति कुछ इस प्रकार की उक्तियां कहीं हैं जो इन्हें गुरू जी के उपास्य के बहुत निकट ले जाती हैं। दशरथ के शब्दों में राम की महत्ता का वर्णन द्रष्टव्य है :-

` नर देव देव राम हैं ।। अभेव धरम धाम है ।।
अबुद्ध नारि तै मनै ।। बिसुद्ध बात को भनै ।।203 ।।
अगाधि देव अनन्त है ।। अभूत सोभवंत है ।।
कृपाल करम कारणं ।। बिहाल दिआल तारणं ।।204 ।।
अनेक संत तारणं ।। अदेव देव कारणं ।।
सुरेस भाइ रूपणं ।। समृद्ध सिद्ध कूपणं ।।205 ।।
(द० ग्र० पृ० 204)

22)

`कृष्णावतार` में भी ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ गुरू जी ने कृष्ण के महत्व का वर्णन करते समय पूर्ण पौराणिक परम्परा के अनुसार उनके पूर्व अवतारों का वर्णन किया है :-

(1) `पूतना संघारी त्रिणावृत की बिदारी देह,
दैत अघासुर हूं की सिरी जाह फारी है ।।
सिला जाहि तारी बक हूं की चोंच चीर डारी ।।
ऐसे भूप पारी जैसे आरी चीर डारी है ।
राम ह्वै के दैतन की सेना जिह मारी ,
अरू आपनो बभीक्षन को दीनी लंका सारी है ।।
ऐसो भांति दिजन की पतनी उधारी,
अवतार ले के साथ पृथ्वी उधारी है ।।` (द0 ग्र0 पृ0 327)

(2)और - दैत संखासुर के मरबे कहु रूप धरयो जल में जिन मच्छा ।।
सिंध मथ्यो जब ही असुरासुर मेर तरै भयो कच्छप हच्छा ।।
सो अब कान्ह भयो इह ठौर चरावत है ब्रिज के सम बच्छा ।।
खेल दिखावत है जग को यह, करता सभ की जीवन रच्छा ।।`

(द0 ग्र0 पृ0 299)

`कृष्णावतार` में गुरू गोबिन्दसिंह जी यह भी कहते हैं कि जिसका पार बड़े - बड़े मुनि नहीं पा सकते , उनका सम्पर्क ब्रजवासियों को सहज ही प्राप्त है। अत: ब्रजवासी बड़े भाग्यवान है। वस्तुत: `कृष्णावतार` में प्रस्तुत कृष्ण का यह रूप किसी भी वैष्णव कृष्ण- भक्त के मत के अनुकूल ही है:-

`जा चतुरानन नारद की सिव की उठके लोकु धिआवै ।।
नार निवार भले तिनको फुन संख बजाइके धूप जगावै ।।
हारके फूल भली बिध सौ कवि स्याम भनै तिह सो सिर नावै ।।
ते ब्रिजाथ के साधन को गुन गावत गावत पार न पावै ।`

(द0 ग्र0 पृ0 542)

` सूरज चंद गनेस महेस सदा उठके जिह धिआन धरै ।।
अरू नारद सो सुक सो द्विज व्यास सो स्याम मनै जिह जाप करै ।।
जिह मार दयो सिसपाल बली तिहके बल ते सभ लोकु डरै ।।
अब विप्पन के पग धोवत है ब्रिजनाथ बिना ऐसी कउन करै ।। `

(द0 ग्र0 पृ0 553)

इसी तरह गुरू जी कहते हैं कि भाग्यवान तो गोपियां है जो उस कृष्ण का सानिध्य सहज ही पा लेती हैं -

` जाको मुनि नहिं अंत लहै रह ताही सो खेल करैं बड़भागी [1] । ` (द0 ग्र0 पृ0 326)

साथ ही गुरू गोबिन्दसिंह यह भी कहते हैं कि जितने भी अवतार हुए वह सब काल- कवलित हो गये :-

` एक सिव भए एक गए एक फेर भए, रामचन्द्र ब्रिसन के अवतार भी अनेक हैं।
ब्रह्मा अरू बिसन केते बेद औ पुरान केते सिंम्रिति समूहन के हुइ हुइ बितए हैं।
मौनदी मदार केत असुनी कुमार केत, अंसा अवितार केत काल बस भए हैं ।
पीर औ पिगंबर केत गने न परत केते, भूम ही ते हुइ के फेरि भूमि ही मिलए हैं।

(द0 ग्र0 पृ0 - 18)

कृष्णावतार में भी गुरू जी कहते हैं :-

` मैं न मनेसहिं प्रिथम मनाउं ।। किसन बिसन कबहूं नह धिआऊं ।।
कान सुने पहचान न तिन सों ।।लिव लागी मोरी पग इन सों ।। `

(द0 ग्र0 पृ0 - 310)

1- तुलनीय है : सेस महेस गनेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं ।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावैं ।
नारद से सुक व्यास रहे पचि हारि तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।

(रसखान)

इससे यह तो स्पष्ट है कि कि गुरू गोबिन्दसिंह जी ने राम, कृष्ण आदि अवतारों की कथा सूरदास की भांति भक्ति भावना से प्रेरित होकर नहीं वरन् अपने युग की आवश्यकताओं से प्रेरित होकर की थी । लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि गुरू जी की कृष्ण अथवा राम के अवतारों के प्रति अनास्था थी । यदि गुरू जी इन अवतारों के प्रति अनास्थावान ही होते तो वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये कृष्ण अथवा राम का आश्रय ही क्यों ग्रहण करते । वह किसी लौकिक वीर योद्धा को भी अपने काव्य का विषय बना सकते थे और फिर उन्होंने जिस श्रद्धा एवं मनोयोग से कृष्णावतारकी रचना की है, उससे तो कृष्ण के प्रति उनकी आस्था ही प्रकट होती है ।

गुरू गोबिन्दसिंह ने अपने ब्रह्म (अकाल पुरूष) को भगवती (चण्डी) के रूप में भी देखा है जो उनकी मौलिक उद्भावना है। दशम ग्रंथ में संकलित रचनाएं - - 1- चण्डी चरित्र, 2- चण्डी चरित्र उक्ति विलास तथा 3- चण्डी दी वार, भगवती चण्डी से सम्बन्धित है। देवी के स्वरूप का वर्णन करते हुये गुरू जी उसे ` पारब्रह्मी ` की संज्ञा से विभूषित करते हैं :-

` पवित्री पुनीता पुराणी परेयं ।।
प्रभो पूरणी पारब्रह्मी अजेयं ।।
अरूपं अनूपं अनामं अठामं ।।
अभीतं अजीतं महा धर्म धायं ।। ` (द० ग्र० पृ० - 118)

गुरू जी की दृष्टि में अकाल और भगवती में कोई भेद नहीं है :-

` प्रथम काल सम जग को ताता । ताते भयो तेज विख्याता ।।
सोई भवानी नाम कहाई । जिन सिरजी यह सृष्टि उपाई ।।
(द० ग्र० - पृ०- 157-58)

1- अकालस्तुति और वाहगुरू- सम्प्रदाय - डा० रत्नसिंह गुरूत्व - पृ० 422 ।

वस्तुत: गुरू गोबिन्दसिंह ने ब्रह्म का ` नेति- नेति ` एवं ` तत्वमसि `- दोनों रूपों में स्मरण किया है। एक ओर उसे बिभ्रंत एवं नेति- नेति कहा है तो दूसरी ओर ` तुही - तुही ` और ` जले हरि, थले हरि - - ` के रूप में निरूपित किया है । वह उसे अरूप भी मानते हैं, सर्वरूप भी और एक रूप भी । वह गुरू गोबिन्दसिंह के ब्रह्म एक साथ ही निराकार, अलख, अगोचर, निरंजन, अभेद एवं अव्यक्त भी हैं और सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, कर्ता पुरूष, सर्वोपरि, सर्वदाता, दयालु, कृपालु एवं भक्त वत्सल भी हैं ।

महाकवि सूर के कृष्ण भी सगुण- निर्गुण, पुरूषोत्तम परब्रह्म हैं । उन के अनुसार जगत् की सम्पूर्ण क्रियाओं और भावनाओं में कृष्ण की लीला ही व्याप्त हो रही है ।

2- जीव - भारतीय संस्कृति में जीव को ब्रह्म का ही अंश स्वीकार किया गया है। ` वल्लभाचार्य जी ने अपने ग्रंथ ` तत्वदीपनिबन्ध ` में कहा है कि परमतत्व परब्रह्म को ` मैं एक हूं, अनेक हो जाऊं ` ऐसी इच्छा हुई । उसी इच्छा मात्र से अक्षर ब्रह्मभूत- अंश रूप असंख्या जीवों की उत्पत्ति हुई। जैसे अग्नि से चिंगारी निकलती है उसी प्रकार से सच्चिदानंद अक्षर ब्रह्म के चिद् अंश से असंख्य निराकार जीव निकले । इस प्रकार वल्लभ मत के अनुसार जीव अंश है और परमात्मा अंशी ।[1] `

गुरू गोबिन्दसिंह जी ने भी इसी प्रकार के भाव प्रकट किये हैं :-

` जैसे एक आग ते कनूका कोटि आग उठे ।।
न्यारे - न्यारे हुइ के फेर आग में मिलाहिंगे ।।
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है ।।
धूर के कनूका केर धूर ही समाहिंगे ।।

1- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय — डॉ दीनदयालु गुप्त ` पृष्ठ - ५२२ ।

26)

जैसे एक नद ते तरंग कोट उपजत हैं ॥
पानि के तरंग सबै पानि ही कहाहिंगे ॥[1] `
तैसे विश्वरूप ते अभूत भूत प्रगट हुई,
ताहि ते उपजे सब ताहि में समाहिंगे ॥ (द० ग्र०- 19,20)

महाकवि सूरदास ने भी शुद्धाद्वैत के अनुसार जीव को ब्रह्म चिदंश माना है । वस्तुत: सूरदास जी ने ब्रह्म के सम्बन्ध में जितना कहा उतना जीव के सम्बन्ध में नहीं । सूरदास जी ने समस्त जीवों को ब्रह्म का ही अंश कहा है :-

` सकल तत्व ब्रह्माण्ड देव पुनि माया सब विधि काल ।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायन सबै हैं अंश गोपाल ।[2] `

इस अंश और अंशी वाले भाव को सूरदास जी ने कई बार व्यक्त किया है । ब्रह्मा को चतु: श्लोकी ज्ञान देते हुये सूरदास के काव्य में भगवान् कहते हैं :-

` पहले हौं ही हौं तब एक ।
अमल अकल अज भेद बिवर्जित सुनि विधि बिमल विवेक ।
सो हौं एक अनेक भांति करि सोभित नाना भेष ।
ता पाछे इन गुननि गए तैं, हौं रहि हौं अविसेष ॥[3] `

वास्तव में देह की सहायता से ही आत्मा जीव का रूप ग्रहण करती है । लेकिन देह तो नश्वर है और आत्मा अजर एवं अमर है। आत्मा पर तो आग, पानी या हवा आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । गीता में भी कहा गया है :-

---

1- तुलनीय है -(क) पाणी ही तें हिम भया, हिम ही गया बिलाय ।
जोई था सोई भया, अब कछु कहा न जाय ॥ `
(कबीर ग्रंथावली, पृ० 201)
(ख) हरि हरिजन दुई एक हैं बिम विचार कछु नाहि ।
जल ते उपज तरंग जिऊ जल ही बिखे समाहि ॥ `
(दशम ग्रन्थ, पृष्ठ - 44)

2- सूरसारावली - (वं० प्र०) - पृ० - 38 ।

3- सूरसागर - पद सं० 381 ।

27)

` नैनं छिदन्ति शस्त्राणि ।
नैनं दहंति पावक : ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो ।
न शोषयति मारुत : ।।[1] `

गुरू गोबिन्दसिंह जी ने भी कुछ इसी तरह के भाव अपने काव्य में अभिव्यक्त किये हैं :-

` शस्त्र सहस सति सति प्रधार ।
छिजे न नेकु खंडियो न जाय ।
न ही जेरे नेक पावक मंझार ।
बोरै न सिन्धु सोखै न बयार ।। ` (द0 ग्र0 पृ0- 138)

गुरू गोबिन्दसिंह जी आत्मा को अमर मानते हुए आगे कहते हैं :-

` गहिओ जो न जाय सो अगाह के कै गाही अतु ।
छेदिओ जो न जाय सो अछेद के पछानिये ।
गंजिओ जो न जाय सो अगंज के कै बानीयतु ।
भजिओ जो न जाय सो अभंज के कै मानीये ।
+ + +
मन्त्र में न आवे सो अमन्त्र के कै मानु मन
जन्त्र में न आवे सों अजन्त्र के कै जानिये ॥५०॥ (~~अष्टम ग्रन्थ, पृ0~~)

जड़भरत- रहुगण- संवाद में सूरदास जी ने जीव का वर्णन किया है। उसमें उन्होंने जीव को शरीर से भिन्न कहा है। शरीर नश्वर है, पर जीव सदा एक रस और अविनाशी है। अज्ञान के कारण ही जीव अनेक योनियों में भ्रमण करता है:-

` जिय करि कर्म, जन्म बहु पावै । फिरत- फिरत बहुतेरम आवै ।
+ + +

1- श्रीमद्भागवत गीता - अध्याय - 2, श्लोक सं० - 23।

तनु मिथ्या छन भंगुर जानी । चेतन जीव सदा थिर मानी ।
जिय कौं सुख दुख तन संग होए । जो बिचरै तन के संग सोइ ।
देह भिमानी जीवहिं जानै । ज्ञानी तन अलिप्त करि मानै ।[1]

सूरदास जी ने जीव को माया से वेष्टित माना है। उन्होंने कहा है कि माया के कारण जीव अपने आप को भूल जाता है :-

` अपुनपौ आपुन ही बिसर्‌यौ ।
जैसे स्वान कांच मन्दिर मैं, भ्रमि- भ्रमि भूंकि पर्‌यो ।[2] `

और, जब अपने आप को पहचान जाता है , तब संसारिक भ्रम जाल से मुक्त हो जाता है । तब उसे ज्ञात होता है कि ईश्वर तो उसी में ही समाया हुआ है। वह यह जान जाता है कि वह परमात्मा का ही अंश है और उसे (जीव को) उसी में ही मिलना है, तो वह निरतिश्य आनन्द अर्थात् ` भूमा का सुख ` प्राप्त करने में सफल हो जाता है :-

` अपनुपौ आपुन ही में पायो ।
-।- + -।-
ज्यों कुरंग नाभी कस्तूरी, ढूंढत फिरत भुलायो ।
फिर चेत्यो जब चेतन ह्वै करि आपुन ही तनु छायो ।
+ + +
कहि न जाय या सुख की महिमा ज्यों गूंगे गुर खायो ।[3] `

गुरू गोबिन्दसिंह जी कहते हैं कि प्रभु स्वयं ही अनन्त रूप धारण करते हैं

1- सूरसागर - पद सं0 - 411, पृष्ठ - 156 ।
2- सूरसागर - पद सं0 - 369 , पृष्ठ - 123 ।
3- सूरसागर - पद सं0 - 407, पृष्ठ - 149 ।

29)

और पुनः अपने में ही सब को लीन कर लेते हैं । विश्व के सम्पूर्ण जीव प्रभु से ही उत्पन्न हुये हैं और अन्त में उसी में विलीन भी हो जायेंगे :-

` जितिक जगति के जीव ब खानो ।
एक जोत समै ही महि जानो ।।
काल रूप भगवान ~~भनैको~~ भनेवो ॥
ता महि लीन जगति सब ह्वैवो ।। `(चौबीस अवतार, द0ग्र0 पृ0- 158)

जो लोग आत्मा और परमात्मा में भेद- बुद्धि की कल्पना करते हैं उनके विषय में गुरू जी लिखते हैं :-

` जो जो भाव दुतिय महि राचे ।
ते ते मति विलन ते बाचे ।।
एक पुरख जिन नेक पछाना ।
तिन ही परम तत्त कहि जाना ।। `(चौबीसावहार, द0 ग्र0 पृ0- 157)

महाकवि सूरदास जी भी कहते हैं कि भगवान् सर्वांतर्यामी हैं, घट- घट वासी हैं, वे जैसा करते हैं, वैसा ही होता है :-

` धर्मपुत्र तू देखि विचार । कारन करनहार करतार ।
नर के किए कछु नहिं होइ । करता हरता आपुहि सोइ ।[1] `

सूरदास जी के अनुसार जीव, ब्रह्म और प्रकृति एक ही हैं। जीव और प्रकृति ब्रह्म के चित् और सत् अंश हैं :-

` प्रकृति पुरूष एकै करि जानहु बातनि भेद करायौ ।
+ + +
ब्रह्म रूप द्वितीया नहिं कोऊ तब मन तिया जनायौ ।[2] `

1- सूरसागर - पद सं0 - 261 पृष्ठ - 84 ।

2- सूरसागर - पद सं0 - 2305, पृष्ठ - 841 ।

चतु: श्लोकी में इस सम्बन्ध में सूरदास जी कहते हैं:-

` पहिले हौं ही हौं तब एक ।
अमल , अकल, अज, भेद बिवर्जित, सुनि बिधि बिमल विवेक ।
सो हौं एक अनेक भांति करि सोभित नाना भेष ।
ता पाछे इन गुननि गए तैं, हौं रहिहौं अविसेष ।।[1] `

अत: यह स्पष्ट है कि महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही जीव को परमात्मा का अंश माना है। प्रत्येक जीव में उस परम- ज्योति का अंश विद्यमान है। वह ज्योति चिर- प्रकाशित एवं अविनाशी है। शरीर के नश्वर होने पर भी उस चिर- प्रकाशित ज्योति का अंश जीव भी अविनाशी है। अत: जिस प्रकार अग्नि के स्फुलिंग उड़कर फिर उसी में ही समा जाते हैं, उसी प्रकार शरीर के नष्ट हो जाने पर जीव के भीतर का वह ज्योति- अंश भी उसी परम- ज्योति में विलीन हो जाता है। - दोनों कवि यह मानते हैं कि जीव परमात्मा का अंश होता हुआ भी माया के आवरण के कारण अपने को परमात्मा से भिन्न समझने लगता है और उसकी (परमात्मा की) खोज में भटकता फिरता है। उसे पाने के लिये नाना प्राखण्ड रचाता है। (गुरू गोबिन्दसिंह ने इन सब पाखण्डों एवं बाह्याचारों का खण्डन बड़ी दृढ़ता से किया है।) लेकिन जब तक वह माया, मोह को त्याग कर पूर्णत: शुद्ध अन्त:करण से प्रभु - चरणों में समर्पित नहीं हो जाता, तब तक वह अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान सकता ।

वस्तुत: हमारे दोनों विवेच्य कवि ही यह मानते हैं कि जीव के भीतर ब्रह्म - शक्ति का अंश है, परन्तु फिर भी वह ब्रह्म नहीं है। तत्व- अभेद के कारण उसमें परम- लीनता की विशिष्टता तो विद्यमान है, किन्तु प्रभु की निजी विशेषताओं को ग्रहण करने की सामर्थ्य उसमें नहीं है। पूर्णत: निष्काम प्रवृत्ति होने पर

1- सूरसागर- पद सं0- 381, पृष्ठ - 127 ।

ही वह उस परम-ज्योति में विलीन होने की सामर्थ्य पा जाता है।

महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही आत्मस्वरूप को समझने के लिये ` भक्ति ` को अमोघ साधन माना है। यद्यपि गुरू जी एवं सूरदास जी ने जीव के सम्बन्ध में अधिक कुछ नहीं कहा, क्योंकि सैद्धान्तिक विवेचन उनका उद्देश्य नहीं था, उन्होंने संदर्भानुसार ही इस संबंध में अपने विचार व्यक्त किये हैं, तथापि दोनों ने जीव और ब्रह्म की एकता के विषय में जो विचार व्यक्त किये हैं, वे मानव के व्यक्तित्व के विकास में सहायक हैं। उससे संकीर्णता का भाव दूर हो कर विपुलता का भावोदय होता है।

3- जगत् - भारतीय - संस्कृति के अनुसार यह जगत् ब्रह्म- रूप ही है। अत: ब्रह्म का अंश होने के कारण सत्य है। वल्लभाचार्य जी ने जगत् और संसार को दो भिन्न- भिन्न पदार्थ माना है। उन्होंने जगत् को ईश्वर कृत एवं सत्य कहा है और संसार को जीव कृत होने के नाते असत्य माना है। जगत् का निर्माण ब्रह्म की माया - शक्ति के 28 तत्वों द्वारा हुआ है जबकि संसार जीव की अविधा- माया का परिणाम है । संसार असत्य है, नाशवान है जबकि जगत् सत्य है, नित्य है, उसकी सत्ता ज्यों की त्यों बनी रहती है। जगत् की उत्पत्ति के सम्बन्ध में महाकवि सूरदास जी कहते हैं :-

` खेलत खेलत चित्त में आई, सृष्टि करन विस्तार ।
अपुन आपु करि प्रगट कियौ है हरि पुरूष अवतार ।[1]

गुरू गोबिन्दसिंह जी भी सृष्टि की उत्पत्ति उसी ` अकाल पुरूष ` (ब्रह्म) के ` एक मूरत अनेक दर्शन ` के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके कथानुसार परमात्मा ने ही अनेक रूपात्मक जगत् की सृष्टि की है और उसने यह कार्य खेल-

---

1- सूरसागरावली, पद संख्या 1.

खेल में ही कर दिया है :-

` एक मूरति अनेक दरसन कीन रूप अनेक ।
खेल खेल अखेल खेलन अन्त को फिर एक ।।81 ।।(द0 ग्र0 पृ0- 5)

महाकवि सूरदास भी ब्रह्म को ही जगत् के सृष्टि कर्ता, पालन- कर्ता एवं संहार कर्ता मानते हैं । ` सूरसागर ` में नारद भगवान् की स्तुति करते हुये कहते हैं:-

` प्रभु तुव मर्म समुझि नहिं परे ।
जग सिरजत पालत संहारत, पुनि क्यों बहुरि करे ।।
ज्यों पानी में होत बुदबुदा, पुनि ता माहिं समार ।।
त्योंही सब जग प्रगट तुम तैं पुनि तुम माहिं बिलाइ ।।[1] `

गुरू गोबिन्दसिंह जी ने भी ` अकाल- स्तुति ` में ब्रह्म को ही सृष्टि का कर्ता और संहारकर्ता कहा है :-

` तैसे बिस्वरूप ते अभूत भूत प्रगट होइ
ताही ते उपजे सबै ताही में समाहिंगे ।। 17 ।। 87 ।।
तेज जिउ अतेज में अतेज जैसे तेज लीन ।।
ताही ते उपजे सबै ताही में समाहिंगे ।। 88 ।।

गुरू गोबिन्दसिंह कहते हैं कि चौदह- भवनों में उसी का (ब्रह्म) ही खेल रचा है और फिर वह उसे अपने में ही समेट लेता है :-

` कोटि इन्द्र उपइन्द्र बनाए । ब्रह्मा रूद्र उपाए खपाए ।।
लोक चतुर्दस खेल रचायो । बहुर आप ही बीच मिलायो ।।(द0ग्र0पृ0-12)

महाकवि सूरदास जी भी कहते हैं :-

` कृष्ण- भक्ति करि कृष्णाहिं पावै ।
कृष्णाहिं ते यह जगत प्रगट है हरि में लय ह्वै जावै ।।

1- सूरसागर - पद सं0 - 4920, पृष्ठ - 1713 ।

33)

गुरू गोबिन्दसिंह के अनुसार यह विविध सृष्टि उसी ब्रह्म से उत्पन्न हुई है। पहले केवल एकोंकार(ब्रह्म) ही वर्तमान था फिर वही अपनी इच्छा से अनेक रूप हो कर इस जगत् की उत्पत्ति का कारण बना :-

` प्रिथमैं ओंकार तिन कहा ।
सो धुन पूर जगत को रहा ।।
ताते जगत भयो विस्थारा ।
पुरुख प्रकृति जब दुई विचारा ।।` (द0 ग्र0 पृ0 158)

महाकवि सूरदास जी भी यही कहते हैं कि पहले केवल एक ब्रह्म ही था । फिर वही ब्रह्म अपनी इच्छा शक्ति से अनेक रूपों में प्रगट हो इस जगत् की उत्पत्ति का कारण बना । और अन्त में भी ब्रह्म ही शेष रह जायगा । यह जगत् तो उसी में ही विलीन हो जायेगा :-

` पहिले हौं ही हौं तब एक ,
+ + +
ता पाछे इन गुननि गए ते हौं रहि हौं अवशेष ।[1] `

जगत् को सत्य एवं ब्रह्म स्वरूप कहते हुये महाकवि सूरदास ने शुद्धाद्वैत के मतानुसार ` संसार `को मिथ्या एवं क्षणभंगुर माना है। जीव की अविद्या माया से ही इस मिथ्या संसार की उत्पत्ति होती है। सूरदास जी ने संसार को सेमल के फूल की तरह निस्सार माना है और जीव को उस पर मोहित होने वाले ` शुक ` की संज्ञा दी है। सूरसागर के बहुत से पदों में संसार की निस्सारता का वर्णन मिलता है । यथा,

` मिथ्या यह संसार मिथ्या यह माया ।
मिथ्या है यह देह कहो क्यों हरि बिसराया ।[2] `

1- सूरसागर(नागरी प्रचारिणी सभा)-पद सं0 381, पृष्ठ - 127 ।
2- सूरसागर (वे० प्रे०)- पृष्ठ - 158 ।

संसार की नश्वरता एवं क्षणिकता के विषय में गुरू जी कहते हैं :-

` रावन के अहि रावन के, मनु के नल के चलते न चली गउ ।
भोज दिलीपत कौरवि के, नहि साथ दयो रघुनाथ चलि कउ ।
संगि चलि लौ नहीं कहुं के, साच कहो अध अध अउध दली सऊ ।
चेत रे चेत अचेत महा पसु, काहू के संग चली न हली हंऊ । `

सूरदास ` संसार को तो मिथ्या मानते हैं लेकिन उनके अनुसार ` जगत् ` मिथ्या नहीं है, वह ब्रह्म का ही भौतिक स्वरूप हैं । सूरदास जी कहते हैं :-

` आदि निरंजन, निराकार, कोउ हुतौ न दूसर ।
रचौं सृष्टि विस्तार, भई इच्छा इक औसर ।
त्रिगुन प्रकृति ते महत्तत्व, महत्तत्व ते अहंकार ।
मन- इन्द्री सब्दादि पंच, तातैं कियो विस्तार ।
सबदादि ते पंचभूत सुन्दर प्रगटाए ।
पुनि सबको रचि अंड, आप मैं आप समाए । [1] `

महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ही सांख्य- दर्शन के प्रकृति - पुरूषवाद को स्वीकार करते से जान पड़ते हैं । यथा, सूरसारावली में सूरदास जी ने तत्व- रूप जगत् का वर्णन किया है। यहां सूरदास जी ने ब्रह्म को निर्गुण मानते हुये गुरू गोबिन्दसिंह जी की ही भांति उसे(परब्रह्म को) ` काल पुरूष ` की संज्ञा प्रदान की है:-

अपने आप करि प्रकट कियो है हरि पुरूष अवतार ।
माया कियो दोम बहु विधि करि काल पुरूष के संग ।
कीन्हें तत्व प्रकट ते हो क्षण में सबै अष्ट और बीस ।
तिनके नाम कहत कवि सूरज निर्गुण सब के ईस । [2] `

1- सूरसागर - पद सं० - 379, पृष्ठ - 126 ।

2- सूर सारावली (वे० प्रे०) - पृष्ठ - 1 ।

गुरू गोबिन्दसिंह की निम्नांकित पंक्तियों में भी पुरूष - प्रकृतिवाद का ही स्वरूप दृष्टिगत होता है :-

` ताते जगत भयो विस्थारा ।
प्रकृति पुरूष जब दुई विचारा । `(द0 ग्र0 पृ0- 158)

गुरू गोबिन्दसिंह ने अपने काव्य में ` जगत् ` और ` संसार ` की कोई दो पृथक व्याख्यायें नहीं की । गुरूमत - में सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जटिल दार्शनिक तर्क- पद्धति का आश्रय नहीं लिया गयाहै। गुरूमत - सिद्धान्त के अनुसार तो यह विविध सृष्टि उस एक कर्ता पुरूष से उत्पन्न हुई है। वही सर्वशक्तिमान् , अविनाशी परमात्मा ही सत्य है, इसलिये उसकी रचना(सृष्टि) असत्य नहीं हो सकती । इस जगत् की उत्पत्ति ` काल पुरूष ` से ही होती है और प्रलय के उपरान्त समस्त सृष्टि उसी व्यापक तत्व में ही विलीन हो जाती है। गुरू गोबिन्दसिंह ने भी यही विचार व्यक्त किये हैं, यथा :-

` काल सपन का करत पसारा ।
अन्त काल सोई खापन हारा ।
आपन रूप अनन्तन धरही ।
आपहिं मध्य लीन पुन करहीं॥ 3 ॥ `(द0 ग्र0 (चौबीस अवतार) पृष्ठ -

महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह - दोनों कवियों ने ही ` जगत् ` को ` ब्रह्म ` की ` इच्छा ` का सहज एवं स्वाभाविक परिणाम बताया है। दोनों ने ही यह माना है कि उसने (ब्रह्म ने) क्रीड़ा के रूप में ही इस ` जगत् ` का निर्माण एवं विकास किया है और अन्त में वह (ब्रह्म) इस ` जगत् ` को अपने मर्म कोई नहीं जान पाया । सूरदास जी कहते हैं :-

` प्रभु तुअ मर्म समुझि नहिं पर्‌यो,
जग सिरजत, पालत, संहारत, पुनि क्यों बहुरि कर्‌यो । `[1]

1- सूरसागर (द्वितीय भाग) - पद सं0 - 4920 - पृष्ठ - 1713 ।

गुरू गोबिन्दसिंह जी भी कहते हैं :-

` तुम्हरा लखा न जाए पसारा ।
केहि विधि सृजा प्रथम संसारा ।। 25 ।। `(द0 ग्र0 (ज्ञान प्रबोध)
पृष्ठ -

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ही जगत् को ब्रह्म द्वारा निर्मित मान कर उसे(जगत् को) सत्य मानते हैं। दोनों के अनुसार ब्रह्म द्वारा उत्पन्न यह जगत् अन्त में उसी में (ब्रह्म में) ही समाहित हो जाता है। अन्तर केवल इतना है कि सूरदास महाप्रभु वल्लभ के अनुसार `जगत् ` और ` संसार ` में भेद ` समझते हैं । उनके मतानुसार संसार जीवकृत है तो जगत् ईश्वर कृत । गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में ` जगत् ` और ` संसार ` का यह भेद कहीं भी व्यक्त नहीं हुआ ।

4- माया - भारतीय संस्कृति के अनुसार माया वह शक्ति है जो जीव को ब्रह्म से पृथक कर देती है। माया के भ्रम जाल में उलझ कर जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है और काम, क्रोध, मोह- ममता, अहंकार आदि के वश में होकर ईश्वर से दूर होता चला जाता है।

माया के दो प्रकार कहे जाते हैं - 1- विद्या माया और 2- अविद्या माया इस अविद्या माया के कारण ही जीव इस संसार से जुड़ा रहता है और परमात्मा से ऐक्य स्थापित नहीं कर पाता । इस अविद्या माया को ` अज्ञान ` का नाम भी दिया गया है। विद्या माया अथवा ज्ञान का सम्बन्ध ईश्वर से माना जाता है। विद्या माया द्वारा ही जीव इस संसार से मुक्ति पाता है। आचार्य शंकर के मतानुसार अविद्या का नाश होने पर जीव और जगत् दोनों की सत्ता लुप्त हो जाती है, किन्तु वल्लभाचार्य के अनुसार अविद्या के नष्ट होने पर केवल संसार की सत्ता ही लुप्त होती है(क्योंकि संसार जीवकृत है, अत: मिथ्या है, क्षण भंगुर है) लेकिन जीव और जगत् दोनों ही अस्तित्व में रहते हैं(क्योंकि जीव और जगत् दोनों ही ईश्वर के अंश हैं अत: सत्य हैं ।) विद्या द्वारा अविद्या का नाश होने पर जीव संसार से मुक्त हो

37)

कर परमात्मा में लीन हो जाता है। इस अविद्या माया को नष्ट करने का एक मात्र साधन है - भक्ति ।

महाकवि सूरदास ने माया का वर्णन अनेक प्रकार से कियाहै। उनके अनुसार श्री कृष्ण परब्रह्म हैं और उनकी मुरली ` विद्या माया ` है जो जीव(गोपियां) और ब्रह्म(कृष्ण) को मिलाने का कार्य करती है। सूरदास जी माया को ईश्वर की ही शक्ति मानते हैं। लेकिन अविद्या माया तो बुद्धि को भ्रम में डाल देती है और ब्रह्म से दूर कर देती है। सूरदास जी ने इस माया को मोहिनी, भुजगिंनी नटिनी आदि नामों से पुकारा है । काम, क्रोध, मद, लोभ, मोहादि इसी माया के रूप हैं ।

गुरू गोबिन्दसिंह जी ने इतने विस्तार से तो माया के स्वरूप पर प्रकाश नहीं डाला, तथापि सांसारिक सुख, धन, वैभवादि की नश्वरता का प्रतिपादन करते हुए उनके मोह में न फंसने का प्रतिपादन भी उन्होंने किया है। गुरू जी ने भी काम, क्रोध , मोह, लोभ, अहंकारादि को प्रभु- प्राप्ति में अवरोधक माना है जो वास्तव में अविद्या- माया के ही रूप हैं। गुरू जी ने अज्ञान के नाश (अविद्या माया के नाश) एवं ज्ञान के उदय (विद्या माया की प्राप्ति) को ही प्रभु - प्राप्ति में सहायक माना है। ` अकाल- स्तुति ` में उन्होंने यह भी कहा है कि ब्रह्म स्वयं माया रहित निरंजन है और वही मायापति है। माया उसके चरणों की दासी है।

माया को नटिनी एवं मोहिनी की संज्ञा देते हुए सूरदास जी कहते हैं कि मन की मूढ़ता , अज्ञानता, तृष्णा, मोह, ममता, अहंकार, काम, क्रोध , लोभ इत्यादि इसी माया के ही रूप हैं । सूर ने प्राय: इन सभी प्रकारों का वर्णन रूपक बाँध कर एवं दृष्टान्त देकर किया है। वे कहते हैं :-

` बिनती सुनो दीन की चित दै कैसे तव गुण गावैं ।
माया नटिनी लकुट कर लीने कोटिक नाच नचावै ।
दर- दर लोभ लागि लै डोलति नाना स्वांग करावै ।

तुम सों कपट करावति प्रभु जु मेरी बुद्धि भ्रमावै ।
मन अभिलाष तरंगनि करि करि मिथ्या नाश जगावै ।
सोवत स्वप्ने में ज्यों सम्पति त्यों दिखाये बौरावै ।
महा मोहिनी मोह आतमा, अपमारगहि लगावै ।[1]

सूरदास जी ने माया को अविद्या और तृष्णा का रूप भी कहा है । उ। के अनुसार अविद्या के कारण मनुष्य सांसारिक मोह- माया में लिप्त रह कर अपना मूल्यवान समय खो देता है। वे अविद्या के निवारण हेतु प्रभु से प्रार्थना करते हैं :-

माधो जू, यह मेरी इक गाइ ।
अब आज तैं आप आगे दई ले आइये चरार ।
यह अति हरहाई, हटकत हूं बहुत अमारग जाति ।
फिरति बेद-बन ऊख उसारति, सब दिन सब राति ।
+ + +
मन- ममता रूचि सौं रखवारी, पहिले लेहु निबेरि ।[2]

इसी प्रकार माया- जन्य दुख की भीषणता का वर्णन करते हुये सूर ने इस माया रूपी संसार का समुद्र के रूप में सांग- रूपक बांधा है :-

अबके नाथ मोहि उबारि
मग नहीं भव अम्बुनिधि में कृपा सिन्धु मुरारि ।
नीर अति गम्भीर माया लोभ लहर तरंग ।
लये जाति अगाध जल मैं गहे ग्राह अनंग ।
मीन इन्द्रिय अतिहि काटति, मोट अघ सिर भार ।
काम, क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर ।
नाहिं चितवत (चितवत) देत तिय सुत नाम नौका ओर ।

1- सूरसागर - पद सं0 - 42, पृष्ठ 15 ।

2- सूरसागर - पद सं0 - 51, पृष्ठ-18 ।

ध धक्यो बीच विहाल विह्वल सुनो करुणा- मूल ।
श्याम भुज गहि काढ़ि लीजे सूर ब्रज के कूल ।[1]

तृष्णा का भी उन्होंने इसी प्रकार वर्णन किया है। एक सुन्दर रूपक में वे कहते हैं :-

माधौ बेकु हटकौ गाइ ।।
भ्रमत निसि- बासर अपथ - पथ, अगाहि गहि नहीं जाइ ।
+ + + +
ताहि कहु कैसें कृपानिधि, सक्त सूर चराइ ।[2]

गुरू गोबिन्दसिंह कहते हैं कि अज्ञान (अथवा अविद्या माया) के कारण ही जीव अपने वास्तविक लक्ष्य को भूल कर सांसारिक भोग- विलास में डूबा रहता है। अज्ञानी व्यक्ति अन्धविश्वासों और मिथ्या आडम्बरों में फंस कर ढोंगी बन जाता है। इस अविद्या अथवा अज्ञान से सावधान करते हुये वे लिखते हैं कि जो लोग अपने मन में अहंकार करते हैं, उन्हें ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती :-

जे जे बादि करत अहंकारा ।
तिन ते भिन्न रहत करतारा । (द० ग्र० पृ०- 44)

वस्तुत: गुरू गोबिन्दसिंह जी ने ईश्वर से विमुख करने वाली इस माया को सूरदास की भांति ' अविद्या माया ' का नाम न दे कर ' अज्ञान ' कहा है जो वास्तव में ' अविद्या ' का ही पर्याय है। गुरू जी ने इस 'अज्ञान ' को मोह, ममता, काम, क्रोध, तृष्णा, कामना, अहंकारादि कई विषयों में बांट दिया है। उनके अनुसार जब तक व्यक्ति अपनी कामनाओं पर नियन्त्रण कर विषय- वासनाओं के आधिपत्य से

1- सूरसागर - पद सं० - ११ , पृष्ठ - ३१- ३२ ।

2- सूरसागर - पद सं० - 56, पृष्ठ - 19 ।

मुक्ति नहीं प्राप्त कर लेता, तब तक वह ब्रह्म रूपी दिव्य - रत्न की उपलब्धि नहीं कर सकता :-

कामना अधीन सदा दामना द्रवीन,
एक भावना विहीन कैसे पावै जगदीस को । [1] (दशम ग्रन्थ पृ०)

गुरू जी कहते हैं कि कोई कितना ही बलवान् सामर्थ्यवान एवं ऐश्वर्यवान क्यों न हो, फिर भी ज्ञान से विहीन होने पर वह मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता :-

नाचत फिरत मोर आदर करत चोर,
दामनी अनेक आउ करिओइ करत है ।
चन्द्रमा ते सीतल न सूरज ते तपत तेज,
इन्द्र सो न राजा भाव भूप को भरत है ।
सिव से तपस्वी आदि ब्रह्मा से न वेदचारी,
सनत कुमार की तपस्या न अनंत है ।
ज्ञान के विहीन काल फांस के अधीन सदा,
जुगन की चउकरी फिरो है फिरत है। [2] (अकाल स्तुति, दशम ग्रन्थ पृ०)

गुरू जी के कथानुसार ज्ञान- विहीन व्यक्ति ईश्वर प्राप्ति के सही साधन को नहीं जान पाता । वह सांसारिक कार्यों में इतना लिप्त रहता है कि कुछ क्षणों के लिये भी ईश्वर को स्मरण नहीं कर पाता । और तो और, भौतिकता में आसक्त जीव तो ईश्वर के अस्तित्व को भी नकार देता है। सांसारिक ऐश्वर्य उसकी वृत्ति को अपने में इतना लीन कर लेते हैं कि वह उन्हें ही सब कुछ मान लेता है । उनकी प्राप्ति को ही जीवन का वास्तविक लक्ष्य मान, जगत् के वास्तविक तत्व(ब्रह्म) की अवहेलना करने लगता है। इसी अवहेलना के कारण ही उसमें अहंकार , दम्भ, क्रोध, अभिमान आदि की वृत्ति जाग्रत होती है और उसका पतन आरम्भ हो जाता है। जीव इन क्षणिक वासनाओं के अधीन हो कर, इनमें ही अपने अस्तित्व को विलीन कर देता है और कामनाओं के अधीन हो कर एवं काम- क्रोध से युक्त होने पर व्यक्ति भावना से विहीन हो जाता है और परलोक की प्राप्ति में असमर्थ हो जाता है :-

---

1- दशम ग्रन्थ — अकाल स्तुति — छं० सं० - 76 ।
2- दशम ग्रन्थ — अकाल स्तुति — छं० सं० -79 ।

` कामना अधीन काम क्रोध में प्रवीन,
एक भावना विहीन कैसे भेटें परलोक सो ।। ` (द० ग्र० पृ० अकालस्तुति - छन्द सं० - 10)

ज्ञान (विद्या माया) को ब्रह्म प्राप्ति का परमावश्यक तत्व बताते हुए ज्ञान हीन (अविद्या माया से युक्त) व्यक्ति के लिये गुरू जी कहते हैं :-

` अंगना अधीन काम क्रोध में प्रवीन ।
एक ज्ञान के विहीन हीन कैसे के तरत हैं । ` (द० ग्र० पृ० अकालस्तुति - छन्द सं० -)

इसलिये ज्ञान की परमावश्यकता दर्शाते हुये गुरू गोबिन्दसिंह जी कहते हैं कि संसार में वही धन्य है जिसने विषय- वासनाओं से मुक्त हो (अविद्या माया से हट कर) परमात्मा को ही सत्य मान लिया है । जिसने इस दुर्लभ मनुष्य- योनि को पा कर अपने को परमात्मा में अनुरक्त कर दिया, वही वास्तव में परमपद का अधिकारी है । या फिर सूरदास के शब्दों में यह कहें कि जिसने अविद्या माया को नकार कर विद्या- माया को अपना साधन बना लिया है, वही ब्रह्म की प्राप्ति में सफल हो सकता है। इस भाव की बड़ी ही उत्कृष्ट अभिव्यक्ति गुरू जी ने की है :-

` धन्य जियो तिह को जग में मुख में हरि चित्त में जुद्ध विचारे ।
देह अनित न नित रहे जसु नाव चेढ़े भवसागर तारे ।
धीरज धाम बनाइ इहै तन बुद्धि सु दीपक जिऊं उजियारे ।
ज्ञानहि की बढ़नी मनहु हाथ ले कातरता कुतवार ब्रहारे ।। `
(कृष्णावतार, द० ग्र० कृ० सं०- 2492)

महाकवि सूरदास ने विद्या और अविद्या माया के अतिरिक्त ब्रह्म की शक्ति - स्वरूपा एवं सत्य स्वरूपा माया(जो सृष्टि का विस्तार करती है) का भी वर्णन किया है। इस माया को उन्होंने अविगत और अकथनीय कहा है। सूरदास जी कहते हैं:-

` अविगत गति जानी न परै ।
मन वच अगम अगाध अगोचर केहि विधि बुद्धि संचरै ।
+ + +
रीते भरै भरै पुनि ढारै चाहै फेरि भरै ।

कबहुंक तृण बूढ़े पानी में कबहुं शिला तरै ।

\+ + +

राजा रंक रंक ते राजा ले सिर छत्र धरै ।

सूर पतित तरि जाइ तनक में जो प्रभु नेकु ढरै ।[1] `

वस्तुत: इस प्रकार का वर्णन सूर- काव्य में कुछेक पदों में ही मिलता है विशेष रूप से सृष्टि के विकास के प्रसंग में ही इस शक्ति- स्वरूपा माया का उल्लेख हुआ है।

गुरू गोबिन्दसिंह जी ने इस प्रकार का कोई भी वर्णन अपने काव्य में नहीं किया है । हां, दो - एक छन्द ऐसे अवश्य हैं जिन में इस प्रकार का आभास सा मिलता है। सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ही गुरू जी कहते हैं :-

` कहूं मेट डारे उसारे बनाये ।

उपाये गड़े फेरि मेटे उपाये ।

क्रिया काल जू की किन्हु न पछानी ।

धनयी पे बिहे है धनयी पे बिहानी । `(द0 ग्र0 पृ0- 41)

उक्त पंक्तियों में ` क्रिया काल जू की किन्हु न पछानी ` - और सूरदास की - ` अविगत गति जानी न परै ` - पंक्ति में पर्याप्त साम्य है । यहां ` क्रिया काल जू की ` से गुरू जी का अभिप्राय शायद ब्रह्म की शक्ति स्वरूपा माया से ही है जो कि इस सृष्टि के विस्तार का कारण है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों के अनुसार ही माया सांसारिक बंधन का कारण है। मनुष्य अज्ञान के अंधकार में पड़ कर अपने उद्देश्य को भूल कर पथ-भ्रष्ट हो जाता है और जो लोग अज्ञान- तिमिर से ग्रस्त हो, विषय- भोगों में लीन हो जाते हैं उनको ब्रह्म की प्राप्ति कैसे हो सकती है ।

1- सूरसागर, प्रथम स्कन्ध- वे0 प्रे0 - पृ0 - 8 ।

गुरू गोबिन्दसिंह और महाकवि सूरदास- दोनों ने ही माया के प्रबल आघात से बचने का एक अद्भुत उपाय बतलाया है और वह है भगवद्भक्ति ।

5- काल - महाकवि सूरदास के काव्य की अपेक्षा गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में काल के सम्बन्ध में अधिक विवरण उपलब्ध होता है। गुरू जी के समस्त साहित्य में परमात्मा के अगणित नामों का प्रयोग हुआ है। ` काल ` इस साहित्य में ईश्वर का प्रतिनिधि नाम है। मध्यकालीन भक्तों की रचनाओं में ईश्वर के लिये इस नाम का प्रयोग कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता । हां, पौराणिक साहित्य में इस नाम का विवरण उपलब्ध है। विष्णु पुराण में कहा गया है :-

` तदेव सर्वमेवैतद्व्यक्ताव्यक्त स्वरूपवत् ।
तथा पुरूष रूपेण काल रूपेण च स्थितम् ।।[1] `

(अर्थात् - ` वही ( परमात्मा ) इन सब व्यक्त ( कार्य ) और अव्यक्त (कारण ) जगत् के रूप से तथा ( इसके साक्षी) पुरूष और काल के रूप में स्थित है।`)

विष्णु पुराण में यह भी कहा गया है :-

` अनादिर्भगवान्कालो नान्तो स्यद्विज विद्यते ।
आव्युच्छिन्तास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्पन्तसंयमा: ।।[2] `

(अर्थात् - हे द्विज काल रूप भगवान अनादि हैं, इसका अन्त नहीं है इसलिये संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय भी कभी नहीं रूकते ।)

गुरू गोबिन्दसिंह ने इस नाम को एक विशिष्ट उद्देश्य से ही अपने साहित्य में प्रतिष्ठित किया था । उन्हें तत्कालीन आततायी शासन के विरूद्ध जन-मत को संगठित करना था, उत्पीड़न एवं आतंक के वातावरण से उत्पन्न मानसिक दौर्बल्य

1- विष्णु पुराण, गीता प्रेस, श्लोक - 14, पृ0 15 ।

2- ,, ,, - 26, पृ0 -16 ।

को शक्ति प्रदान करनी थी, उन्हें तत्कालीन जनता को युद्ध जैसे क्रूर कर्म के लिये सन्नद्ध करना था । इसलिये अधिकांशत: उनकी रचनाओं में ईश्वर के उग्र रूप को प्रधानता मिली है । और ` काल ` उस उग्र रूप का भली- भाँति प्रतिनिधित्व करता है ।

गुरू जी की शुद्ध भक्ति परक रचनाओं में ईश्वर के सुन्दर सलोने रूप की अभिव्यक्ति तो हुई ही है, साथ ही उसी ईश्वर के वीर एवं रौद्र रूप का वर्णन भी उनकी रचनाओं में पर्याप्त है। गुरू जी वास्तव में एक सन्त- योद्धा अथवा योद्धा- भक्त थे । वे केवल काल को ही कर्ता मानते हैं :-

` केवल काल ही करतार ।
आदि अन्त अनन्ति मूरति गढ़न भंजन हार ।। ` (द० ग्र० पृ० - 71)

काल की आज्ञा से ही विष्णु, ब्रह्मा, शिव इत्यादि जन्म लेते हैं और अन्त में उसी (काल) की लपेट में आकर नष्ट हो जाते हैं। केवल काल ही ` अकाल ` है -

` काल ही पाइ भयो भगवान सु जागत या जग जाकी कला है ।।
काल ही पार भयो ब्रह्मा सिव, काल ही पाइ भयो जुगिआ है ।।
काल ही पाइ सुरासुर गन्धर्व जच्छ भुजंग दिसा विदिसा है ।।
अडर सकाल सभै बस काल के एक ही काल अकाल सदा है ।। `

(द० ग्र० पृ०- 48)

` वैसे तो काल सभी कुछ है । वही बनाता है, वही बिगाड़ता है परन्तु काल शब्द का ही उच्चारण करते विनाश और मृत्यु का भयानक स्वरूप सम्मुख आ खड़ा होता है । गुरू गोबिन्दसिंह को अपनी परिस्थिति के अनुसार ईश्वर के निर्माण- पोषण रूपों की इतनी आवश्यकता नहीं थी जितनी विनाश करने वाले स्वरूप की । वे तो स्पष्ट यह कहना चाहते थे कि जिस काल ने बड़े- बड़े देवताओं, दैत्यों, सम्राटों को क्षण में समाप्त कर दिया, उसके सम्मुख कोई टिक सके, ऐसी किस में शक्ति है । कदाचित् यह कर उन्होंने अपने युग की उस शक्ति मदान्ध मुगल - सत्ता की ओर संकेत किया जिसकी विशाल शक्ति के सम्मुख ` काल ` का भरोसा ले कर ही वे जनता `

को तैयार कर रहे थे[1] :-

` या कलि में सम काल कृपान के मारी भुजान को मारी भरोसो । `

(द0 ग्र0 पृ0 45)

गुरू जी ने काल को सर्वकाल, महाकाल, कालकाल इत्यादि अनेक नामों से अभिहित किया है। वस्तुत: काल के रूप में गुरू जी ने ईश्वर के वीर या उग्र रूप की प्रतिष्ठा की है ।

महाकवि सूरदास जी ने भी काल का वर्णन किया है । उन्होंने काल को व्याल कहा है :-

` काल - व्याल, रज-तम-विष- ज्वाला कस जड़ जंतु जरता ।[2] `

एक और पद में सूरदास जी ने काल की उपमा ` अग्नि ` से दी है । सूरदास जी तो कहते हैं कि यह काल सर्वत्र घूमता रहता है और लोगों को अपने वश में कर लेता है । सूरदास जी ने इससे बचने का उपाय भी बताया है और वह है - भगवद्भक्ति :-

` दिन द्वै लेहु गोविंद गाइ ।
मोह- माया- लोभ लागे, काल घेरे आइ ।
+ + +
सूर हरि की भक्ति कीन्हीं, जन्म पातक जाइ ।[3] `

और - जो प्रभु की भक्ति करते हैं, माया और काल उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते:-

` माया, काल कछु नहिं व्यापै, यह रस रीति जो जानै ।
सूरदास यह सकल समग्री, प्रभु प्रताप पहिचानै ।[4] `

1- गुरू गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता - डॉ0 महीपसिंह -पृ0-241 ।

2- सूरसागर- पद सं0 - 55, पृष्ठ - 19 ।

3- सूरसागर - पद सं0 -316, पृष्ठ - 104 ।

4- सूरसागर - पद सं0 - 40 ,पृष्ठ - 14 ।

वास्तव में इन दोनों कवियों की ` काल ` सम्बन्धी धारणा में बहुत अन्तर है जो उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जहां गुरू जी ` काल ` को साक्षात् ईश्वर मानते हैं , वहां सूरदास जी कहते हैं कि ईश्वर की भक्ति करने से ` काल ` का प्रभाव नष्ट हो जाता है ।

6- मोक्ष(मुक्ति)- महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही प्रभु की भक्ति द्वारा मुक्ति को सुलभ बताया है। उन्होंने मुक्ति का सैद्धान्तिक विवेचन तो कहीं नहीं किया है पर मुक्ति सम्बन्धी संदेश उनके पदों में मिलते हैं । सूरदास भगवद्भक्ति को मुक्ति का साधन मानते हुये कहते हैं :-

(1) ` सोचि विचारि सकल- स्तुति- सम्मति, हरि ते और न आगर।
सूरदास प्रभु इहिं औसर भजि उतरि चलौ भवसागर ।। `

(2) सूर हरि के भजन करि लै, जनम मरन नसाइ ।।
सूर भजै चरनारबिंदनि, मिटै जीवन- मरन ।।[1] `

` अकाल- स्तुति ` में गुरू गोबिन्दसिंह जी ने भी अनेक बार इस बात का उल्लेख किया है कि जीव जब तक भक्ति द्वारा मुक्ति नहीं प्राप्त कर लेता, तब तक वह आवागमन में फंसा रहता है। सांसारिक जीव विषय वासनाओं में लिप्त रहते हैं और अनेक प्रकार के ब्राह्याचार, जप-तप इत्यादि करने पर भी मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकते । मुक्ति का तो एक ही साधन है और वह है - नाम- स्मरण । गुरू जी कहते हैं:

(1) ` जे नर स्याम जू के परसे पग ते नर फेर न देह धरैंगे ।। 2483 ।।

(2) ` श्रीपति श्री भगवान भजे बिनु अन्त को अन्त के धाम सिधारे ।।` 23 ।।[2]

गुरू जी कहते हैं कि जब तक जीव काम, क्रोध , मोह आदि को नहीं त्याग देता, तब तक उसे परलोक की प्राप्ति नहीं हो सकती -

` कामना अधीन काम क्रोध में प्रवीन, एक भावनाविहीन कैसे मैटे परलोक सौ ।

महाकवि सूरदास ने यद्यपि मुक्ति का सैद्धान्तिक विवेचन नहीं किया, परन्तु

1- सूरसागर - पद सं0- 91,315 और 308 ।

2- दशम ग्रंथ - कृष्णावतार, पृष्ठ 569 , और जापु ` - पृष्ठ - 14 ।

उनके काव्य में मोक्ष के - सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य - प्रकारों का संकेत अवश्य मिलता है । भ्रमरगीत प्रसंग में गोपियों की निम्नांकित उक्ति में मुक्ति के चारों भेदों का उल्लेख मिलता है :-

`ऊधौ सूधें बेकु निहारौ ।
+ + +
हम सालोक्य, सरूप, सायुज्यौ रहति समीप सदाईं ।
सो तजि कहत और की औरे तुम अलि बड़े अदाईं ।।[1] `

सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह के मोक्ष सम्बन्धी विचारों के आधार प यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि दोनों के आदर्श महान् हैं एवं अनुकरणीय हैं ।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ही मूलत: दार्शनिक नहीं थे । अत: उन्होंने किसी दर्शन विशेष के तत्वों का सैद्धान्तिक विवेचन नहीं किया । फिर भी, दोनों आध्यात्मिक पुरूष अवश्य थे ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुरू गोबिन्दसिंह एक साहसी, शूरवीर एवं यशस्वी योद्धा तथा राजनीतिक नेता थे, किन्तु उनका भक्त एवं सन्त का रूप इतिहास लेखकों द्वारा प्राय: उपेक्षित ही रहा है। गुरू जी पहले एक धर्मसंस्थापक, धर्मप्रचारक एवं धर्मगुरू थे और योद्धा बाद में । उनका दूसरा रूप पहले रूप का साधन था । उन्होंने अपने विचारों को साकार कर दिखाया । `गुरू दार्शनिक न थे, लेकिन तार्किकों के प्रत्येक तर्क से परिचित थे । वे वेदपाठी भी न थे पर सम्पूर्ण वेदों का सार उन्होंने संसार को पढ़ा दिया था । - - - उनके कर्म और धर्म में एकता थी, कथनी और करनी में साम्य था, `कहनी और रहनी में समरूपता थी ।[2] `

1- सूरसागर - पद सं० - ५५१४ ।

2- गुरू गोबिन्दसिंह के साहित्य में भारतीय संस्कृति के तत्व - डॉ० धर्मपाल मैनी - पृष्ठ - ९४ ।

48)

महाकवि सूरदास में भी किसी भी दार्शनिक सम्प्रदाय का आग्रह नहीं है । वे सभी मतवादों से ऊपर हैं। उनमें अनुभूति के स्तर पर अद्वैतवाद और शुद्धाद्वैतवाद एवं भक्ति तथा ज्ञान में तात्विक अन्तर की सजग चेतना नहीं है पर फिर भी शब्दार्थ के माध्यम से की गई अभिव्यक्ति किसी न किसी मतवाद का क्षीण अथवा सघन आवरण ग्रहण कर ही लेती है। इस दृष्टि से सूर शुद्धाद्वैतवादी तथा पुष्टिमार्गी हैं । इनके तत्वों का उन्होंने हृदय से साक्षात्कार किया है ।[1] ।

1- सूर की साहित्य साधना - डॉ0 भगवत स्वरूप मिश्र - पृष्ठ - 90 ।

तुलनात्मक - अध्ययन

(ग) भाव - पक्ष

1- शृंगार - वर्णन

(क) संयोग शृंगार

(ख) विप्रलम्भ शृंगार

2- भक्ति एवं उसका स्वरूप

000

प्रत्येक कवि की कृति अपने युग की प्रवृत्तियों और अपने रचनाकार की मनोवृत्ति के अनुसार अपना रूप ग्रहण करती हुई अपने रचयिता की आत्मानुभूति से ही संचालित होती है। कवि की अनुभूति से प्रेरित होने के कारण कोई भी रचना युग- सापेक्ष होती हुई भी अपनी विशेष अनुभूति के कारण अपनी समकालीन रचनाओं से भिन्न अस्तित्व तो अवश्य रखती है, किन्तु युग का प्रतिबिम्ब भी प्रत्येक साहित्य के प्रत्येक काल की प्रत्येक रचना में अवश्य दृष्टिगत होता है। `सूरसागर` और `कृष्णावतार` भी इसके अपवाद नहीं। `सूरसागर` की रचना भक्ति-काल में हुई जबकि कृष्णावतार रीतिकालीन कृति है।

भक्तिकाल में तद्युगीन परिस्थितियों के कारण साहित्यिक अव्यवस्था, भावनाओं में अस्थिरता एवं राजनैतिक आक्रमणों से समाज एवं धर्म में भी क्षीणता दृष्टिगत होने लगी थी। सगुण के प्रति अनास्था का होना सहज ही था क्योंकि नाथ पंथी और ज्ञानमार्गियों का वेग बड़ा प्रबल था। धीरे - धीरे लोग इस नीरसता एवं शुष्कता से ऊबने लगे थे। उन्हें किसी ऐसे आराध्य की तलाश थी जो उन्हें आनन्दित कर सके, उनके शुष्क जीवन में सरसता भर दे, उनके मुरझाये मनो को अपनी रूप - माधुरी एवं लीलाओं द्वारा हरा- भरा कर दे।

वास्तव में लोगों की इस प्रवृत्ति एवं राग मूलक भावनाओं को कृष्ण - भक्तों ने पहचाना और उनकी इस पिपासा को कृष्ण- रूप- माधुरी की निर्मल पीयूष - धारा द्वारा शान्त किया, सगुण के प्रति आस्था जागृत की और कृष्ण की अलौकिक रस- लीलाओं द्वारा तत्कालीन जनता के मुरझाये मनों को सींचा, उन्हें रस-स्निग्ध कर दिया। भक्त सख्य- भाव से प्रभु की एकान्त लीलाओं में भी प्रस्तुत होने लगा। राधा की रूप- माधुरी से कृष्ण के मन में भी प्रेम का भाव जागृत हुआ और फिर तो अभिसार की चर्चा भी चल निकली। गोपी- भाव की प्रतिष्ठा भी हुई। तत्कालीन धर्माचार्यों ने भी इस भावना को प्रश्रय दिया और भक्ति के क्षेत्र में `मधुर रस` की स्थापना की। राधा कृष्ण की चिर- सहचरी बन गयी। इन

2)

दोनों के युगल - स्वरूप से जिस सम्पूर्ण सौन्दर्य, माधुर्य एवं प्रेम की स्थापना हुई वह अतुलनीय था । प्रेम की यही अनुभूति ` मधुर- रस ` अथवा ` उज्जवल- रस ` के रूप में समक्ष आई जिसे भक्ति के क्षेत्र में ` माधुर्य- भक्ति ` की संज्ञा दी गई । जयदेव, विद्यापति और चंडीदास ने भी इस मधुरता का गान किया और उनके काव्य में राधा राधा रसेश्वरी एवं कृष्ण रसेश्वर बन गये । इन्होंने ही कृष्ण संबन्धी श्रृंगार का रसपूर्ण चित्रण किया । राधा- कृष्ण की इस मधुरता ने अनेक कवियों को आकृष्ट किया जिनमें मीरां, नंददास, एवं सूरदास आदि प्रमुख हैं। वैसे तो सूर की भक्ति - भावना प्रेम के विविध सम्बन्धों में व्यक्त हुई है पर माधुर्यभाव की भक्ति में उनकी मनोवृत्ति विशेष रूप से रमी है । यही कान्ता भाव अथवा गोपी भाव की भक्ति ही सूर के काव्य में श्रृंगार की पीठिका पर आसीन हुई है । श्रृंगार- रस के वर्णन में सूर की प्रतिभा का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है ।

हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल(लगभग सन् 1643 ई० से सन् 1843 ई० तक), जिसमें सामान्य रूप से श्रृंगारपरक लक्षण ग्रन्थों की रचना हुई, नामकरण की दृष्टि से विद्वानों में पर्याप्त मतभेद का विषय रहा है। मिश्रबन्धुओं ने इसे ` अलंकृत - काल ` कहा है, जबकि आचार्य शुक्ल इसे ` रीतिकाल ` और पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ` श्रृंगारकाल ` संज्ञा देते हैं ।[1] `

राजनीतिक दृष्टि से यह काल मुगलों के शासन के वैभव के चरमोत्कर्ष का काल था जिसका उत्तरोत्तर पतन एवं विनाश होता चला गया । औरंगज़ेब का युग अन्याय, अनाचार, अनीति एवं अत्याचार का युग था, अकबर द्वारा प्रस्थापित राजनीतिक शान्ति औरंगज़ेब के समय में पूर्णत: नष्ट हो चुकी थी। हिन्दुओं के अन्दर प्रतिरोध की भावना जागृत हो रही थी । परिणामस्वरूप इस युग में तत्कालीन

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ० नगेन्द्र - पृ० 273 ।

जनता में जोश एवं उत्साह जागृत करने के लिये वीर रसात्मक काव्यों की रचना हुई । ` कृष्णावतार ` भी इन्हीं रचनाओं में से एक है जो रीतिकालीन भक्ति-भावित वीर रसात्मक काव्यों की कोटि में आता है । ` कृष्णावतार ` की वीर-भावना स्वानुभूति पर आधारित है क्योंकि इसके रचयिता गुरू गोबिंदसिंह स्वयं एक वीर एवं इतिहास प्रसिद्ध योद्धा थे । इस दृष्टि से भी रीतिकालीन वीर काव्यों में इस कृति का मूल्य बढ़ जाता है ।

सामाजिक दृष्टि से भी इस काल को आदि से अन्त तक घोर पतन का युग ही कहा जा सकता है। चतुर्दिक विलासता का ही बोल बाला था । ` राजनीतिक और सामाजिक अधोगति का स्वाभाविक परिणाम था नैतिक अधोगति । हिन्दु युग- युग से पादाक्रान्त रहने के कारण और मुसलमान विलास तथा आन्तरिक एवं बाह्य द्वन्द्वों से जर्जर हो कर अपना नैतिक बल खो बैठे थे ।[1]

समाज में नैतिक ह्रास के साथ धर्म की उदात भावना भी क्षीण हो चुकी थी । कृष्ण की माधुर्य भक्ति क्रमश: स्थूल और मांसल श्रृंगार रूप में परिणत होने लगी थी । भक्ति की आड़ में भ्रष्टाचार बढ़ चला था । सात्विकता समाप्त हो गई थी । भक्तिकाल के दिव्य एवं अलौकिक कृष्ण भक्ति देव एवं भाव देव की उच्च भूमिका से उतर कर एवं ` श्रृंगार देव ` की पीठिका तक ही सीमित हो कर सामान्य नायक के रूप में परिवर्तित हो गये थे ।

गुरू गोबिंदसिंह कृत ` दशम ग्रंथ ` जिसमें ` कृष्णावतार ` भी सम्मिलित है , इस युग(रीतिकाल) की महान कृति है। गुरू गोबिंदसिंह मुख्यत: वीर रस के कवियों में से थे । लेकिन उन्होंने अन्य रसों की भी अवहेलना नहीं की । ` उनके काव्य में एक ओर वेदों के अनुरूप ब्रह्म के ` नेति ` और पुन: सगुण रूप का वर्णन

1- रीतिकाल की भूमिका (पूर्वार्द्ध) - डॉ० नगेन्द्र - पृ० 14 ।

मिलता है, तो दूसरी ओर अत्याचार एवं अनाचार का विरोध करने वाली वीर ओजस्विनी तलवार की झंकार भी सुनाई देती है । बाह्याडम्बर में फंसी जनता को धर्म के योद्धा पण्डितों का एक ओर परिचय दिया है तो शृंगार- रसप्लावित रसिकों को नायिका के नख- शिख एवं त्रिया चरित्र के विविध रूपों के दर्शन भी करवाये हैं ।[1]

वस्तुत: ` दशम ग्रंथ ` की रचना जिस युग में हुई उसमें शृंगार- चित्रण की एक रूढ़ परम्परा बन चुकी थी । ` दशम - ग्रंथ ` के शृंगार- चित्रण में अधिकांश रूप में परम्परा का ही निर्वाह किया गया है । ` कृष्णावतार ` में शृंगार का पर्याप्त चित्रण हुआ है ।

शृंगार का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है । आचार्यों ने इसे दो भागों में विभाजित किया है :- संयोग शृंगार और विप्रलम्भ शृंगार । महाकवि सूरदास और गुरू गोबिंद-सिंह के काव्यों में शृंगार के अनेकों श्रेष्ठ चित्र विद्यमान हैं ।

(1) संयोग शृंगार :- रसों में शृंगार की रसराजता सर्वमान्य एवं सर्वव्यापक है। वस्तुत: नायक एवं नायिका के परस्पर आकर्षण से ही संयोग - शृंगार का प्रारम्भ होता है । इस आकर्षण के मूल में आलम्बन और आश्रय का रूप- सौन्दर्य ही विद्यमान होता है । अत: रूप- सौन्दर्य ही संयोग- शृंगार अथवा शृंगार का प्रथम सोपान है ।

(।) रूप- सौन्दर्य- सूर के काव्य में राधा और कृष्ण के जिस प्रेम का चित्रण संयोग- शृंगार के रूप में हुआ है वह बाल्यावस्था से ही प्रारम्भ हो कर धीरे - धीरे विकसित होता हुआ युवावस्था में स्थायी प्रणय के रूप में प्रस्तुत होता है। राधा और कृष्ण की प्रथम - भेंट एवं उनके रूप- सौन्दर्य का हृदयग्राही चित्र इन पंक्तियों में अंकित हुआ है :-

` खेलत हरि निकसे ब्रज- खोरी ।
कटि कछनी पीताम्बर बांधे, हाथ लए भौरां चक डोरी ॥

1- गुरू गोबिंदसिंह के काव्य में भारतीय संस्कृति के तत्व- डॉ0 धर्मपाल मैनी - पृ0- 54 ।

मोर मुकुट कुंडल स्त्रवननि बर, दसन दमक दामिनि छवि छोरी ॥
गह स्याम रवि- तनया के तट, अंग लसति चंदन की खोरी ॥
औचक ही तंह देखी राधा, नैन बिसाल माल दिए रोरी ।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि खलति झकझोरी ।।
संग लरिकिनी चलि इत आवति, दिन थोरी अति छवि तन गोरी ।
सूर स्याम देखत ही रीझे नैन- नैन मिली परी ठगोरी ॥ ` 1290 ॥

` कृष्णावतार ` के कृष्ण ज्यों - ज्यों बड़े होते हैं उनका रूप- सौन्दर्य और निखरता है और ब्रजबालाएं उनके आकर्षक रूप को देखकर काम- विह्वल हो जाती हैं:- ` काम के रूप कलानिधि से मुख कीर से नाक कुरंग से नैनन ।
कंचन सो तन दारन दंत कपोत से कंठ सुकोकल बैनन ॥
कान्ह लग्यो कहने तिन सो हसि के कवि स्याम सहायक नैनन ।
मोहि लियो सब ही मन मेरो सुमोह नचार तुम्हें संग सैनन ।।283 ॥ `

कृष्ण की रूप- माधुरी और मधुर वाणी से समस्त गोपियां मोहित हो जाती हैं:-

` कमल सो अंग कुरंग ताके बारे नैन,
कटि सम केहरि मिनाल बाहैं देन हैं ।
कोकिल सो कंठ कीर नासका धनुख भऊहैं,
बानी सुरसर जाहि लागे नहीं चैन हैं ।
त्रीअन को मोहिति फिरति ग्राम आस पास,
बिरहन के दाहवे को जैसे पतरैन है ।
पुन मंद मति लोग कछु जानत न भेद याको,
ऐसे पर कहे चारवारो स्याम छैन है ॥ 190 ॥ `

सूरसागर में कृष्ण के सौन्दर्य का बड़ा ही लचीला वर्णन है। सूरदास के कृष्ण सौंदर्यनिधि हैं । गोपियों के माध्यम से सूर ने इस सौन्दर्य विभूति का साक्षात्कार कराया है। सूरदास के कृष्ण तो सौन्दर्य के आगार हैं। गोपियों के मुख से सुनिये :-

देखी माई सुन्दरता की सागर ।

+ + +

कनक खचित मनिमय आभूषण, मुख स्त्रम - कन सुख देत ।
जनु जलनिधि मथि प्रगट कियो ससि, श्री अरू सुधा सुधा समेत ।` (1246)

गुरु गोबिंदसिंह के कृष्ण का सौन्दर्य देखिये :-

` कोमल कंज से फूल रहे दृग मोर को पंख सिर ऊपर सोहै ।।
है बरनी सरसी भरे घन आनन पै ससि कोटिल कोहै ॥
मित्र की बात कहा कहीए जिह को पिख कै रिपु को मन मोहै ॥
मानहु ले सिवके रिपु आप दयो विधना रस याहि निचोहै ।।

पृ0- 294

कृष्ण के सौन्दर्य का ऐसा चित्रण वस्तुत: कहीं नहीं मिलता जहां कवि कहता है कि मित्र की बात तो अलग उसे देखकर तो शत्रु भी मोहित हुये बिना नहीं रहते । निम्नांकित छन्द में कृष्ण के सौन्दर्य को प्रस्तुत करने वाले सभी उपमान काव्य- क्षेत्र के जाने पहचाने हैं :-

` दृग जाहि मृगीपति की सम है मुख जाहि निसापति सी छवि पाई ।
जाहि कुरंगन के रिपु सी कट कंचन सी तन ने छवि छाई ।
पाट बनै कदली दल द्वै जंघा पर तीरन सी दुत गाई ।
अंग प्रत्यंग सु सुन्दर स्याम कछु उपमा कहीऐ नहीं जाई ॥

(पृ0- 311)

कृष्ण के हृदय की रति के आलम्बन स्वरूप राधा के नख- शिख के सौन्दर्य का भित्रण भी सूरदास ने बड़े कौशल से किया है। जैसे :-

` बिराजति राधा- रूप- निधान ।
सुन्दरता की पुंज प्रगट ही, को पटतर तिय आन ।।
सिन्दूर सीस, मांग मुक्तावलि कच कमनीय बिनान ।
मनहुं चन्द्र मुख कोपि हन्यौ, रिपु राहु विषम बलवान ।।
तरल तिलक ताटंक गंड पर, झलकत कल बिंबि कान ।
+ + +
खंजन सुक न बिंब समता की लज्जित भए अजान । ` (सूरसागर 3064)

और - ` प्रिय मुख देखो स्याम निहारि ।

कहि न जाइ आनन की सोभा, रही बिचारि- बिचारि ।।

+ + +

मनो सुधाकर दुग्ध सिन्धु तें कढ़्यो कलंक पखारि ।। ` (2736)

राधा के विभिन्न अंगों के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये उसके नेत्रों की प्रभावोत्पादक शक्ति के वर्णन में ही सूर की दृष्टि का वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया है :-

` अद्भुत एक अनुपम बाग ।

जुगल कमल पर गज वर क्रीड़त, ता पर सिंह करत अनुराग ।।

हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज - पराग ।।

रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग ।।

फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृग- मद- काग ।

खंजन धनुष, चन्द्रमा ऊपर, ता ऊपर इक मनिधर नाग ।।

अंग - अंग प्रति और - और छवि उपमा ताकौं करत न त्याग ।

सूरदास प्रभु पियौ सुधा- रस मनौ अधरनि के बड़ भाग ।।[1]

इस प्रकार महाकवि सूरदास ने राधा के सौन्दर्य एवं नख- शिख वर्णन के अनेकों सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं । गुरु गोबिंदसिंह ने नख- शिख वर्णन पर इतना अधिक ध्यान नहीं दिया है । इस प्रकार के उदाहरण उनके काव्य में कम ही मिलते हैं। लेकिन ` कृष्णावतार ` में कृष्ण और राधा की रूप छटा अनेक स्थलों पर वर्णित है। राधा की रूप- माधुरी के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है[1] :-

` तिन सैंधर मांग दई सिर पे इस सो तिन को अत ही मन भीनो ।

बेसर आड सु कंठ सिरी अरु मोतिसिरी हूं को साज नवीनो ।

1- सूरसागर - पद सं० - 2728

1- इन पंक्तियों की तुलना सूरसागर के पृ० 1039 पर वर्णित पद(सं०-3064) `विराजित राधा रूप निधान ` में भली भांति की जा सकती है ।

8)

भूखन अंग सभै सजि सुन्दर आंखन भीतर काजर दीनो ।
ताही सु ते कवि स्याम कहै भगवान को चित्त चुराइ के लीनो ।। 557 ।।

निम्नांकित उदाहरण में तो कवि ने राधा के चन्द्रिका के बीच तिरोहित हो जाने की उपमा द्वारा उसके रूप- सौन्दर्य को कवि ने पराकष्ठा तक पहुंचा दिया है :-

` सेत धरे सारी त्रिखभान की कुमारी,
जस ही को मनो बारी वेसी रची है न को दई ।
रंभा उरबसी अउर सची से मदोदरी पै,
वेसी प्रभा काकी जग जग बीच न कछु भई ।।
मोतिन के हार गरे डार रुचि सो सुधार,
कान्हजू पै चली कवि स्याम रस के लई ।।
से तै काज साज चली सांवरे के प्रीत काज,
चांदनी में राधा मानो चांदनी सी ह्वै गई ।`(द0 ग्रा0 पृ0 324)

` कृष्णावतार ` में समस्त गोपियों की सौन्दर्य- छटा भी अवलोकनीय है :-

` लोचन हैं जिनके सु प्रभा घर आनन है जिनको सम मैना ।
कै के कटाछ चुनाइ लयो मन तिनको जोऊ रच्छक वैना ।
केहरि सी जिनकी कट है सु कपोल सुकंठ सुकोकिल बैना ।
तोहि लियो हरि के हरि को मन मौंह नचाइ नचाइके नैना ।598 ।। `

` कृष्णावतार ` में कृष्ण के रूप को देखकर द्विज-पत्नियां भी अपनी सुध- बुद्ध खो बैठती हैं :-

` लोचन कान्ह निहार त्रिया- द्विज रूप के पान महां मत हुई ।
होइ गई तन मै ग्रिह सी सुध यौं उड़गी जिमु पउन सों रुई ।
स्याम कहै तिन को बिरहागनि यौं भरकी जिमु तेल को चुई ।
जिउ टुकरा पिख चुंमक डोलत बीच मनो जह लोह की सुई ।। 319 ।। `

` कृष्णावतार ` के अन्तर्गत पूतना की कृत्रिम रूप- छटा भी कवि की दृष्टि से ओझल नहीं हुई है :-

` काजर नैन दिये मन मोहत इंगुर की बिन्दी जु बिराजै ।
टांड भुजान बनी कटि केहरि पायन नूपुर की धुनि बाजै ।
हार गरे मुक्ताहल के गहे नन्द दुआरे कंस के काजै ।
बास सुबास बसी सब ही तन आनन में ससि कोटिक लाजै ।।84 ॥ `

इस प्रकार स्पष्ट है कि दोनों कवियों ने अपने नायक एवं नायिका की रूप- माधुरी का अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहारी चित्र अंकित किये हैं जो शृंगार रस के महत्वपूर्ण उपकरण हैं ।

(2) मुरली - वादन - गोपियों का कृष्ण की ओर आकर्षित होने का एक ही कारण नटवर नागर की ` मुरली ` भी है। उनके रूप- सौन्दर्य की ओर आकृष्ट गोपियों का मन उनका (कृष्ण का) वेणु- वादन सुनकर चंचल हो उठता है और वे अपने मन को वश में नहीं रख पाती । किसी काम- काज में उनकी रुचि नहीं रहती और वे लोक- लाज को त्याग कान्ह का सौन्दर्य ही निहारती रहती हैं:-

` सुनके मुरली धुनि कान्हर की सब गोपन की सब सुध छुटी ।
सब छाड़ चली अपने गृहकारज कान्ह ही की धुन साथ जुटी ।
ठगकी सुर व्है कवि स्याम कहै इन अन्तर की सब अच लुटी ।
मृगनी सम ह्वै चलत्यो इनके मग लाल की वेल तराक टुटी ।।458 ॥ `

कृष्ण की मुरली का प्रभाव इतना मोहक है कि गोपियाँ अपने घर की सुध- बुध भूल जाती हैं और कृष्ण के रंग में ही रंग जाती हैं । यथा, -

` सुत नन्द बजावत है मुरली
उपमा तिह की कवि स्याम गनो ।
तिह की धुनि को सुनि मोहि रहे
मन रीझत है सुजनोरु मनो ।
तन काम भरी गुपियां सब ही
मुख ते इह भांतिन जवाव भनों ।

मुख कान्ह गुलाब को फूल भयो ।
इह नाल गुलाब चुआत मनों ।। 235 ।। `

कृष्ण का मुख गुलाब के फूल के समान है और मुरली एक नलकी है जिसमें से उनकी वाणी रूपी मधुर रस टपक रहा है । यह अप्रस्तुत- विधान वस्तुत: कितना शलाघ्य है ।

` कृष्णावतार ` के कृष्ण अपनी बांसुरी में विभिन्न रागों को बजाते हैं :-

` सोरठ सारंग अऊ गुजरी
ललता अरू भैरव दीपक गावै ।
टोड़ी अऊ मेघ मलार अलापत
गौंड अऊ सुध मलार सुनावै ।
जैतसिरी अरू मालसिरी अऊ
परज सु राग सिरी ह पावै ।
स्याम कहै हरि जी रिझ के
मुरली संग कोटक राग बजावै ।। 231 ।। `

और कृष्ण के इस वेणु- वादन का प्रभाव इतना है कि :-

` मोहि रहे सुनिके धुनिके म्रिग
मोहि पसार गे खग पै पखा ।।
नीर बह्यो जमना उलटो पिखके
तिहको नर खेल रे चखा ।।
स्याम कहै तिनकी सुनिके बछरा
मुख मो कछु ना चुगे कखा ।।
छोड़ि चली पतनी अपने पत
तारक ह्वै जिम डारत लखा ।। 236 ।। `

और - ` कोकिल कीर कुरंगन के हरि मै न रह्यो ह्वै के मतवारो ।।
रीझ रहे सम ही पुरके जन आनन पै इह ते ससि हारो ।।

अऊ इह की मुरली जु बजै तिह ऊपरि राग सबै फुन वारो ।।
नारद जात थकी इह ते बंसरी जु बजावत कान्हर कारो ।।238 ।।

` कृष्णावतार ` में इस वेणु- वादन के कितने ही ऐसे प्रभावोत्पादक दृश्य है जहाँ जड़- चेतन सभी मग्न हो जाते हैं। इस वेणु- निनाद से ही कृष्ण गोपियों को रास के लिये प्रेरित करते हैं और :-

` गावत सारंग सुद्ध मलार विभास विलावल अऊ पुन गउरी ।।
जा सुर श्रोनन में सुन के सुर मानन धावत डार पिछउरी ।।
सो सुनके सब ग्वारनीयां रस के संग होई गई जन बऊरी ।।
त्याग के कानन ता सुनके मृग लौ मृगनी चल आवत दऊरी ।।521 ।

इधर गुरू जी की गोपियों की यह दशा है तो उधर सूरदास की गोपियां कह रही हैं :-

(1) बंसी री बन कान्ह बजावत ।
आनि सुनी स्त्रवननि मधुर सुर, राज मध्य लै नाम बुलावत ।।

(2) - जैसो- जैसो बातैं करैं कहत न आवै री ।
स्यामरी सुन्दर कान्ह अति मन भावै री ।
मदन मोहन बेनु मृदु मृदुल बजावै री ।
तान की तरंग रस रसिक रिझावै री ।
जंगम थावर करै थावर चलावै री ।
+ + +
नंदलाल ललना ललचि, ललचावै री ।
सूरदास प्रेम हरि, हिये न समावै ही ।। `(सूरसागर)

सूरदास के कृष्ण जब अपने अधरों पर मुरली रखते हैं तो समस्त चराचर प्रभावित हो जाते हैं । प्रकृति लावण्यमयी हो जाती है :-

` सुनहु हरि मुरली मधुर बजाई ।
मोहे सुर- नर नाग निरंतर, ब्रज बनिता उठि धाई ।
जमुना- नीर- प्रवाह थकित भयौ, पवन रह्यौ मुरझाई ।

1- सूरसागर - पद सं० - 1266, 1247 /

ग- मृग- मीन अधीन भए सब, अपनी गति बिसराई ।
द्रुम, बेली अनुराग- पुलक तनु ससि थक्यौ निसि न घटाई ।
सूर स्याम वृन्दावन बिहरत, चलहु सखी सुधि पाई ।। 1000 ।।`

वेणु- निनाद सुनकर जब सारी प्रकृति ही स्थिर हो जाती है तो गोपियों की तो बात ही क्या, वे कैसे अपने मन को वश में रख सकती हैं :-

` जब तैं बंसी स्रवन परी ।
तब ही तैं मन और भयौ सखि मो तन सुधि बिसरी ।
+ + +
बिनु देखे अब स्याम मनोहर, जुग सरी जात घरी ।।871 ।।`

कृष्ण की मुरली के सम्बन्ध में एक ` गोपी ` कहती है :-

` मुरली तऊ गोपालहिं भावति ।
सुनि री सखी जदपि, नंदलालहिं नाना भांति नचावति ।
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि अति अधिकार जनावति ।
+ + +
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, धर तैं सीस डुलावति ।।873 ।। `

इतना ही नहीं गोपियों के मन में ` मुरली ` के प्रति सौतिया डाह उत्पन्न हो जाती है । वे कहती हैं :-

` सखी री, मुरली लीजै चोरि ।
जिनि गुपाल कीन्हें अपनें बस, प्रीति सबनि की तोरि ।
छिन इक धर- भीतर, निसि- बासर धरत न कबहूं छोरि ।
कबहूं कर, कबहूं अधरनि, कटि कबहूं खोंसत जोरि ।
न जानौं कछु मेलि मोहनि, राखे अंग- अंग भोरि ।
सूरदास प्रभु कौ मन सजनी, बंध्यौ राग की डोरि ।।874 ।। `

क्रीड़ा - क्रीड़ा विलास का चित्रण भी संयोग शृंगार की प्रमुख विशेषता है । इन दोनों कवियों के काव्य में , कृष्ण का गोपियों के साथ विहार, चीर- हरण

एवं रास- क्रीड़ादि प्रसंगों के अन्तर्गत मधुर मूर्ति गोपियों की विविध चित्त-वृत्तियों एवं सरस- संवादों का सुन्दर चित्रण देख सकते हैं। सूर और गुरू गोबिंदसिंह दोनों के काव्यों में यह प्रसंग अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं। गुरू गोबिंदसिंह के ` कृष्णावतार ` को ही लीजिये।

कृष्ण गोपियों के साथ क्रीड़ा रत हैं :-

` कान्ह कुह्यो चहे ग्वारनि को सोऊ भाग चले नहीं देत कुहाई।
जिउ मिगनी अपने पति को रति केल समै नहीं देत मिलाई।
कुंजन भीतर तीर नदी निसभान सुता सु फिरै तह धाई।
उउर तहा कवि स्याम कहै इह भांत सो स्यामजु खेल मचाई ।।658 ।।

और -

` फेर उठे उठते ही मगे जदुरा को न ग्वारन देत मिलाई।
पाछे परै तिनके हरि जु चढ़के रस के हय ऊपर धाई।
राधे को नैन के सर संग बधे मनो मुठह कमान चढ़ाई।
मूरछ गिरे धरनी पर सो मिगनी मिगहा मनो मार गिराई।।660 ।।

` हिन्दी साहित्य में ऐसा वर्णन दुर्लभ है। अलंकार- छटा और वर्णन की रसात्मकता केलि - क्रीड़ा का यथावत् स्वरूप उपस्थित कर देती है[1]। ` इन लुका छिपी की क्रीड़ाओं के साथ ही राधा- कृष्ण की प्रेम- क्रीड़ा भी आरम्भ हो जाती है। खेल- खेल में ही कृष्ण राधा को एकान्त में घेर लेते हैं। राधा सखियों का भय दिखाती है:-

` सम अमृत की हंसि के त्रिया यौ बतियां हरि के संग है अखियां ।।
हरि छाड़िके मोहि कह्यो हम को सुनि हेरत हैं सभ ही सखियां ।।664 ।।

पर कृष्ण भी तो एक ही हैं। कहां मानने वाले थे। राधा भी कम नहीं,

---

1- दशम ग्रंथ की पौराणिक पृष्ठभूमि - डा0 रत्नसिंह जग्गी - पृ0 २४५

वह बहाना बनाती है :-

` सुनिकै जदुराइ की बात त्रिया बतीआं हरि के इम संग उचारी ।।
चांदनी रात रही छकि के दीजीए हरि होवन रैन अंधियारी ।।`

(द० ग्र० पृ० 341)

सूर के काव्य में भी राधा- कृष्ण की बाल- क्रीड़ा ही उत्तरोत्तर विकसित होती हुई प्रणय- क्रीड़ा में परिवर्तित हो जाती है। तत्पश्चात् संयोग पक्ष के जितने भी क्रीड़ा - विधान हो सकते हैं , सूर ने सभी ला कर एकत्र कर दिये हैं । पनघट प्रस्ताव, कुंज- विहार, यमुना- स्नान, जल - केलि समय पीठमर्दन, गोदोहन के समय राधा के मुख पर कृष्ण का दूध के छींटे फेंकना , भरे आंगन में संकेतों द्वारा वार्तालाप करना, घर के पीछे खरिक तथा वन में मिलना, हिंडोले पर झूलना, रास- नृत्य आदि न जाने संयोग के कितने प्रसंग सूर ने लिखे हैं ।

चीर- हरण- प्रसंग का वर्णन भी संयोग शृंगार का ही अंग है । कृष्ण नहाती हुई गोपियों के वस्त्र उठाकर वृक्ष पर चढ़ जाते हैं । सूरदास कहते हैं :-

` आपु कदम चढ़ि देखत स्याम ।
बसन आभूषण सब हरि लीन्हे, बिना बसन जल भीतर बाम । (937)

` कृष्णावतार ` के कृष्ण भी कुछ कम नहीं :-

` नावन लागि जबै गुपिआं तब लै पटकान चढ्यो तरू ऊपै ।।
तउ मुसक्यान लगी मध आपन कोइ पुकार करे हरि जू पै ।।
चीर हरे हमरे कुल सों तुम सों ढग नाहि किधौ कोउ भूपै ।।
हाथन साथ सु सारी हरी हग साथ हरो हमरो तुम रूपै ।। २५। ॥

गोपियों की यह शिकायत कितनी औचित्यपूर्ण है कि हाथों द्वारा तो कृष्ण ने उनके चीर- हरण किये अब आंखों से उनका रूप हरण कर रहे हैं ।

कृष्ण किसी भी प्रकार से गोपियों के वस्त्र नहीं लौटाते और लज्जा को त्याग कर नग्नावस्था में ही जल से बाहर आने को कहते हैं । ` सूरसागर ` में द्रष्टव्य है :-

` लाज ओट यह दूरि करौ ।
जोइ मैं कहौं करो तुम सोई, सकुच वापुरिहिं कहा करौ ।
जल ते वीर आइ कर जोरहु, मैं देखौं तुम विनय करौ । ।५०४।।

गुरु गोबिन्दसिंह के कृष्ण भी गोपियों से जल से बाहर आकर हाथ जोड़कर प्रणाम करने को कहते हैं :-

` देऊ बिना निकरौ नहिं चीर कह्यो हसि कान्ह सुनो तुम पिआरी । ` (२५५)

आगे कहते हैं :-

` फेरि कहि हरि जी तिन सों रिझके इह बात सुनो तुम मेरी ।
जोरि प्रनाम करो हमरो कर, लाज को काट समै तुम बेरी ।।२५६ ।

बाध्य होकर गोपियों को कृष्ण की बात माननी पड़ती है। जिस-तिस भांति वह बाहर आती हैं तो कृष्ण अवसर का लाभ उठाकर सबके सन्मुख चुम्बन एवं कुच- मर्दन की शर्त रखते हैं ।

- ` कान्ह कही हंस बात तिनै कहि है हम जो तुम सो मन हो ।।
सभ ही मुख चूमन देहु कह्यो चुम हैं हम हूं तुमहूं गनि हो ।।
अरु तोरन देहु कह्यो सभ ही कुच न तर हउ तुमकी हनि हो ।।
तउ ही पट देउ समै तुमरे इह झूठ नहीं सत कै जनि हो ।।

(द० ग्र० पृ० 287)

कृष्ण के रूप पर आसक्त काम विह्वल गोपियां भी कृष्ण के सभी उचित - अनुचित प्रस्तावों को स्वीकार कर लेती है :-

` होहि प्रसन्न सबै गुपियां मिल मान लई जो कान्ह कही है ।।
जोर हुलास चढ्यो जीअ में गिनती सरिता मग नेह बही है ।।
संक छुटि हुई के मन ते हंसि के हरि तो इह बात कही है ।
बात सुनहु हमरी तुम्हूं हमको निधि आनन्द आज लही है।। 280 ।। `

` कृष्णावतार ` की गोपियां नारी सुलभ लज्जा और बाहरी नकार का आश्रय अवश्य लेती हैं किन्तु इस प्रणय- क्रीड़ा में उन्हें भी आनन्द आता है: -

16)

` कान्ह तबै कर केल तिनो संग पै पट दे करि छोर दई है ॥
होइ एकत्र तबै गुपीआं सभ चंड सराहत धाम गई है ॥
आनन्द अति सु बढ़यो तिनको जिय सो उपमा क वि चीन लई है ॥
जिउ अत मेघ पैर धर पै धर ज्यों सब ही सुभ रंग भई हैं ॥ `

(कृष्णावतार , पृ० 289)

और इसका कारण भी स्पष्ट है :-

` नेह लग्यो इनको हरि सौं अरु नेह लग्यो हरि को इन नारे ॥
चैन परे दुह को नहि द्वै पल नावन जावत होत सवारे ॥ `

(द० ग्र० पृ० 291)

गुरु गोबिंदसिंह ने संवादों के माध्यम से ` चीरहरण - प्रसंग का वर्णन अत्यन्त रोचकता एवं विस्तार के साथ किया है। सूरदास ने भी चीरहरण - प्रसंग का बड़ा प्रभावशाली, सुन्दर, सुष्ठु एवं सफल चित्रांकन किया है। दोनों के इस प्रसंग- वर्णन में काफी समानता है। दोनों कवियों ने ही यह माना है कि कृष्ण को पाने के लिये गोपियां व्रत एवं साधना करती हैं जिसके फलस्वरूप कृष्ण चीरहरण द्वारा उनकी लज्जा का निवारण कर शरद् रात्रि को उनके साथ रास रचाने का आश्वासन देते हैं। अन्तर केवल इतना है कि सूरदास की गोपियां कृष्ण को पाने के लिये कात्यायनी व्रत करती हैं जबकि गुरु गोबिंदसिंह की गोपियां चंडी की आराधना करती हैं ।

अधिकांशत: विद्वान इस चीर-हरण लीला को आध्यात्मिक रूप देते हैं । उनके अनुसार गोपियां (जीवात्माएं) कृष्ण(ब्रह्म) में लीन हो जाना चाहती हैं किन्तु उनका यह समर्पण अपूर्ण था क्योंकि वह निरावरण होकर कृष्ण के सम्मुख नहीं जा पा रही थी । साधना की पूर्ति के लिये व्यवधान का निवारण आवश्यक था और चीरहरण के माध्यम से इस व्यवधान का निवारण हुआ । भाव यह कि माया रूपी आवरण को त्याग कर ही जीवात्मा ब्रह्म में लीन हो सकती है । - लेकिन आज का सामान्य पाठक कविता पर आध्यात्मिकता का वह आरोप स्वीकार

नहीं कर पाता । यदि भर्तृहरि शृंगार और वैराग्य- शतक एक साथ लिख सकते हैं तो सूर भी भक्ति और शृंगार के पद एक- साथ लिख सकते हैं , किन्तु यदि श्रद्धा पूर्वक भक्ति भावित हृदय से सूर के शृंगार-परक- पदों की परख की जाये तो इसमें संभोग शृंगार की गन्ध तक अनुभव नहीं होती । वस्तुत: कविता तो भावना की वस्तु है, जिस दृष्टि से हम उसे देखेंगे, वह हमें वैसी ही प्रतीत होगी । तुलसी भी तो कहते हैं :- ` जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी । `

महाकवि सूरदास ने क्रीड़ा - विलास के अन्तर्गत पनघट - लीला एवं दान लीला का भी विस्तृत चित्रण किया है जो कि उनकी मौलिकता का परिचायक है । चीरहरण-प्रसंग में तो गोपियों ने स्वेच्छापूर्वक आत्मसमर्पण नहीं किया था , लेकिन पनघट लीला एवं दान लीला में गोपियां लोक- लज्जा को त्याग स्वेच्छापूर्वक अपना सर्वस्व कृष्ण को समर्पित कर देती हैं। और इस तरह सूर का संयोग- शृंगार एक कदम और आगे बढ़ जाता है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

` पनघट रोके रहत कन्हाई ।
जमुना- जल कोउ भरत न पावै, देखत हीं फिरि जाई ।
तबहि स्याम एक बुद्धि उपाई, आपुन रहे छिपाई । `

(सूरसागर, 1182)

और फिर :-

` जुवति इक जमुना- जल को आई ।
निरखत अंग अंग प्रति सोभा, रीझै कुंवर कन्हाई ।`

(सूरसागर, पद सं० 1195)

जैसे ही वह घट भर कर चली :-

` ग्वारि घट भरि चली फमकाइ ।
स्याम अचानक लट गहि कही अति, कहां चली अतुराई ।
मोहन कर तिय मुख की अलकैं, यह उपमा अधिकाइ ।
मनी सुधा ससि राहु चुरावत, धरयौ ताहि हरि आइ ।

कुच परसे, अंकम भरि लीन्हीं, अति मन हरष बढ़ाइ ।
सूर स्याम मनु अमृत - घटनि कौं देखत हैं कर लाइ ।। 1196 ।।

दान लीला में कृष्ण गोपियों से विशेषत: राधा से - अंगदान मांगते हैं । ` सूरसागर ` में इस लीला का वर्णन चार स्थलों पर किया गया है जिस में गोपियां कृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पित कर शृंगार का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करती हैं । कुछेक उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

` जोबन- दान लेउंगी तुम सौं ।
जाके बल तुम बदति न काहुहिं, कहा दुरावीज हमसौं ।
इसी धन तुम लिये फिरति हो, दान देति सतराति ।
अतिहि गर्व तै कह्यौ न मोसौं, नित प्रति आवति जाति ।
कंचन- कलस महारस भारे, हमहूं तनक चखावहु ।
सूर सुनौ बिन दिये दान के, जान नहीं तुम पावहु ।। 1203 ।। `

इस पर गोपियां कहती हैं :-

` तुम कब के जु भए हौ दानी ।
मटुकी फोरि, हार गहि तोर्‌यो, इन बातनि पहिचानी ।
+ + + +
भूलि गए सुधि ता दिन की जब बांधे जसुदा रानी । `(सूरसागर पदसं0-1207)

इसी वाद- संवाद के बीच कृष्ण अपने ब्रज होने की चर्चा भी करते हैं, परन्तु गोपियों को कृष्ण की प्रभुता प्रभावित नहीं करती । वे तो उन्हें ` नटखट - नागर ` अथवा ` कुंवर- कन्हाई ` के रूप में ही जानती हैं । धीरे - धीरे कृष्ण गोपियों की सभी उक्तियों को अपनी सरस युक्तियों से तोड़ देते हैं और परिणामत: गोपियां मर्यादा को तिलांजलि दे कर प्रेम- पथ का अनुसरण करने लगती हैं।

संयोग- शृंगार की चरमावस्था रास- लीला में दृष्टिगत होती है । दोनों कवियों ने ही रास- लीला का बड़ा ही सरस एवं विस्तृत वर्णन किया है।सूरदास का रास- वर्णन गुरु गोबिंदसिंह के राग - वर्णन की अपेक्षा अधिक व्यापक है । रास- लीला के प्रारम्भ में ही कृष्ण और राधा का विवाह रचा कर सूरदास ने

राधा को स्वकीया रूप में प्रस्तुत किया है । लेकिन गुरु गोबिंदसिंह के ` कृष्णावतार ` में राधा - कृष्ण के विवाह का वर्णन उपलब्ध नहीं होता ।

महाकवि सूरदास ने कहीं- कहीं पर जयदेव एवं विद्यापति की भांति नग्न शृंगार के चित्र भी प्रस्तुत किये हैं, यथा :-

` नवल निकुंज नवल नवला मिलि नवल निकेतनि रुचिर बनाये ।
विलसत विपिन विलास विविध वर वारिज वदन विकच सचुपाये ।
लागत चन्द्र मयूख सुतिय तनु लता भवन रंध्रनि मग आये ।
मनहुं मदनवल्ली पर हिमकर सींचत सुधा धार सत नाये ।
सुनि सुनि सुचित भवन जिय सुन्दरि मौन किये मोदित मन लाये ।
सूर सखी राधा माधौ मिलि क्रीड़त रति रति - पतिहिं लजाये ।।
(सूरसागर - 2605 ।)

एक अन्य चित्र प्रस्तुत है :-

` हरषि पिय प्रेम तिय अंक लीन्ही ।
प्रिया बिन बसन करि उलटि धरि भुजन भरि,
सुरति रति पूरि अति निबल कीन्हीं ।
आपने कर नखनि अलक कुरवारहीं,
कबहूं बांधे अतिहि लगत लोभा ।
कबहूं मुख मोरि चुम्बन देत हरष ह्वै ,
अधर भरि दसन वह उनहि सोभा ।
बहुरि उपज्यौ काम राधिका पति स्याम,
मगन रस ताम, नहिं तनु संभारै ।
सूर प्रभु नवल नवला नवल कुंज गृह,
अन्त नहिं लहत, दोउ रति विहारै ।। 2606 ।।

सूरसागर में ऐसे नग्न चित्र कई स्थानों पर अंकित हैं जिनके अन्तर्गत सूर ने संभोगावस्था की अनेक प्रकार की परिस्थितियों का अंकन किया है ।

` कृष्णावतार ` में भी राधा- कृष्ण को प्रणय - क्रीड़ा में पर्याप्त अश्लीलता दृष्टिगत होती है। एकान्त में केलि- क्रीड़ा करते कृष्ण से पीछा छुड़ाने के लिये कितने ही बहाने बनाती है परन्तु कृष्ण भी तो रसिकेश्वर हैं, उनसे मुक्ति पाना सरल नहीं । वे कहते हैं :-

` भूख लगे सुनिहै सजनी लगरा कहूं छोरत जात बगी की ।।
तात की स्याम सुनी है कथा बिरही नहिं छोरत प्रीत लगी की ।।
छोरत है सु नहीं कुटवार किधौं गृहके पुर ही की ठगी की ।।
ताते न छोरत हउ तुमको कि सुन्यों कहूं छोरत सिंह मृगी की ।।668 ।।

राधा और कृष्ण का मिलन देखिये :-

` दोऊ जउ हसि बातन संग ढरे तु हुलास बिलास बढ़े सगरे ।।
हंसि कंठ लगाइ लई ललना गहि गाढ़े अनंग ते अंक भरे ।।
तरकी है तनी दरकी अंगिआ गर माल ते टूट के लाल परे ।।
पीय के मिलत त्रीय के हीय ते अंगरा विरहागिन के निकरे ।। 749 ।।

रति- क्रीड़ा में गोपियों की अवस्था द्रष्टव्य है :-

` भगवान लखी अपने मन मै इह ग्वारन मो पिख मैन भरी ॥
तब ही तज संक सभै मन की तिनके संग मानुख केल करी ।।
हरि जी करि खेल किधौ इन सो जनु काम जरी इह कीन जरी ।।
कवि स्याम कहै पिख वो तुम कौतुक कान्ह हरयो कि हरी सुहरी ।।

(द० ग्र० पृ० 315)

वस्तुत: वीर- रस का प्राधान्य होने पर भी रीतिकालीन कृति होने के नाते श्रृंगारी प्रवृत्ति का प्रभाव गुरू गोबिंदसिंह के ` दशम - ग्रंथ ` पर भी यथेष्ट रूप में पड़ा था और यही कारण है कि उनका श्रृंगार- वर्णन यत्र- तत्र मर्यादा की सीमा का भी उल्लंघन कर जाता है। रीतिकाल की श्रृंगार- प्रियता के दर्शन हमें ` कृष्णावतार के रास-लीला चीरहरण लीला एवं विरह- प्रसंगों में स्पष्ट रूप से हो जाते हैं ।लेकिन

21)

रास- मंडल के इन्द्रिय वातावरण में भी कवि ने कृष्ण के सन्त उबारन और दुष्ट विनाशन रूप को कहीं भी विस्मृत नहीं किया । महाकवि सूरदास की भाँति घोर शृंगारी वातावरण के मध्य में गुरु गोबिंदसिंह भी इस प्रकार के छन्दों की योजना करते हैं जिससे कृष्ण के रसिकेश्वर अथवा लोकरंजक रूप के साथ - साथ वीरेश्वर एवं लोक रक्षक रूप की भी व्यंजना होती है :-

` देत संखासुर के मरबे कहु रूप धरयो जल में जिन मच्छा ॥
सिंध मध्यो जबहीं असुरासुर मेर वरैं भयो कच्छप दृच्छा ॥
सो अब कान भयो इह ठउर धरावत है ब्रिज के सब अच्छा ॥
खेल दिखावत है जगको इह है करता सब जीवन रच्छा ॥ 354 ॥

और -` जाहि भभीछन राज दयो अरु रावन जाहि मरयो करि क्रोहै ॥
चक्र के साथ किंधौ जिनहूं सिसपाल को सीस करयो कर छोहै ॥
मैन सु अउ सीय की भरता जिह भूवत की सम तुल्लि न कोहै ॥
सो कर लै अपने मुरली अब सुन्दर गोपिन के मन मोहै ॥ 644 ॥

गुरु गोबिंदसिंह ने ` कृष्णावतार ` में संयोग शृंगार के अन्तर्गत कृष्ण एवं गोपियों की रास- लीला, राधा - कृष्ण की प्रणय- क्रीड़ा , नृत्य, गान एवं जलविहार आदि लीलाओं का वर्णन पर्याप्त विस्तार एवं सफलतापूर्वक किया है ।

` सूरसागर ` में पनघट - लीला, यमुना- विहार, जल- क्रीड़ा , दान- लीला, रास-लीला, फाग और हिंडोल- लीला जैसे प्रसंगों में संयोग शृंगार का निर्वाह अति सुन्दर एवं व्यापक ढंग से हुआ है।

इसके अतिरिक्त भारतीय काव्य शास्त्र में शृंगार- रस- विवेचन के अन्तर्गत नायिका- भेद को भी प्रमुख स्थान प्राप्त है। सूरदास ने भी अपने सूरसागर एवं अन्य कृतियों में राधा तथा अन्य गोपियों को अनेक स्थलों पर काव्य शास्त्र के अनुकूल ही विभिन्न नायिकाओं के रूप में प्रस्तुत किया है। निम्नांकित पद में राधा का अभि- सारिका - नायिका का रूप द्रष्टव्य है :-

` प्यारी अंग सिंगार कियौ ।।
बेनी रची सुभग कर अपनैं, टीका भाल दियौ ।।
मोतिनि मांग संवारि प्रथमहीं, केसरि - आड़ संवारि ।
लोचन आंजि स्त्रवन रिबन - छवि को कवि कहै निवारि ।।
नासा नथ अतिहीं छवि राजति, अधरति बीरा रंग ।
नव सत साजि चोर चोरी बनि, सूर मिलन हरि संग ।। २६५८॥

गुरु गोबिंदसिंह ने शुक्लाभिसारिका राधा की छवि का वर्णन कितने चित्ताकर्षक ढंग से किया है :-

` मोतिन के हार गरे हार रूप सो सुधार,
कानजू पै चली कवि स्याम रस लई ।
से वे साज साज चली सांवरे की प्रीतकाज,
चांदनी में राधा मानों चांदनी सी ह्वै गई ।।538 ।।
अंजन आंज सु धार भले पर, भूखन अंग सुधार चली ।।
जनु दूसर चन्द्रकला प्रगटी जन राजत कंज की सेत कली ।।
हरि के पग भेंटन काज चली कवि स्याम कहे संग राधे अली ।।
जनु जोत तरीयन ग्वारन ते इह चंद की चांदनी बाल भली ।।539 ।। `

महाकवि सूरदास ने शृंगार- रस के अन्तर्गत ही वीर रस की सामग्री भी जुटाई है जो ` कृष्णावतार ` में देखने को नहीं मिलती :-

` रचे रति संग्राम खेत नीके ।
एक ते एक रन वीर जोधा प्रबल मुरत नहिं नेंक अति सबल जी के ।।
मौंह कोदण्ड सर नैन धानुषी काम कुटनि मानों कटाच्छनि निहारैं ।
हंसनि द्विज चमक करिवरनि लौं है फलक, नखन - छत- घात नेजा संभारैं ।।
+ + +
सूर प्रभु रसिक प्रिय राधिका रसिकिनी, कोक गुन सहित सुख लूटि लीन्हीं ।।
(सूरसागर, पद सं० - 1700)

23)

सूरदास जी ने शृंगार- वर्णन के अन्तर्गत नायिका - भेद के विस्तृत विवेचन के साथ- साथ नायक- भेद का वर्णन भी किया है ।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संयोग- शृंगार के वर्णन में सूरदास एवं गुरु गोबिंदसिंह दोनों ही रससिद्ध कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। संयोग शृंगार के अन्तर्गत उन्होंने आलम्बन के सौन्दर्य के उद्दीपन विभाव के रूप में और आश्रय की विविध चेष्टाओं तथा हाव- भावों के अनुभावों के रूप के चित्रण में सर्वाधिक सफलता प्राप्त की है। यह अलग बात है कि सूरदास का संयोग- शृंगार सम्बन्धी वर्णन गुरु गोबिंदसिंह की अपेक्षा अधिक विस्तृत एवं व्यापक है। सूर ने तो रूप- वर्णन के अन्तर्गत नायक अथवा नायिका के एक- एक अंग के सौन्दर्य पर कितने ही पद लिख डाले हैं। चक्षुहीनता की विडम्बना सहने वाले सूरदास ने केवल ` नेत्रों ` को लेकर ही अनेकों पदों की रचना कर डाली हैं और उनका प्रत्येक वर्णन अपने आप में पूर्ण है, नूतन है ।

गुरु गोबिंदसिंह ने प्रत्येक अंग- प्रत्यंग का इतना विशद विवेचन नहीं किया है। फिर भी उन्होंने जो भी कहा है, वह अनूठा है । दोनों कवियों ने ही कृष्ण और गोपियों के प्रेम का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है ।

महाकवि सूरदास का प्रणय चित्रण एवं सौन्दर्य वर्णन तो साहित्य में प्रसिद्ध है ही, गुरु गोबिन्दसिंह का शृंगार चित्रण भी कुछ कम महत्ता नहीं रखता । उनका प्रत्येक चित्र सौन्दर्यपूर्ण , गत्यात्मक, कलात्मक, रसात्मक एवं माधुर्य से मण्डित है ।

2- विप्रलम्भ - शृंगार - शृंगार का दूसरा पक्ष वियोग है जिसे विप्रलम्भ - शृंगार भी कहा जाता है । वस्तुत: यह विरह ही प्रेम की जागृति गति है। संयोग में प्रेम का रूप शान्त एवं संयत होताहै और वियोग में वही प्रेम प्रभायुक्त एवं विस्तृत होकर समस्त चराचर को अपने अन्तर में समेट लेता है। विरह मानव- जीवन का चिर- गह्वर है । ` निस्सन्देह विरह वह पावन सुरसरिता है, जिसमें अवगाहन करते ही प्रेमी का सारा कालुष्य धुल जाता है, उसके मन की मलिनता दूर हो जाती है और उसकी अन्तरात्मा इतनी पवित्र हो जाती है कि फिर उसके हृदय में प्रिय के अतिरिक्त

24)

किसी के लिये स्थान नहीं रहता तथा वह बाह्यरूप से भले ही अपने प्रिय से पृथक रहता हो, किन्तु उसकी अन्तरात्मा में उसका प्रिय सदैव विद्यमान रहता है। इस प्रकार वियोग में संयोग से भी अधिक निकटता, अनुरक्तता, पारस्परिक निर्भरता एवं प्रेमातिशयता दृष्टिगोचर होती है।[1]

सूरदास और गुरु गोबिंदसिंह के काव्यों में संयोग शृंगार की भांति ही वियोग शृंगार का भी सुन्दर वर्णन मिलता है। आचार्यों ने वियोग- शृंगार के चार भेद माने हैं - (1) पूर्वराग (2) मान (3) प्रवास और (4) करूण - विप्रलम्भ। सूरसागर और कृष्णावतार में वियोग शृंगार के सभी भेदोपभेदों का वर्णन मिलता है।

1- पूर्वराग - श्रवण अथवा दर्शन द्वारा उत्पन्न नायक- नायिका का पारस्परिक अनुराग ` पूर्वराग ` कहलाता है। दर्शन के अन्तर्गत तीन बातें आती हैं - चित्र दर्शन, स्वप्न दर्शन और प्रत्यक्ष - दर्शन ।

` कृष्णावतार ` के ` रुक्मिणी - विवाह ` और ` ऊषा - अनिरुद्ध प्रसंग ` में पूर्वराग का मनोहर चित्रण हुआ है। ` ऊषा - अनिरुद्ध प्रसंग में ऊषा का पूर्वराग स्वप्न- दर्शन के अन्तर्गत है। ऊषा ने स्वप्न में अनिरुद्ध को देखा और उसकी दशा विरहिणी नायिका की सी हो गयी :-

` एक हुती दुहिता तिह की तिह सोत निसा सुपनो इक पायो ॥
मैन सो रूप अनूप सी मूरत सो इहने चल मंदर आयो ।।
भोग कियो तिह सों मिलि के इन चित बिखे अति ही सुख पायो ।।
चौंक परी नही पीय पिखयो कवि स्याम कहै तिन सोक जनायो ।।2192
जागती ही बिरलाप कीयो अति ही चित सोक की बात जनाई ।।
अंगन मैं डगरी सी फिरै पति की करि कै मन मैं दुचिताई ।।
प्रेत लग्यो किंधौ प्रीत लगी कि कछु अब या ठग भूरी सी खाई ।।

1- हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि - द्वारिका प्रसाद सक्सेना पृष्ठ -30

भाखत भी सखी मोकऊ अबे मेरो दे गयो प्रीतम आजु दिखाई ।। 2193 ॥
देती ही कह बतियां मुख ते गिर भू पे परी सभ सुध भुलाई ।।
यौं बिसमार परी धरनी कवि स्याम मनै मनो नागन खाई ।। २।१७३।।

` राधा- कृष्ण - मिलन ` प्रसंग में सूरदास ने पूर्वराग का वर्णन किया है । कृष्ण के दर्शन एवं परिचय के अनंतर राधा के मन की यह स्थिति है :-

` नागरि मन गई अकुलाई ।
अति बिरह तनु भई व्याकुल घर न नेकु सुहाइ ।
स्याम सुन्दर मदन मोहन, मोहनी सी लाइ ।
चित्त चंचल कुंवरि राधा, खान- पान भुलाइ ।
कबहुं बिहंसति, कबहुं बिलपति, सकुचि रहति लजाइ ।
मातु- पितु को त्रास मानति, मन बिना भई बाइ ।
जननि सौं दोहनी मांगति, बेगि दे री माइ ।
सूर प्रभु कौं खरिक मिलिहौं, गए मोहिं बुलाइ ।।।२७६ ॥

2- मान - सूरसागर में मान- लीला का सविस्तार वर्णन हुआ है । मान के भी दो प्रकार माने गये हैं - (1) प्रणय से उत्पन्न और (2) ईर्ष्या से उत्पन्न । सूरदास ने दोनों प्रकार के ` मान ` का वर्णन अपने सूरसागर में किया है । यथा,
(1) प्रणय जन्य :- ` यह जान्यौ जिय राधिका, द्वार हरि लागे ।
गर्व कियौ जिय प्रेम कौ, ऐसे अनुरागे ।
बैठि रही अभिमान सौं , यह ठौर न पायौ ।
हृदय स्याम- सुख - धाम मैं, अभिमान बसायौ ।।२६१२ ।
(2) ईर्ष्या- जन्य - ` सूरसागर ` में ईर्ष्या - जन्य मान के अति सुन्दर चित्र अंकित हुये हैं। सूरदास ने राधा के ईर्ष्या से उत्पन्न मान का सविस्तार चित्रण किया है । एक दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

` तहंइ जाहु जहं रैनि बसे हौ ।
काहे को दाहन हौं आये, अंग - अंग चिन्ह लसे हौ ।।
अरगज अंग मरगजी माला, बसन सुगंध मरे हौ ।

26)

काजर अधर, कपोलन बंदन लोचन अरुन धरे हो ।।
पलकनि पीक, मुकुर ले देखो, ये कौनहीं करे हो ।
सूरदास प्रभु पीठि वलय गड़े, नागरि अंग भरे हो ।।३७२०।।

और - ` मोहिं छुवौ जनि दूर रहौ जू ।
जाकौं हृदय लगाइ लयौ है, ताकी बांह गहौ जू ।।
तुम सर्वज्ञ और सब मूरख, सो रानी अरु दासी ।
मैं देखत हिरिदय वह बैठी, हम तुमकौं मुसकासी ।
बांह गहत कछु सरम न आवति, सुख पावत मन माहीं ।
सुनहु सूर मो तन वह इकटक चितवति डरपति नाहीं ।। ` 1533 ।।

` कृष्णावतार ` में ईर्ष्या जनित मान का बड़ा व्यापक एवं विस्तृत वर्णन किया गया है । रास- लीला के मध्य नृत्य करते हुये कृष्ण एक अन्य गोपी चन्द्रप्रभा की ओर देखकर हंस देते हैं, उधर मैं वह भी हंस देती है बस, राधा यह सहन नहीं कर पाती और मान कर बैठती है :-

` हरि नाचत नाचत ग्वारन मै हंसि चन्द्रप्रभा हुकी ओर निहार्‌यो ।।
सोउ हंसी इत ते इह से जदुरा तिह ओ बचना है उचार्‌यो ।।
मेरे महा हित है तुम सो ब्रिषभान सुता इह हेर बिचार्‌यो ।।
आज त्रिया संग हेत कर्‌यो हम ऊपरि ते हरि हेत बिसार्‌यो ।।

(द० ग्र० पृ० 342)

` मान ` के अन्तर्गत दोनों कवियों ने मान के पश्चात मिलन का भी चित्रण किया है। दोनों ने ही यह वर्णन किया है कि - कृष्ण के अंगों पर र ते चिन्हों को देखकर अथवा कृष्ण की किसी अन्य गोपी से बात करते देखकर राधा मान कर बैठती है। अब कृष्ण को चैन कहां ? वे दूती को भेजते हैं, पर व्यर्थ औ अन्त में अकुला कर स्वयं क्षमाप्रार्थी बनते हैं और परस्पर सम्मुख होते ही दोनों मुस्कुरा देते हैं और मान- विमोचन हो जाता है यथा, कृष्णावतार में कृष्ण राधा

से कहते हैं :-

` मेरो धनो हितु है तुम सों सखी अउर किसी नहि ग्वारनि माही ।
+ + +
हहा चल मेरी सौं मेरी सौ मेरी सौं तेरी सौं तेरी सौं नाही जु नाही ।।
733 ॥

और राधा का मान- विमोचन हो जाता है :-

` दोउ जउ हसि बातन संग ढरे तु हुलास बिलास बढ़े सगरे ।।
हसिं कंठ लगाइ लई ललना गहि गाढ़े अनंग से अंग भरे ॥
+ + +
पिय के मिलए त्रिय के हिय ते अंगरा बिरहा गन के निकरे ।। ७५१ ॥

वस्तुत: मानशमन के यह छन्द अथवा पद संभोग श्रृंगार के अन्तर्गत ही रखे जा सकते हैं यथा, राधा के मान- प्रसंग में सूरदास कहते हैं :-

` आलिंगन दै अधर दशन खंडि कर गहि चिबुक उठावत ।
नासा सों नासा ले जोरत नैन नैन परसावत ।
+ + +
यहि अन्तर प्यारी उर निरख्यो फ कि गई तब न्यारी ।
सूर स्याम मोको दिखलावत उर लाए धरि प्यारी ।। `

तो इस प्रकार के प्रसंग संभोग - श्रृंगार के अन्तर्गत ही रखे जायेंगे ।

3- प्रवास- कृष्ण के मथुरा - गमन के प्रसंग में गोपियों की व्यथा का सूरदास और गुरु गोबिंदसिंह दोनों ने ही विस्तार के साथ किया है। सूरदास की गोपियों की दशा देखिये :-

` अनल तें विरह अगिनि अति तातो ।
माधव चलन कहत मधुवन कौं सुने तपति अति छाती ।
न्याइहिं नागरि नारि बिरह- बस, जरति जिया ज्यों बाती ।
जे जरि मरीं प्रगट पावक परि, ते त्रिय अधिक सुहाती ।
ढरति नीर नयन भरि - भरि सब , व्याकुलता मदमाती ।
सूर बिथा सोई पै जानै, स्याम सुभग दंग राती ।। ३९४१ ॥

गुरू गोबिंदसिंह ने गोपियों की उद्विग्नता का वर्णन इस प्रकार किया है :-

` जबही चलिबे की सुनी बतियां
तब ग्वारन नैन ते नीर ढर्‌यो ॥
गिनती तिनके मन बीच भई,
मन को सब आनन्द दूर कर्‌यो ॥
जितनो तिन में रस जीवन थो
दुख की सोई ईंधन माहिं जर्‌यो ॥
तिनते नहि बोलियो जात कछू मन,
कान्ह की प्रीत के संग जर्‌यो ॥ `(द० ग्र० ह० 359)

4- करूण- जहां किसी विशेष कारण से संयोग की आशा समाप्त प्राय: हो जाये वहां करूण विप्रलम्भ होता है । करूण- विप्रलम्भ में गोपियों के विरह में ` रति ` और ` शोक ` दोनों भावों का समावेश होता है ।

गुरू जी के काव्य में गोपी- विरह ` खण्ड में कृष्ण के मथुरा जाकर वहीं स्थायी रूप से बस जाने की बात सुनकर गोपियों की दशा अति कारूणिक हो जाती है :-

` रोदन के सब ग्वारनीआ मिलि ऐसे कह्यो अति होइ बिचारी ॥
त्याग ब्रिजे मथुरा मै गए तजि नेह अनेक की बात बिचारी ॥
इक गिरै धर यों कहि के इक ऐसे संभार कहै ब्रिजनारी ॥
री सजनी सुनिए बतियां ब्रिजनार समै ब्रिजनाथ बिसारी ॥
(द० ग्र० पृ० 369)

` कृष्णावतार ` का विरह- वर्णन बड़ा स्वाभाविक एवं सरल है । कहीं भी बनावट का आभास नहीं होता । गुरू जी और सूरदास के काव्य में विप्रलम्भ के अन्तर्गत - अभिलाषा, चिन्ता , स्मृति , गुण- कथन, उद्वेग, प्रलाप उन्माद, व्याधि, जड़ता और मृति - इन दसों अवस्थाओं का उल्लेख मिलता है। सूरदास ने कई स्थानों में इन अवस्थाओं का चित्रण किया है :-

(1) अभिलाषा :- सूरदास- अंखियां हरि दरसन की भूखी ।
कैसे रहति रूप- रस रांची, यह बतियां सुनि सखी ।
+ + +
बारक वह मुख आनि दिखावहु, दुहि पय पियत पतूखी ।। ५०१८ ॥
कृष्णावतार :- ताते तजो मथुरा फिर आवहु हे सम गउअनि के रखवारे पृ०38
2) चिन्ता - सूरदास :- नैननि निपट कठिनाई ठानी ।
जा दिन ते बिछुरे नंद- नंदन, ता दिन ते नहिं नेकु सिरानी ।
पलक न लावत रहत ध्यान धरि, बारम्बार दुरावत पानी ॥ ५०१९ ॥
गुरू गोबिंदसिंह :- ठाड़ी है होइ ए कड़ो जीय जिम घंटक हरे बजे प्रिरगाइल ।
स्याम कहे कवि चिन्त ह्वे हरि को हरि ऊपरि ह्वे अति गाइल॥
ध्यान लगै दृग मून्द रहौं उघरे निकटे तिह जान उताइल ॥
यौं उपजी उपमा मन मै जिन मीचत आंख उघारत धारल।। ८०० ॥
3) स्मृति -सूरदास :- बहु दिन ऐसोई हो री ।
ह्वै जाते मेरे आंगन मोहन, यह बिरियां सो री ।
बाल दसा की प्रीति निरंतर, परी रहति ही ढोरी ।
राधा - राधा नंद - नंदन मुख, लागि रहति यह लोरी ।
बेनु पानि गहि मोहिं सिखावत, मोहन गावत गोरी ।
सूरजदास स्याम सारंग तजि, वह सुख बहुरि न भोरी ।। ३१४१ ॥
गुरू गोबिंदसिंह :- एक समै रहे किंसुक फूलि सखि लह पौन बहे सुखदाई ।
भौर गुंजारत इतते उतते मुरली नन्दलाल बजाई ।
रीझ रह्यो सुनके सुर- मंडल ता कवि को वरन्यो नहीं जाई ।
तऊन समैं सुखदाइक थो रित औसर यहि मैं दुखदाई।।869 ॥
4) गुण कथन :- सूरदास:- ते गुन बिसरत नाहीं उर तैं ।
जे ब्रजनाथ किये सुनि सजनी सोचि कहति हौ धुर तैं ।
मेघ कोपि ब्रज बरषन आयौ त्रास भयौ पति सुर तैं ।
+ + +

सूरदास प्रभु सबै बचे रन कछुनहिं सर्‌यो असुर तैं ।। ३४२२ ॥

5) उद्वेग - सूरदास:- बिथा माहँ कौन सौं कहिये ।
हम तौ भई जज्ञ के पसु ज्यौं, केतिक दुख सहिये ।
+ + +
कबहुक जिय ऐसी उपजति है, जाइ जमुन बहिये ।
सूरदास प्रभु हरि नागर बिनु काली ह्वै रहिये ॥ (सूरदास)(३१॥)

गुरू गोबिंदसिंह की विरहातुर गोपियों की निम्नांकित उक्ति उनके उद्वेग की ही परिचायक है :-

` बोलत ग्वारनि आपस में सुनिये सजनी हम काम करैंगी ॥
त्याग कह्यो हम धामन कहूं चिपियां गहि सीस जटान धरैंगी ॥
कै विख खाइ मरेगी कह्यो नहिं बूढ़ मरै नहिं जाये जरैंगी ॥
मान वियोग कहैं सब ग्वारिन कान्ह के साथ ते पै न टरैंगी ॥803 ॥`

6) प्रलाप -सूरदास :- मधुवन तुम क्यौं रहत हरे ।
बिरह वियोग स्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यौं न जरे ।
मोहन बेनु बजावत तुम तर, साखा टेकि खरे ।
+ + +
सूरदास प्रभु बिरह दावानल, नख सिख लौ न जरै ।। ३४२४ ॥

7) उन्माद- विरह- व्यथा की तीव्रता के कारण विरही व्यक्ति का चित्त उन्मादित सा हो जाता है। सूरदास के काव्य से एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

` सखि कर धनु लै चंदहि मारि ।
तब तो पै कछुवे न सिरैहै, जब अति जुर जैहै तनु जारि ।।
डठि हरवाइ जाइ मन्दिर चढ़ि, ससि सनमुख दरपन विस्तारि ।।
ऐसी भांति बुलाइ मुकुर मैं, अति बल खंड खंड करि डारि ॥ 3971 ।।

8) व्याधि- मानसिक सन्ताप के कारण विरही व्यक्ति की शारीरिक दशा रोगी की सी हो जाती है । सूर ने अपने अनेक पदों में विरह की इस व्याधि- दशा

का वर्णन बड़े स्वाभाविक ढंग से किया है । द्रष्टव्य है :-

` हरि दरसन को तरसति अंखियां ।
फांकति फरसतिं फरोखा बैठी, कर मीड़ति ज्यौं मखियां ॥
बिछुरी बदन- सुधानिधि - रस तैं, लगतिं नहीं पल पंखियां ।
इकटक चितवति उड़ि न सकति जनु, थकित भईं लखि सखियां ॥
बार- बार सिर धुनति बिसुरति, बिरह- ग्राह जनु भखियां ।
सूर सुक्रम मिले तैं जीवहिं, काट किनारे नखियां ।। 3858 ।। `

9) जड़ता - जड़ता की स्थिति में विरही स्मृति शून्य सा हो जाता है । इस दशा के चित्रों का अंकन करने में भी सूर अपना सानी नहीं रखते । उदाहरण प्रस्तुत है :-

` रही जहां सो तहां सब ठाढ़ी ।
हरि के चलत देखियत ऐसी, मनहु चित्र लिखि काढ़ी ।।
सूखे बदन, स्त्रवति नैननि तैं, जलधारा उर बाढ़ी ।
कंधनि बाहं धरे चितवतिं मनु, द्रुमनि, बेलि दव दाढ़ी ।। 3612 ।। `

10) मूर्च्छा : जब विरही अपने तन- मन की सुध- बुध खो कर चेतना शून्य हो जाता है तो वह दशा मूर्च्छा कहलाती है । सूर कहते हैं :-

` जबहिं कह्यौ ये स्याम नहीं ।
परी मुरछि धरनी ब्रजबाला, जो जहं रही सु तहीं ।।
सपने की रजधानी ह्वै गई जो जामीं कछु नाहीं ।
बार - बार रथ ओर निहारहिं, स्याम बिना अकुलाहीं ।। 4086 ।। `

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूर और गुरु गोबिंदसिंह दोनों ने ही शृंगार के विप्रलम्भ - पक्ष का हृदयग्राही चित्रण किया है। विरह- भाव की अनुभूति प्रेम की चार अवस्थाओं में होती है - पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण । गुरु जी के काव्य में पहली तीन अवस्थाओं का ही वर्णन यथेष्ट मात्रा में मिलता है। करुणात्मक स्थिति का वर्णन करने में उनका मन नहीं रमा । इस विषय में सूर की

पैंठ गुरू गोबिंदसिंह से अधिक है । सूर के काव्य में विरह की इन चारों अवस्थाओं का चित्रण बड़े सुन्दर, सुचारू एवं स्वाभाविक ढंग से हुआ है जो हिन्दी- साहित्य में कृष्ण- काव्य की अनुपम निधि हैं ।

महाकवि सूर का भ्रमरगीत प्रसंग एवं गुरू गोबिन्दसिंह का बारहमासा भी विप्रलम्भ शृंगार के ही अन्तर्गत आता है। कृष्ण- काव्य के उस प्रसंग को भ्रमरगीत के नाम से पुकारा जाता है जिसमें ज्ञानी उद्धव विरहिणी गोपियों को ज्ञानमार्ग का उपदेश देने आते हैं और गोपी- विरह उद्धव के सम्मुख भ्रमर का माध्यम ले कर आवेदन- शील हो उठता है , गोपियों का व्यथित हृदय अपने निर्मम प्रियतम को भ्रमर के माध्यम से उपालम्भ देने लगता है और गोपियों के कृष्ण के प्रति अटूट प्रेम को देख कर उद्धव स्वयं ज्ञानी से भक्त बन जाते हैं । भक्तिकालीन भ्रमरगीत के जन्मदाता महाकवि सूरदास थे । महाकवि सूर के भ्रमरगीत का विवेचन षष्ठ- परिच्छेद के ` वर्ण्य- वस्तु ` उपशीर्षक के अन्तर्गत विस्तार से किया जा चुका है। यहां उसका संक्षिप्त रूप प्रस्तुत है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण ने उद्धव द्वारा मौखिक सन्देश ही ब्रजवासियों को भेजा है। गुरू गोबिंदसिंह के कृष्ण भी उद्धव द्वारा मौखिक सन्देश ही भेजते हैं :-

` सोक्त ही इह चित्त करी वृजवासन सिऊ इह कारज कहये ।
प्रात भये ते बुलाइ के ऊधव भेज कह्यो तिह ठऊरै दहये ।
ग्वारनि जाइ सन्तोष करे सु सन्तोख करे हमरी धर्म महये ।
या ते न बाल भली कछु और है मोहि विवेकहि को फगरिये ।।893 ।।

किन्तु सूरदास के कृष्ण मौखिक तथा लिखित दोनों रूपों में अपना सन्देश भेजते हैं । सूरदास ने यहाँ पाती- प्रसंग की मौलिक उद्भावना की है :-

` निरखति अंक स्याम सुंदर के बार- बार लावति लै छाती ।
लोचन जल कागद मसि मिलि के ह्वै गई स्याम स्याम जू की पाती । 4105

सूरदास जी ने इस पाती- प्रसंग में अनेक पद लिखे हैं । महाकवि सूरदास का विरह- वर्णन बहुत व्यापक है। कृष्ण के विरह में केवल गोपियां ही नहीं, सारी ब्रजभूमि व्याकुल दीख पड़ती है। सूर का भ्रमरगीत बहुत ही प्रभावशाली बन पड़ा है ।

इस भ्रमरगीत - प्रसंग में सूर की विरहिणी गोपियों ने उपालम्भ तथा व्यंग्य द्वारा अपने मन के निगूढ़तम भावों (लीज, कातरता, ग्लानि, ईर्ष्या आदि) की मार्मिक अभिव्यक्ति की है । विरह- व्यथा की तीव्रता के कारण गोपियां सीधे ढंग से कुछ न कुछ कह कर व्यंग्य और उपालम्भ द्वारा अपने मनोभावों को व्यक्त करती हैं। इस का विस्तृत विवेचन षष्ठ- परिच्छेद के प्रथम अध्याय में किया जा चुका है । यहां इतना कहना ही पर्याप्त है कि ` सूरदास के भ्रमरगीत में काव्यकला का चरम उत्कर्ष दृष्टिगत होता है । यहां विप्रलम्भ - शृंगार की मर्मस्पर्शी व्यंजना हुई है । प्रेम की विकलता, तन्मयता और तीव्रता का जितना सुन्दर एवं हृदयग्राही वर्णन भ्रमरगीत में हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। निस्सन्देह भ्रमरगीत सूरदास की सर्वोत्कृष्ट रचना है । व्यंजना प्रधान भावपूर्ण मार्मिक शैली में सूर ने यहां अन्तर्हृदय का उद्घाटन किया है । हास्य - व्यंग्यमयी वक्रोक्तियों की योजना ने भ्रमरगीत - प्रसंग को अद्भुत सजीवता एवं रमणीयता प्रदान की है ।[1] `

गुरू गोबिंदसिंह जी के काव्य में भ्रमरगीत - प्रसंग तो नहीं है लेकिन उद्धव के ब्रज आने पर गोपियों की विरह का वर्णन अवश्य किया गया है । विरह- व्यथा को व्यक्त करने के लिये गुरू जी ने ` बारहमासा ` का वर्णन किया है। यह बारहमासा फागुन के महीने से आरम्भ होकर माघ के महीने में समाप्त होता है । यहां एक गोपी दूसरी गोपी से प्रत्येक महीने में पूर्वसुख की ` स्मृति ` से अपने दुख का वर्णन करती है । वस्तुत: संयोगावस्था में प्राप्त हुये ऋतुविशेष सम्बन्धी आनन्द के उपादान ही स्वाभाविकत: वियोगावस्था में दुखदायी प्रतीत होने लगते हैं । द्रष्टव्य है :- ` एक समय रहे किंसुक फूलि सखी लह पौन बहै सुखदाई।। ।।

भौंर गुंजारत इतते उतते मुरली नन्दलाल बजाई ।
रीझ रह्यो सुनके सुर- मंडल ता कवि को वरन्यो नहीं जाई ।
तऊन समैं सुखदायक थो रित औसर यदि भई दुखदाई ।। 869 ।।

पावस- ऋतु भी अब व्यथा भार लिये ही उपस्थित होती है :-

` जोर घटा घन आइ जहां सखी नूंदन मेघ भला कवि पाई ।
बोलत चात्रिक दादुर अऊ घन मोरन पै घनघोर लगाई ।

1-सूर की काव्य साधना -डा0 गोविंदराम शर्मा, पृष्ठ - 191 ।

ताहि समैं हम कान्हर के संग खेलत थी अति प्रेम बढ़ाई ।
तौन समैं सुखदाइक थी रित औसर याहि मई दुखदाई ।।872 ।। `

शीतकाल के संयोग- सुख की स्मृति भी अब अत्यन्त दुखदाई प्रतीत होती है :-

` मधर समैं सब स्याम के संग हुई खेलत थी मन आनन्द पाई ।
सीत लगे तब दूर करी हम स्याम के अंग सो अंग मिलाई ।
फूल चमेली के फूल रहे जिहनीर घट्यो जमुना जीअ आई ।
तौन समैं सुखदायक थी रित औसर याहि मई दुखदाई ।।876 ।।

वस्तुत: भारतीय लोक- काव्य में बारहमासे का चित्रण प्रमुख रूप से होता रहा है । गुरू जी ने ` कृष्णावतार ` में इन बारह मासों का प्रयोग दो बार किया है । सूरदास के ` भ्रमरगीत ` की मूक राधा भी ` कृष्णावतार ` के बारहमासे में मुखर हो उठती है । सावत ऋतु में राधा की व्यथा द्विगुणित हो उठती है और वह कहती है :-

` ताल भरे जल पूरन सौं अस सिन्ध मिली सरिता सब जाई ।
तैसे घटान छटान मिली अति ही पपिहा पीय टेर लगाई ।
सावन माहि लग्यो बरसावन भावन नाही हटाधर माई ।
लाग रह्यो पुर मामन टसक्यो ना हियो कसक्यो न कसाई ।।918 ।

कार्तिक में दीवाली के अवसर पर राधा की विरह- व्यंजना अति भावपूर्ण हो उठती है । सभी नर- नारी क्रीड़ा रत हैं, किन्तु उसके प्रिय नहीं लौटे :-

` कातिक में गुनि दीप प्रकासत तैसे अकाश में उज्जल ताई ।
जूथ जहां जहां फैल रह्यो सिगरे नर नारन खेल मचाई ।
चित्र भये घर आंगन देख गये तिहके अस चित्र भरमाई ।
आयो नहीं मन भायो नहीं टसम्यो न हीयो कसक्यो न कसाई।।921 ॥

राधा बारह महीने प्रतीक्षा करती है और अन्त में जब कृष्ण फागुन में भी नहीं लौटते तो उसकी आशा- निराशा में ढल जाती है :-

` फागुन फाग बढ़्यो अनुराग सुहागन भाग सुहाग सुहाई ।

केसर चीर बनाइ सरीर गुलाब अबीर गुलाल उड़ाई ।
सो छवि मैं न लखी जन द्वादस मास की सोभत आग जगाई ।
आस को त्याग निरास भई टसक्यो न हीयो कसम्यो न कसाई॥ 925 ॥

इसी प्रकार उद्धव जब ब्रज से वापिस जाते हैं तो गोपियों का विरह- संदेश भी अत्यन्त मार्मिक बन पड़ता है :-

` स्याम कह्यो संग है तुमरे जो हुती तुमको बृज बीच प्यारी ।
कान्ह रचे पुरवासन सों कबहों न हिये बृजनारि चितारी ।
पंथ निहारत नैनन की कवि स्याम कहे पुतरी दोउ हारी ।
ऊधव स्याम सों यों कहियो तुमरे बिन भई सब ग्वार विचारी ॥ 9 5 ॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गुरू जी ने शृंगार के दोनों पक्षों - संयोग और वियोग की प्राय: सभी स्थितियों का चित्राकर्षक वर्णन किया है।

उपर्युक्त तुलनात्मक विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि - महाकवि सूर दास और गुरू गोबिंदसिंह दोनों ही भक्त कवि हैं और उनके काव्य में शृंगार- रस संबंधी जो उदाहरण मिलते हैं, वे अश्लील नहीं कहे जा सकते । दोनों कवि श्रेष्ठ शृंगार - कवि हैं, दोनों ने शृंगार के रसराजत्व का निरूपण किया है और दोनों के काव्य में संयोग और वियोग शृंगार के उत्तम उदाहरण हैं ।

दोनों के काव्य में कुछ अन्तर भी है - भ्रमरगीत प्रसंग में सूर ने निर्गुण - सगुण का प्रकरण अपनी ओर से जोड़ा है, यह उनके युग- दर्शन का प्रमाण है। उनके युग में ज्ञान, योग और भक्ति का द्वन्द्व चल रहा था । भ्रमरगीत में उन्होंने प्रेमाभक्ति की विजय दिखाई है । गुरू जी के गोपी- विरह में कोई द्वन्द्व नहीं है, पर उसमें भी प्रेमाभक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है । गुरू जी ने विरह- वर्णन के लिये बारहमासे का प्रयोग किया है जो अत्यन्त उत्कृष्ट बन पड़ा है ।

अन्त में यह कहना उपयुक्त है कि सूर और गुरू गोबिंदसिंह दोनों कवि शृंगार के बाह्य चित्र प्रस्तुत करने वाले कवि नहीं हैं । उनके चित्र आंतरिक निर्मलता और आध्यात्मिकता से परिपूर्ण हैं ।

-

(ग) 2 भक्ति- एवं उसका स्वरूप

जीवमात्र की स्वाभाविक प्रवृत्ति है सुखान्वेषण - और यह सुख वास्तव में पूर्ण में निहित है, अल्प में नहीं । अल्प (सांसारिक सुख) का मोह त्याग कर जब मानव पूर्ण (ब्रह्म) की ओर बढ़ता है तभी उसे वास्तविक शान्ति एवं आनन्द की प्राप्ति हो सकती है तथा इस निरतिशय आनन्द की प्राप्ति के साधन हैं - ज्ञान, भक्ति और कर्म । युग की परिस्थितियों के अनुसार कभी ज्ञान प्रमुख रहा तो कभी कर्म और कभी भक्ति को जीवन में महत्वपूर्ण स्थान मिलता रहा । अधिकांश विद्वानों का मत है कि ज्ञान- भक्ति और कर्म- तीनों भिन्न हैं,अथवा तीन स्वतंत्र साधन हैं । लेकिन ध्यानपूर्वक देखा जाये तो भक्ति में ज्ञान और कर्म दोनों की आवश्यकता रहती है। ` भगवान् को प्रसन्न करने के लिये कर्म आवश्यक ही है और इस विनश्वर शरीर और अविनश्वर आत्मा के भेद का ज्ञान प्राप्त करने के लिये ज्ञान भी अपरिहार्य है। शास्त्रों में दो प्रकार की भक्ति का वर्णन मिलता है - ` परा ` तथा ` अपरा ` । ` अपरा ` भक्ति में कर्म की आवश्यकता रहती है। यह भक्ति सर्व साधारण के लिये है, अतएव सरल भी है। अपरा भक्ति में भक्त सदा भगवान् के गुणों का श्रवण, उनका कीर्तन, स्मरण, चरणों की सेवा, उनकी अर्चना तथा वन्दना करता है । अपने को भगवान का दास समझता है, उनसे प्रीति स्थापित करता है और अन्त में अपने आप को उनके चरणों में अर्पण कर देता है -

श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।

यह है कर्मप्रधान अपरा भक्ति । - - परा भक्ति इसकी अपेक्षा सूक्ष्म तथा गहन है। यह भक्ति बुद्धि जन्य होती है। तथा इसमें जो प्रीति होती है, वह स्वाभाविक होती है । यह केवल ज्ञानवान् को ही आनन्दित कर सकती है। इसका अधिकारी सर्व-

2)

साधारण न होकर केवल ज्ञानी ही होता है, जिसका उल्लेख गीता में कई स्थानों पर किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि अपरा भक्ति तथा परा भक्ति क्रमश: कर्मप्रधान तथा ज्ञान प्रधान हैं और इन में किसी प्रकार का कोई विरोध नहीं है, ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।[1] वस्तुत: कर्मयोग और ज्ञानयोग दोनों ही भक्तियोग के सहकारी हैं। वेदों का भी पूर्व भाग कर्मकाण्ड और उत्तर भाग ज्ञानकाण्ड है। ज्ञान निरपेक्ष कर्म स्वर्ग प्राप्ति का हेतु बनता है। कर्म- निरपेक्ष ज्ञान कैवल्य की ओर अग्रसर होने का निर्देश करता है। परन्तु भक्तियोग कर्म और ज्ञान का सहायक बन कर मोक्ष का सहकारी होता है। कर्म और ज्ञान का जहां मिलन होता है, वहां भक्ति उद्बुद्ध होती है। तब ज्ञान, कर्म और भक्ति का एक ही लक्ष्य मुक्ति होता है।[2] लेकिन, इतना होने पर भी ज्ञान की गूढ़ता जन- सामान्य की बुद्धि के परे की बात थी और कर्मयोग भी कर्मकाण्ड का रूप धारण कर आडम्बर एवं आवरण मात्र ही बन कर रह गया था। (कर्मकाण्ड के सब कर्म सकाम होते हैं जबकि कर्मयोग के सब कर्म निष्काम होते हैं ।) ऐसे समय में भक्ति को महत्व मिलना स्वाभाविक ही था । भक्ति मार्ग वस्तुत: भाव-प्रधान साधना मार्ग है जो श्रद्धा और विश्वास पर आधारित होने के नाते अपेक्षाकृत सुगम मार्ग है। भक्ति जन- जीवन की प्रेरक शक्ति है, यह वह प्यास है जो कभी बुझती नहीं अपितु उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है।

` भक्ति ` शब्द ` भज् ` धातु और ` क्तिन् ` प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ है(भगवान , की) सेवा करना। भक्ति के स्वरूप का वर्णन करते समय महामुनि शाण्डिल्य ने अपने ` शाण्डिल्य- भक्तिसूत्र ` में - ` सा परानुरक्तिरीश्वरे `

1- कल्याण (भक्ति अंक) - पृष्ठ - 90 ।

2- कल्याण (भक्ति अंक) - पृष्ठ - 93 ।

कह कर ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति को ही भक्ति माना है। `नारद- भक्ति सूत्र ` के अनुसार भी भगवान् के प्रति एकनिष्ठ प्रेम ही भक्ति है। यह भक्ति अमृत-स्वरूपा है और परम- प्रेम- स्वरूपा भी । इसे पाकर मानव परितृप्त हो जाता है अथवा यह कहें कि उसे ` भूमा का सुख ` प्राप्त हो जाता है जिसे पाकर वह संसार के विषयों से निरपेक्ष हो जाता है ।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने भक्ति के विषय में कहा है - ` भगवान् के प्रति माहात्म्य ज्ञान रखते हुये जो सुदृढ़ और सबसे अधिक स्नेह हो वही भक्ति है ।[1] `

इसी प्रकार श्री मधुसूदन सरस्वती एवं रूप गोस्वामी आदि अनेक आचार्यों ने भी भक्ति के सम्बन्ध में विचार प्रकट किये हैं।

हमारे विवेच्य कवि- महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह जी ने भी भक्ति के महत्व के सम्बन्ध में स्थान - स्थान पर उल्लेख किया है, यथा -

सूरदास— (1) - रे मन, समुझि सोच विचारि ।
भक्ति बिनु भगवंत दुर्लभ, कहत निगम पुकारि ।

(2) भक्ति कब करि हौ, जनम सिरानो ।
- - - - - -
सूरदास भगवंत- भजन बिनु, जम के हाथ बिकानो ।।

(3) भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वै हौ ।
- - - - - -
सूरदास भगवंत - भजन बिनु, मिथ्या जनम गवैं हौ ।।[2] (सूरसागर)

1- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय: डॉ0 दीनदयालु गुप्त - पृष्ठ 518 ।

2- सूरसागर, पद - 309, 329, 331 ।

(1) बिन भगत सक्त नहिं करत पान । बहु करत होम अरू जग्य दान ।।
बिन एक नाम इक चित्त लीन । फोकटो सरब धर्मा बिहीन ।।

(- अर्थात् व्यक्ति लाख होम करे, यज्ञ करे, दान करे किन्तु बिना भक्ति की शक्ति के वह(परमात्मा) हाथ नहीं आता । एकचित्त होकर (परमात्मा के नाम) में लीन हुये बिना सब धर्म बेकार हैं ।)

(2) मानव इन्द्र गजिन्द्र नराधिप जौन त्रिलोक को राज करैंगे ।।
कोटि स्नान गजादिक दान अनेक सुअम्बर साज करैंगे ।।
ब्रह्म महेसर बिसन सचीपति अन्त फसे जम फांस परैंगे ।।
जे नर श्रीपति के पर्स हैं पग ते नर फेर न देह धरैंगे ।।

(- अर्थात् मानव हो, चाहें इन्द्र, गजिन्द्र हों या त्रिलोक का राज करने वाले हों, कोटि स्नान करने वाले हों या दान देने वाले हों, ब्रह्मा महेश,विष्णु सभी अन्त को प्राप्त हो जाते हैं, केवल वही आवागमन से छूटते हैं जो प्रभु के चरणों में समर्पित हो जाते हं ।)

(3) जिह कोट इन्द्र नृपार ।। कई ब्रह्म बिसन बिचार ।।
कई राम कृष्ण रसूल ।। बिन भगत को न कबूल ।।

(- अर्थात् कोटियों ही इन्द्र, अनेक ब्रह्मा और विष्णु, अनेक राम कृष्ण और रसूल हुये हैं, लेकिन बिना भक्ति के वह (प्रभु) किसी को भी स्वीकार नहीं करता ।)

(4) सब कर्म फोकट जान । सब धर्म निहफल मान ।।
बिन एक नाम अधार ।। सब कर्म भरम बिचार ।।[1]

(- सब बाह्य कर्मों को मिथ्या समझो, सभी धर्मों को निष्फल मानो, बिना एक परमेश्वर के नाम के सभी कर्मों को भ्रम मात्र ही समझो ।)

भक्ति के प्रकार -भक्ति के प्रकार एवं रूपों का निर्णय करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

1- अकाल- स्तुति (दशम ग्रन्थ)-छं0 20,28,38, 50 ।

5)

प्राय: भक्तों के साधन, अभ्यास, मन्त्र, नाम रूप, भाव आदि अलग- अलग होते हैं। कर्ता, करण, उपकरण, सम्बन्ध, भावना बुद्धि एवं स्थिति - यह सब के सब एक जैसे नहीं हो सकते । और फिर यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाए तो अभक्त कोई नहीं है। जब हम सिद्धान्त रूप से भगवान को सर्वात्मा मान लेते हैं तो फिर हम किसी को भगवान् का विरोधी अथवा अभक्त कैसे मान सकते हैं । वास्तव में हम सभी स्वाभाविक तौर पर सुख की इच्छा करते हैं और सुख भी ऐसा जो निरतिशय हो, अखण्ड हो, जो हमेशा रहे और हर जगह मिले। चाहे कोई आस्तिक हो या नास्तिक, ज्ञान-मार्गी हो या कर्ममार्गी या फिर निपट अज्ञानी ही क्यों न हो - सभी इस ` सुख ` की इच्छा करते हैं। इसी ` सुख ` को कोई ब्रह्म कहता है, कोई राम तो कोई कृष्ण कोई इस ` सुख ` को देवी भगवती का नाम देता है तो कोई शंकर का । नाम कोई भी हो - लक्ष्य सभी का एक है । हां, इस लक्ष्य- प्राप्ति के मार्ग अथवा साधन ज़रूर भिन्न हैं।

रूपगोस्वामी जी ने ` हरि भक्ति रसामृत सिंधु ` में भक्ति का विभाजन इस प्रकार किया है । -

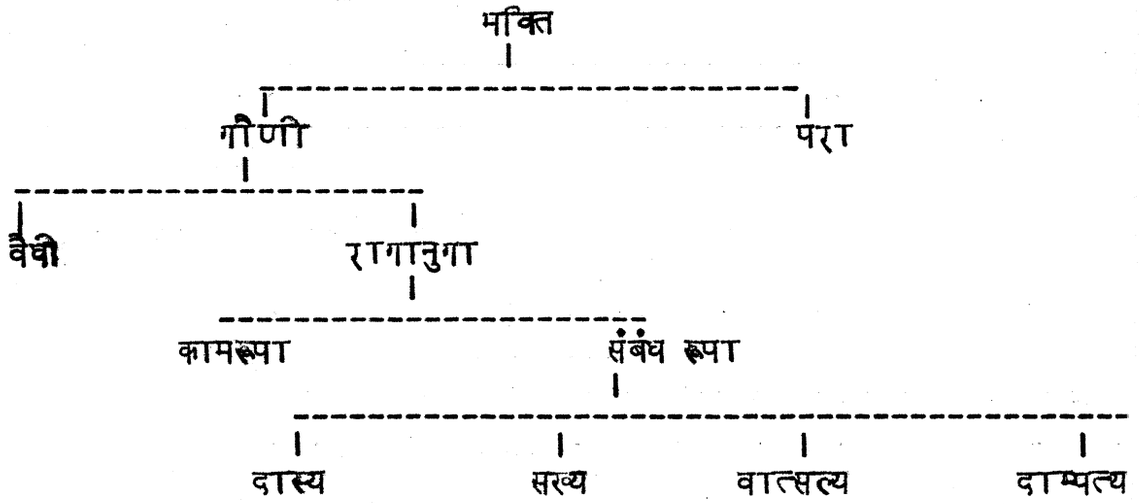

मन को एकाग्र करके नित्य प्रति प्रभु का श्रवण, कीर्तन एवं आराधन करना

1- हिन्दी और तेलगु कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन) पृ0-172
(पोतना और सूर दास के सन्दर्भ में) से उद्धृत) डा0 एन-एस ए
दक्षिणामूर्ति

6)

वैधीभक्ति कहलाता है। इसे नवधा भक्ति अथवा मर्यादा भक्ति भी कहते हैं। रागानुगा भक्ति प्रेम द्वारा संचालित होती है। इसके दो भेद हैं - कामरूपा- जैसेकि गोपियों की कृष्ण के प्रति भक्ति थी - और दूसरा संबंध रूपा - जो कि क्रमश: हनुमान(दास्य), सुदामा (सख्य), यशोदा (वात्सल्य) और राधा एवं रूक्मिणी (दाम्पत्य) में देखी जा सकती है। वास्तव में परामक्ति का अन्तिम सोपान भी यही रागानुगा भक्ति ही है।

नारद भक्ति सूत्र में भक्ति की ग्यारह आसक्तियां बताई गयीं हैं - गुणमहात्म्यासक्ति 2- रूपासक्ति 3- पूजासक्ति 4- स्मरणासक्ति 5- दास्यासक्ति 6- सख्यासक्ति 7- कांतासक्ति 8- वात्सल्यासक्ति 9- आत्मनिवेदनासक्ति 10- तन्मयासक्ति और 11 - परमविरहासक्ति ।

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में भक्त के स्वभावानुसार भक्ति के चार भेद माने गये हैं - सात्विकी, राजसी, तामसी और निर्गुण । भागवत के सप्तम स्कन्ध में भक्ति के नौ भेदों का उल्लेख हैं:-

1- श्रवण 2- कीर्तण 3- स्मरण 4- पादसेवन 5- अर्चना 6- वन्दन 7- दास्य 8- सख्य एवं 9- आत्मनिवेदन । इन में प्रथम छ: तो क्रियात्मक हैं और अन्तिम तीन मानसिक ।

आत्मनिवेदन को शरणागति अथवा प्रपत्ति भी कहते हैं । वास्तव में शरणागति और आत्मनिवेदन प्रपत्ति के ही दो भेद हैं । भगवान् से मिलने की प्रबल व्यग्रता एवं आतुरता ही प्रपत्ति कहलाती है। प्रपत्ति मार्गी भक्त अथवा प्रपन्न अपने को ईश्वर के अधीन कर देता है। भक्त तो सोचता है कि प्रभु मेरे हैं अत: उनकी सेवा का भार मुझ पर है। लेकिन प्रपन्न समझता है कि मैं प्रभु का हूं अत: मेरी रक्षा का भार प्रभु पर ही है। प्रपन्न की भक्ति के निर्वाह का भार भी प्रभु पर ही होता है। उसके अनुसार भक्त को वही कर्म करने चाहिये जो भगवान् को प्रिय हैं और जिन कर्मों से प्रभु अप्रसन्न हों वह त्याग करने योग्य हैं । जो कर्म अपने समाज के तथा राष्ट्र के

7)

लिये कल्याणकर जान पड़ें, उनका ही अनुसरण करना चाहिये । जिस कर्म के द्वारा अपना या दूसरों का अनिष्ट होता हो उसका त्याग करना चाहिये ।प्रपन्न भक्त का एक विशेष गुण यह है कि भगवान् जो कुछ करते हैं उसी को वह अपने लिये कल्याणमय समझता है। यहां तक कि स्त्री- पुत्रादि के वियोग में भी प्रपन्न समझता है कि जिसकी वस्तु थी वह ले गया ।[1]

यदि इस दृष्टि से देखा जाये तो गुरू गोबिन्दसिंह प्रपन्न भक्त थे । उन्होंने कर्म को ही भक्ति माना और वही कर्म किये जो समाज एवं राष्ट्र के लिये कल्याणकर थे । इस धर्म- युद्ध में उनके चारों पुत्र शहीद हो गये लेकिन उस भक्त - योद्धा ने उफ़ तक न की और एक प्रपन्न भक्त की भांति यही सोचा कि जिसकी वस्तु थी वह ले गया। गुरू जी ने अपना शरीर, मन और प्राण- अपना सब कुछ प्रभु को अर्पण कर दिया । यह अलग बात है कि उनकी भक्ति का ढंग निराला था ।

इस प्रपत्ति- भक्ति के छ: प्रकार बताये गये हैं:-

1- अनुकूल का संकल्प 2- प्रतिकूल का वर्जन 3- रक्षा का विश्वास 4- गोप्तृत्ववरण 5- आत्मनिक्षेप तथा 6- कार्पण्य ।

इस प्रकार और अनेक विभाजन दिखाये जा सकते हैं लेकिन इन में मुख्यतया श्रीमद्भागवत में वर्णित भक्ति के प्रकारों के अनुसार सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह की भक्ति- साधना की तुलना करना अधिक उपयुक्त है क्योंकि दोनों ने ही अपने कृष्ण-काव्य का आधार श्रीमद्भागवत को ही बनाया है। फिर भी सूर और गुरू जी की भक्ति- साधना की विशेषताओं को समझने के लिये तद्युगीन भक्ति के रूप का विवेचन करना भी आवश्यक होगा ।

सिक्ख- सम्प्रदाय में भक्ति - गुरू गोबिन्दसिंह जी की रचनाओं में द्रष्टव्य भक्ति के के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिये सिक्ख- सम्प्रदाय की भक्ति भावना के रूप को

1- कल्याण- भक्ति अंक - पृष्ठ 99 ।

8)

जानना भी आवश्यक है ।

वास्तव में सिख- धर्म है ही भक्ति प्रधान । इसमें परमात्मा को ' वाहिगुरु ' या ' अकालपुरुख ' कहा गया है। " सिख मत ही एक ऐसा मत है, जहां गुरु- भक्ति और गुरुवाणी के रूप में साकार और निराकार की उपासना एक समन्वयात्मक ज्ञान और कर्म की प्रधानता के रूप में उपलब्ध होती है। मुख्यता तो निराकार उपासना को ही दी गई है परन्तु इसके साथ ही नाम श्रवण और नाम- कीर्तन का महत्व भी माना गया है। नवधा- भक्ति के कुछ सिद्धान्तों को अपनाते हुए उस परम पुरुष की प्राप्ति का प्रयत्न ही सिख मत का लक्ष्य है। - - - इस उत्तम कर्म के लिये किसी वन में जाने की आवश्यकता नहीं, किसी विशेष प्रकार के वेश- भूषा की आवश्यकता नहीं और सबसे बढ़ कर संसार- त्याग करने की भी आवश्यकता नहीं, अपितु उस अकाल पुरुष का दास बन कर गृहस्थ में रह कर ही उसे प्राप्त किया जा सकता है। यदि जल के न होने पर ही सूखा रहा जा सकता है तो वह कहीं भी रहा जा सकता है , परन्तु जल में रहकर भी कमलपत्रवत अपने को निर्लिप्त रखे रहना - यही तो योग है, यही तो कसौटी है उस अकालपुरुष की प्राप्ति की ।[1] "

नामदेव की समदृष्टि, कबीर की गुरुभक्ति एवं बाह्याडम्बर का विरोध, धन्ना भक्त की तन्मयता, रविदास का सेवक- भाव, मीरां की प्रेमाभक्ति - सभी गुरुवाणी में अपना लिये गये हैं । इस दृष्टि से सिख मत को एक समन्वयात्मक मत भी कहा जा सकता है। इस मत में ज्ञानप्रधान भक्ति के साथ- साथ भक्ति- प्रधान ज्ञान को अपनाया गया है। भक्ति विहीन ज्ञान तो मानव को अहंवाद की कोटि तक पहुंचा देता है।

सिख मत में ' नाम सिमरन ' पर विशेष बल दिया गया है क्योंकि नाम - स्मरण ही सदा मनुष्य को यह स्मरण दिलाये रखताहै कि वह उसी महान् सत्ता

1- कल्याण - भक्ति अंक - पृष्ठ 594 ।

का एक अंश है और उसे प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य है ।

" सिख मत अपने भक्ति- भाव में आर्य- समाज आदि मतों की भांति अवतारवाद का खण्डन नहीं करता अपितु उसे स्वीकार करता है। वह गीता के इस सिद्धान्त - ` परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।- का आदर करता है ।[1]

यही भाव गुरू गोबिन्दसिंह की रचनाओं में भी स्थान- स्थान पर देखने को मिलता है। उदाहरण के लिये ` कृष्णावतार ` में गुरू जी कहते हैं :-

" काल पुरूष के हुकम ते संतन हेत सहाय ।
मथुरा मंडल के बिखे जनम धर्यो हरिराय ।[2] "

- इतना ही नहीं, गुरू जी ने तो अपने आविर्भाव का कारण भी यही बताया है-

` हम इह काज जगत मो आए । धर्म हेत गुरू देव पठाए ।
जहां जहां तुम धर्म बिथारो। दुष्ट देखियत पकरि पछारो ।।
याही काज धरा हम जनमं । समझ लेहु साधू सब मनमं ।।
धर्म चलावन सन्त उबारन । दुष्ट समन को मूल उपारन ।।[3]

इससे यह स्पष्ट है कि गुरू जी ने केवल ` कथनी ` पर ही बल नहीं दिया। जो कहा उसे करके भी दिखाया ।

वास्तव में ` नामदेव, कबीर आदि सन्तों ने जिस ज्ञानाधारित भक्ति को प्रश्रय दिया था, गुरू नानक ने उसे और अधिक भाव-पूर्ण बना कर अपना लिया था और उसी परमात्मा में गुरू गोबिन्दसिंह ने भी जीव के उद्धार का एक मात्र साधन ` भगवन्नाम ` को ही बताया । उनकी भक्ति ने ही शक्ति को भी अवतरित कर

1- कल्याण - भक्ति अंक - पृष्ठ 597 ।
2- दशम ग्रन्थ- (कृष्णावतार कथा) - पृ0- 254, छं0 सं0 - 3 ।
3- दशम ग्रन्थ -(विचित्र नाटक) - पृ0- 51, छं0 सं0 - ५१ ।

3000

10)

लिया था । उनकी भक्ति में थी अनन्यता और अनवरत लगन । यह भक्ति जीव अपने आप अर्जित नहीं कर सकता । इसकी प्राप्ति हो सकती है केवल ' नदरि ' से, भगवत् कृपा से । और भगवत्कृपा भी तो अर्जित नहीं की जा सकती । वह तो गुरू- कृपा से ही सम्भाव्य है ।[1] ' - - -

शक्ति की उपासना - मध्ययुग में शाक्त मत की प्रतिष्ठा प्राय: समाप्त ही हो गई थी । उनकी साधना को समाज में कोई ऊंचा स्थान प्राप्त नहीं था । लोग इस मत को घृणा की दृष्टि से देखने और इसकी निन्दा करने लगे थे । वैष्णव- भक्त ही समाज में प्रतिष्ठा के पात्र थे। लेकिन गुरू गोबिन्दसिंह ने निर्गुण -ब्रह्म की उपासना के साथ- साथ शक्ति के प्रति भी अविचल आस्था प्रकट की है। उनकी रचनाओं में स्थान- स्थान पर शक्ति एवं उसी के पर्याय देवी, भवानी आदि नामों का स्मरण हुआ है। गुरू जी ने स्थान- स्थान पर अपनी रचनाओं के पात्रों एवं नायक- नायिकाओं से देवी-स्तुति करवाई है। यही नहीं , उनके ' कृष्णावतार ' में भी गोपियां दुर्गा की पूजा करती दिखाई गई है।[2] जिसका उल्लेख उसके अतिरिक्त अन्यत्र किसी भी तत्सम्बन्धी ग्रन्थ में नहीं मिलता ।

वास्तव में शक्तिमत दो धाराओं में प्रवाहित था - एक तो वामाचारी था, जिसे समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता था और दूसरा लोकाचार की रक्षा करते हुये शक्ति की विशुद्ध उपासना का समर्थक था जिसे समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त थी । गुरू जी वस्तुत: लोकाचार समर्थित शक्ति के उपासक थे, जिसका स्पष्टीकरण उनकी रचनाओं के अध्ययन से हो जाता है । इसके अतिरिक्त गुरू जी के समय में सिखों पर मुसलमानों के अत्याचार पूर्ण पराकाष्ठा को पहुंच गये थे और

1- गुरू गोबिन्दसिंह के साहित्य में भारतीय संस्कृति के तत्व - डॉ० धर्मपाल मैनी - पृ० - 106 ।

2- दशम ग्रन्थ(कृष्णावतार कथा) - छं० सं० - 245, 246 - पृ०

गुरू जी तन,मन और धन से इन अत्याचारों के दमन में लगे थे । अत: बल, पराक्रम एवं शक्ति की अधिष्ठातृ देवी होने के कारण गुरू जी जैसे वीर पुरूष का उसकी उपासना की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था ।

इसका एक और कारण यह भी हो सकता है कि भक्त तो निर्लिप्त होता है, वह प्रभु से कुछ मांगता नहीं, उसकी भक्ति में ही संतुष्ट रहता है लेकिन शिशु तो मां से मांगेगा ही। शक्ति तो विश्व जननी है । इसलिये विश्वजननी से ही गुरू - गोबिन्दसिंह शक्ति , मांगते हैं, साहस मांगते हैं :-

` देहु शिवा वर मोहि इहै । शुभ करमन ते कबहुं न टरौं ।।
न डरौं अरि सों जब जाई लरौं । निश्चय कर अपनी जीत करौं ।।[1] `

गुरू जी के शक्ति की उपासना विषयक तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं - चण्डी - चरित्र उक्ति विलास, चण्डी चरित्र, चण्डी दी वार । गुरू जी ने देवी को पारब्रह्मी , परमेश्वरी, निराकार, सर्वशक्तिमान आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया है । इस प्रकार गुरू जी ने शक्ति उपासना के प्रति अपनी अडिग आस्था का परिचय दिया है ।

वास्तव में मध्यकाल में शाक्तों के जिस वर्ग की निन्दा सन्तों ने की थी गुरू जी का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं था । वह तो देवी के पारब्रह्म स्वरूपिणी एवं विशुद्ध रूप की उपासना करते थे। शाक्तों के प्रति कबीर का विरोध सबसे अधिक था और गुरू जी ने तो कबीर की ही भांति बाह्याडम्बरों एवं अनैतिकता का विरोध किया है। गुरू जी तो उस मत, उस सम्प्रदाय के धर्मगुरू थे जो समन्वय में विश्वास रखता है, जो किसी भी मत की अच्छी बातों को अपना लेने और बुराइयों को त्याग देने में विश्वास रखता है ।

श्री वल्लभाचार्य की पुष्टि भक्ति - वल्लभ सम्प्रदाय की पुष्टिभक्ति वर्णना में अवगाहन करने का अवसर प्रभु के अनुग्रह तथा कृपा से किसी- किसी को ही मिलता है । इसीलिये

1- दशम ग्रन्थ(चण्डी चरित्र) - छं0 सं0 - 231 ।

पुष्टि- मार्ग को अनुग्रह - मार्ग भी कहते हैं। इस भक्ति को प्राप्त करने वाला भक्त रस- भाव के प्रेम में डूब कर, उस अलौकिक तत्व का स्मरण कर, अहं एवं मोह- ममता को छोड़ कर दीनता पूर्वक प्रभु- सेवा में लगा रहता है। इस मार्ग में परमात्मा अंशी एवं जीव उसका अंश है ।

पुष्टिमार्गी भक्त मुक्ति की भी इच्छा नहीं करते । वे तो निष्काम भाव से प्रभु की सेवा कर अपना सर्वस्व प्रभु को अर्पण कर देते हैं। पुष्टिमार्गी भक्ति में सेवा- भाव प्रमुख है। तनुजा, वित्तजा और मानसी- इन तीन प्रकारों से प्रभु की सेवा की जाती है। तनुजा और वित्तजा सेवा से जीव की अहंता और ममता समाप्त हो जाती है । दीनता की प्राप्ति होने पर मानसी सेवा सिद्ध होती है जो सर्वश्रेष्ठ है । पुष्टि मार्ग में भाव ही साधन है, भाव ही फल है । वास्तव में चित्त को सब तरफ से हटा कर प्रभु में लगा देना ही सेवा है। मानसी सेवा के सिद्ध हो जाने पर हृदय में अलौकिक प्रेम स्त्रोत प्रवाहित हो जाता है जिससे प्रभु से सकात्मक- भाव का उदय हो जाता है और भक्त भी प्रभु की लीला में शामिल हो जाता है।

पुष्टि भक्ति का साधन नवधा भक्ति है । भक्त इन नौ साधनों (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, और सख्य और आत्मनिवेदन) से भक्ति करके अपने मन को प्रभु चरणों में अर्पित कर देता है जिससे जगत् के काम- क्रोध, राग-द्वेष एवं अहंकार आदि नष्ट हो जाते हैं और तब भक्त के सारे कर्म प्रभु सुख के लिये होने लगते हैं । वास्तव में जिसमें प्रभु के सुख का ही मुख्य विचार हो, वही पुष्टि-भक्ति है ।

इस भक्ति मार्ग में जाति- वर्ण का कोई भेद नहीं है। इसमें शूद्र, स्त्री और वैश्य वर्ग के व्यक्तियों को भी आध्यात्मिक उन्नति का अधिकार दिया गया है, और तो और दुराचारियों को भी इस साधन से आत्मिक सुधार का अवसर दिया गया है। इस भक्ति मार्ग के मधुर- भाव में प्रेम को मुख्यता दी गई है । प्रभु के प्रति किया गया प्रेम ही द्वैत को अद्वैत में परिणत करता है । जो लौकिक प्रेम को त्यागता है उसे ही इस अलौकिक प्रेम की प्राप्ति होती है।

13)

हमारे विवेच्य कवि महाकवि सूरदास जी की कृष्ण- भक्ति भी महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग एवं शुद्धाद्वैत- दर्शन की ही भाष्यरूपा थी । उनका समस्त काव्य राधा- कृष्ण के यशोगान से ही समलंकृत है । सूरदास असाधारण कोटि के भगवद्भक्त थे ।

सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह की नवधा भक्ति -

श्रीमद्भागवत में वर्णित नवधा भक्ति - श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, बन्दन, दास्य, सख्य और आत्मानिवेदन में प्रथम तीन तो भगवान के नाम और उनकी लीलाओं से सम्बन्धित है, तत्पश्चात् पादसेवन, अर्चन और बन्दन उनके स्वरूप से सम्बन्धित हैं और अन्तिम तीन- दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन का संबन्ध भक्त के मन से है। यही मानसिक स्थितियां ही भक्ति- रस की उत्पादक हैं । सूरदास एवं गुरू गोबिन्दसिंह - दोनों के काव्य में नवधा - भक्ति के यह रूप इस प्रकार हैं -

(1) श्रवण- भगवान का यश, माहात्म्य, गुण, नाम और लीलाओं का श्रद्धा पूर्वक श्रवण करना ही श्रवण- भक्ति कहलाताहै। भक्त भगवान के गुण और माहात्म्य सुनने को बेचैन हो जाता है। इस भक्ति की प्राप्ति गुरू एवं सन्तों के सम्पर्क में आने से सहज हो जाती है । वास्तव में यह साधन तीन प्रकार से होता है - 1 -गुरू के वचन श्रद्धापूर्वक श्रवण करने से , 2- संतों के सम्पर्क में आने से एवं - 3- प्रभु के यश, नाम और गुण आदि के गान से । सूरदास एवं गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में श्रवण- भक्ति के प्रभाव के द्योतक शब्द इस प्रकार हैं :-

सूरदास : (1) ` जो यह लीला सुने सुनावे, सो हरिभक्ति पाइ सुख पावै[1]`

(2) ` जो पदस्तुति सुने सुनावे, सूर सो ज्ञान भक्ति को पावै[2]`

1- सूरसागर - नवम स्कंध - पद सं0 449 ।

2- सूरसागर - पद सं० - ५१८ ।

(3) ` शुक जैसे वेद अस्तुति गाई, तैसे ही मैं कहि समुझाई ।
सूर कह्यो श्रीमुख उच्चार, कहे सुने सो तेरे भव पार ।।[1] `

गुरू गोबिन्दसिंह :

(1) ` जो इह कथा सुने अरू गावे। दुख पाप तिह निकट न आवे ।।
विष्णु भक्ति कीर फल होई । आधि व्याधि ह्वै सके न कोई ।।[2] `

(2) ` हरि के सन्तक बढ़ी सुनाऊ । ताते प्रभ लोगन रिझवाऊ ।
जो इह कथा तवक सुन पावे । ताको दोख दूर होइ जावे ।।[3] `

(अ) गुरू की कृपा - हमारे हिन्दू- धर्म , संस्कृति और सभ्यता में गुरू का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना गया है । ` गुरू ` भगवद्भक्ति का प्रधान अंग है । सभी भक्तों ने गुरू- महिमा का वर्णन बड़ी श्रद्धा से किया है । महात्मा कबीर तो गुरू को परमेश्वर से भी बड़ा मानते हैं ।

` गुरू गोबिन्द दोनों खड़े काके लागूं पाय ।
बलिहारी गुरू आपने जिन गोविन्द दियो दिखाय ।। `

वास्तव में गुरू ही सच्चा मार्ग दर्शक है। सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह ने भी गुरू की महिमा का वर्णन किया है। सूरदास जी का कथन है :-

(1) ` नरतें जनम पाइ कह कीनो ?
उदर भरयौ कूकर- सूकर लौं, प्रभु को नाम न लीनो ।
श्री भागवत सुनी नहीं स्त्रवननि, ` गुरू ` गोबिन्द नहिं चीनो ।।[4] `

1- सूरसागर - दशम ग्रन्थ , उत्तरार्ध - पद सं0 - 4918- 4919 ।

2- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) - रामावतार - छं0 सं0 859, पृष्ठ 254 ।

3- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) - कृष्णावतार - छ: सं0 2480, पृ0 - 561/

4- सूरसागर - पद सं0 - 46 ।

15)

माया रूपी सर्पिणी से बचने के लिये भी गुरू रूपी गारूड़ी की ही आवश्यकता रहती है :-

सूरदास:- (2) ` अजहूं सावधान किन होहि ।
माया विषम भुजंगिनि को विष, उतरयौ नाहिं ना ताहि
कृष्ण मंत्र जियावन मूरी, जिन- जिन मरत जिवायौ ।
बारं बार निकट स्त्रवननि है गुरू गारूड़ी सुनायौ ।[1] `

मध्ययुग में गुरू का महत्व अत्यन्त बढ़ गया था। सन्त- परम्परा में गुरूनानक का मत गुरू की महत्ता के कारण ` गुरूमत ` ही कहलाता है। `सिक्ख ` शब्द का अर्थ ही वास्तव में ` शिष्य ` है जो आजीवन कुछ न कुछ सीखते रहने की अभिलाषा अपने मन में लिये रहते हैं। इन सिक्खों का धार्मिक नारा ` श्री वाहि गुरू जी की फतह ` भी वास्तव में गुरू की महत्ता को ही प्रकट करता है। गुरू गोबिन्दसिंह तो स्वयं ही इस सिक्ख सम्प्रदाय के धर्म गुरू थे अत: गुरू के नाते महान् थे । वह तो स्वत: ` गुरू ` भी थे और ` गोबिन्द ` भी । गुरू जी ईश्वर को अपना गुरू मानते थे और उन्होंने ईश्वर का गुणगान सर्वत्र किया है । ` विचित्र - नाटक ` में उन्होंने परमात्मा की आज्ञा से जन्मग्रहण की बात कही है :-

(1) ` तिन जो करी अलख की सेवा । ताते भये प्रसन्न गुरू देवा ।
तिन प्रभ जब आयस मुहि दिया । तब हम जन्म कलू महि लिया ।[2] `

गुरू जी के अनुसार आदि गुरू परमात्मा ने उन्हें धर्म की रक्षा और उसके प्रचार के लिये ही जगत् में भेजा है :-

(2) ` हम यह काज जगत मो आए । धर्म हेत गुरूदेव पठाए ।
जहां तहां तुम धर्म विकारों। दुष्ट दोखीअन पकरि पछारों ।[3] `

1- सूरसागर - पद सं0 - 336 ।
2- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) - विचित्र - नाटक - छं0 सं0 - 4, पृष्ठ 35
3- ,, ,, ,, ,, - 42, पृष्ठ 57 ।

- और गुरू गोबिन्दसिंह जी ने अपने इस आदिगु० के आदेश का अक्षरश: पालन किया वह जीवन- पर्यन्त धर्मयुद्ध में लगे रहे । उन्होंने अपने गुरू के बचनों को साकार कर दिया ।

गुरू गोबिन्दसिंह की अपेक्षा सूरदास ने गुरू की महिमा का वर्णन अधिक स्थानों में किया है। पुरंजन की कथा, वृत्रासुर की कथा, रासलीला प्रसंग आदि में उन्होंने गुरू की महिमा का वर्णन किया है । गुरू गोबिन्दसिंह ने अपने काव्य में ` गुरू ` का शब्द चाहे बार- बार ध्वनित नहीं किया, लेकिन उन्होंने गुरू की महिमा का गान सर्वत्र किया है क्योंकि वह तो स्वयं ईश्वर को ही अपना गुरू मानते थे और ईश्वर की महत्ता का वर्णन उनके काव्य में सर्वत्र विद्यमान है। गुरू जी स्वयं एक सम्प्रदाय के धर्मगुरू थे और उन्होंने अपने पश्चात् किसी को गुरू न मानकर ` श्री गुरू ग्रन्थ साहिब ` को ही एकमात्र गुरू मानने की सिक्खों को आज्ञा दी है :-

` आगिआ भई अकाल की तबै चलायो पंथ ।
सब सिक्खन को हुकुम है गुरू मानियो ग्रन्थ ।।

गुरू गोबिन्दसिंह जी ने एक गुरू होने के नाते अपने सम्प्रदाय को एक नया रूप दिया, दिशा दी, उनके अन्धेरे पथ में ज्ञान का दीपक जलाया, उन में साहस जगाया, उन्हें वीर बनाया और उन में धर्म युद्ध की चाह एवं अदम्य उत्साह जगा कर उन्हें देशभक्ति की ओर प्रेरित किया। गुरू जी का विचार था कि देशभक्ति और ईश्वरभक्ति यदि सत्यधर्म से की जाय तो दोनों एक ही है । इस दृष्टि से गुरू जी ने अपने ` गुरू ` रूप को सार्थक कर दिखाया ।

(आ) सत्संग - गुरू की महिमा की ही भांति भक्त कवियों ने सत्संग की महिमा का भी वर्णन किया है। सूरदास जी भी कहते हैं कि सत्संग का लाभ बड़े भाग्य से

1- पंथ - प्रकाश , निवास 40, पृष्ठ - 338 ।

होता है । सत्संगति सब प्रकार के कल्मषों को दूर कर देती है अत: ऐसे व्यक्तियों का संग नहीं करना चाहिये जो हरि से विमुख हों :-

` तजौ मन हरि बिमुखन को संग ।
जिनके संग कुमति उपजति है, परत भजन में भंग ।[1] `

गुरू गोबिन्दसिंह जी ने स्पष्ट रूप से कहीं भी सत्संग का उल्लेख नहीं किया, लेकिन उन्होंने ` सन्तन ` एवं ` हरिजन ` शब्दों का प्रयोग अवश्य किया है जैसे -

` सुनीअहु सन्त सबै चित लाई ।[2] `
` हरिजन हरि संग मिलत है सुनत प्रेम की गाथ[3] `

इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी कहा है ` दुष्ट दोखीयन पकरि पछारो `- इससे स्पष्ट है गुरू जी हरि भक्तों पर तो श्रद्धा रखते थे लेकिन हरि से विमुख लोगों को ` दुष्ट ` की संज्ञा दे कर उन्हें दूर रखना चाहते थे ।

(इ) भगवान के नाम, यश, गुण आदि का गान - वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण एवं महाभारत - सभी में भगवन्नाम की महिमा बिखरी पड़ी है । भगवन्नाम के समान पुण्य तीनों लोकों में और कोई भी नहीं है। इस नाम- कीर्तन मात्र से ही जीव मुक्ति पा जाता है। इतना महान् होने पर भी यह इतना सुगम है कि इस भगवन्नाम का ग्रहण पुरूष, नारी, ब्राह्मण, शूद्र - सभी कर सकते हैं । ` राम ` नाम लिख देने से ही पत्थर भी जल में तैरने लगे थे । नाम - साधन के विषय में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं :-

` राम नाम अवलंब बिनु परमारथ की आस ।
बरषतबारिद बूंद महि चाहत चढ़न अकास ।। `(दोहावली -20)

महाकवि सूरदास एवं गुरू गोबिन्दसिंह जी के काव्य में ऐसे अनेक स्थल है जहां प्रभु के

1- सूरसागर- पद सं० - 332 ।
2- दशम ग्रन्थ (प्रथम भाग) - चौबीस अवतार- छं० सं० - 1 पृ० -
3- दशम ग्रन्थ (प्रथम भाग) - कृष्णावतार - छं० सं० - 2477 - पृ०

नाम एवं गुण की महिमा गाई गई है । सूरदास जी कहते हैं :-

(1) ` सुवा चलि ता वन को रस पीवै
जा बन - राम - नाम अम्रित रस, स्त्रवन पात्र भरि लीजै । `

(2) ` बड़ी है राम नाम की ओट । `

(3) ` सोर मली जो रामहिं गावै । `

(4) ` कहा गुन बरनौं स्याम तिहारे ।[1]

वस्तुत: प्रभु में जैसा- जैसा गुण है अथवा प्रभु जैसी- जैसी लीला करते हैं, उसी के अनुरूप उनका नाम पड़ जाता है । अत: भगवान् के नाम कीर्तन तथा गुण-कीर्तन में कुछ भी भेद नहीं है । ईश्वर की अनन्त शक्ति एवं गुणों के अनुरूप ही प्रभु के नाम भी अनन्त हैं । गुरू गोबिन्द सिंह जी ने भी नाम- महिमा का वर्णन बड़े सुन्दर एवं अनूठे ढंग से किया है। वह कहते हैं कि ` नाम ` के आधार के बिना सभी कर्म बेकार हैं तथा सभी धर्म निष्फल हैं, अत: उसी को आधार बना कर चलने में ही जीव की गति है :-

(1) ` सभ करम फोकट जान । सभ धरम निहफल मान ।
बिन इक नाम आधार । सब करम भरम विचार ।।[2] `

(2) ` गुरू जी कहते हैं नाम के बिना सब श्रम- साधन व्यर्थ हैं:-
देसु- बिदेस नरेसन जीत, अनेक बड़े अवनेस संहारे ।
आठोर- सिद्धि सबै नव-निद्धि, समृद्धिन सर्व भरे गृहसारे ।
चन्द्रमुखी बनिता बहुते धरि, माल भरे नहिं जात सम्हारे ।
नामविहीन अधीन भये जम, अन्त को नांगे ही परि सिधारे ।। `

(विचित्र नाटक)

1- सूरसागर - 449 , 4918- 4919 ।

2- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) - अकालस्तुति - छं0 सं0 - 50 ।

गुरू गोबिन्दसिंह ने मूलत: ब्रह्म को ` अनाम ` कहकर ही सम्बोधित किया है - - ` नमस्तं अनामं । ` (जापु छंद सं0- 4) लेकिन ` अनाम ` रूप में स्मरण करने से उन्हें संतोष नहीं हुआ और उसका ` काल ` अथवा ` अकाल ` रूप ही उन्हें अभीष्ट लगा । अपनी महत्वपूर्ण कृति का नाम भी इसी आधार पर उन्होंने ` अकाल-स्तुति ` रखा है जिसमें उस अगम, अगोचर ब्रह्म की स्तुति है।

गुरू जी ने ईश्वर के गुणों के अनुरूप नामों का स्मरण भी अपने काव्य में किया है । यथा

` दुष्ट हरता सृष्टि करता दयाल लाल गोबिन्द ।
मित्र पालक सत्र घालक दीन दबाल मुकुन्द ।। ` (द0 ग्र0-पृ0 29)

(2) ` जग आपन आपन ऊमकाना । पारब्रह्म काहू न पछाना ।। `
(द0 ग्र0 पृ0-157)

(3) ` आदि पुरखु अविगति अविनासी । लोक चतुर्दस जोति प्रकासी ।। `
(द0 ग्र0 पृ0- 11)

(4) ` पूर रह्यो सिगरे जग में अब लौ हरि को जसु लोक सु गावै ।।
सिद्ध मुनीसर ईश्वर ब्रह्म अजो बल को गुन व्यास सुनावै ।।
अज परासुर नारद सारद श्री सुच ससेस न अन्तह पावै ।।
ताको कवितन में कवि स्याम कह्यो कहि कै कवि कौन रिझावै ।। `
(कृष्णावतार छं0 सं0- 1902)

वास्तव में प्रभु के यह नाम ही स्मरण, कीर्तन एवं श्रवण के आधार है । ` नाम ` के माध्यम से ही भक्त का प्रभु में दृढ़ विश्वास होता है और हमारे दोनों विवेच्य कवियों को प्रभु में अटूट आस्था थी अत: दोनों ही प्रभु नाम -स्मरण में विश्वास रखते थे ।

2- कीर्तन - प्रभु के नाम, लीला गुणादि का श्रद्धापूर्वक उच्च स्वर में गान कीर्तन कहलाता है। प्रभु के इस गुणगान में ही जीवन की सार्थकता है। वास्तव में प्रभु के गुणगान में जो आनन्दोपलब्धि होती है, वह लौकिक पुरूषों के गुणगान में नहीं

20)

नहीं होती । न तो गुरू जी ने ही किसी आश्रयदाता का गुणगान किया था और न सूरदास जी ने ही । दोनों ने ही अपनी कृति भगवान् को ही समर्पित की । गुरु - गोबिन्दसिंह के अनुसार जिसने उस एक ब्रह्म के सिवा और किसी का ध्यान नहीं किया, केवल उसी का (प्रभु का) ही स्मरण किया है, वही परमगति को प्राप्त होता है -

` आदि पुरख जिन एक पछाना । दुतिआ भाव न मन में आना ।। 2 ।।
+ + +
एक प्रमुख जिन नैक पछाना । तिन ही परम तत्त कह जाना ।।22 ।।[1]

सूरदास भी यही कहते हैं :-

` मन रे, माधन सौं करि प्रीति ।
काम- क्रोध - मद - लोभ तू , छांड़ि सबै विपरीति ।
+ + +
एकहु आंक न हरि भजे, रे सठ, सूर गंवार ।।[2]

सूरदास जी तो यहां तक कहते हैं कि :-

` सोइ रसना, जो हरि गुन गावै ।
नैननि की छबि यहै चतुरता जब मुकुन्द- मकरंदहि ध्यावै ।[3] `

और - जो होत गुपालहिं गावै - -

+ + +
सूरदास हरि का सुमिरन करि, बहुरि न भव- जल आवै ।।[4] `

इस तरह के ही भाव गुरू जी के काव्य में मिलते हैं जहां वह कहते हैं कि जो वही बात कहते हैं जो प्रभु को अच्छी लगे, और हरि की ही चर्चा करते हैं, हरे

1- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) -
2- सूरसागर - पृ० सं० - 324 ।
3- सूरसागर - पृ० सं० - 350 ।
4- सूरसागर - पृ० सं० - 349 ।

का ही ध्यान करते हैं वह जीव भव सागर से पार हो जाते हैं । उन्हें पुन: शरीर धारण नहीं करना पड़ता -

" जो वृजनायक के रूच सो कवि स्याम मनै फुन गीतन गेहैं ।।
चातुरता संग जो हरि के जसु बीच कवित्तन के सु बने हैं ।।
औरन ते सुन जो चर्चा हरि की हरि के मन भीतर देहैं ।।
सो कवि स्याम मनै धरिकै तन या भव भीतर फेर न देहैं ।।[1] "

वास्तव में हरि- नाम का संकीर्तन ही भक्तों का आधार है और मुक्ति का साधन है। प्रभु के गुणों का कीर्तन करने वाला भक्त संगीत- कला का भी सहारा लेता है । महाकवि सूरदास तो संगीत - कला के प्रवीण पारखी थे। उनके संगीत में बंधे सुललित पद आज भी जन- मन में झंकृत हो उठते हैं। गुरू जी के भी छन्द, लय एवं ताल में बंधे हैं। कीर्तन का ही एक उदाहरण है -

" जले हरि ।। थले हरि ।। उरे हरि ।। बने हरि ।। 51 ।।
गिरे हरि।। गुफे हरि।। छिते हरि।। नभे हरि ।। 52 ।।
इहां हरि ।। उहां हरि ।। जिमी हरि ।। जमां हरि ।। 53 ।।
अलेख हरि ।। अभेख हरि ।। अदोख हरि ।। अद्वेख हरि ।। 54 ।।[2] "

लेकिन सूरदास जी के पद तो अपनी गेयता में अपना कोई सानी नहीं रखते । उनके सम्मुख यदि कोई टिक पाता है तो वह है - मीरां, जो भक्ति के आवेश में प्रभु का कीर्तन करते करते नाच उठती थी । सारांश यह कि भक्ति के साथ संगीत का घनिष्ठ सम्बन्ध है और भक्ति एवं संगीत का यह सम्मिलित रूप हमारे दोनों विवेच्य कवियों के काव्य में देखा जा सकता है ।

1- दशम ग्रन्थ (प्रथम भाग) - कृष्णावतार - छं0 सं0 - 2482 - पृ0-

2- दशम ग्रन्थ (प्रथम भाग) - अकाल स्तुति - पृ0 - 16 ।

3- स्मरण - ` स्मरण ` का सम्बन्ध मानसिक जगत् से है । प्रभु के नाम, गुण, लीला माहात्म्य आदि का चिन्तन ही ` स्मरण ` कहलाता है। इस भक्ति - साधना में प्रभु के नाम- स्मरण का विशेष महत्व है। नाम- स्मरण की महिमा का वर्णन ऊपर भी हो चुका है। वास्तव में इस भक्ति- साधन में साधक का मन पूर्णत: प्रभु में ही तन्मय हो जाता है, वह उठते बैठते हैं , सोते - जागते, हर समय अपने इष्ट का ही चिन्तन करता है। रसखान तो कहते हैं कि प्रभु के प्रति साधक का लगाव इस तरह होना चाहिये जैसे पनिहारी अन्य कार्य करती हुई भी अपने सिर के घड़े का ध्यान रखती है :-

` सुनिये सब की कहिये न कछु रहिये इमि या मन - बागर में ।
+ + + +
रसखान गुबिंदहि यौं भजिये जिमि नागरि को चित गागर में ॥ `

इसी प्रकार भगवद्गीता में भी कहा गया है - ` हे अर्जुन जो मनुष्य मुझ में अनन्य चित लगाकर सदा मुझ को स्मरण करता है, मेरे में संलग्न रहता है, उसके लिये मैं सुलभ हूं ।[1] `

हरि - स्मरण - भक्ति के विषय में सूरदास जी भी कहते हैं :-

(1) ` हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ । हरि हरि सिमुरत सब सुख होइ ।
+ + + +
हरि बिनु सुख नहिं इहां न उहां । हरि हरि हरि सुमिरौ जहं जहं ।
सौ बातनि की एकै बात । सूर सुमिरि हरि- हरि दिन रात ।५५३॥

(2) ` हरि - गुन- कथा अपार, पार नहिं पाइये ।
हरि सुमिरत सुख होइ, सु हरि गुन गाइये ।। ३१२ ॥

1- ` अनन्यचेता : सततं यो मां स्मरति नित्यश: ।
तत्याहं सुलभ: पार्थ नित्युक्तस्य योगिन: ।गीता,अध्याय:8,श्लोक 14 ।

(3) - प्रभु नाम - स्मरण से अज्ञान नष्ट हो जाता है और ज्ञानोदय होता है -

" करि मन नंद - नंदन ध्यान ।
सेव चरन सरोज सीतल तजि विषय रस पान ।[1] "

गुरू गोबिन्दसिंह जी ने भी ' स्मरण ' का ऐसा ही महत्व बताया है । देखिए -

" प्राणी परम पुरान पग लागो ।
+ + +
संग्रह करो सदा सिमरण को, परम पाप तजि भागो ।
जाते दुख पाप नहिं मेटे, काल जाल ते तागो ।
जो सुख चाहत सदा सभन को तो हरि के रस पागो ।[2] "

इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रभु के श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण भक्ति से सम्बन्धित पद दोनों कवियों के काव्य में पर्याप्त हैं ।

4- पादसेवन - इस भक्ति- साधन का प्रधान लक्ष्य सेव्य- सेवक भाव है। एक सच्चे सेवक की भांति ही प्रभु की सेवा भक्त के लिये आवश्यक है । गुरू - सेवा भी पाद- सेवा का ही एक अंग है । बाह्य तथा आंतरिक दोनों रीतियों से भगवान की पादसेवा करने पर भक्त का हृदय उज्जवल हो जाता है । सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में प्रभु की ' पादसेवा ' भक्ति के कई उदाहरण मिलते हैं :-

सूरदास -(1)

" चरन - कमल बंदौं हरि- राई ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कछु दरसाई ।
+ + +
सूरदास स्वामी करूनामय, बार- बार बंदौं तिहिं पाई ।[3] "

1- सूरसागर - पद सं० - 307

2- दशम ग्रन्थ (प्रथम भाग) - छंद रामकली पातशाही 10 : 3॥ 3,पृ० 710 ।

3- सूरसागर - पद सं० - 1 ।

(2) ` भजि मन नन्द नन्दन चरन ।
परम पंकज अति मनोहर, सकल सुख के करन ।
+ + +
कृष्ण पद- मकरंद पावन, और नहिं सरबरन ।
सूर भजि चरनारबिंदनि, मिटै जीवन - मरन[1] । `

हरि की पाद- सेवा- भक्ति को प्राप्त कर लेने वाले जीव इस संसार के आवागमन से मुक्त हो जाते हैं । गुरू गोबिन्दसिंह के शब्दों में सुनिये :-

1) ` मानव इन्द्र गजिन्द्र नराधिप जौन त्रिलोक को राज करेंगे ॥
कोटि स्नान मजादिक दान अनेक सुअम्बर साज बरेंगे ।।
+ + +
जे नर श्रीपति के परसेहैं पग, ते नर फेर न देह धरेंगे ।।[2] `

2) ` जो उपमा वृजनाथ की गाई है और कवित्तन बीच करेंगे ।।
पापन की तेऊ पावक मै कवि स्याम भने कबहूं न जरेंगे ।।
+ + +
जे नर स्याम जूके परसे पग, ते नर फेर न देह धरेंगे ।।[3] `

3) ` ताही पछानत है न महा पसु, जाको प्रतापु तिहूं पुर माहीं ।।
+ + +
पाईं परो परमेसर के जड़, पाहन मै परमेसर नाहीं ।।[4] `

पांय गहे जबते तुमरे तबते कोऊ आंख तरे नहीं आन्यो। ` (दशम ग्रन्थ-गोबिन्द रामायण- पृ0 242

1- सूरसागर - पद सं0 308 ।
2- दशम ग्रंथ(प्रथम भाग) - अकाल स्तुति - छं0 स0- 28 - पृ0
3- दशम ग्रंथ(प्रथम भाग) - कृष्णावतार - छं0 सं0 2483 , पृ0 -
4- ,, ,, - विचित्र नाटक ,, 99 - पृ0 -

इस तरह हमारे दोनों विवेच्य कवियों ने ही यह स्पष्ट किया है कि प्रभु के चरणों की सेवा करने से मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।

5- अर्चन - श्रद्धा एवं सम्मान सहित की गई प्रभु की पूजा ही ' अर्चन ' कहलाती है । मन्दिरादि में प्रतिष्ठित प्रभु की मूर्तियां ' अर्चावतार ' की संज्ञा से अभिहित की जाती है। भक्ति के क्षेत्र में गुरू एवं सद्जनों को भी अर्चावतार कह कर उसी महत्व से सम्मानित किया जाता है ।

यह अर्चन- भक्ति- साधन दो प्रकार का है - 1- मानसिक और 2- बाह्य । भगवान् का नाम- स्मरण एवं आत्म समर्पण मानसिक अर्चन के अन्तर्गत आता है और षोडशोपचार पूजा जैसे - आसन, अर्घ्य, पाद्य, पंचामृत स्नान, वस्त्र, अलंकार आदि बाह्य - अर्चन कहलाता है। अर्चन- भक्ति में श्रद्धा एवं आदर का प्राधान्य रहता है । महाकवि सूरदास जी ने भी अर्चन- भक्ति की महत्ता का वर्णन किया है । उस सर्व-व्यापी परमेश्वर की नारदादि सब मिलकर आरती गा रहे हैं :-

" हरि जू की आरती बनी ।
अति विचित्र रचना रचि राखि, परति न गिरा गनी ।
कच्छप अब आसन अनूप अति, हांडी सहस फनी ।
मही सराव, सप्त सागर घृत, बाती शैल घनी ।
रवि- शशि ज्योति जगत परिपूर्ण हरत तिमिर रजनी ।
उड़त फूल उड़गन नभ अन्तर, अन्जन घटा घनी ।
नारदादि सनकादि प्रजापति सुरनर असुर अनी ।
काल कर्म गुण अरू न अंत कछु प्रभु इच्छा रचनी ।
यह प्रताप दीपक, सु निरंतर लोक सकल भजनी ।
जाके उदित नचत नाना बिधि गति अपनी अपनी ।
सूरदास सब प्रगट ध्यान में अतिविचित्र सजनी ।[1] "

1- सूरसागर : द्वितीय स्कन्ध - पद सं0 371 ।

यह वस्तुत : भगवान् के विराट रूप की विश्व- आरती का चित्र है जो सूर ने बड़े अनूठे ढंग से खींचा है। प्रभु के स्वरूप का माहात्म्य वर्णन भी अर्चनभक्ति के ही अन्तर्गत आता है। दोनों कवियों ने प्रभु के स्वरूप का वर्णन किया है[1]। गुरू गोबिन्दसिंह की अपेक्षा सूरदास के काव्य में कृष्ण के स्वरूप का वर्णन अधिक सुन्दर एवं प्रचुर रूप में हुआ है।

इस अर्चन-भक्ति के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है कि प्रभु के चरणों का अर्चन-पूजन मनुष्यों के लिये स्वर्ग, मोक्ष तथा इस लोक की सम्पूर्ण सम्पत्ति एवं सिद्धियों का मूल है[2]। गीता में भी कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जो मुझे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि कुछ भी भक्ति से अर्पण करता है उस नियतचित्त पुरूष की भेंट को मैं प्रीतिपूर्वक ग्रहण करता हूं[3]।

वस्तुत: सुदामा का चरित्र ही इस अर्चन का साक्षी है जिसने तंदुल समर्पित कर अनन्त सौभाग्य प्राप्त किया था और स्वयं प्रभु ने सुदामा को अर्चावतार मान उन के चरण धोये थे। इस कथा का वर्णन हमारे दोनों विवेच्य कवियों ने किया है।

1- सूरदास - " नैननि निरखि स्याम स्वरूप ।
रह्यो घट- घट व्यापि सोई, जोति-रूप अनूप ।
चरन सप्त पताल जाके, सीस है अकास ।
सूर चन्द्र - नक्षत्र पावक, सर्व ताषु प्रकास ।।" सूरसागर, पद सं0-370

गुरूगोबिन्दसिंह-बन तण महीप जल- थल महान ।
जहं तहं प्रसोह करूणा निधान
जग मगत तेज पूर्ण प्रताप ।
अम्बर ज़मीन जिह जपत जाप ।।
सातो अकास सातो पताल ।
विचरिउ अदृष्ट जिह कर्म जारि ।। " अकाल-स्तुति : छं0 सं0 -27 ।

2- " स्वर्गापवर्गयो: पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम् ।
सर्वा सामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् । "
- भागवत, दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध अध्याय 8 ., श-1

3- " पुत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन: । गीता, अध्याय 9, श्लोक -26 ।

27)

ब्रज के गोपों द्वारा भगवान् कृष्ण के पूजन- अर्चन का चित्र गुरू जी ने बहुत सुन्दर ढंग से खींचा है ।द्रष्टव्य है :-

` पूजन काल चले तन कै पुरगोप सभै मन मन मै हरखे ।
गहि अछत धूप पंचामृत दीपक सामुहे चंड सिवे सरखे ।
अति आनन्द प्राप्ति में तिनको दु:ख थे जु जिते सबही धरखे ।
कवि स्याम अहीरन के जु हुते सुभ भाग धरी इह में परखे ।[1] `

एक अन्य स्थान पर गुरू जी कहते हैं :-

` जाही की सेव सदा करीऐ मन और न काजन में उरझइये ।
छोर जंजार सबै गृह के तिह धिआन के भीतर चित लगइये ।
जाहि को भेद पुरानन ते मत साधन बेदन ते कछु भाल पईये ।
ताहि को स्याम मनै प्रथमै उठके क्यों न कुंकुम भाल लगइये ।[2] `

6- वंदन - भगवान् के स्वरूप का ध्यान कर, श्रद्धा एवं भक्ति सहित उन्हें नमस्कार करना ` वंदन ` कहलाता है। अर्चन और वंदन की क्रियाओं में काफी समानता है। भक्त- जन समस्त जगत् को प्रभु का ही स्वरूप समझ कर वंदन करते है । इस दृष्टि से जगत् के कल्याण के लिये कार्य करना भी ` वंदन ` के ही अन्तर्गत आता है क्योंकि यह जगत् ब्रह्मस्वरूप है, उसी से उत्पन्न हुआ है । गुरू गोबिन्दसिंह ने अपना समस्त जीवन, अपना सर्वस्व इसी ब्रह्मस्वरूप जगत् के कल्याण के लिये अर्पित कर दिया अत: इस तरह उन्होंने जगत् का वंदन ही किया और जगत् के प्रभु रूप होने के नाते प्रभु का भी ` वंदन `

गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में प्रभु के प्रति नतशिर होने का भाव स्थान - स्थान पर मिलता है। ` जापु ` में तो उन्होंने उस ब्रह्म को सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में वन्दना की है :-

---

1- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) - कृष्णावतार - छं0 सं0 --- 760

2- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) - कृष्णावतार -छं0 सं0 -

` नमस्तं अकाले । नमस्तं कृपाले ।। नमस्तं अरूपे । नमस्तं अनूपे ।।2 ।।
नमस्तं अभेखे । नमस्तं अलेखे ।। नमस्तं अकाइ। नमस्तं अजाइ ।।3 ।।
नमस्तं अनीले । नमस्तं अनादे ।। नमस्तं अछेदे । नमस्तं अगाधे ।।7 ।।

और फिर - ` नमो सरब काले । नमो सरब दिआले ।।
नमो सरब रूपे । नमो सरब भूपे ।। 19 ।।[1]

भगवान् के चरण कमलों में वंदन करते हुए उनकी अपार महिमा का गान भक्त कवि सूरदास ने इस प्रकार किया है :-

` बंदौ चरन- सरोज तिहारे ।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन, ललित त्रिभंगी प्रान पियारे ।
जे पद- पदुम सदा सिव के धन, सिंधु सुता उर तैं नाहिं परे ।
जे पद- पदुम तात- सिर त्रासत, मन बच-क्रम प्रह्लाद संभारे ।
- - - -
सूरदास तेई पद पंकज त्रिबिध- ताप दुख हरन हमारे ।।[2] `

7- दास्य- दास्य- भक्ति का प्रधान लक्षण निष्काम भक्ति है। आत्मदोष प्रकाशन, विनय याचना दीनता, समर्पण तथा प्रभु की सर्व- सामर्थ्य की अनुभूति भी दास्य-भक्ति के ही अंग कहे जा सकते हैं । इस दास्य- भाव से अहं की भावना समाप्त हो जाती है और हृदय निर्मल हो जाता है। सूरसागर के दशम - स्कंध में ऐसे कई पद मिल जाते हैं जिन में कवि की दास्य भक्ति प्रकट हुई है। उदाहरणार्थ -

(1) ` रे सुत बिनु गोबिन्द कोउ नाहीं ।
तुम्हरे दुख दूरि करिबे को, रिद्धि, सिद्धि निधि फिरि- फिरि जाहीं ।
+ + + +
सूरदास भगवंत भजन बिनु, कोटि करौ तउ दुख न जाहीं ।। १३० ।।

1- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) - जापु - पृष्ठ - 1,2

2- सूरसागर: पद सं० - १५ ।

(2)- ` नाथ और कासौं कहौ गरुडगामी ।
दीनबन्धु दयासिन्धु असरन सरन, सत्य सुखदाम सर्वज्ञ स्वामी ॥[1] `

सूरदास के ` विनय ` के पदों में दास्य-भक्ति का स्पष्ट रूप दिखाई देता है:-

(3)- ` हमैं नन्द- नन्दन मोल लिये ।
जम के फंद काटि मुकराइ, अभय अज़ाद किये ।
माल तिलक, स्त्रवननि तुलसीदल मेटे अंक बिये ।
+ + +
सूरदास की और बड़ौ सुख जूठन खाइ जिये ।[2] `

प्रभु की महानता और अपनी दीनता का वर्णन करते हुये सूरदास जी कहते हैं :-

(4)- `नाथ सकौ तौ मोहि उधारौ ।
पतितनि मैं विख्यात पतित हौं, पावन नाम तुम्हारौ ।[3] `

दास्य- भक्ति को स्पष्ट करते हुये गुरु गोबिन्दसिंह जी भी यही कहते हैं कि परमात्मा के समक्ष हमारी शक्ति ही कितनी है । वह प्रभु तो सर्वशक्तिमान है । उसका पार कोई नहीं पा सका :-

` आदि अगाध अछेद अभेद अलेख अजेय अनाहद जाना ।
भूत भविष्य भवान तुही सबहूं सम ठौरन मो मनु माना ।।
देव अदेव महीधर नारद सारद सत्त सदैव पछाना ।
दीनदयाल कृपानिधि को कछु भेद पुरान कुरान न जाना ।।[4] `

तो इस अनन्त वैभवशाली एवं शक्तिशाली परमात्मा की शरण में आये अल्पमति मानव

1- सूरसागर: पद सं० - 4831 ।
2- सूरसागर: पद सं० - 171 ।
3- सूरसागर: पद सं० - 172 ।
4- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) तैंतीस सवैये - सं० -7, पृष्ठ -

कर भी क्या सकता है । अपरम्पार ईश्वर की महिमा के समक्ष जीव कितना अल्पज्ञ है । अपनी अकिंचनता प्रकट करते हुये गुरु जी कहते हैं :-

` कहां बुद्धि प्रभ तुच्छ हमारी ।
बरन सकै महिमा जु तिहारी ।
हम न सकत कर सिफत तुमारी ।
आप लेहु तुम वृथा सुधारी ।।[1] `

अपने को परमात्मा के समक्ष तुच्छ मानने से विनम्रता उत्पन्न हो जाती है जो प्रभु- भक्ति- मार्ग का प्रथम सोपान है। जब तक मन का अहं नष्ट नहीं हो जाता तब तक प्रभु के प्रति श्रद्धा का भाव जागृत नहीं होता :-

` जे जे बादि करत अहंकारा। तिन ते भिन्न रहत करतारा ।
वेद कतेब बिखे हरि नाहीं । जान लेहु हरिजन मन मांहीं ।[2] `

भावना- विहीन व्यक्ति की सारी क्रियायें निष्फल हो जाती हैं । अहंकार- विहीन शुद्ध मन ही ईश्वर का कृपापात्र बन सकता है । प्रभु की शरण में आने में ही जीव का कल्याण है:-

` मेर करो तृण मुहि जाहि, गरीब निवाज न दूसर तो सौ ।
भूल छिमो हमरी प्रभु आपन, भूबनहार कहूं कोऊ मो सौ ।[3] `

मन की भर्त्सना करना भी दास्य- भक्ति के ही अन्तर्गत आता है। सूरदास और गुरु गोबिन्दसिंह के निम्नांकित उद्धरणों में इसका वर्णन दृष्टिगत होता है :-

` क्यों तू गोविन्द नाम बिसारो ?
सूरदास - अबहूं चेति, भजन करि हरि को, काल फिरत सिर ऊपर भारो ।
धन-सुत-दारा काम न आवे- जिनहिं लागि आपुनपो हारो ।
सूरदास भगवंत भजन बिनु चल्यो पछिताइ, नयन जल ढारो ।[4] `

1- दशम ग्रन्थ-विचित्र नाटक(अध्याय-2) -छं0 सं0- 3 ।
2- दशम ग्रन्थ- विचित्र नाटक- छं0 सं0-61, पृ0 44 ।
3- दशम ग्रन्थ - (प्रथम अध्याय) छं0 सं0 -72 ।
4- सूरसागर - पद सं0-80

31)

गुरू गोबिन्दसिंह जी कहते हैं :-

` श्री भगवन्त भज्यो न अरे जड़ धाम के काम कहा उरझायो ।। 31 ।।
फोकट धर्म दृढ़ात कहा इन लोगन को कोई काम न ऐहै ।।
भाजत का धन हेत अरे जम किंकर ते नहिं भाजन पैहै ।।
पुत्र कलत्र न मित्र सभै उहां सिक्ख सखा कोऊ साख न दैदै ।।
चेत रे चेत अचेत महापसु अन्त की बार अकेलोई जैहैं ।। 32 ।।[1]

8- सख्य -भक्त- भगवान् को अपना सखा मान कर जो प्रेम- व्यवहार करता है उसको ही ` सख्य ` कहते हैं । इसमें भक्त अपने सखा प्रभु से कोई स्वार्थ नहीं रखता । श्रीमद्भागवत में ब्रजवासियों के परब्रह्म श्री कृष्ण के प्रति सख्य भाव की प्रशंसा की गई है । कृष्ण की स्तुति करते हुये ब्रह्मा कहते हैं कि - ` नन्दादि ब्रजवासी बड़भागी हैं( क्योंकि ) परमानन्द स्वरूप पूर्ण सनातन ब्रह्म श्री कृष्ण उनके मित्र हैं ।[2] `

सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह ने भी ब्रजवासियों के भाग्य की सराहना की है और इनके काव्य में भी सख्य - प्रेम को प्रकट करने वाले कई प्रसंग जैसे- कृष्ण की बाल- लीला के अन्तर्गत बालकों के विविध खेल, गोचारण, माखन - चोरी आदि आते हैं। सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह - दोनों ने ही श्रीकृष्ण की बाल और यौवन-कालीन मधुर लीलाओं का चारू चित्रण किया है। दोनों ने ही अर्जुन, उद्धव एवं सुदामा इत्यादि के साथ प्रभु की मित्रता का वर्णन किया है । ` सुदामा- चरित्र ` में दोनों का सख्य - भाव स्पष्ट है :-

सूरदास-(1) ` ऐसी प्रीति की बलि जाऊं ।
सिंहासन तजि चले मिलन को, सुनत सुदामा नाउं ।

1- दशम ग्रन्थ- चण्डी चरित्र 15/16 ।

2- ` अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्ण ब्रह्म सनातनम् । ` - भागवत, दशम-स्कन्ध, अध्याय 14 श्लोक - 32 ।

कर जोरे हरि बिप्र जाति के, हित करि चरन पखारे ।
अंक माल दै मिले सुदामा, अर्धासन बैठारे ।[1] `

गुरू गोबिन्दसिंह (2)-

` मारग नाप के बिप्र जबै गृह श्री जदुबीर के भीतर आयो ।
श्री बृजनाथ निहारत ताहि सु बिप्र सुदामा इहै ठहरायो ।
आसन ते उठ आतुर हुई अति प्रीत बढ़ाई के लैबे कऊ धायो ।
पाई परयो तिहको हरि जी फिर स्याम भनै उठ कंठ लगायो ।।2408 ।।
ले तिहं मंदर मांहिं गयी तिहंको अति ही करि आदर कीनो ।
बारू मंगाई तही द्विज के दोऊ पाइन धवै चरनामृत लीनो ।[2] `

श्री कृष्ण की बाल- लीलाओं के वर्णन में दोनों कवियों ने सख्य- भक्ति का मनोमुग्धकारी रूप उपस्थित किया है। कृष्ण ग्वाल- बालकों के साथ विविध - प्रकार के खेल खेलते हैं, अनेक क्रीड़ाएं करते हैं । दोनों कवियों के काव्य में इस प्रकार के उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

सूरदास- (1) ` हरि तबै आपनि आंखि मुंदाई ।
सखा सहित बलराम छिपाने जहां तहां गए भगाई । `

(2) ` खेलन में काको गोसैंया ।
हरि हारे जीते श्रीदामा बरबस ही कत करत रिसैंया ।[3] `

गुरू गोबिन्दसिंह -

(1) ` बैठि करि ग्वार आंखे मीचे एक ग्वारहूं की ।
छोरि देत ताको सो तो औरो गहै धाई के ।
आंखि मूंदत हैं तब ओहि जाहि गोपहूं की ।

1- सूरसागर - उत्तरार्द्ध प0 सं0 4848, पृष्ठ - 586 ।

2- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) - कृष्णावतार - पृ0- 559-60 ।

3- सूरसागर :- [illegible] ।

फेरि जाके तनको जो छुवै करि साथ जार के ।।
तह तौ छल बल के पलावै हाथ आवे नहीं ।
- - - -
ऐसी भांति खेले काहन महा सुख पाइ के ।[1] `

नारद- भक्ति - सूत्र में उल्लिखित ` वात्सल्यासक्ति ; ` कान्तासक्ति, ` तन्मयासक्ति ` और `परमविरहासक्ति ` को भी सख्य- भक्ति के अन्तर्गत लिया जा सकता है । वात्सल्यासक्ति के द्वारा भक्त लौकिक वासनाओं से सर्वथा मुक्त हो जाता है क्योंकि इसमें स्वार्थ की गंध नाम - मात्र के लिये भी नहीं होती । यह भावना पूर्णत: निष्काम होती है। सूर और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही नंद - यशोदा के माध्यम से अपनी वात्सल्यासक्ति का परिचय दिया है ।

कृष्ण और गोपियों के सख्य- भाव को हम ` कान्तासक्ति ` में अन्तर्भूत कर सकते हैं। प्रभु को अपना प्रियतम मान कर भक्ति करना ही कान्तासक्ति कहलाता है। काव्यशास्त्र में इसी को शृंगार और भक्ति- सम्बन्धी ग्रन्थों में मधुर- रस कहते हैं । सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही अपनी रचनाओं में गोपियों के इस मधुर - भाव का वर्णन कियाहै। गोपी-कृष्ण- मिलन, रास-लीला तथा कृष्ण- प्रवास के प्रसंगों में भी कृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य प्रेम का वर्णन किया गया है । गोपियों के अनन्य प्रेम को प्रकट करने वाला - एक - एक उदाहरण सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह जी की रचनाओं से उद्धृत हैं :-

सूरदास -(1) ` हम अलि गोकुल नाथ अराध्यौ ।
मन , क्रम, बच हरि लौं धरि पतिव्रत, प्रेम जोग तप साध्यौ ।
मातु- पिता हित, प्रीति निगम पथ तजि, दुख सुख भ्रम नाख्यौ ।
मान पमान परम परितोषी, सुस्थल थिति मन राख्यौ ।[2] `

1- दशम ग्रन्थ(प्रथम - भाग) - कृष्णावतार - २२१

2- सूरसागर - पदसंख्या - 4148 ।

गुरू गोबिन्दसिंह (2)

` नेह लग्यो इनको हरि सौं अरू नेह लग्यो हरि को इन नारे ॥
चैन परै दुह को नहिं द्वै पल नावन जावत होत सवारे ॥[1] `

9- आत्मनिवेदन अथवा प्रपत्ति- मार्ग- सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी एवं सर्वज्ञ - प्रभु के सम्मुख स्वयं को सर्वात्मना समर्पित कर देना ही इस भक्ति- साधन का प्रधान अंग है । सर्वान्तर्यामी परमात्मा से आत्मनिवेदन करने पर भक्त का हृदय निर्मल हो जाता है । वैष्णवाचार्यों ने आत्मनिवेदन या शरणागति अथवा प्रपत्ति मार्ग को सर्व श्रेष्ठ मार्ग कहा है। प्रपत्ति मार्ग के छः प्रकार कहे गये हैं । सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह की रचनाओं में इनके पर्याप्त उदाहरण विद्यमान हैं। क्रमशः कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

1- आनुकूल्स्य संकल्पः- यह शरणागति का प्रथम प्रकार है। इसमें भक्त भगवान् के अनुकूल आचरण करता है। जो कर्म प्रभु को अप्रिय हो उनका इसमें वर्जन है । अतः इस भक्ति- मार्ग में भक्त भगवान् को प्राप्त करने के लिये उनके अनुकूल साधनों को ही अपनाता है। सूरदास जी प्रभु से विनय करते हुये कहते हैं :-

` पतित पावन जानि सरन आयौ ।
उदधि- संसार सुभ- नाम - नौका तरन, अटल अस्थान निजु निगम गायौ ।
+ + + +
भक्त-वत्सल कृपा - नाथ असरन सरन, भार भूतल हरन जस सुहायौ ।
सूर प्रभु चरनचित चेति चेतन करत, ब्रह्म-सिव - सेस सुक सनकध्यायौ[2] `

गुरू गोबिन्दसिंह अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं :-

` तुमहिं छाड़ि कोई अवर न ध्याऊं ।।
जो बर चाहौं सु तुमते पाऊं ।।[3] `

1- दशम ग्रन्थ (प्रथम भाग) - कृष्णावतार - पृ0 291 ।
2- सूरसागर - पद सं0 - 119 , पृ0
3- दशम ग्रन्थ चरित्रोपाख्यान, छं0 सं0 - 380 , पृ0- 1386 ।

2- प्रतिकूलस्य- वर्जनम् - प्रभु- प्राप्ति के मार्ग में जो साधन विघ्न उपस्थित करते हैं उनका परित्याग करना ही आवश्यक है । अत: सूरदास जी बार- बार कहते हैं:

` कहा लाइ तैं हरि सौं तोरी ?
हरि सौं तोरी कौन सौं जोरी ?
सिर पर धरि न चलैगो कोऊ, जो जतनन करि माया जोरी ।
राज-पाट सिंहासन बैठी , नील पदुम हूं सौं कहि थोरी ।
+ + + +
सूरदास भगवन्त भजन बिनु, चले खेलि फागुन की होरी ।[1] `

गुरू जी कहते हैं :-

` काहे को डिम्भ करै मन मूरख, डिम्भ करै अपनी पत खैहै ।
काहे को लोग ठडे ठग लोगनि लोक गयो परलोक गवैहै ।
दीन- दयाल की ठौर जहां तिह ठौर बिखै तुहि ठौर न ऐहै ।
चेत रे चेत अचेत महा जड़ मेख के कीने अलेख न पैहै ।[2] `

3- रक्षिष्यतीति विश्वास:- यह दृढ़ विश्वास कि ` हर तरह से प्रभु ही मेरी रक्षा करेंगे- ` भक्तों का सबल आलम्बन है। इस विश्वास के कारण ही भक्त इस संसार के संताप से तनिक भी विचलित नहीं होते । सूरदास जी के निम्नांकित पद में रक्षा का दृढ़ विश्वास प्रकट हुआ है :-

` तुम हरि, साँकरे के साथी ।
सुनत पुकार, परम आतुर है, दौरि छुड़ायौ हाथी ।
गर्भ परीच्छित रच्छा कीन्हीं, बेद- उपनिषद साथी ।
बसन बढ़ाइ द्रुपद-तनया की सभा मांझ पति राखी ।
+ + +

1- सूरसागर - पद सं0 - 303, पृ0-

2- दशम ग्रन्थ - तैंतीस सवैये, छं0 सं0 - 18, पृ0 - 714 ।

सूर तुम्हारी आसा निबहै, संकट में तुम साथै ।
ज्यौं जानौ त्यौं करौ, दीन की बात सकल तुव हाथै ।[1] `

गुरू गोबिन्दसिंह जी का यह छन्द भगवान् पर उनके दृढ़ विश्वास का ही परिचायक है :-

` रोगन ते अरू सोगन ते जल जोगन ते बहु भांति बचावै ।
सत्र अनेक चलावत घाव तऊ तन एक न लागन पावै ।।
राखत है अपनौ कर दै कर पाप समूह न मेटन पावै ।।
और की बात कहा कहिए तौ सु पेट के ही पट बीच बचावै ।।[2] `

4- गोप्तृत्ववरणाम् -सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान एवं सर्वज्ञ सर्वेश्वर की प्रार्थना करना तथा उनके रक्षक रूप का वरण करना ही ` गोप्तृत्ववरण ` है। सूरदास जी भगवान् से प्रार्थना करते हैं :-

` हरि जू तुम तैं कहा न होइ ।
बोलै गुग, पंगु गिरि लंघै अरू आवै अंधौ जग जोइ ।
पतित अजामिल, दासी कुबिजा, तिनके कलिमल डारे धोइ ।
रंक सुदामा कियौ इन्द्र सम, पांडव- हित- कौरव- दल खोइ ।
बालक मृतक जिवाइ दिये प्रभु, तब गुरू द्वारै आनन्द होइ ।
सूरदास प्रभु इच्छा पूरन, श्रीगुपाल सुमिरौ सब कोइ ।।[3] `

भगवान् का रक्षक - स्वरूप स्वीकार करते हुये गुरू जी कहते हैं :-

` दीनन की प्रतिपाल करे नित संत उबार गनीमन गारै ।।
पच्छ पसू नग नाग नराधप सरब समय सबको प्रतिपारै ।
पोखत है जल मै थल मै पल में कलि के नहीं करम बिचारै ।।
दीन दयाल दयानिधि दोखन देखत है पर दैत न हारै ।।[4] `

1- सूरसागर - पद सं० -303, पृ०- -

2- दशम ग्रन्थ - अकाल स्तुति, छं० सं०- 247, पृ०-35 ।

3- सूरसागर - पद सं० 95, पृ० -

4- दशम ग्रन्थ - छं० सं० - 243, पृ०- 34 ।

5- आत्मनिक्षेप: अथवा शरणागति - उपाय तथा फल की निवृत्ति तथा प्रभु के आधीन होकर सर्वस्व-समर्पण कर देना ही ` आत्म निक्षेप ` कहलाता है। भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि प्रभु के बिना और कोई भी शरणदाता नहीं है। ईश्वर की शरणागतवत्सलता अक्षुण्ण है। उसमें किसी प्रकार न्यूनता नहीं आ सकती। जो प्रभु की शरण में चला जाता है वह सदैव के लिये मुक्त हो जाता है। उस प्रभु की शरण में गये बिना और कोई उपाय भी तो नहीं। गुरु जी कहते हैं।

` बिना सरन ताकि न अउरै उपायं।
कहा देव दईतं कहा रंक रायं।
कहा पात शाहं कहा उम रायं।
बिना सरन तांकि न कोटै उपायं।।[1] `

ईश्वर के चरणों में पूर्णत: समर्पित होकर भक्त सब ओर से निश्चिन्त हो जाता है। उसका कर्तव्य तो केवल इतना रह जाता है कि प्रत्येक क्षण ईश्वर की स्मृति बनी रहे। भक्त यही सोचते हैं, भगवान् उनके लिये जो उपयुक्त समझें नहीं करें। सूरदास के इस पद में सर्वात्मना समर्पण का भाव व्यक्त हुआ है :-

` मेरी कौन गति ब्रज नाथ ?
भवन विमुखस्य सरन नाहीं, फिरत विषयनि साथ।
हौं पतित, अपराध- पूरन, मरयौ कर्म विकार।
काम क्रोधस्य लोभ चितवौं, नाथ तुमहि बिसार।
उचित अपनी कृपा करिहौ तबै तौ बनि जाइ।
सोइ करहु जिहि चरन सेवै सूर जूठनि खाइ।।[2] `

1- दशम ग्रन्थ(विचित्र नाटक, प्रथम अध्याय - छं० सं० -72।

2- सूरसागर - पद सं० - 126।

गुरू गोबिन्दसिंह जी सर्वात्मना समर्पण का भाव इस प्रकार व्यक्त करते हैं :-

` प्रभु जू तो कहं लाज हमारी ।
नीलकण्ठ नर हरि नारायण नील बसन बनवारी ।
परम पुरख परमेश्वर स्वामी पावन पउन अहारी ।
माधव महाज्योतिमद मरदन मान मुकुन्द मुरारी ।
कृपासिन्धु काल त्रै दरसी कुकृत प्रनासन कारी ।
धनुखान धृत मान धराधर अनिर्विकार असिधारी ।
हौं मति मन्द चरन सरनागति कर गहि लेहु उबारी ।[1] `

और मो- ` सगल दुआर को छाड़िके, गह्यो तुम्हारो दुआर ।
बाँह गहे की लाज अस गोबिन्द दास तुहार ।[2] `

6- कार्पण्य- अहंकार का नाश करना और दैन्य- भाव को अपनाना कार्पण्य कहलाता है। भक्त अपनी व्यथा को प्रभु के सम्मुख करूण शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं । सूरदास जी प्रभु से विनय करते हुये कहते हैं :-

` अब कैं नाथ, मोहि उधारि ।
गगन हौं भव अंबुनिधि मैं, कृपा सिंधु मुरारि ।
+ + + +
थम्यौ बीच बिहाल, बिहबल सुनौ करूना मूल ।
स्याम भुज गहि काढ़ि लीजौ, सूर ब्रज के कूल ।।[3] `

और - ` अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल ।
काम- क्रोध की पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ।
महामोह का नूपुर बाजत, निन्दा- सब्द - रसाल ।
+ + +

1- दशम ग्रन्थ - शब्द हज़ारे, छं0 सं0 - 3 , पृ0- 710 ।
2- दशम ग्रन्थ - कृष्णावतार छं0 सं0 - ~~884~~ 864 , पृ0- ।
3- सूरसागर - पद सं0- 99, पृ0-

सूरदास की सबै अबिधा दूरि करौ नन्दलाल ।।[1]

गुरू गोबिन्दसिंह जी भी कहते हैं :-

` राखि लेहू मोहि राखन हारे । साहब सन्त सहाई प्यारे ।।
दीन बन्धु दुष्टन के हन्ता । तुम हो पुरी चतुर्दस कन्ता ।।[2] `

वास्तव में अहंकार रहित हृदय में ही परमात्मा का निवास होता है। वेद, कुरान इत्यादि ग्रन्थों में प्रभु को ढूंढना कठिन है। उनकी प्राप्ति के लिये तो आवश्यक है कि हृदय निर्मल हो, अहंकार से रहित हो । तभी गुरू जी कहते हैं :-

` जे जे बादि करत अहंकारा । तिन ते भिन्न रहत करतारा ।।
वेद कतेब बिखे हरि नाहीं । जान लेहु हरिजन मन माहीं ।।[3] `

गुरू गोबिन्दसिंह जी कहते हैं कि जब तक जीव विषय- वासनाओं में अनुरक्त रहता है , तब तक वह भक्ति- भावना जैसे दिव्य- रत्न को नहीं पा सकता । क्रोध तो प्रभु-प्राप्ति के मार्ग में सबसे बड़ा व्यवधान है। भावना- विहीन व्यक्ति की तो सारी क्रियायें ही निष्फल हो जाती हैं :-

` कामना अधीन काम क्रोध में प्रवीन,
एक भावना विहीन कैसे मेटे परलोक सौ ।।[4] `

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही नवधा- भक्ति के महत्व का भली- भांति वर्णन किया है ।

भक्ति- रस के भेद - श्री रूप गोस्वामी जी ने ` हरिभक्ति रसामृत सिंन्धु ` में नवधा-भक्ति के अन्तिम तीन साधनों - ` दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन ` को भक्ति - रस के उत्पादक माना है। उन्होंने भक्ति - रस के पांच मुख्य- भेद बताये हैं जिनका

1- सूरसागर - पद सं0 - 109, पृष्ठ - 105 ।

2- दशम ग्रन्थ (द्वितीय भाग) - चरित्रोपाख्यान, चरित्र - 405, छं0 सं0 - 382 , पृष्ठ 1386 ।

3- दशम ग्रन्थ (प्रथम भाग)- विचित्र नाटक- छं0सं0-61,पृ0- 44 ।

4- ,, ,, अकाल-स्तुति - ,, 80, पृ0-

संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :-

1- शान्त भक्ति रस- इसका स्थायी भाव ` शुद्ध ` कृष्ण विषया रति ` है। इसमें आलम्बन नारायण एवं ऋषि- मुनि इत्यादि हैं और प्रभु की स्तुति श्रवण एवं सत्संगादि इसके उद्दीपन हैं। सूरदास के सूरसागर में स्थान- स्थान पर ऐसे पद मिलते हैं जिन में शान्त भक्ति की करुणा प्रवाहित है । गुरू गोबिन्दसिंह जी ने भी शांत - भक्ति का निरूपण तो किया है लेकिन बहुत ही कम । वस्तुत: उनका उद्देश्य मात्र भक्ति का ही गान करना नहीं था अपितु युग- परिस्थितियों के अनुरूप सोई हुई जनता को कृष्ण की शंख- ध्वनि से जागृत करना था ।

2- प्रीत(अथवा दास्य)रस- इस भक्ति- भेद के दो प्रकार हैं - संभ्रम प्रीत तथा गौरव प्रीत । संभ्रम प्रीत प्रभु के प्रति आदर की भावना से उत्पन्न होती है और गौरव प्रीत की उत्पत्ति प्रभु से हीन होने की भावना अर्थात् स्वयं को दीन एवं प्रभु को महान समझने की भावना से उत्पन्न होती है । हमारे भक्त कवियों ने दोनों प्रकार की प्रीत का वर्णन किया है। हमारे विवेच्य कवियों के विनय एवं दीनता से युक्त पदों में इनके कई उदाहरण मिल जाते हैं ।

3- प्रेयस(अथवा सख्य) भक्ति -इसका स्थायी भाव रति है । आलम्बन कृष्ण एवं उनके सखा हैं। सूरदास जी ने अपने काव्य में इस प्रेयस- भक्ति को अत्यन्त सुन्दर रूप प्रदान किया है। गुरू गोबिन्दसिंह ने भी प्रेयस भक्ति रस के अनेक आकर्षक चित्र प्रस्तुत किये हैं।इन दोनों कवियों के कृष्ण- बाल- लीला- वर्णन में इस भक्ति - रस के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण देखे जा सकते हैं ।

4- वात्सल्य-भक्ति - रस- प्रेयस - रस की ही भांति इस वत्सला रति का भी अत्यन्त आकर्षक रूप हमारे दोनों आलोच्य कवियों ने उपस्थित किया है इस का आलम्बन भगवान कृष्ण हैं। गुरू गोबिन्दसिंह ने अपने ` कृष्णावतार ` में लगभग 500 छन्दों में बालक- कृष्ण का लीला गान किया है। महाकवि सूरदास तो वात्सल्य रस के महान् प्रणेता हैं । वस्तुत: दोनों कवियों को ही अपने- अपने भक्ति- क्षेत्र में तन्मयता और मनोवैज्ञानिकता के साथ श्री कृष्ण की बाल्य- लीलाओं का

41)

वर्णन करने में अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है ।

5- मधुर- भक्ति रस- इस भक्ति- रस को ` उज्जवल रस ` की संज्ञा भी दी जाती है। इसका स्थायी भाव कांता रति एवं आलम्बन कृष्ण तथा गोपियां हैं । काव्यशास्त्रादि में वर्णित शृंगार लौकिक है लेकिन मधुर- रस लौकिकता से सर्वथा दूर है। इसका सम्बन्ध किसी लौकिक पुरूष से न होकर सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, प्रभु से है। सर्वान्तर्यामी कृष्ण नायक हैं और गोपियां नायिकायें हैं। गोपियों में राधा को शीर्ष स्थान प्राप्त है। दोनों कवियों ने ही अपने काव्य में राधा को प्रमुख, स्थान दिया और दोनों ने ही चीर- हरण एवं रासलीला प्रसंगों में मधुरा- रति का पूर्ण वैभव दिखाया है। सूरदास जी ने तो दान- लीला जैसे मौलिक प्रसंगों की उद्भावना द्वारा इसको और भी विस्तार दिया है।

गुरू गोबिन्दसिंह की प्रेमा - भक्ति-

वास्तव में सिख गुरू आरम्भ से ही प्रेमा भक्ति के समर्थक रहे हैं । गुरू गोबिन्दसिंह जी भी प्रेमा भक्ति को ही महत्ता देते हैं और विधि- विधानों के परिणामस्वरूप उत्पन्न पाखण्ड का सदैव खण्डन करते रहे हैं । उनके निम्नांकित छन्दों से स्पष्ट है कि गुरू जी भक्ति में प्रेम को ही महत्व देते हैं ।-

(1) ` कहा भयो जो बक लोचन मून्द कै बैठ रह्यो जग भेख दिखाये ।।
मीन फिरयो जल जात सदा, तु कहा तिहके करि मो हरि आये ।।
दादर जो दिन रैन रटै सु विहंग उड़ै तन पंख लगाये ।।
स्याम भनै इह सन्त समै बिन प्रेम कहू बृजनाथ रिझाये ।। `

(2) ` लालच जो धन किनहूं जु पै गाई भले प्रभ गीत सुनायो ।।
नाच नच्यो न खच्यो तिह मैं हरि लोक अलोक को पैड न पायो ।।
हास करयो जग में आपनों सुपनेहूं न गिआन को तंतु जनायो ।।
प्रेम बि ना कवि स्याम भनै करि काहू के मै बृजनाइक आयो ।[1] `

1- दशम ग्रन्थ - कृष्णावतार - छं0 सं0 2486, 2487, पृष्ठ- 569 ।

42)

गुरू गोबिन्दसिंह जी तो स्पष्ट कहते हैं कि प्रभु की प्राप्ति केवल उसी को होती है जो प्रभु में ही तन्मय हो जाता है । प्रेमविहीन भक्ति में न तो तन्मयता होती है और न ही रम्यता । प्रेम के बिना अहं भाव का भी नाश नहीं हो पाता, जो व्यक्ति प्रेम से विहीन होकर केवल वेद, पुराणादि के ज्ञानमात्र के अहं में चूर रहते हैं उनके हृदय में प्रभु के प्रति अनुरक्ति हो ही नहीं सकती:-

(1) ` कीट पतंग कुरंग भुजंगम, भूत भविष्य भयान बनाइ ।
देव अदेव खपे अहमेन, न भेव लख्या भ्रम सिऊं भरमाइ ।
वेद पुरान कतेब कुरान, हसेब थके कर हाथ न आइ ।
पूरन प्रेम प्रभाठ बिना, पति सिऊं किन भी पद्मावत पाइ । `

और - ` हार चले गृह आपने कौवन मो बहुतो तिन ध्यान लगाइ ।
सिद्ध समाध अगाध कथा भ्रन खोज रहे हरि हाथ न आइ ।
स्याम भने सब वेद कतेवन सन्तन के मति यों ठहराइ ।
भाखत है कवि संत सुनो जिह प्रेम किइ तिन श्रीपति पाइ ।[1] `

गुरू जी कहते हैं कि दम्भी, अहंकारी एवं लोभ- लालच में मग्न जीव ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते । यह बाह्य प्रदर्शन तो अपने को धोखा देने के लिये ही हैं । वास्तव में प्रभु की प्राप्ति के लिये केवल निश्छल, नि:स्वार्थ एवं निस्पृह प्रेम की ही आवश्यकता होती है :-

` ध्यान लगार ठग्यो सब लोगन,, सीस जटा नख हाथ बढ़ाइ ।
लाइ विभूत फिर्यो मुख ऊपरि, देव अदेव सबै डहकाइ ।
लोभ के लागे फिर्यो घर ही घर, जोग के व्यास सबै बिसराइ ।
लाज गई कछु काज सर्यो नाहिं, प्रेम बिना प्रभु पान न आइ ।[1] `

1- दशम ग्रन्थ - अकालस्तुति: छं0 सं0 - 245,पृ0-34, कृष्णावतार- छं0 सं0-2488,पृ0-570 ।

2- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) - तैंतीस सवैये, छं0 सं0 245 ।

वस्तुत: भक्ति में प्रेम के महत्व को सभी भक्तों ने निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है। सूरदास जी भी तो कहते हैं :-

` प्रेम- भक्ति बिनु मुक्ति न होइ, नाथ कृपा करि दीजै सोइ ।
और सकल हम देखी जोइ, तुम्हरो कृपा होइ सो होइ ।[1] `

गुरू गोबिन्दसिंह जी भी तो सनाद घोषणा करते हैं :-

` साच कहौं सुन लेहु सबै,
जिन प्रेम कीयो तिन ही प्रभ पायो ।[2] `

पुष्टिमार्ग के अधिष्ठाता स्वामी वल्लभाचार्य जी ने भी माना था कि भगवदनुग्रह से ही प्रेम रूपा भक्ति की प्राप्ति हो सकती है । और गुरू गोबिन्दसिंह जी भी यही कहते हैं कि कोई व्यक्ति अपने पुरूषार्थ से ही भक्ति- तत्व को पाना चाहे तो नहीं पा सकता । जब तक प्रभु स्वयं अनुग्रह नहीं करते तब तक भक्ति रस का आनन्द प्राप्त करना असम्भव है। भक्ति के आस्वादन के लिये तो भगवदनुग्रह परमावश्यक है । अनुग्रह की महत्ता का वर्णन करते हुये गुरू जी लिखते हैं :-

` सारे ही देस को देखि रह्यो, मत कोऊ न देखिअत प्रानपती के ।
श्री भगवान की भाई कृपा हू ते, एक रती बिन एक रती के ।[3] `

सूरदास वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे, अत: उनकी रचनाओं में पुष्टि - मार्गीय भक्ति का स्वरूप - दर्शन असम्भव नहीं है। गुरू गोबिन्दसिंह किसी सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं थे, हां सिक्ख- सम्प्रदाय के धर्मगुरू अवश्य थे, लेकिन वे एक स्वतन्त्र भक्त थे । वास्तव में गुरू गोबिन्दसिंह जी की भक्तिपूर्ण रचनाओं में भागवत् पुराण

1- सूरसागर - पद सं0 - दशम स्कन्ध उत्तरार्द्ध, पृष्ठ- 595 ।
2- दशम ग्रन्थ (प्रथम भाग) - ग्रन्थ सं० ५/२५ पृष्ठ १५ ।
3- दशम ग्रन्थ (प्रथम भाग) - अकाल स्तुति छं0 सं0 - 1 ।

44)

में वर्णित भक्ति के नौ अंगों (नवधा भक्ति अथवा वैधी भक्ति) के उदाहरण ढूंढ लेना कठिन नहीं है लेकिन अपनी भावाभिव्यक्ति करते हुये गुरू जी की दृष्टि कभी इस ओर नहीं रही ।वह तो वस्तुत: इन विधि - विधानों को भक्ति के मार्ग में बाधक मानते थे । उनके अनुसार कर्मकाण्ड भी एक बड़ी बाधा है जो साधक की दृष्टि को प्रभु - प्राप्ति के सहजमार्ग से हटाकर विभिन्न प्रपंचों में उलझा देती है । गुरू जी ने बाह्याचार के त्याग पर बहुत बल दिया है ।

(1) बाह्याचार का त्याग- गुरू जी कहते हैं - अनन्त तीर्थ- स्नान, योग, वैराग्य, सन्यास, संयम, व्रत नियमादि परमेश्वर के सत्य नाम के अभाव में भ्रम मात्र हैं :-

` अनन्त तीरथ आदि आसनादि नारद आसनं ।।
बै राग अठ सनिआस अउ अनादि जोग प्रासनं ।।
अनादि तीरथ संजमादि बरत नेम पेखिए ।।
अनादि अगाधि के बिना समस्त भरम लेखीए । ` (द0 ग्र0 पृ0 - 136)

और - ` काहे को कूर करे तपसा, इनकी कोऊ कौड़ी काम न रेहै ।
तोहि बचाइ सकै कछु कैसे कै, आपन धाव बचाइ न रेहै ।
कोप कराल की पावक कुण्ड में, आप टंगिओ तिमी तोहि टंगैहै ।
चेत को चेत अजो जिय में जड़, काल कृपा बिनु काम न ऐहै ।[1] `

(2) कामनाओं का त्याग- गुरू जी के अनुसार भावना से विहीन और कामनाओं के जाल में उलझा व्यक्ति प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकता :-

` कामना अधीन सदा दामना प्रवीन
एक भावना विहीन कैसे पावे जगदीस को ।। ` (द0 ग्र0 पृ0 18)

1- दशम ग्रन्थ - विचित्र नाटक (प्रथम अध्याय)- छं0 सं0 -98 ।

(3) विषयों का त्याग-

" काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सों त्यावे ।
तबही आतम तत्त को दरसे परम पुरख कह पावे ।(द0ग्र0पृ0700)

(4) मानव मात्र की समता में विश्वास-

" कोऊ भयो मुंडिया सनिआसी कोऊ जोगी भइउ,
कोई ब्रसचारी कोऊ जती अमुमानबो ।।
हिन्दू तुरक कोऊ राफजी इमाम राफी,
मानस की जात सबै एकै पहचानबो ।। "(द0 ग्र0 पृ0 19)

(5) विभिन्न मतों में विभिन्न नामों से पूजित एक ईश्वर में विश्वास-

" करता करीम सोई राजक रहीम ओई,
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो ।।
एक ही की सेव सभ ही को गुरुदेव एक,
एक ही सरूप सबै एकै जोति जानबो ।। "(द0 ग्र0 पृ0 19)

(6) योग- गुरू जी कहते हैं कि इस प्रकार का योग करो जिसमें बाह्य प्रदर्शन की आवश्यक्ता न हो :- " रे मन इह विधि जोग कमाउ ।
सिंगी साच अकपट कंठला धिआन विभूत चढाउ ।।1 ।। रहाउ ।।
* + +
आतम उपदेस भेसु संजम को जाप सु अजपा जापे ।।
सदा रहे कंचन सी काया काल न कबहूं थापे ।।" (दृ0 गृ0 पृ0 710)

(7) सन्यास- गुरू जी के अनुसार ऐसा सन्यास ग्रहण करना चाहिये जिसमें घर ही वन बन जाय:- " रे मन ऐसो करि सनिआसा ।।
बन से सदन सबै करि समझहु मन ही माहि उदासा ।।1 ।। रहाउ ।।
जत की जटा जोग को मज्जनु नेम को नखन बढ़ाउ ।।
गिआन गुरू आतम उपदेसहु नाम विभूत लगाउ ।। 1 ।।

अलप अहार सुलपसी निद्रा दया छिमा तन प्रीति ।।
सील सन्तोख सदा निरबाहिबो ह्वेबो त्रिगुण अतीत ।।
काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सौ ल्यावै ।।
तबही आतम तत्त को दरसे परम पुरुष कह पावे ।।3 ।। 1।।

(द० ग्र० पृ० 709)

सूरदास की पुष्टिमार्गीय सेवा -

पुष्टिमार्ग वस्तुत: सेवामार्ग है क्योंकि इसमें प्रभु की सेवा को प्रधानता दी गई है । इस सेवा विधि के दो प्रकार बताये गये हैं - 1) नित्य सेवा विधि और वर्षोत्सव सेवा- विधि । नित्य सेवा के आगे आठ समय माने गये हैं - 1-मंगला, 2- शृंगार, 3- ग्वाल, 4- राजभोग, उत्थापन भोग, संध्या आरती और शयन ।

महाकवि सूरदास ने उत्कृष्ट कवि का हृदय पाया था । चर्म - चक्षुओं के अभाव के कारण सांसारिक भोगों से तो वह प्रकृति द्वारा ही वियुक्त थे और फिर पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने से एवं प्रभु की कीर्तन सेवा में लगने से प्रभु के प्रति पूर्णत: समर्पित हो गये थे । उनका प्रभु के प्रति प्रेम का भाव शनै: शनै: परिपक्व हो कर व्यसन भाव में परिणत हो गया था । जीव का यह व्यसन- भाव ही मानसी सेवा कहलाता है । इस सेवा- भावना में सूरदास जी का जीवन एक रस हो गया था । यही कारण था कि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उनको ` पुष्टिमार्ग का जहाज ` कहा था आचार्य वल्लभ तो सूरदास जी को ` सागर ` कहा करते थे जिसमें पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त रूपी अमुल्य हीरे मोती, काव्य प्रतिभा रूपी मणियां, मौलिक उद्भावनाओं जैसे माणिक एवं भाव- प्रवणता जैसे जवाहरात भरे पड़े हैं ।

नित्य- सेवा से सम्बन्धित सूरदास के अनेकों पद मिलते हैं । वल्लभाचार्य जी ने नित्य- सेवा - विधि के अन्तर्गत वात्सल्य भाव को फलित किया है। वर्षोत्सव- सेवा- विधि के अन्तर्गत श्रीकृष्ण के नित्य एवं अवतार- लीलाओं के उत्सव, षड् - ऋतुओं के उत्सव, लोक- त्योहार, वैदिक पर्व तथा अन्य अवतारों की जयंतियां आदि

सम्मिलित हैं । सूरसागर में वर्षोत्सव सेवा- विधि से सम्बन्धित अनेकों पद मिलते हैं।

नित्य और वर्षोत्सव- दोनों प्रकार की सेवा- विधियों के तीन अंग माने गये हैं - भोग, राग और शृंगार । सूरदास जी ने इन तीनों का वर्णन किया है । भोग से अभिप्राय: कृष्ण को विविध पक्वान समर्पित करना है। सूर सागर में इसका यथेष्ट वर्णन मिलता है । सूरदास जी संगीतज्ञ तो थे ही अत: उनके काव्य में राग- रागिनियों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुआ है। कृष्ण जी को विविध वस्त्रों एवं आभूषणों से अलंकृत करना ही शृंगार कहलाता है । आठ प्रकार के शृंगार मुख्य माने गये हैं - मुकुट, सेहरा, टिपारा, कुल्हे का शृंगार पाग, दुमाला, फेंटा और पगा (ग्लास पगा) । सूरसागर में इन आगें शृंगारों का वर्णन मिलता है ।

पुष्टि- सम्प्रदाय में सूरदास जी को अत्यन्त गौरवपूर्ण एवं शीर्ष स्थान प्राप्त था । वे पुष्टि- मार्ग के ' रस ' को पूर्णत: अनुभव कर चुके थे । वास्तव में सूरदास जी की साहित्य रचना का मूल प्रेरणा स्त्रोत एवं आधार पुष्टिमार्गीय-सेवा ही है ।

इस प्रकार अन्त में हम कह सकते हैं कि महाकवि सूरदास एवं गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ही उच्च कोटि के भक्त थे । इन दोनों की भक्ति - पद्धति में निम्नांकित बातें ध्यान देने योग्य हैं :-

1- पुष्टिमार्ग में प्रभु के अनुग्रह को सर्वोपरि माना गया है । सूरदास की भांति गुरू गोबिन्दसिंह जी ने भी कई स्थानों में भगवान् के इस अनुग्रह का वर्णन किया है । गुरू जी स्पष्ट कहते हैं कि शास्त्र एवं वेद पढ़ लेने मात्र से ही प्रभु की भक्ति प्राप्त नहीं होती प्रभु- भक्ति की प्राप्ति के लिये तो प्रभु की कृपा आवश्यक है ।

" सिम्रति शास्तर वेद सबै बहु भेद कहै हम एक न जान्यो ।
श्री असपान कृपा तुमरी करि मैं न कह्यो सब तोहि बखान्यो ।।[1] "

1- दशम ग्रन्थ - पृष्ठ २५५

2- सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही गुरू जी की महत्ता को स्वीकार किया है ।

3- पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक आचार्य वल्लभाचार्य जी ने गृहस्थाश्रम को महत्व दिया है । सूरदास भी पुष्टिमार्ग के ही पथिक थे लेकिन उन्होंने गृहस्थाश्रम के विषय में कुछ नहीं कहा । गुरू गोबिन्दसिंह की जीवनी की चर्चा करते हुये हम जान चुके हैं कि गुरू जी सद्गृहस्थ थे। उन्होंने गृहस्थाश्रम को भक्ति का बाधक नहींमाना था । वस्तुत: गुरू जी की गृहासक्ति ही भगवदासक्ति में परिणत हो गई थी ।

4- पुष्टिमार्गीय भक्ति में कृष्ण के बाल एवं यौवन रूप को विशेष महत्व दिया गया है । सूरदास ने इनका विस्तार से वर्णन किया है । गुरू जी ने भी श्री कृष्ण के बाल एवं यौवन रूप का मनोहर वर्णन किया है ।

श्रीकृष्ण के युवा रूप में उन्होंने वीर- रस की अवतारणा की है जो इनकी प्रवृत्ति है । सम्भवत: गुरू जी ने ही युवा कृष्ण को वीर रूप में देखा है। उनके युवा कृष्ण रसेश्वर भी हैं ।और योद्धा भी । उनके एक हाथ में यदि बांसुरी है तो दूसरे में खड्ग भी है ।

5- सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही हरि- लीला की प्रमुख रास-लीला का तन्मयता पूर्ण वर्णन किया है । गोपियों के विरह वर्णन में उन्होंने परम विरहासक्ति प्रकट की है।

6- सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह - दोनों ने ही सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ सर्वेश्वर प्रभु की दयालुता एवं उनके रक्षक स्वरूप का वर्णन किया है। सूरदास जी प्रभु से प्रार्थना करते हुये कहते हैं :-

" हरि जु तुम तैं कहा न होइ ।
बोले गुंग, पंगु गिरि लंघै अरू आवै अंधौ जग जोइ ।[1] "

1- सूरसागर - पद सं. ९९ ।

गुरू गोबिन्दसिंह भी भगवान् का रक्षक भाव स्वीकार करते हुये कहते हैं कि प्रभु की कृपा से सब कुछ सम्भव है :-

" मूक उचरे शास्त्र, खटि पिंग गिरन चढ़ि जाइ ।
अंध लखे बधरो सुने जो काल कृपा कराइ ।[1] "

7- गुरू गोबिन्दसिंह जी ने सगुण के साथ - साथ परमात्मा के निर्गुण रूप की भक्ति का भी वर्णन किया है । जहां जहां भी दशमग्रंथकार ने निजी भक्ति- भावना की अभिव्यंजना की है वहां उसकी वृत्ति निश्चय ही निर्गुणोपासना की ओर अधिक दिखाई देती है । यथा -

(1) चक्र चिह्न अरू वरण जात अरू पात नहिन जिह ।
रूप रंग अरू रेख भेख कोउ कह न सक्त किह ।।[2] "

सूरदास जी ने भी ईश्वर के रूप, रेख, गुण और जाति से विहीन कहा है, परन्तु साथ में यह भी कहा है कि प्रभु का यह रूप बुद्धि से बाहर है अत: सगुण रूप ही उनको अभीष्ट है :-

" अविगत गति कछु कहत न आवे ।
+ + +
रूप - रेख- गुन - जाति - जुगति - बिनु निरालम्ब कित धावे ।
सब बिधि अगम विचारहिं तातें सूर सगुन - पद गावे ।[3] "

लेकिन गुरू गोबिन्दसिंह जी को तो ईश्वर का निर्गुण स्वरूप अधिक अभीष्ट है । उनकी भक्ति- परक रचनाओं में निर्गुण ईश्वर की महिमा का ही गान है । गुरू जी ने वस्तुत: निराकार परमात्मा के निरपेक्ष गुणों के विशद् वर्णन के साथ ही उसके साकार रू

1- दशम ग्रन्थ - पृष्ठ - 47 ।
2- ,, ,, जापु - छं० सं० — 1.
3- सूरसागर - पद सं० - २ पृ० -

के सापेक्ष गुणों की भी चर्चा की है । निरपेक्ष गुणों का वर्णन करते हुये ` अकाल-स्तुति ` में वे कहते हैं :-

` न आधं न व्याधं अगाधं सरूपे ।
अखंडत प्रताप आदि अछै बिभूते ।
न जन्मं न मरनं न बरनं विआधे ।
अखंडे प्रचंडे अदंडे अगाधे ।। `7 ।97 ।।(द० ग्र० पृ० 21)

` विचित्र - नाटक ` में यही भाव निम्न प्रकार के अनेक पदों में उद्धरित हुआ है -

` अजेयं अभेयं अनामं अठामं ।।
महाजोग जोगं महाकाम कामं ।।
अलेखं अभेखं अनीलं अनादं ।।
परेयं पवित्रं सदा निर्बिखादं ।।6 ।। (द० ग्र० पृ० 39)

` ज्ञान- प्रबोध ` में गुरू जी कहते हैं :-

` अलख रूप अलेख अबे अनभूत अभंजन ।।
आदि पुरूष अविकार अजे अनगाध अगंजन ।।
निरविकार निरजुर सरूप निरदेख निरंजन ।।
अभंजान भंजन अनभेत अनभूत अभंजन ।। `7 ।।38।।(द० ग्र० पृ० 131)

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि दशमग्रन्थकार के आराध्य अदृश्य, अरूप, अनन्या , अजर, अमर और एकेश्वर ब्रह्म हैं, किन्तु दशमग्रन्थ के अध्ययन से यह भी प्रमाणित है कि कवि की यह निर्गुणोपासना कहीं भी सगुणोपासना के विरोध या निषेध में प्रतिष्ठापित नहीं की गई है।इसी ग्रन्थ में ही अनेक स्थानों पर साकार एवं विविध गुण सम्पन्न ईश्वर का भी विविध रूपेण आख्यान हुआ है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है । चौबीस- अवतारों से सम्बन्धित काव्य- कृतियों में तो स्पष्टत: ईश्वर के नर- रूप की सत्ता स्वीकार की गई है, साथ ही अन्यान्य कृतियों में भी उसके सगुण रूप का श्रद्धापूर्वक उल्लेख किया गया है ।

49)

वास्तविकता यह है कि गुरू गोबिन्दसिंह जी की भक्ति- भावना की परिगणता निर्गुण अथवा सगुण में से किसी एक के अन्तर्गत निश्चित रूप से करना सम्भव नहीं, क्योंकि दशमग्रंथकार की निष्ठा मूलत: सांस्कृतिक समन्वयवाद में प्रतीत होती है । वैसे देखा जाए तो भक्ति के इस विभाजन में यथार्थता नहीं है। " प्रभु वस्तुत: निर्गुण और सगुण दोनों ही है। प्राकृत गुणों से विहीन होने के कारण वह निर्गुण और स्वीय गुणों से युक्त होने के कारण सगुण है ।[1] " गुरू जी की रचनाएं इस तथ्य का व्यावहारिक प्रमाण प्रस्तुत करती हैं ।

इस प्रकार गुरू जी ने अपने इष्ट देव के विविध रूपों का वर्णन किया है - उसके निराकार रूप का भी , साकार रूप का भी, उसके अनेक रूप का भी और एक रूप का भी :-

" नमो एक रूपं अनेकं सरूपे ।
सदा सरब साहं सदा सरब भूपे ।।2 ।। " (द0 ग्र0 पृ0 127)

8- भारतीय संस्कृति में ईश्वर के एक ऐसे रूप की परिकल्पना की गई है जो प्रत्येक युग में साधु जनों की रक्षा एवं दुष्टों का विनाश करने के लिये अवतार ग्रहण करता है । गीता में भी कहा गया है :-

धर्म परित्राणय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थय संभवामि युगे युगे ।। " (अध्याय- 4,श्लोक 8)

वस्तुत: यहीं से ही ईश्वर के पक्षपाती रूप की स्थापना हो जाती है और ईश्वर के इस पक्षपाती रूप की जो प्रतिष्ठा गुरू गोबिन्दसिंह ने अपनी रचनाओं में की है उतनी किसी भी भक्त कवि ने नहीं की । गुरू जी के पूर्ववर्ती सिख गुरूओं ने परमात्मा को ` निरवैर ` कहा है। गुरू जी की रचनाओं में ईश्वर के इस ` निरवैर ` रूप की तत्वत: मान्यता होते हुये भी अधिक बल उनके पक्षपाती रूप पर ही दिया गया है ।

1- भक्ति का विकास - डॉ0 मुंशीराम शर्मा - पृ0- 410 ।

वास्तव में गुरू गोबिन्दसिंह के व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण अंग उनका तत्कालीन अन्यायी शासन के विरुद्ध उभरते हुए जनान्दोलन का नेता होना भी है। और गुरू जी का एक योद्धा होते हुये भी हिन्दू पौराणिक - साहित्य में इतनी रुचि लेना भी वस्तुत: उद्देश्य प्रेरित है। उनकी सभी अवतार- कथाओं में अवतारों के जन्म का एक ही उद्देश्य है - सन्तों की रक्षा और दुष्टों का विनाश । गुरू जी ने तो इस सिद्धान्त को पौराणिक कथाओं की सीमा से बाहर निकाल कर समसामयिक जीवन के यथार्थ पर भी दर्शाया है। उन्होंने अपने जन्म का उद्देश्य भी यही माना कि उन्हें दुष्टों का विनाश करना है और सन्तों की रक्षा करनी है । लेकिन उन्होंने अपने को ईश्वर न कह कर उस परम पुरूष का दास माना है। इसलिये ही गुरू जी की रचनाओं में ईश्वर के ` मित्र पालक शत्रु घालक ` गुण की चर्चा सिद्धान्त रूप में ही दिखाई देती है । यथा -

1) ` कि सत्रन के सूल हो कि मित्रन के प्राण हो । `(द० ग्र० पृ० 13)

2) ` करूणालय है। अरिघालय है । ` (द० ग्र० पृ० 9)

3) ` दुस्ट गंजन सत्र भंजन परम पुरख प्रगाथ ।
दुस्ट हरता सृष्टि करता जगत में जिह गाथ । ` (द० ग्र० पृ० 29)

सूरदास के कृष्ण भी साधु मित्रों के पालक एवं असाधु अर्थात् दुष्ट शत्रुओं के नाशक हैं तो अवश्य लेकिन सूर ने कहीं भी कभी भी अपने व्यक्तिगत शत्रुओं के विनाश की प्रार्थना प्रभु से नहीं थी । और फिर, सूरदास तो एक निरीह भक्त मात्र थे जिस का संसार में कोई शत्रु नहीं होता, कोई मित्र नहीं होता । उसका तो सर्वस्व परमात्मा में ही लीन होता है । एक निरीह भक्त की तो संसार से कुछ भी लेना देना नहीं होता। लेकिन इसके विपरीत गुरू जी ने अपने इष्टदेव ` काल ` से अपने शत्रुओं के विनाश एवं अपने परिवार तथा सेवकों एवं सिखों के संरक्षण की प्रार्थना की है :-

` हमारी करो हाथ दै रच्छा । पूरन होइ चित्त की इच्छा ॥
तव चरनन मन रहे हमारा ।। अपना जान करो प्रतिपारा ।। 377 ।
हमरे दुस्ट सभै तुम घावहु ।। आपु हाथ दे मोहि बचावहु ।।

सुखी बसै मेरो परिवारा ॥ सेवक सिख सभै करतारा ।।378 ।।
मो रच्छा निजु कर दे करियै ।। सब बैरनि को आज संघरियै ।।
पूरन होरहमारी आसा ॥ तोहि भजन की रहे पिआसा ।।379 ।।
तुमहि छाड़ि कोइ अवर न ध्याहूं ।। जो वर चाहौं सो तुमते पाऊं ।।
सेवक सिख हमारे तारियहि ॥ चुनि चुनि सब हमारे मारियहि ।।380 ।।

(द0 ग्र0 पृ0- 1386)

कारण स्पष्ट है कि महाकवि सूरदास केवल भक्त हैं किन्तु गुरू - गोबिन्दसिंह योद्धा भक्त हैं और योद्धा अपने पक्ष की विजयएवं विपक्ष की पराजय की कामना ईश्वर से करते ही आए हैं । वास्तव में गुरू गोबिन्दसिंह के व्यक्तित्व में योद्धा, भक्त और कवि- तीनों ही रूप एकाकार हो गये हैं ।

9- भक्ति के सब साधनों में प्रमुख है ' नाम- स्मरण ' । गुरू गोबिन्दसिंह और सूरदास - दोनों ने ही अपनी रचनाओं में प्रभु के नाम- स्मरण को बहुत ही महत्व दिया है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है ।

10- भक्ति में भी दोनों ही कवियों ने ' प्रेमाभक्ति को ही महत्व दिया है । सूर के विषय में डा0 मुंशीराम शर्मा लिखते हैं :-

- " यों तो समस्त सूरसागर प्रेम की लम्बी- चौड़ी दिनचर्या का अथवह सागर है, प्रेम के विविध रूप दास्य, वात्सल्य, माधुर्य आदि दर्पण में प्रतिबिम्ब की भांति इसमें जगमगा रहे हैं और कृष्ण के साक्षात् भगवान होने के कारण अन्ततः सब भगवद् भक्ति में ही पर्यवसित हो जाते हैं फिर भी यदि शुद्ध रूप से भक्ति सम्बन्धी प्रेम को ही लिया जाये तो उसका भी अनन्य साधारण रूप सूरसागर में दिखाई देता है ।[1] "

11- महाकवि सूरदास ज्ञान और भक्ति में भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं जो कि उन के गोपी-उद्धव - संवाद से स्पष्ट है । इसके विपरीत गुरू गोबिन्दसिंह जी ने अपनी

1- भक्ति का विकास - डॉ0 मुंशीराम शर्मा - पृ0 655 ।

रचनाओं में भक्ति और ज्ञान में समन्वय स्थापित करते हुये ज्ञान की महत्ता का भी प्रतिपादन किया है, यथा

(1) ` अंगना अधीन काम क्रोध में प्रवीन ।
एक ज्ञान के विहीन क्षीन कैसे के तरत है ।। ` (अकाल-स्तुति, द० ग्र०, पृ० 71)

(2) ` ज्ञान के विहीन काल फांस के अधीन सदा,
जुगन की चउकरी फिरी है फिरत है । ` (द०ग्र०, अकाल स्तुति क्रं०-76)

12- महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह - दोनों ने ही श्रीमद्भागवत को ही कृष्ण-लीला का आधार बनाया है। गुरू जी ने तो गीता के इस स्वर्णिम सिद्धान्त , ` मानव का अधिकार कर्म करने में है, फल प्राप्ति में नहीं, ` को अपने जीवन का भी आधार बनाया । गुरू जी ने वस्तुत: निष्काम कर्मण्य जीवन व्यतीत करके उसका महत्व अपने काव्य के माध्यम से प्रकट किया है। तभी तो एक विद्वान ने भी लिखा है -

- ` गुरू का सम्पूर्ण जीवन गीता के आदर्शों का व्यवहृत रूप मात्र है। कोई भी मानव गीता के अनुरूप जीवन व्यतीत करने की प्रणाली अनायास ही उनसे सीख सकता है ।[1] `

गुरू जी तो यह मानते थे कि किसी भी कर्म का सम्बन्ध भगवान् के साथ हो जाने पर वह कर्मयोग जाताहै और इसी का दूसरा नाम है - भक्ति । गुरू जी की भक्ति-भावना भी सम्भवत: इसी प्रकार की ही थी। उनके काव्य का उद्देश्य- राष्ट्रभक्ति में ही निहित है और उन्होंने कर्म किया था, इसी राष्ट्र की मुक्ति के लिये । इसी उद्देश्य की पूर्णता के लिये ही उन्होंने ईश्वर की आराधना की थी। जबकि सूरदास की भक्ति निष्काम-भक्ति है, उसमें किसी भी प्रकार का उद्देश्य निहित नहीं, वह भक्ति करते हैं तो केवल ईश्वर- प्राप्ति के लिये ही । यह कहना अधिक उचित है कि सूरदास जी ने अपनी

1- " His (Guru Gobind Singh) whole life was nothing but Gita in action, a materialization of its ideal into life. One can learn from him the ways to live the Gita."-
-Y.M.Chatterji: Sikh Review, Sept.1957.Page.141.

व्यक्तित्व मुक्ति के लिये प्रभु की आराधना की और गुरू गोबिन्दसिंह जी ने समष्टिगत अथवा राष्ट्र को मुगलों के अत्याचारों से मुक्त करवाने के लिये ईश्वर को पुकारा

गुरू जी ने इन सब बातों को अपने जीवन में चरितार्थ किया था । अत: इस दृष्टि से वह एक सच्चे भक्त थे ।

13- गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में भक्ति और शक्ति का भी अटूट संबन्ध दृष्टिगत होता है । वेदों में भी भक्ति के साथ शक्ति का सतत और अविच्छिन्न सम्बन्ध माना गया है। वेद के द्वारा तो प्रभु भी यही आदेश देते हैं कि निर्बल और अशक्त आत्मा सच्चा भक्त नहीं बन सकता । वेदों में भक्त प्रभु से बल, ओज एवं सहनशक्ति का ही वरदान मांगता है :-

" तेजो सि तेजो मयि धेहि, वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि, बलमसि बलं ।
मयि धेहि, ओजो स्योजो मयि धेहि, सहो सि सहो मयि धेहि ।।[1] "

गुरू गोबिन्दसिंह भी प्रभु से यही कामना करते हैं :-

" देहु शिवा वर मोहि रहै, शुभ करमन ते कबहूं न टरौ
+ + +
जल आव की अउद निदान बने अतही रण में जब जूझ मरौ ।[2] "

अथर्व वेद के एक मन्त्र का अंश है -

` कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहित: ।।[3] `

(मेरे दायें हाथ में कार्य शक्ति है और बायें हाथ में विजय है ।)

गुरू गोबि न्दसिंह भी इसी तरह के वीर भक्त हैं। वह एक साथ भक्त भी हैं और योद्धा भी । उनकी रचनाओं का उद्देश्य भी ` धर्म युद्ध की चाह ` ही है ।

1- कल्याण- भक्ति अंक - पृ0- 44 ।

2- दशम ग्रन्थ- चण्डीचरित्र - छं0 सं0 - 231 ।

3- कल्याण - भक्ति अंक - पृ0- 44 ।

54)

लेकिन महाकवि सूरदास की रचनाओं में इस प्रकार का वर्णन कहीं भी देखने में नहीं आता । सूरदास तो निरीह भक्त हैं, जिन्हें बाहरी दुनियां से कोई वास्ता नहीं ।

अन्त में यह स्पष्ट है कि सूर और गुरू गोबिन्दसिंह - दोनों ही उच्च कोटि के भक्त थे, दोनों के विचार उदात्त थे, दोनों का क्षेत्र विस्तृत था। दोनों की उदार-मनोवृत्ति लोक कल्याणकारी थी । दोनों पहुंचे हुए संत थे जिनका दृढ़ विश्वास था कि भक्ति के अभाव में जप- तप, यज्ञादि व्यर्थ हैं। भक्ति वह संजीवनी है जो मनुष्य को सत्, ज्योति और अमृतमय बना देती है। मानव जीवन की सर्वाधिक सफलता भगवद्भक्ति में ही निहित है और हमारे विवेच्य कवियों ने इसे अपने आचरण द्वारा प्रमाणित कर दिखाया है । वास्तव में आराधना करने वाले जन ही सच्चे भक्त एवं प्रभु के परम प्रिय की उपाधि ग्रहण करते हैं ।

-

000

षष्ठ परिच्छेद : तुलनात्मक अध्ययन

(घ) कला पक्ष-

(1) काव्य रूप- प्रबन्ध काव्य, गीति काव्य एवं मुक्तक काव्य ।

(2) रस व्यंजना - करूण रस, रौद्र , वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत एवं शान्त रसादि ।

(3) छन्द विधान ।

(4) शैली ।

(5) अलंकार- योजना - 1· शब्दालंकार, 2· अर्थालंकार ।

(6) भाषा- विन्यास -

1- शब्द- कोष

2- शब्द- शक्तियां

3- काव्य- गुण

4- चित्रात्मकता

5- संगीतात्मकता एवं गत्यात्मकता

6- मुहावरे एवं लोकोक्तियां

-0-

सामान्यत: किसी भी काव्य के दो प्रमुख अंग होते हैं - भाव पक्ष एवं कला पक्ष । भाव तो अमूर्त होते हैं, इन अमूर्त भावों को विविध उपकरणों द्वारा मूर्तिमान करना ही काव्य- कला कहलाता है। इस दृष्टि से भाव अथवा अनुभूति का सम्बन्ध काव्य के आन्तरिक पक्ष कला अथवा अभिव्यक्ति का सम्बन्ध काव्य के बाह्य पक्ष से होता है । तात्विक दृष्टि से यह दोनों अभिन्न हैं । जिस प्रकार जीव - आत्मा अस्थि- चर्म का कलेवर पा कर सजीव एवं साकार रूप ग्रहण करती है, उसी प्रकार ही काव्य- पुरुष की भाव- रूपी आत्मा भी कला का कलेवर पा कर साकार रूप धारण करती हुई अभिव्यक्त होती है । इस कलेवर के अर्न्तगत काव्य की रचना - शैली अर्थात् भाषा, अलंकार छन्द तथा अभिव्यक्ति के अन्य उपकरण आ जाते हैं ।

वस्तुत: कवि की अभिव्यक्ति का आधार उसकी व्यक्तिगत अनुभूति होती है। कवि अपनी बहुज्ञता, निपुणता, एवं पांडित्य के माध्यम से अपनी अपनी अभिव्यंजना-पद्धति को मुखर एवं प्रभावोत्पादक बना देता है। जैसे श्री कृष्ण के कथानक की कथावस्तु एक होते हुये भी उसे अनेक कवियों ने अपनी निजी अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रस्तुत किया है जिससे सबका महत्व पृथक- पृथक हो गया है। इस प्रकार कवि की अभिव्यक्ति में उसके व्यक्तित्व का घुल- मिल जाना स्वाभाविक ही है।

` मध्यकालीन सन्त और भक्त कवि मूलत: साधक और भक्त कवि थे । कवि-कर्म को उन्होंने केवल अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था । सहज अभिव्यक्ति के साथ काव्य तत्व उनकी रचनाओं में यदि मिलता भी है तो वह शास्त्रीय - चिन्तन का परिणाम नहीं है । किन्तु, काव्य- रचना में प्रवृत्त होने पर प्रत्येक व्यक्ति की काव्य के सम्बन्ध में कुछ धारणाएं अवश्य बन जाती हैं जिन्हें वह अपनी रचना में अनायास व्यक्त करता है ।[1] ` इस दृष्टि से महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ही

1- भक्ति कालीन कवियों के काव्य सिद्धान्त- डा० सुरेशचन्द्र गुप्त - प्राक्कथन ।

2)

मूलत: कवि नहीं थे और न ही कवि- कर्म उनका उद्देश्य था , तथापि उनके काव्य में भावपक्ष के साथ- साथ कला पक्ष का निरूपण भी अत्यन्त उत्कृष्ट, परिमार्जित एवं प्रौढ़ शैली में हुआ है । वस्तुत: उनका महान् व्यक्तित्व ही उनकी महान् अभिव्यक्ति का परिचायक है ।

1- काव्य- रूप- वास्तव में मानव को प्रकृति का अनुपम वरदान प्राप्त है और वह है - वाक् शक्ति । यही वाक् शक्ति ही मानव के सर्वतोन्मुखी विकास का रहस्य है जिस के माध्यम से वह अपने पूर्वजों के ज्ञान एवं अनुभवों को लिपिबद्ध कर उन से लाभान्वित हो सकता है। वाणी के लिपिबद्ध व्यापार का ही दूसरा नाम साहित्य अथवा काव्य है । मुख्य रूप से काव्य के दो भेद हैं :- दृश्य काव्य तथा श्रव्य काव्य । प्रबन्ध काव्य एवं मुक्तक काव्य दोनों ही श्रव्य- काव्य के अन्तर्गत आते हैं । कथावस्तु के विस्तार एवं संकोच की दृष्टि से प्रबन्ध काव्य के तीन भेद हैं :- 1·महाकाव्य, 2·खण्डकाव्य, 3·एकार्थ काव्य ।

महाकाव्य का अर्थ है -महान् काव्य । इसके अन्तर्गत कुछ विशेष नियम हैं जो इस प्रकार हैं - 1· महाकाव्य का कथानक जीवन के उदात्त एवं व्यापक क्षेत्र पर आधारित होना चाहिए , 2· महाकाव्य का नायक भी विराट् एवं महान् चरित्र से युक्त होना चाहिये , 3· महाकाव्य की सार्थकता महत्वकार्य की सिद्धि में है अर्थात् महाकाव्य का उद्देश्य भी महान् होता है । 4· महाकाव्य में भाव- व्यंजना भी उदात्त रूप में होनी चाहिये । 5· महाकाव्य की शैली में स्वाभाविकता, सजीवता, प्रभावोत्पकता प्रवाहपूर्णता, भाषा की सरलता, शब्द- शक्तियों , लोकोक्ति- मुहावरों तथा अलंकारों के प्रयोग से सम्पन्नता एवं उदात्तता के गुण होने चाहिये । शैली के अन्तर्गत प्रसंगानुकूल विविध छन्दों की योजना तथा संगीतात्मकता भी अपेक्षित है ।

मुक्तक काव्य भी श्रव्य काव्य के ही अन्तर्गत आता है । पूर्वापर के तारतम्य से मुक्त होने के कारण इसका नाम मुक्तक है । कथानक की शृंखला की निर्बन्धता के कारण इसे निर्बन्ध काव्य भी कहा जाता है। वस्तुत: मुक्तक एक स्वतन्त्र तथा निरपेक्ष

3) 380

रचना होती है जिसमें किसी मार्मिक घटना अथवा दृश्य का चित्रण होता है । इस में रसोत्पादन की क्षमता भी निहित होती है। पश्चिमी विद्वानों ने मुक्तक का ही एक रूप लिरिक(Lyric) माना है ।

भारतीय दृष्टि से मुक्तक के भेद इस प्रकार हैं :-

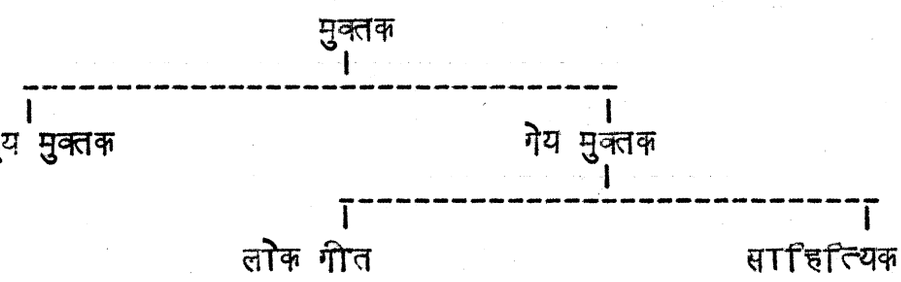

गीतिकाव्य अन्तर्वृत्ति से उद्भूत वह कविता मन्दाकिनी है जो वैयक्तिक अनुभूतियों के माध्यम से प्रवाहित होती है और जिसका सम्बन्ध घटनाओं से नहीं अपितु भावनाओं से होता है। ` वस्तुत: स्वानुभूति निरूपक कविता में कवि अपनी निजी भावनाओं की सुमधुर व्यंजना करता है और उसकी यह अनुभूति जब तीव्र हो जाती है तो उसमें संगीतात्मकता आ जाती है। इस प्रकार सुख- दुख के भावातिरेक के कारण कवि के अन्त:करण के स्वत: स्फुरित उद्गारों का नाम ही गीत है । अत: हमारे विचार में गीत की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है - कवि के हृदय की मार्मिक अनुभूतियों का संगीतात्मक चित्र ही गीति है ।[1] ` अन्तर्वृत्तिप्रधानता, संगीतात्मकता, निरपेक्षता, रसात्मकता, संक्षिप्तता एवं तीव्रता, तथा चित्रात्मकता आदि गीति-काव्य की प्रमुख विशेषताएं हैं।

कृष्ण कवियों का साहित्य प्रमुख रूप से गेय मुक्तक रूप में लिखा गया है । इन कवियों ने कृष्ण के जीवन के जिस अंश को अपने काव्य के लिये चुना वह मुक्तक काव्य के सर्वथा उपयुक्त था ।

1- भारतीय काव्य शास्त्र - डॉ0 रामचन्द्र वर्मा - पृ0 335 ।

4) 6080

प्रबन्धात्मकता - महाकवि सूरदास ने अपनी काव्य- रचना गेय पदों में की है । उनकी यह पद- शैली परम्परा की वस्तु है । आचार्य शुक्ल के अनुसार ` सूरसागर किसी चली आती हुई गीत- काव्य परम्परा का - चाहे वह मौखिक ही रही हो पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है ।[1] ` श्रीमद्भागवत पर आधारित होने के कारण ` सूरसागर ` में कथा का एक क्रम भी विद्यमान है। ` सूरसागर ` में मुक्तक काव्य के प्राय: सभी प्रमुख लक्षण मिलते हैं और साथ ही कृष्ण- जीवन के विभिन्न चित्रों का शृंखलाबद्ध क्रम भी मिलता है ।

` सूरसागर ` एक विशाल काव्य है, किन्तु रूढ़िगत विशिष्टताओं के कारण इसे ` महाकाव्य ` की कोटि में नहीं रखा जा सकता । फिर भी, अपनी विशालता, सुन्दरता एवं महानता के कारण वह अपने रचयिता को महाकवित्व देने की सामर्थ्य रखता है। पात्रों के चित्रण, रस- परिपाक, वर्णन- वैखरी , भाषा- शैली आदि सभी दृष्टियों से ` सूरसागर ` एक उत्तम कला कृति है । गीतिकाव्यात्मक गुण की अधिकता होने पर भी वह महाकाव्य के रूप से दूर नहीं है। जो लोग ` सूर- सागर ` की प्रबंधात्मकता की चर्चा करते समय उसके कथानक की शिथिलता की ओर संकेत करते हैं, वे प्राय: सूरसागर की कुछ घटनाओं की पुनरुक्ति एवं एक ही विषय पर एक से अधिक मिलने वाले पदों की दृष्टि में रख कर ही ऐसा विचार व्यक्त करते हैं । लेकिन ध्यान देने की बात तो यह है कि इस कारण रसानुभूति में कोई बाधा नहीं पड़ती और पाठक को नित नूतनता का ही आभास होता है । ` सूरसागर ` में महिमामय पात्रों की जीवन गाथा है, बुद्धि एवं कल्पना की उच्चता है, भाव- भूमि की भव्यता है, मानव- जीवन को गतिशील बनाने वाली अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है और युग वाणी का स्वर मुखरित है, तो इन सब के होते हुये ` सूरसागर ` को महाकाव्य मानने में संकोच नहीं होना चाहिये । लेकिन यह समस्त वर्णन गेय- पदों

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य शुक्ल - पृ0 165 ।

में होने के कारण ` सूरसागर ` को गीतिकाव्य की संज्ञा दी जाती है ।

वस्तुत: सूरसागर को हम महाकाव्य एवं गीतिकाव्य का सुन्दर समन्वित रूप कह सकते हैं । प्रो० सत्यनारायण त्रिपाठी लिखते हैं :- ` अनुभूति के स्तर पर उनकी आन्तरिकता एक ही भक्ति- भावना में प्रवाहित होने के कारण प्रबन्ध - काव्य जैसी अखण्ड है । इसलिये सूरसागर न तो एकान्त मुक्तक है और न प्रबन्धात्मकता से पूर्णत: रहित, अपितु ` गीतात्मक प्रबन्ध ` है ।[1] ` डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा भी कहते हैं - ` सूरसागर का दशमस्कंध - पूर्वार्द्ध कृष्ण- लीला का एक गीत्यात्मक प्रबन्ध है तथा उसमें लीला- क्रम से न केवल कृष्ण की विभिन्न अवस्थाओं का संबद्ध चित्रण है, वरन् भक्ति- भाव और कवि की अनुभूति के विकास की दृष्टि से भी उसमें क्रम- व्यवस्था है ।[2] `

` सूरसागर इसी अन्तस्तल का प्रसार है - भाव जगत् की वस्तु है । उस में घटनावली के प्रेरक भावों की राशि सन्निहित है, मनोविकारों का साम्राज्य सा फैला है, और हृदय- रूपी सहस्त्र दल कमल का चतुर्दिक विकास हो रहा है। भाव के इस भव्य भवन में सूर की अन्तर्दृष्टि ने जितना गम्भीर और विस्तृत अवलोकन किया है, उतना विश्व का महान् से महान् कवि भी नहीं कर सका । इस दृष्टि से सूरसागर प्रबन्ध - काव्य का स्पर्श करता हुआ मुक्तक काव्य के अन्तर्गत भाव- भरित गीति काव्य का सर्वोत्तम उदाहरण है ।[3] `

गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न रचनाओं के नाम गिनाये हैं जिन में ` कृष्णावतार ` भी एक है । गुरू - गोबिन्दसिंह जी ने स्वयं इस रचना को प्रबन्ध- कथा माना है -

---

1- सूर की साहित्य साधना - सं० डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र
(सूर साहित्य की उपलब्धि - डॉ० त्रिपाठी) पृ०- 396 ।

2- सूरदास- , डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा - पृ० 81 ।

3- सूर- सौरभ - डॉ० मुंशीराम शर्मा - पृ० 168 ।

384

6)

- ` स्री बृजनाथ लिआवन काज पठ्यो चित मैं तिनहूं सुखु पायो ।
यों सोऊ ले पतीया को चल्यो सु प्रबन्ध- कथा कहि स्याम सुनाय[1] । `

` कृष्णावतार ` गुरू जी की 2492 छन्दों में वर्णित सर्वाधिक दीर्घ प्रबन्धात्मक रचना है। हिन्दी - साहित्य में कृष्ण- सम्बन्धी प्रबन्ध काव्य परम्परा का मध्यकाल में अभाव सा रहा है । ` गुरू गोबिन्दसिंह कृत ` कृष्णावतार ` हिन्दी - साहित्य का प्रथम, विस्तृत एवं सन्तुलित कृष्ण- प्रबन्ध है ।[2] `

प्रस्तुत प्रबन्ध की कथा को सर्गों के स्थान पर चार खण्डों - बाल-लीला, रास- मण्डल, विरह - वर्णन एवं युद्ध - प्रबन्ध - में विभक्त किया गया है । कवि ने इसे छोटे- छोटे परिच्छेदों में भी बांटा है । भागवत पर आधारित होने के कारण भागवत की कथा के अनुरूप ही कृष्ण जन्म से ले कर भृगु प्रसंग तक सम्पूर्ण कथा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। यहां - वहां कुछ मौलिक अन्तर भी दिखाई दे जाते हैं । अधिकांश युद्ध- वर्णन पुराण ग्रन्थ में इतने विस्तृत नहीं हैं जितने कि ` कृष्णावतार ` में हैं । साथ ही कृष्ण- गोपी- प्रसंग में रास, क्रीड़ा, केलि आदि का वर्णन भी पुराण में इतना विस्तृत नहीं है । अनेक स्थलों पर देवी- वन्दना गुरू जी की निजी आस्था है। इस प्रकार भागवत के दशमस्कन्ध पर आधृत होते हुए भी कवि - कल्पना का समावेश ` कृष्णावतार ` में हुआ है ।

` रामावतार ` में कवि की प्रवृत्ति कथा कहने की अधिक थी, लेकिन ` कृष्णावतार ` में कवि कथा कहने के साथ- साथ दृश्य चित्रण एवं मानसिक क्रिया - कलाप के आख्यान पर भी बल देता है। ` कृष्णावतार ` में कथा की हानि किये बिना प्रगीतात्मक तत्व का निर्वाह भी किया गया है ।

1- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) - कृष्णावतार - छ0 सं0 - 1980 ।

2- गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य- डा0 हरिभजन सिंह - पृ0 212 ।

7)

इस प्रकार स्पष्ट है कि कथानक की दृष्टि से ` कृष्णावतार ` एक सफल प्रबन्ध काव्य है जिसका कथानक संतुलित एवं एक विशाल नदी की भांति गम्भीर, वेगवान एवं प्रवाहयुक्त है। कथा की गजगामिनी गति पाठक को आनन्दविभोर करती चलती है । कथानक में जीवन की विविधता एवं शक्ति है ।

` कृष्णावतार ` में कृष्ण के अतिरिक्त तत्सम्बन्धी अन्य पात्रों -नन्द, वासुदेव, बलभद्र, कंस, उद्धव, अक्रूर, यशोदा, देवकी, गोपियां, राधा, रुक्मणि, सत्यभामा, जाम्बवन्ती इत्यादि का भी वर्णन है लेकिन सम्पूर्ण रचना में केवल कृष्ण का चरित्र ही विस्तार से वर्णित है शेष सभी पात्र तो प्रसंगवश आते हैं । महाकाव्य के अनुरूप ही इसका नायक कुलीन और अवतार है । ` कृष्णावतार ` में प्रत्येक खण्ड में एक ही रस प्रधान है, लेकिन अन्य रसों का समावेश भी यथोचित रूप में हुआ है । खण्ड- प्रारम्भ में मंगलों का विधान भी हुआ है । वस्तु- वर्णन की कमी भी इस में नहीं है। ` कृष्णावतार ` का उद्देश्य भी उदात्त एवं महान् है तथा कवि ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये ही सारी कथा को आरम्भ से अन्त तक संजोया है । इस के अतिरिक्त ` कृष्णावतार ` में प्रकृति- चित्रण का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है । कथा में कौतुहल बनाये रखने के लिये कवि ने कहीं- कहीं नाटकीय घटनाओं का भी सृजन किया है। कवि ने दृश्य चित्रण एवं मानसिक क्रिया-- प्रतिक्रिया की ओर भी विशेष ध्यान दिया है। इससे स्पष्ट है कि ` कृष्णावतार ` एक प्रबन्धात्मक रचना है लेकिन कई विद्वान प्रबन्ध- काव्य के इतने निकट होते हुये भी इसे प्रबन्धात्मक रचना स्वीकार नहीं करते ।

डॉ० प्रसन्नी सहगल का कथन है - ` गुरु गोबिन्दसिंह ने यद्यपि प्रबन्ध-शैली का भी चौबीस - अवतारों के प्रसंग में आधार लिया है, परन्तु उसके अधिकांश स्थल इतिवृतात्मक, वर्णनात्मक अथवा आख्यान शैली तक ही सीमित रह गये हैं, उन में रसात्मकता व तल्लीनता कम प्रतीत होती है । ऐसा जान पड़ता है कि कवि किसी प्रकार कथा मात्र कह कर संतोष कर लेना चाहता है - - - कथा कहने के

8)

अतिरिक्त कवि को उसमें अधिक रमने का सम्भवत: अवकाश नहीं था । - - - प्रबन्ध शैली के लिये दोहा- चौपाई छन्द सर्वप्रिय रहे हैं, परन्तु दशमेश जी के छन्द अधिकांश वही हैं जो रीतिकाल की मुक्तक रचनाओं के लिये प्रयुक्त होते थे ।[1] `

` कृष्णावतार ` को प्रबन्धात्मक रचना स्वीकार न करते हुये डा० रत्नसिंह जग्गी लिखते हैं :- ` इसमें छन्द- योजना महाकाव्य की पद्धति पर नहीं हुई न ही संधियों का पालन हुआ है। किन्तु इसके कई एक पक्ष महाकाव्य के समीप हैं । - - - कथानक के दृष्टिकोण से कवि आधार- कथा के अनुरूप चला है । कथा प्रसंगों का यहां परित्याग बहुत कम है किन्तु ` रास ` तथा विरह- प्रसंगों में कवि डेरे डाल कर बैठ गया है । - - - यही इसके विधान की मुख्य त्रुटि है ।[2] `

इन दोनों उद्धरणों से ज्ञात होता है कि जहां डॉ० प्रसन्नी सहगल यह कहती हैं कि ` कथा कहने के अतिरिक्त कवि को उसमें अधिक रमने का सम्भवत: अवकाश नहीं था `; वहां डॉ० जग्गी का कथन है कि ` रास तथा विरह-- प्रसंगों में कवि डेरे डाल कर बैठ गया है । ` इस उक्ति से भी तो यही स्पष्ट होता है कि गुरू जी का कवि- हृदय रास एवं विरह- प्रसंगों में अधिक रमा था। इसके अतिरिक्त प्रथम खण्ड बाल- लीला वर्णन में भी ` कृष्णावतार के कुल 2492 छन्दों में से लगभग 500 छन्दों में कृष्ण के बाल रूप का वर्णन है। चतुर्थ खण्ड युद्ध- प्रबन्ध तो ` कृष्णावतार ` का सबसे वृहत् खण्ड है जो लगभग 900 छन्दों में वर्णित है। इस तरह यह स्पष्ट है कि कवि की वृत्ति रचना के चारों खण्डों में ही समग्र रूप से रमी है अत: यह कहना युक्ति संगत नहीं कि ` कथा कहने के अतिरिक्त कवि को उसमें रमने का सम्भवत: अवकाश नहीं था । `

अब रही रसात्मकता और छन्द- योजना की बात, तो ` कृष्णावतार ` के समग्र विवेचन करने पर यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें रसात्मकता का अभाव है ।

1- गुरू गोबिन्दसिंह और उनका काव्य- डॉ० प्रसन्नी सहगल-पृ0243-44 ।

2- दशम ग्रन्थ की पौराणिक पृष्ठभूमि - डॉ० रत्नसिंह जग्गी- पृ0-275-76 ।

डा० संसार चन्द्र के शब्दों में ` गुरू जी द्वारा रचित सभी अवतार- काव्यों में से ` कृष्णावतार ` ही सर्वाधिक सरस रचना है। इसमें रचयिता की वृत्ति केवल कथा - वर्णन तक ही सीमित न रह कर दृश्य- चित्रण, मानसिक ऊहा- पोह एवं मर्मस्पर्शी प्रसंगों में विशेष रूप से रमी है।[1] ` छन्द- योजना के विषय में हम कह सकते हैं कि ` कृष्णावतार ` रीतिकालीन युग की कृति है अत: उसमें तद्युगीन विशेषताओं का समावेश हो जाना भी स्वाभाविक ही है । यह तो उचित नहीं प्रबन्धात्मकता के सभी गुण होते हुये भी हम ` कृष्णावतार ` को प्रबन्ध- काव्य के अन्तर्गत इस लिये न रखें कि उसकी छन्द- योजना रीतिकालीन छन्द- योजना के अनुरूप है। फिर, डॉ० प्रसन्नी सहगल ने अपने वक्तव्य में केवल ` कृष्णावतार ` न कहकर ` चौबीस अवतार ` कहा है अत: यह भी हो सकता है कि अन्य अवतार कथायें प्रबन्धात्मक कसौटी पर पूरी न उतरती हों, लेकिन अधिकांश विद्वानों ने तो ` कृष्णावतार ` को प्रबन्धात्मक रचना ही माना है। डॉ० हरिभजन सिंह ने भी इसे हिन्दी- कृष्ण- काव्य का प्रथम प्रबन्ध स्वीकार किया है।[2] डॉ० महीपसिंह भी लिखते हैं :- ` कृष्णावतार गुरू - गोबिन्दसिंह की सर्वाधिक दीर्घ प्रबन्धात्मक रचना है। इस रचना की छन्द संख्या 2192 है। कृष्ण चरित्र पर हिन्दी में प्रबन्ध काव्य लिखने की कोई पुष्ट परम्परा हमारे साहित्य में उपलब्ध नहीं होती । राम कथा पर प्रबन्ध काव्यों की परम्परा प्राचीन है किन्तु कृष्ण कथा पर कुछेक प्रबन्ध काव्यों की रचना आधुनिक युग में ही हुई है इस रचना का महत्व इस दृष्टि से भी बहुत बढ़ जाता है कि यह ब्रज भाषा में कृष्ण के जीवन पर आधारित उस युग का एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है।[3] `

1- परिशोध (अंक 5) गुरू गोबिन्दसिंह विशेषांक - गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में कृष्ण बाललीला वर्णन) डॉ० संसार चन्द्र, पृ० 43 ।

2- गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य- डॉ० हरिभजनसिंह - पृ०- 212 ।

3- गुरू गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता - डॉ० महीपसिंह -पृ० 149 ।

10)

` कृष्णावतार ` की प्रबन्धात्मकता स्वीकार करते हुये डॉ० गोयल लिखते हैं - ` कृष्ण के इतने विशद, व्यापक चरित्र को ले कर लिखा जाने वाला भी सम्भवत: यह पहला और अकेला प्रबन्ध है ।[1] `

सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह के काव्यों के स्वरूप को देखने से यह विदित है कि दोनों में अन्तर है । दोनों भिन्न- भिन्न पद्धति में रचे गये हैं । सूरदास का काव्य गीतिकाव्य की कोटि में आता है जबकि गुरू गोबिन्दसिंह का काव्य प्रबन्ध अथवा महाकाव्य की कोटि में ।

गीतिकाव्यात्मकता - संगीतात्मकता, प्रवाह शक्ति, कोमल कान्त पदावली, रागात्मक अन्विति और आत्माभिव्यक्ति गीतिकाव्य के प्रमुख लक्षण हैं । ` सूरसागर ` में गीतिकाव्य के सभी गुण विद्यमान हैं । संगीतात्मकता तो ` सूरसागर ` की सब से बड़ी विशेषता है। सूरदास जी के सभी पद गेय हैं और राग-रागिनियों में आबद्ध हैं । ` सूरसागर ` वस्तुत: रस - सागर है जिसमें राग- रागिनियों रूपी तरंगे तरंगित हो रही हैं। सूरदास जी रागों के समय से भली भांति परिचित थे । उदाहरणार्थ बाल-लीला वर्णन में ` जागिए ब्रजराज कुंवर, कमल कुसुम फूले ` और ` भोर भए विराज हरि को मुख प्रमदित यशोदा, हर्षित नन्द ` तथा ` कमल नयन हरि करौ कलेवा ` आदि पद राग बिलावल में हैं जो प्रात: कालीन गाया जाने वाला राग है । इस के अतिरिक्त राग आसावरी और रागभैरव भी प्रात:कालीन ही गाये जाते हैं, तो सूरसागर में इन रागों में आबद्ध पद भी दृष्टिगत होते हैं जो कृष्ण को जगाने से सम्बन्धित हैं । वीर- रस के प्रसंग में सूरदास जी ने राग मारू, नट एवं कान्हरौ जैसे रागों का प्रयोग किया है जो सर्वथा उपयुक्त है ।

यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि गुरू गोबिन्दसिंह को संगीत का कितना ज्ञान था । उनका काव्य गीति-पद्धति में न होकर प्रबन्ध - पद्धति में है अत:

---

1. वीर कवि दशमेश, डॉ० जय भगवान गोयल, पृष्ठ 12 .

रागों का प्रश्न ही नहीं उठता । परन्तु उनकी रचना की कोमल- कान्त पदावली और उनका सहज संगीत- माधुर्य देखकर यह अनुमान होता है कि गुरू जी को भी संगीत का ज्ञान अवश्य रहा होगा । यही नहीं गुरू जी ने रागों का वर्णन भी कहीं - कहीं किया है जो इस तथ्य को और पुष्ट करता है कि उन्हें संगीत का ज्ञान था :-

` मौल श्री और रामकली शुभ सारंग भावन साथ बसावे ।
जैतश्री और सुध मल्हार विलावल की धुन कूक सुनावे ।
ले मुरली अपने कर कान्ह किधौ अति ही हित साथ बजावे ।
पौन चले न रहे जमुना थिर मोहि रहे धुन जो सुन पावे । 457 ।[1]

गुरू जी की रचनाओं में नादप्रियता भी सहज द्रष्टव्य हो जाती है । गोपियों के मुंह से कवि ने जो उक्तियां कहलायी हैं वे भी गीति काव्य के उदाहरण हैं क्योंकि उन में माधुर्य और भावना की तीव्रता है इतना ही नहीं, अपने ` युद्ध - प्रबन्ध ` में उन्होंने ढोल, नगाड़ों तथा अन्य विभिन्न ध्वनियों के माध्यम से सैनिकों को प्रेरित करने के लिये ध्वनि- प्रयोग भी खूब किये है। वीर रस के उपयुक्त छन्दों - छप्पय, नराज, पाधड़ी, भुजंग प्रयात, मधुमार आदि छन्दों में उनके लक्षणों के अन्तर्गत उन्होंने संगीत- ध्वनियों दी हैं जो मृदंग के बोलों के उपयुक्त थी । छन्दों के क्षेत्र में गुरू जी के प्रयोग की मौलिकता उनके संगीत छन्दों में दिखाई देती है ।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में भी गेय तत्व विद्यमान हैं। सूर और गुरू जी के काव्यों के वस्तु- विन्यास को दृष्टि में रख कर यह कहा जा सकता है कि दोनों काव्यों में ` प्रबन्धात्मकता ` है,परन्तु उसे प्रस्तुत करने के ढंग में अन्तर है । सूरदास ने गीतिकाव्यात्मक मनोरागों के आधार

1- दशम ग्रन्थ(प्रथम भाग) - कृष्णावतार - छं० सं० - 457, पृ० -31[illegible] ।

पर अपने काव्य को महाकाव्यात्मक स्वरूप प्रदान किया है जबकि गुरू जी ने प्रबन्ध काव्य के तत्वों के आधार पर ही अपने काव्य का निर्माण किया है जिसके भीतर गीति काव्यात्मकता भी आ गई है ।

2 रस- व्यंजना - ब्रह्म स्वयं रस रूप हैं, आनन्दमय हैं। काव्यानन्द ब्रह्मानन्द का सहोदर कहलाता है । वह काव्य ही क्या जो आनन्द का उद्रेक न करे, रस- वर्षा द्वारा सहृदय के हृदय को आनन्द से आप्लावित न कर दे । सूर का काव्य आनन्द का काव्य है। उनका सूरसागर वास्तव में रस का सागर है । इस काव्य की एक- एक पंक्ति में सरसता ओत- प्रोत है। यदि महापात्र विश्वनाथ की ` वाक्यं रसात्मकं काव्यं ` वाली परिभाषा सत्य है तो सूर- सागर का प्रत्येक पद, उसकी प्रत्येक पंक्ति काव्य की जीती जागती प्रतिमा है ।[1] `

गुरू गोबिन्दसिंह रचित ` कृष्णावतार ` भी विभिन्न भावोर्मियों से तरंगायित है, जिसमें कहीं प्रेम, कहीं असूया, कहीं ईर्ष्या, कहीं स्पर्धा , कहीं वितर्क, कहीं शोध, कहीं क्रोध, कहीं उत्साह , कहीं रति, कहीं वत्सल, कहीं विस्मय , कहीं भय आदि अनेक भावों की सुन्दर व्यंजना हुई है और विविध भावों के साथ- साथ विविध रसों की भी सुन्दर झांकियां मिलती हैं ।

` सूरसागर ` के पद भी सहृदयता, सरसता एवं भावुकता के असीम भण्डार हैं । एक ही विषय से सम्बन्धित न जाने कितने भाव सूरदास जी ने ` सूरसागर ` में चित्रित किये हैं । उन में विविध भावों की योजना इतने उत्कृष्ट एवं सुव्यवस्थित ढंग से की गई है कि प्रत्येक पद रस से आप्लावित हो मर्मस्पर्शी एवं हृदय- द्रावक बन गया है।

वस्तुत: ` रस की आधार- भूमि यही भाव है । जब भाव तन्मयता के कारण सांद्र एवं सघन रूप धारण करता है और मानव- हृदय देर तक आस्वादन करता

1- सूर- सौरभ - डॉ० मुंशीराम शर्मा - पृष्ठ 210 ।

13)

हुआ उसमें रमण करने लगता है , तभी रस की सृष्टि होती है । जैसे भाव अनेक हैं, वैसे ही रस भी ।[1]

अत: उक्त दोनों रचनाओं में रस- पोषण का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है :-

1- वात्सल्य- रस- महाकवि सूरदास को वात्सल्य का सम्राट कहा जाता है। उनका वात्सल्य- वर्णन हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सर्वथा अनुपम एवं अद्वितीय माना जाता है । गुरू गोबिन्दसिंह के सम्बन्ध में भी हम निस्संकोच कह सकते हैं कि गुरू जी के काव्य में वात्सल्य के जैसे सुन्दर और मनोहर चित्र हैं वैसे पंजाबी के किसी अन्य कवि के काव्य में नहीं मिलते । इन दोनों कवियों का वात्सल्य- विवेचन पिछले पृष्ठों में हो चुका है अत: यहां एक - एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा -

संयोग- वात्सल्य- (1) आंगन स्याम नचावही जसुमति नंदरानी ।
तारी दै- दै गावही मधुरी मृदुबानी ।।
पायनु नूपुर बाजई कटि किंकिन कूजे ।
नन्हीं दहियन अरूणता फलबिम्ब न पूजे ।।
जसुमति गान सुने श्रवण तब आपुन गावे ।
तारी बजावत देखि ही पुनि तारी बजावे ।।
\+ + +
जसुमति सुतहि नचावही कवि देखत जियतें ।
सूरदास प्रभु स्याम के सुख टरत न हियते ।।10।।

गुरू गोबिन्दसिंह :- बात सुनी जब गोपन की जसुधा तब ही मन माहि खीझी है ।
आय गयो हरि जी तबही पिख पुत्रहि को मन माहि रीझी है।
बोल उठे नन्दलाल तबै इह गवाह लिझावन मोहि जीझी है।
मात कहा दधि दोस लगावत मार बिना इह नाहि सीझी है ।।।२८॥

1- सूर- सौरभ - डॉ० मुंशीराम शर्मा - पृ० - 211 ।

वियोग- वात्सल्य- (1) जद्यपि मन समझावत लोग ।
सूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख जोग ।।
बिदरत नहीं ब्रज को हिरदय हरि वियोग क्यो सहिये ।
सूरदास प्रभु कमल नैन बिनु कौने बिध ब्रज रहिये ।। ३७४५ ॥

(2) गुरू गोबिन्दसिंह का यशोदा उद्धव द्वारा कृष्ण को संदेश देती है -

` ग्वारनि मो संग ऐसो कह्यो हम डरते स्याम के पाइन पइरे ।।
यों कह्यो पुर वासन को तनिके ब्रज वासन को दुख दइरे ।।
जसुधा इह भांति करी बिनती बिनती कहीयो संग पूत कनइरे ।।
उद्धव ता संग यों कह्यो बहुरो फिरि आइके मासन खइरे ।।959 ।।

2- शृंगार- रस- दोनों कवियों ने ही शृंगार के रस राजत्व का निरूपण किया है और दोनों के काव्य में संयोग और वियोग शृंगार के उत्तम उदाहरण हैं । इन दोनों कवियों के शृंगार- सम्बन्धी दृष्टिकोण का विस्तृत विवेचन ` भाव पक्ष ` अ उपशीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका है अत: यहां एक - दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं:-

1- संयोग -शृंगार- (1) ` जब ते प्रीति स्याम सों कीन्ही ।
ता दिन तें मेरे इन नैननु नेकहु नींद न लीन्ही ।।
सदा रहै मन चाक चढ़्यौ सो और न कछु सुहाई ।।
करत उपाय बहुत मिलिबे को इहै विचारत जाई ।।42 ।।

2- क्रीड़ा - विलास का चित्रण संयोग- शृंगार की प्रमुख विशेषता है। इसका एक उदाहरण गुरू जी के ` कृष्णावतार ` से द्रष्टव्य है :-

` कान्ह कुह्यो चहै ग्वारनि को सोउ भाग चलै नहिं देत कुहाई ।।
जिउ गृगनी अपने पति को रति केल समै नहिं देत मिलाई ।।
कुंजन भीतर तीर नदी ब्रिषभान सुता सु फिरै तह आई ।।
ठउर, तहा कवि स्याम कहै इह भाव सो स्यामजु खेल मचाई ।।340 ।।

विप्रलम्भ- शृंगार- कृष्ण के प्रवास का दृश्य, विप्रलम्भ- शृंगार का प्रमुख आकर्षण है। दोनों कवियों के काव्य में यह चित्रण बड़े प्रभावशाली ढंग से हुआ है । द्रष्टव्य है -

(1) ` पाछे ही चितवत मेरे लोचन आगे परत न पाइ ।
मन ले चली माधुरी मूरति कहा करौं ब्रज जाइ ।।
पवन न भई पताका अम्बर भई न रथ के अंग ।
धूरि न भई चरन लपटाती जाती वहां लौं संग ।।40 ।।

(2) ` जबही चलिबे की सुनी बतियां तब ग्वारन नैन ते नीर ढर्‌यो ।।
गिनती तिनके मन बीच भई मन को सब आनंद दूर कर्‌यो ।।
जितनो तिन में रस जोबन को दुख की सोई ईंधन माहि जर्‌यो ।।
तिनते नहि बोलियो जात कछु मन कान्ह की प्रीत के संग जर्‌यो ।।१९१॥

3- करूण- रस- रसों में शृंगार की ही भांति करूण- रस का भी विशेष महत्व है । भवभूति की ` एको रस: करूणेव ` वाली उक्ति तो सुविख्यात ही है । दोनों कवियों ने करूण रस को अपने काव्य में यथोचित स्थान दिया है पर सूरदास के काव्य में गुरु जी कृत ` कृष्णावतार ` की अपेक्षा वह प्रसंग अधिक विस्तार लिये हुये हैं जिन में करुणा जनक स्थितियां प्राप्त होती है जैसे कृष्ण का मथुरा- गमन- प्रसंग आदि ।

` सूरसागर ` में राधा का एक करूण चित्र देखिये :-

(1) ` देखी मैं लोचन चुअत अचेत ।
द्वार खड़ी इकटक मग जोवत ऊरध श्वास न लेत ।।
श्रवण न सुनत चित्र पुतरी लौं समुझावत जितनेत ।
कहुं कंकन कहुं गिरी मुद्रिका, कहुं तारंक कहुं नेत ।।
धुज होइ धूलि रही सूरज प्रभु बंधी तुम्हारे हेत ।। 56 ।।

इस पद की गुरू जी की उक्त पंक्तियों से तुलना कर सकते हैं :-

` जबहीं चलिबे की सुनी बतियां तब ग्वारन नैन ते नीर ढर्‌यो ।।
+ + +
तिनते नहिं बोलयो जात कछु मन कान्ह की प्रीत के संग जर्‌यो ।।१९१॥

एक अन्य छन्द द्रष्टव्य है :-

16)

` रोदन के सम ग्वारनियां मिलि ऐसे कह्यो अति होइ बिचारी ।।
त्याग ब्रिजे अथुरा मैं गये तजि नेह अनेक की बात बिचारी ।।
एक गिरे धर यों कहि के इक ऐसे संभार कहे ब्रिजनारी ।।
री सजनी सुनिये बतियां ब्रिजनार समै ब्रिजनाथ बिसारी ।।४६६ ।।

` सूरसागर ` के गोवर्धन - लीला- प्रसंग एवं दावानल के वर्णन में भी करूण- रस की सुन्दर योजना दृष्टिगत होती है। इसके अतिरिक्त सूरदास जी ने कृष्ण के निर्वाण- प्रसंग का भी बड़ा ही करूण दृश्य उपस्थित किया है जो ` कृष्णावतार ` में नहीं मिलता । द्रष्टव्य है :-

` तब अर्जुन नैननि जल डारि ।
राजा सौं कह्यो वचन उचारि ।।
सूरज प्रभु बैकुठ सिधारे ।
जिन हमरे सब काज संवारे।। `

और - ` हरि बिनु को पुरवै मो स्वारथ ।
मीड़त हाथ, सीस धुनि ढोरत, रुदन करत नृप, पारथ ।
धाके हस्त, चरन- गति धाकी, अरू धाक्यौ पुरूषार्थ ।।
पांच बान मोहि संकर दीन्हें, तेऊ गए अकारथ ।
जाके संग सेत- बध कीन्हौं, अरू नीत्यौ महाभारत ।।
गोपी हरी सूर के प्रभु बिनु रहत प्रान किहिं स्वारथ ।। २४१ ॥

गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में करूण- रस का विवेचन विस्तृत रूप से नहीं हुआ है । ऐसा लगता है कि करूण घटनाओं के चित्रण में गुरू जी की रूचि रमी नहीं थी । ` विचित्र नाटक ` में अपने पिता के बलिदान का उल्लेख भी उन्होंने केवल चार पंक्तियों में ही किया है। वास्तव में गुरू जी वीर- रस के कवि थे । उनके जीवन और काव्य का उद्देश्य ` धर्म युद्ध की चाह ` था। तो यदि वह अपने हृदय को करूणाप्लावित बना लेते तो वह युद्ध कैसे कर सकते थे अपने पिता एवं पुत्रों का बलिदान कैसे दे सकते थे ।

4- रौद्र - रस- रौद्र- रस वस्तुत: युद्ध का हेतु होता है अत: सूरदास जी की अपेक्षा

गुरू जी के काव्य में रौद्र- रस का वर्णन अधिक विस्तार से हुआ है। ` सूरसागर ` की ` गोवर्धन - लीला - प्रसंग ` में इन्द्र के कोप का वर्णन करते हुये सूरदास जी कहते हैं :-

` प्रथमहिं देउं गिरिहिं बहाइ ।
ब्रज- घातनि करौ चुरकुट, देउं धरनि मिलाइ ।
मेरी इन महिमा न जानी, प्रगट देउं दिखाइ ।
बरसि जल ब्रज धोइ डारौं, लोग देउं बहाइ ।
खात- खेलत रहे नीकैं, करी उपाधि बनाइ ।
बरस दिन मोहि देत पूजा, दई सोउ मिटाइ ।
रिस सहित सुरराज लीन्हीं, प्रलय मेघ बुलाइ ।
सूर सुरपति कहत पुनि पुनि, परौ ब्रज पर धाइ ।। 10 ।।

गुरू गोबिन्दसिंह कृत ` कृष्णावतार ` में युद्ध - प्रबन्ध में खड्गसिंह (गुरू जी द्वारा रचा गया कृष्ण के शत्रु- पक्ष के सेनापति का मौलिक नाम) कृष्ण पर क्रुद्ध होकर कहता है :-

` किउरे गुमान करै घनस्याम अबै रन ते पुनि तोहि भजैहौं ।।
काहे को आन अरयो सुन रे सिर केसनि ते बहुरे गहि लैहौं ।।
रे रे अहीर अधीर डरै नहि तोकहि जीवत जान न दैहौं ।।
इन्द्र, बिरंच, कुबेर, जलाधिप, को ससि को सिव को हत कैहौं ।।16।।

इसी तरह बाणासुर की ओर से जब स्वयं रूद्र कृष्ण के साथ युद्ध करने आते हैं तो युद्ध की भीषणता के कारण कोई भी योद्धा युद्ध- भूमि में उनके समक्ष टिक नहीं सकता -

` रूद्र हूं रूद्र जबै रन में कवि स्याम भने दिस नाद बजायो ।।
सूरन काहू ते नेकु टिक्यो गयो भाज गये रतीकु बिढायो ।।
सत्रन के दुहू सत्रन संग लै रोस हली सु सोऊ उस पायो ।।
श्री वृजनाथ सो स्याम भने जबही सिव आय के युद्ध मचायो ।।`2220 ।।

5- वीर- रस
---

18)

सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह ने वीर रस के भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं । ` साहित्य में जितने रस गिनाये गये हैं उन में श्रृंगार को छोड़ कर और सब रसों से वीर रस की व्याप्ति बहुत अधिक है। श्रृंगार- रस का रति - भाव जिस प्रकार सृष्टि के चरचार सब जीवों में पाया जाता है, उसी प्रकार वीर रस का ` उत्साह ` भी सर्वत्र दिखाई देता है। श्रृंगार- रस हृदय की कोमल भावनाओं को तृप्त करता है, उसमें कर्मनिष्ठता मूलभूत नहीं है । वीर- रस में हृदय की भावनाओं की तृप्ति के साथ कर्मनिष्ठता मूल रूप से विद्यमान है ।[1] `

द्रष्टव्य है :- ` स्याम बलराम रंगभूमि आए ।

मल्ल लघु रूप सुन्दर परम देखि, पुनि प्रबल बल जानि मन में सकाए ।
कह्यो गज कुवलया हते भयो गर्व तुम, जानि परिहै मिरत संग हमारे ।
काल सौं भिरे हम कौन तुम बापुरे, पै हृदे धर्म रहियो बिचारे ।
स्याम चानूर, बलवीर मुष्टिक भिरे, सीस सौं सीस, भुज- भुज मिलावै ।
वे उन्हैं गहत दौरि उनको बाहत, करत बल छल नहिं दांव पावै ।
धरि पछारयो दुहुं वीर दुहुं मल्ल कौं, हरषि कह्ये हते से नंददुहाई ।
सूर प्रभु परस लहि, लह्यो निरवान पद, सुरनि अकास जय धुनि सुनाई ।` (सं 690)

वीर - रस के चार प्रकार माने गये हैं - युद्धवीर, कर्मवीर, दयावीर और धर्मवीर । गुरू गोबिन्दसिंह के अपने व्यक्तित्व में यह चारों प्रकार ही घुल मिल गये हैं लेकिन अपने काव्य में गुरू जी ने युद्धवीर का ही सविस्तार वर्णन किया है । अन्य प्रकारों के वर्णन स्फुट रूप में प्राय: यत्र- तत्र मिल जाते हैं। तद्युगीन परिस्थितियों में विवश होकर उन्होंने धर्म के आवरण में वीर- भाव को ही प्रधानता दी थी । इसी लिये उनकी रचनाओं में वीर- भाव का वर्णन बड़े ही सुन्दर एवं विस्तृत रूप में हुआ है । उनके ` कृष्णावतार ` में भी वीर- रसपूर्ण चित्रों का अभाव नहीं है। श्री कृष्ण के

1- हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग 2) श्री विश्वनाथ प्रसाद, पृष्ठ -695 ।

राजा जरासंध के साथ हुये युद्ध का गुरू जी ने अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया है। निम्न कवित्त द्रष्टव्य है :-

` केते वीर माजे केते गाजे पुनि आय, आय धाय हरिजू सो जुद्ध वे करत हैं ।
केते भूमि गिरे केते भिरे गजमत्त सिंह लरे, तो मृतक होइके छित पे परत हैं ।
और दौर परे मार मार ही उचरे, हथियारन उधरे पग एक न टरत हैं ।
शोणत उदध नीह आंच बड़वानल सी, पौन बात चले वीर तृन ज्यों जरत हैं।

वीर- रस के सजीव वातावरण के निर्माण के लिये दोनों पक्षों के योद्धाओं की गर्वोक्तियों का सजीव वर्णन भी कवि करते आये हैं । गुरू जी के योद्धा कोरे वाचाल नहीं। गुरू जी की ही भांति वह ` कहने ` की अपेक्षा ` करने ` में विश्वास रखते हैं अत: ` कृष्णावतार ` में गर्वोक्तियों का वर्णन अधिक नहीं हुआ है । वीर-रस के अनुभाव रूप में ही इन गर्वोक्तियों का प्रस्तुतीकरण किया गया है । ` कृष्णावतार ` में जरासंध कृष्ण से कहता है -

` का भयो मघवा जो बलवंड है आज हउ ताही सो जुद्ध मचैहौं ।।
मान प्रचंड कहावत है हनि ताही को हउ जम धाम पठैहौं ।।
अउ जु कहा सिव मै बलु है मरि है पल मै जब कोप बढ़ैहौं ।।
पउरस राखत हउ इतनो कहा भूप ह्वै गुजर ते भजि जैहौं ।। 1826 ॥

इसके उत्तर में कृष्ण कहते हैं :-

` क्षत्री कहावत आपन को भजिहो तबही जब जुद्ध मचैहौं ।
धीर तबै लखि हौं तुमको जब भीर पेर इक तीर चलैहौं ।
मूरछ ह्वै अबही छित में गिरहो नहि संयदन में ठहरै हौं ।
एकह बान लगे हमरो नभमंडल पै अब ही उड़ जैहौं ।।(द०ग्रं०पृ० 486)

` कृष्णावतार ` में कृष्ण की दानवीरता की भी भावपूर्ण व्यंजना हुई है । अपने प्रतिद्वन्द्वी हलायुध द्वारा शस्त्र- त्याग करते देख कृष्ण हृदय पसीज उठता है और वह शरणागत की भावना से अभिभूत हो स्वयं को ही पराजित मानने लगते हैं :-

20)

` करुनानिधि देख दसा तिहकी करुणारस को चित्त बीच बढ़ायो ।
कोपहि छाड़ दयो हरिजू दुहू नैनन भीतर नीर बहायो ।
वीरा हलायुद्ध ठाढ़ो हुतो तिह को कहिके इह बैन सुनायो ।
छाडि दे जो हम जीतन आयो हौं सो हम जीत लयो बिलखायो ।।881 ।।

वस्तुत: गुरू गोबिन्दसिंह का युद्ध- कर्म उनके भक्ति- कर्म का ही एक अंग है। महाकवि सूरदास ने शृंगार के अंग रूप में भी वीर- रस का वर्णन किया है :-

` रूपे संग्राम रति खेत नीके ।
एक तैं एक रन वीर जोधा प्रबल, मूरत नहि नेकु अति सबल जीके ।
भौंह कोदंड, सर नैन, धानुषि काम, छुटनि मानौ कटाच्छनि निहारे ।
हंसनि दुज- चमक करवरनि लौं है फलक, नखनि- छत-घात नेजा सम्हारे ।
+ + + +
लटकि लटकानि मानौ सुभट लरि परे खेत, रति सेज रूचि लाभ कीन्हे ।
सूरप्रभु रसिक प्रिय राधिका रसिकिनी, कोक- गुन सहित सुख लूट लीन्हे । ` (२७ ८१)

वास्तव में यह कहना अनुचित न होगा कि सूरसागर की अपेक्षा ` कृष्णावतार ` में वीर- रस का बाहुल्य है। ` कृष्णावतार ` के 2492 छन्दों में लगभग 900 छन्दों में तो केवल ` युद्ध - प्रबन्ध ` ही वर्णित है। श्रीकृष्ण का जरासंध एवं बाणासुर आदि के साथ हुये युद्धों का वर्णन अत्यन्त विस्तारपूर्वक किया गया है । गुरू जी को कृष्ण का वीर- रूप ही रूचिकर प्रतीत होता है, इसके विपरीत कृष्ण के गोपी- वल्लभ एवं वृन्दावन- विहारी रूप में सूर का मन जितना लगा है उतना योद्धा रूप में नहीं । इसी लिये कृष्ण के इस रूप का वर्णन केवल अनुवाद भाग में ही दिखाई देता है। फिर भी सूर ने अपनी मौलिकता की छाप देकर उसे महत्ता प्रदान की है ।

6- भयानक - रस- ` सूरसागर ` में भयानक रस का वर्णन भी ` कृष्णावतार ` की अपेक्षा कम मिलता है । फिर भी ` गिरिधारण- लीला ` में सूरदास ने भयानक - रस का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है

` मेघ दल प्रबल ब्रज लोग देखे ।
चकित जहं तहं भये निरखि बादर नये, ग्वाल गोपाल हरि गगन पेखे ।
ऐसे बादर सजल करत अति महाबल चलत घहरात करि अंध काला ।
चकृत भये नन्द, सब महर चकृत भये, चकृत नर- नारि, हरि करत ख्याला ।
घटा घनघोर ढहरात, अररात, दररात, सररात ब्रज लोग हरषें ।
तड़ित आघात, तररात, उतपात सुनि, नर नारि सकुचि तनु प्राण अरषें ।
कहा चाहत हौन, मह न कबहूं जौन कबहूं आंगन मौन विकल होलें ।।46 ।।

भयभीत व्यक्ति की चेष्टाओं का कितना स्पष्ट चित्र सूर ने अंकित किया है :-

` ब्रज के लोग फिरत कितताने ।
गैयन लै वन ग्वाल गये ते धाये आवत ब्रजहिं पराने ।।
कोउ चितवत नभ तन चकृत ह्वै कोउ गिरि परत धरनि अकुलाने ।।
कोउ लै ओट रहत वृक्षन की अंधु धुन्ध दिसि विदिसि भुलाने ।।
कोउ पहुंचे जैसे तैसे गृह कोउ ढूंढत गृह नहिं पहिचाने ।। 51 ।।

भयानक - रस का परिपाक ` कृष्णावतार ` के युद्ध - वर्णन में अनेक स्थानों पर हुआ है। मृत- पूतना की दशा पर्याप्त भयोत्पादक है :-

` देहि छि कोस प्रमान मह पुखरा जिम पेट मुखो नलुआरे ।
डंड दुकूल भये तिहके जनु बार सिबाल ते सेख पुआरे ।
सीस सुमेर को स्त्रिंग भयो तिह आंखन मे परगे खहुआरे ।
साहके कोट में तोप लगी बिन गोलन के ह्वै गये गलुआरे ॥ ४५ ॥

युद्ध - प्रसंग में एक दैत्य के विकराल रूप का वर्णन इस प्रकार हुआ है :-

` केस बड़े सिर बेस बुरे अरू देह में रोम बड़े जिनके ।।
मुख सो नर हाडनि चाबत है पुन दांत सो दांत बजे तिनके ।।
सर स्त्रउनत के अखीआं जिनकी संग कउन भिरै बलु के इनके ।।
सर चांप चढ़ाइ के रैन फिरै सब काम करै नित पापन के ।। ।।६५ ।।

22)

7- बीभत्स - रस भयानक के अतिरिक्त ` बीभत्स- रस ` का चित्रण भी दशमेश जी ने अनेक स्थलों पर किया है। द्रष्टव्य है :-

` एक भरे भट स्त्रोनन सो भभकारत धाइ फिरै रन डोलत ।।
एक परै गिरकै धरनी तिनके तन जंबक गीधक ढोलत ।।
एकन के मुखि ऊठन आंखन काग सु चोचन सिउ टकरोलत ।।
एकन की उर आंतन को कढ जोगन हाथन सिउ फकफोलत ।। `

इस प्रकार के अनेक वर्णन ` कृष्णावतार `में उपलब्ध हैं। लेकिन सूर वस्तुत: कोमल - भावों के कवि थे । अत: उनके काव्य में बीभत्स-- रस का अभाव सा है ।

8 अद्भुत रस- भरत मुनि ने अद्भुत - रस की उत्पत्ति वीर रस से मानी है । वैसे तो दशम - ग्रंथ में अलौकिक चमत्कार पूर्ण चित्रों का अभाव नहीं है पर अद्भुत - रस का वर्णन प्राय: युद्ध- प्रसंगों में विशेष रूप से मिलता है ।

` कृष्णावतार ` में सहगसिंह का सिर कट जाता है तो वह स्वयं अपने कटे हुये सिर को बालों से पकड़ कर कृष्ण पर फेंकता है जिसके प्रहार से कृष्ण मूर्च्छित होकर घोड़े से नीचे गिर जाते हैं :-

` जदिपि सिर कट्यो न हट्यो गहि केसन तै हरि ओर चलायो ।।
मानहु प्रान चल्यो दिव आनन काज बिदा ब्रिजराज पै आयो ।।
सो सिर लाग गयो हरि के उर मूरछ ह्वै पगु ना ठहरायो ।।
देखहु पउरख भूपके मुंड को स्यंदन ते प्रभु भूम गिरायो ।। `

(द० ग्र० पृ० 471)

उससे भी अद्भुत दृश्य तब उपस्थित होता है जब सहगसिंह का धड़ भयानक युद्ध करके सबको विस्मय में डाल देता है । उस भयावह मूर्ति को देखकर सभी देवतागण युद्ध- भूमि छोड़ कर भागने लगते हैं :-

` मुंड बिना तब रुंड सु भूपति को चित मैं अति कोप बढ़ायो ।।
द्वादस मान जु ठाढ़े हुते कवि स्याम कहैं तिह ऊपर धायो ।।
भाज गये कर त्रास सोउ सिव ठाढ़े रह्यो तिह ऊपरि आयो ।।
सो नृप वीर महा रनधीर चटाक चपेट दै भूम गिरायो ।।

(द० ग्र० पृ० 471

23) 4000

अद्भुत- रस के प्रसंग सूरसागर में भी कई स्थानों पर हैं लेकिन वहां अद्भुत - रस का इस प्रकार का चित्रण देखने को नहीं मिलता । सूरदास की यशोदा तो मिट्टी खाने वाले बाल- कृष्ण के मुंह में समस्त ब्रह्माड को देखकर चकित रह जाती है :-

` अखिल ब्रह्मांड खण्ड की महिमा दिखरायो मुख मांही ।
सिन्धु , सुमेरू, नदी , बन पर्वत चकृत भई मन मांही ।। 28 ।।

गुरू गोबिन्दसिंह ने भी कृष्ण के मुख में चराचर के दर्शन कराने के लिये यशोदा को अवसर प्रदान किया है। कृष्ण के इस अद्भुत रूप का दर्शन कर माता चकित रह जाती है :-

` सिंध धराधर और धरती सभ, था ल को पुर और पुर नागनि ।
और सभै निरखे तिह में पुर, वेद पढ़े ब्रह्मा गनिता गनि ।
रिद्ध और सिद्ध औ आपने देख के जान अभेव लगी पागर लगनि ।
स्याम कहे तिन चक्षन सौ सभ देख लयो बड़ो बड़ भागनि ।।136 ।।

मुरली- वादन के विस्मयकारी प्रभाव के चित्रण में भी सूर ने अद्भुत रस का प्रयोग किया है :-

` मुरली सुनत अचल चले ।
थके चर- जल करत पाहन विफल वृक्ष फले ।
पय स्त्रवत गोधनि धन ते प्रेम पुलकित गात ।
+ + +
सूर प्रभु रस- रास के हित सुखद रैन बढ़ाइ ।।54 ।।

बाल- कृष्ण के ऊखल- बंधन प्रसंग में दोनों कवियों ने ही अद्भुत रस का वर्णन किया है । कृष्ण के नटखट पन से तंग आ कर जब यशोदा रस्सी ले कर उन्हें बांधना चाहती है तो रस्सी ही पूरी नहीं पड़ती । सूर लिखते हैं :-

` बांह गहे ढूंढति फिरै डोरी ।बांधो तोहि सके को छोरी ।
बांधि पची डोरी नहिं पूरे । बार- बार खीझति रिस- भूरे ।
घर- घर ते जेंवरि ले आई । मिस ही मिस देखन कौं धाई ।

चकित भई देखैं ढिग ठाढ़ी । मनो चितरै लिखि - लिखि काढ़ी ।
जसुमति जोर जोर रज्जु बांधे । आंगुर दै - दै जेंवरि साधे ।
मुख जमात त्रिभुवन दिखरायो । चकित कियो तुरतहिं बिसरायो ।।

इसी प्रकार का चित्र गुरू जी ने भी खींचा है। क्रोध- भरी माता उन्हें पकड़ कर ऊखल से बांधने का असफल प्रयास करती है। सारे ब्रज की रस्सियां कृष्ण को बांधने के लिये एकत्रित की जाती हैं :-

` दौर गयो हरि जी जसुधा जब
बांधि रही रसियां नहिं मावैं ।
के इक ठौ ब्रिज की रसियां सम
जोर रही कछु थाह न पावै ।।144।।

9- हास्य- रस- सूरदास जी की तो शैली से ही उनकी हास्य-प्रियता परिलक्षित हो जाती है। बाल- लीला में कृष्ण की चेष्टाएं और फिर किशोर कृष्ण की वाक्- पटुता एवं भ्रमरगीत में गोपी- उद्धव संवाद - यह सब हास्य रस की सृष्टि करते हैं । एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा -

` मैया मैं नहिं माखन खायौ ।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायौ ।
देखि तुही सींके पर भाजन ऊंचे धरि लटकायौ ।
हौं जु कहत नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायौ ।
मुख दधि पोंछि बुद्धि इक कीन्हीं दोना पीठि दुरायौ ।
डारि सांटि मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ ।।952 ।।

गुरू गोबिन्दसिंह जी ने अपने ` दशम - ग्रन्थ ` में हास्य- रस की भी सफल अभिव्यंजना कतिपय स्थलों पर की है। किन्तु उनके उदाहरण अत्यल्प है। ` कृष्णावतार ` में तो खोजने पर भी एकाध प्रसंग ही उपलब्ध होता है। बाल- लीला का एक उदाहरण द्रष्टव्य है कि गोपियां आ कर यशोदा से कृष्ण की शरारतों का उपालम्भ देती हैं। कृष्ण भी वाचाल हैं, वे कहते हैं कि मैं तो कुछ नहीं करता ये

गोपियां ही मुझे सिखाती हैं। माता पूछती है कि ये क्यों तुझे सिखाती हैं, तो उनका उत्तर है :-

` मात कह्यो अपने सुत को कहु किउ करि तोहि सिखावत गोपी ।।
मात सौ बात कही सुत यौ करि सो गहि मागत है मुहि टोपी ।।
हार के नास बिसे अंगुरी सिर मारत है मुझ की वह थोपी ।।
नाक घिसाइ हंसाइ उनै फिर लेत तबै वह देत न टोपी ।।27 ।।

10- शान्त-रस- सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह के काव्यों में शान्त- रस की धारा तो कई स्थलों पर प्रवाहित हुई है । इन भक्त कवियों के काव्य में शान्त- रस के अनेक उदाहरण मिल जाएं तो आश्चर्य नहीं है। सूरदास के विनय के पदों में शान्त रस की ही प्रधानता है। यहां एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा :-

` जा दिन मन- पंछी उड़ि जैहै ।
ता दिन तेरे तन- तरुवर के सबै पात झरि जैहैं ।
या देही को गरब न करिये, स्यार- काग- गिध खैहैं ।
तीननि मैं तन कृमि के विष्टा, के ह्वै खाक उड़ैहैं ।
कहं वह नीर, कहां वह सोभा, कहं रंग- रूप दिखैहैं ।
जिन लोगन सौं नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं ।
घर के कहत सबारे काढ़ो, भूत होइ घर खैहैं ।
+ + +
सूरदास भगवंत - भजन बिनु बृथा सु जनम गंवैहै ।86।

गुरू जी मुख्य रूप से वीर- रस के कवि हैं परन्तु योद्धा के साथ- साथ वह भक्त भी हैं । अत: उनकी रचनाओं में शान्त रस का अभाव नहीं है। द्रष्टव्य है -

` प्रभु जु तो कह लाज हमारी ।।
नीलकंठ नरहरि नारायण नील बसन बनवारी ।।1।। रहाउ
परम पुरख परमेसर सुआमी पावन पउन अहारी ।।
माधव महाजोति मधु मरदन मान मुकुन्द मुरारी ।।

26)

निरविकार निरजुर निद्रा बिनु निरबिख नरक निवारी ।।
कृपा सिन्धु काल त्रे दरसी कुकृत प्रनासन कारी ।।2 ।।
धनुरपान धृतमान धराधर अनि बिकार असिधारी ।।
हौ मतिमंद चरन सरनागति करि गहि लेहु उबारी ।।3 ।।

(द0 ग्रा0 पृ0-710)

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह ने शृंगार और वात्सल्य के साथ - साथ अन्य सभी रसों का पोषण किया है। सूरसागर और दशम - ग्रंथ वास्तव में रसार्णव है जहां अनन्त रसपूर्ण रत्न उपलब्ध हैं जो अपनी आभा से हमें आकृष्ट करते हैं ।

3- छन्द- विधान - अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा - गणना तथा यति- गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य-रचना छन्द कहलाती है।[1] वास्तव में एक कुशल एवं सक्षम कवि अपनी विशिष्ट प्रतिभा के माध्यम से अपने हृदयगत भावों को छन्दों की लड़ी में पिरो देता है जिससे उसकी भावाभिव्यक्ति प्रभावात्मक रूप ग्रहण कर जन- मानस को रसाप्लावित करती हुई कवि को भी उच्च स्थान का अधिकारी बना देती है ।

भारतीय- साहित्य में छन्दों की यह परम्परा वैदिक काल से प्रारम्भ होती हुई निरन्तर विकासोन्मुखी रही है। छन्दों के दो मुख्य भेद माने गये हैं :- 1- वार्णिक एवं 2- मात्रिक । संस्कृत में वर्णिक छन्दों की ही प्रधानता है जबकि हिन्दी में मात्रिक छन्दों को ही प्रमुखता प्राप्त हुई है ।

गुरू गोबिन्दसिंह ने अपने काव्य में वर्णिक और मात्रिक इन दोनों प्रकार की छन्द- पद्धतियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है। गुरू जी पूर्व महाकवि केशव और

1- हिन्दी- साहित्य- कोष - पृ0 - 290 ।

27)

महाकवि तुलसीदास जी ने भी अपने काव्य- ग्रन्थों में विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग अत्यन्त प्रभावात्मक एवं माधुर्यपूर्ण ढंग से किया था । केशवदास तो छन्दों का बहुलता से प्रयोग करने वाले कवियों में सिरमौर समझे जाते हैं लेकिन गुरू जी तो इस दृष्टि से केशव को भी पीछे छोड़ देते हैं। उन्होंने अपने ` दशम- ग्रन्थ ` में संस्कृत और प्राकृत, वर्णिक और मात्रिक सभी प्रकार के एक सौ से भी अधिक छन्दों का प्रयोग किया है । ` सम्पूर्ण दशम- ग्रन्थ में लगभग अठारह हज़ार छन्द हैं। इन में निम्न छन्द प्रमुख हैं जिनका प्रयोग तीन सौ बार से अधिक हुआ है[1]:-

1-	चौपाई	5555
2-	दोहा	3149
3-	सवैया	2252
4-	अडिल	962
5-	भुजंग प्रयात	609
6-	रसावल	380
7-	भुजंग	317
8-	पदरी	312

गुरू जी के काव्य उनकी एक मौलिकता देखने में आती है कि गुरू जी ने जहां तो अलंकारों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है वहां छन्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम मिलता है जैसे - ` कृष्णावतार ` और जहां छन्दों की विविधता एवं बाहुल्य देखने में आता है वहां अलंकारों की अल्पता भी दृष्टिगत होती है जैसे -

- ` चण्डी चरित्र द्वितीय एवं रामावतार ` ।

कृष्णावतार ` में वर्णित छन्द इस प्रकार हैं :-

मात्रिक - अडिल, चौपाई, कुप्पय, दोहा, पद, सोरठा ।

वर्णिक - कवित्त, फूलना, लोटक एवं सवैया ।

1- गुरू गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता - डॉ० महीपसिंह -पृ० 319 ।

28)

406

` प्रगीतात्मक ` कृष्णावतार में मन:स्थिति को लम्बे समय के लिये एक स्वर रखने के अभिप्राय से छन्द- वैविध्य को उचित नहीं समझा गया । ` कृष्णावतार का मुख्य छन्द एक ही है - ` सवैया ` । बीच- बीच में कवित्त, चौपई, दोहा आदि का प्रयोग है ।[1] `

महाकवि सूरदास वास्तव में गायक- कवि थे । उन्होंने अपनी काव्य- रचना गेय- पदों के आधार पर ही की है । ` काव्य- निर्णय ` के लेखक दय का कथन है कि ` सूरदास ने अपने अधिकांश काव्य की रचना गायन अथवा कीर्तन के लिये की थी, अत: इसमें पिंगल शास्त्रोक्त छन्दों की अपेक्षा संगीत शास्त्रानुकूल गेय- पदों की अधिकता है। उन्होंने अपने काव्य के वर्णनात्मक भाग में कुछ छन्दों का भी प्रयोग किया है। यह भाग काव्य- परिमाण और काव्योत्कर्ष दोनों दृष्टियों से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। सूर काव्य में जिन थोड़े छन्दों का प्रयोग किया गया है, उन में चौपाई, चौबोला, चौपई, दोहा, सोरठा, रोला और लावनी मुख्य हैं ।[2] `

छन्द और संगीत का सम्बन्ध तो स्वाभाविक ही है। सूरदास ने अपने काव्य की रचना गेय- पदों में की है । ` गेय- पद भी छन्दों के अन्तर्गत माने जाते हैं, क्योंकि उन में प्रयुक्त प्रथम पंक्ति, जिसे ` स्थायी- पद अथवा टेक ` कहते हैं , संगीत के नियमानुसार होतीहै, शेष पंक्तियां छन्द- विधान के अनुकूल होती है। उदाहरणार्थ सूर का निम्नलिखित पद देखिये -

` प्रभु हौं पतितनि को टीकौ ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तौ जनमत ही को ।
बधिक अजामिल, गनिका तारी और पूतना ही कौं ।
मोहि छाड़ि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यौं जी को ?

1- परिशोध(अंक 5) - गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में छन्द विधान - डॉ0 जयभगवान गोयल - पृ0 37 पर उद्धृत

2- सूर- निर्णय - डॉ0 द्वारिकादास पारीख एवं प्रभुदयाल मीतल -पृ0-3.2 ।

29)

कोउ न समरथ अघ करीब को, खैंचि कहत हौं लीको ।
मरियत लाज सूर पतितनि में, मोहूं ते को नीको ।।३४ ।

इस पद की प्रथम पंक्ति में 16 मात्राएं हैं जो ` स्थायी पद ` हैं । शेष सब पंक्तियों में 16,12 की पति से 28 मात्राएं हैं और अन्त में दो गुरू हैं। यह लक्षित - पद ` या ` सार ` छन्द का ही लक्षण है ।[1] `

पूर्व- प्रचलित छन्दों के अन्तर्गत सूरदास जी ने दोहा, चौपाई, छप्पय रोला, कवित्त, हरिगीतिका, गीतिका, सार, वीर(आल्हा) एवं दंडक आदि छन्दों का प्रयोग कियाहै। सूरसागर में ` दोहा ` का प्रयोग कई प्रकार से हुआ है । कतिपय छन्दों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

(1) दोहा:- ` नंद नंदन बस प्रेम के, प्रगट भये तिहि काल ।
प्यारी को मिलि सुख दियो, मेटि बिरह दुख जाल ।। `

(2) छप्पय:- ` तब विलंब नहिं कियो, जबे हिरनाकुश मार्‌यो ।
तब विलंब नहिं कियो, केस गहि कंस पछार्‌यो ।
तब विलंब नहिं कियो, सीस दस रावन कट्टे ।
तब विलंब नहिं कियो , सबे दानव दह पट्टे ।
कर जोरि सूर विनती करै, सुनहु न हो स्कुमनि- रवन ।
काटी न फन्द मो अन्ध के, अब विलम्ब कारन - कवन ।।३०

इसके अतिरिक्त चौपाई ` का प्रयोग सूरसागर के वर्णनात्मक प्रसंगों में हुआ है । साथ ही चौबोला और `पादाकुलक ` छन्दों का प्रयोग भी द्रष्टव्य है ।[2]

` सूरदास ने पूर्व- प्रचलित छन्दों को अपनाने के साथ- साथ कुछ नवीन

1- कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन(सूरदास एवं पीतना के सन्दर्भ में)- डॉ0 एन0एस0 दक्षिणामूर्ति ,पृ0 431)

2- सूरसागर - पद सं0 - 348, 226 ।

छन्दों का भी आविष्कार किया है जो संगीत के लिये सर्वथा योग्य है ।[1] `

गुरू गोबिन्दसिंह के ` कृष्णावतार ` में भी छन्द- वैविध्य दृष्टिगत नहीं होता ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही अपने कृष्ण- काव्य में छन्दों की अपेक्षा अलंकारों को अधिक स्थान दिया है ।

4- शैली - शैली ही वस्तुत: कवि के व्यक्तित्व की परिचायक है। ` महाकवियों की शैली महान ही होतीहै। जब किसी कवि की कविता में उसका कोमल और आकर्षक व्यक्तित्व एवं सहज स्वाभाविक माधुर्य सरसता, सरलता तथा सुबोध गुण विद्यमान रहते हैं , तभी उसकी शैली महान हो सकती है। जो वर कवि है वही इस प्रकार की शैली का वैभव दिखा सकता है।[2] ` सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ही महान व्यक्तित्व के स्वामीहैं अत: उनके काव्यों में हम उनकी महान शैली के दर्शन कर सकते हैं ।

प्रथमत: सूरसागर की शैली पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि स्थूल रूप से सूरसागर की शैली को तीन भागों में बांटा जा सकता है :-

(1) गेय- पद- शैली, (2) वर्णन शैली और (3) दृष्टकूट- शैली ।

गेय-पद- शैली अथवा गीत - शैली - महाकवि सूरदास ने प्रकृति से ही कोमल हृदय पाया था और गीत- शैली हृदय की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति के सर्वथा उपयुक्त है। सूर को यह गीत- शैली अपने पूर्ववर्ती कवियों से वरदान स्वरूप प्राप्त हुई थी जयदेव का ` गीत- गोबिन्द ` और ` विद्यापति पदावली ` इस गीत - शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। लेकिन सूर ने अपने काव्य में कहीं भी इन कवियों की शैली का

1- हि० के०कृ० तु० अ० (सूरदास एवं पूतना के सन्दर्भ में) - डॉ० एन०एस० - दक्षिणामूर्ति,पृ० 437 ।

2- हि० के० कृ० तु० अ० (सूरदास एवं पूतना के सन्दर्भ में) ,, ,, पृ० 456 ।

31)

4000

अंधानुकरण नहीं किया । उनकी गीत शैली जयदेव और विद्यापति की शृंगार-भावना और कोमल कान्त पदावली को आत्मसात् करती हुई(साथ ही अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्रता की रक्षा करती हुई) विकसित हुई । सूर ने केवल भाव - पक्ष में ही नहीं, गीत- शैली के कलेवर में भी नवीनता का संचार किया है ।[1]

वस्तुत: सूरदास के पदों की गेयता अनूठी है, आकर्षक है, अद्वितीय है -

` सिखवति चलनि जसोदा मैया ।
अरबराइ कर पानि गहावत , डगमगाइ धरनी धरे पैया ।
कबहुक सुन्दर बदन बिलोकति, उर आनन्द भरि लेति बलैया ।
कबहुक कुल देवता मनावति, चिरजीवहु मेरो कुंवर कन्हैया ।
कबहुक बलकौ टेरि बुलावति, इहि आंगन खेलौ दोउ भैया ।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नंदरैया ।। ७३ ॥

गेय- शैली का मुख्य गुण है - संगीतात्मकता । सूरसागर में इस गुण की प्रचुरता पाई जाती है। श्री शिखर चन्द जैन लिखते हैं :- ` संगीत विषयक इस ज्ञान की कसौटी पर जब सूर कसे जाते हैं तब वह बहुत ऊंचे उठ जाते हैं। वास्तव में यदि काव्य और संगीत का सच्चा समन्वय कोई प्रकृत रूप से कर सका है तो वह सूर ही है ।[2]

सूर के प्रस्तुत पद में नाद- सौन्दर्य देखिये -

` सोभित कर नवनीत लिये ।
घुटुरुन चलत रेनु - तन- मंडित मुख - दधि लेप किये ।।99 ।।

सूरदास की गीति- शैली के विषय में डा० हरिवंश लाल शर्मा कहते हैं - ` वैयक्तिकता और आत्माभिव्यंजन, जो गीत- काव्य का सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख लक्षण

1- सूर और उनका साहित्य- डॉ० हरिवंश लाल शर्मा -पृ० 288 ।

2- सूर एक अध्ययन - श्री शिखरचन्द जैन - पृ० - 37 ।

32)

है, सूर के गीतों में अथ से इति तक व्याप्त है । भाव की एकात्मकता, अनुभूति की स्वत: पूर्णता और अव्याहत व्याप्ति, जो मुक्तक - काव्य की प्राण वायु है, सूर के गीतों में संचार करती हुई पाठक और श्रोता के हृदय पर अमिट चिन्ह बना जाती है । उनका एक - एक राग, एक - एक गीत अपने आप में पूर्ण और रस- सृष्टि में समर्थ है ।[1]

सूरदास जी की सरस, मधुर एवं भाव, कल्पना और सौन्दर्य से युक्त पद वली अपने में बेजोड़ है। उनके पदों की सरसता एवं संगीतात्मकता स्तुत्य है लेकिन इस का यह अर्थ नहीं है कि नीरस- पद उनकी लेखनी से निकले ही नहीं । सूरसागर में गीत - शैली के कुछ ऐसे पद भी मिल जाते हैं जो अधिक प्रभावशाली नहीं है , जैसे -

` ब्रह्मा बालक- बच्छ हये ।
आदि अन्त प्रभु अन्तरजामी, मनसा तैं जु करै ।
सोह रूप पै बालक गो- सुत, गोकुल जाइ धरै । ।१०। ।

और - ` बार सत्रह जरासंध, मथुरा चढ़ि आयौ ।
गयौ सो सब दिन हारि जात घर बहुत लजायौ ।
तब सिस्याइ के कालजवन, अपने संग ल्यायौ ।
हरि जू कियौ विचार, सिंधु तट नगर बसायौ । ५२४। ।

ऐसा वर्णन केवल उन्हीं स्थलों पर हुआ है जहां कवि कथा के प्रवाह को जोड़ने के लिये यत्र- तत्र एकाध घटना का वर्णन कर देता है। ऐसे पदों की संख्या अल्प ही है ।

वर्णन - शैली- सूरसागर के प्रथम नौ स्कन्धों में वर्णन- शैली की ही प्रधानता है। लेकिन इस शैली के पद अधिक प्रभावशाली नहीं है। दृश्य - वर्णन के प्रसंगों में कवि ने वस्तुओं की लम्बी- लम्बी सूचियां दी हैं जो रूचिकर प्रतीत नहीं होती । डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा

1- सूर और उनका साहित्य- डॉ० हरिवंश लाल शर्मा - पृ० 290 ।

के शब्दों में - ` इन प्रसंगों की शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कवि शीघ्रतापूर्वक, ज्यों - त्यों प्रस्तुत वर्णन करके आगे के विषय पर पहुंचना चाहता है। फलत: उसकी भाषा में कहीं - कहीं असमर्थता और शैली की शिथिलता दिखाई देती है। साहित्यिक सौन्दर्य का तो सर्वथा अभाव ही है। चाहे कथा - वर्णन हो, चाहे आचारोपदेश अथवा सिद्धान्त प्रतिपादन, शैली में विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। सिद्धान्त प्रतिपादन में तत्सम पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग मात्र उसकी शैली में चमत्कार लाने में असमर्थ है।[1] `

दृष्टिकूट- शैली- व्यंजना से मिलती - जुलती एक शैली दृष्टिकूट भी है। कोई ऐसी कविता जिसका अर्थ केवल शब्द के वाचक अर्थ से न समझा जा सके बल्कि प्रसंग या रूढ़ि अर्थों से जाना जाये[2] वह दृष्टिकूट कहलाती है।

दृष्टिकूट की परम्परा बहुत प्राचीन है। हिन्दी- साहित्य में नाथों और सिद्धों में यह परम्परा अपने वैभव में हमें दिखाई देती है। विद्यापति और कबीर के पदों में भी हमें दृष्टिकूट शैली के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। महाकवि सूर के काव्य में दृष्टिकूट शैली का पूर्ण विकास हमें दिखाई देता है। ` सूरसागर ` और ` सूर- सारावली ` में तो कहीं- कहीं महाकवि ने इस शैली को अपनाया है परन्तु ` साहित्य- लहरी ` तो पूर्णत: कूट- काव्य है। महाकवि सूर ने गोपियों के साथ जो कृष्ण की लीलाओं का चित्रण किया है उन लीलाओं का अभक्त हृदय पर विपरीत प्रभाव न पड़े, सम्भवत: इसी कारण सूर ने दृष्टिकूट शैली को अपनाया है। ` सूरसागर ` में यमक के माध्यम से कवि का काव्य- चातुर्य द्रष्टव्य है :-

` सारंग बिकल भयौ सारंग मैं, सारंग तुल्य सरीर।
परयौ काल सारंग - बासी सौं, राखि लियौ बलबीर ।। 33 ।।

1- सूरदास - डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा - पृष्ठ - ५५५ ।

2- हिन्दी शब्द सागर (खण्ड 5) - पृष्ठ - 2350 ।

4)

यहां ` सारंग ` शब्द के विविधार्थ काव्य- सौन्दर्य का विषय है । वैसे कथात्मक, आलंकारिक और शब्द- वैचित्र्य मूलक तीनों प्रकार के दृष्टिकूट हमें सूर - साहित्य में दिखाई देते हैं । उदाहरण प्रस्तुत है :

कथात्मक रूप में :- ` राधे जलसुत कर जु धरे ।
अति हीं अरुन, अधिक छवि उपजत तजत हंस सगरे ॥
चुगन चकोर चले ह्वै सनमुख, झिलके रहे खरे ।
तब बिहंसी वृषभानु- नन्दनी दोऊ मिलि झगरे ॥
रवि अरु ससि दोऊ एकै रथ सनमुख आनि अरे ।
सूरदास प्रभु कुंजबिहारी आनन्द उमंगि भरे ॥ 1810 ॥

आलंकारिक रूप में :- दधि - सुत जामें नन्द दुवार ।
निरखि नैन अरुझ्यौ मनमोहन रटत देहु कर बारंबार ॥
दीरघ मोल कह्यौ व्यौपारी, रहे ठगे सब कौतुक हार ।
कर ऊपर लै राखि हरि, देत न मुक्ता परम सुठार ॥ 791 ॥

शब्द- वैचित्र्य मूलक (इनको ध्वनि परिवर्तक भी कहा जाता है क्योंकि इन में शब्द की ध्वनि में कुछ परिवर्तन करने से अर्थ निकलता है[1] ।) :-

` सखी री । सुन परदेसी की बात ।
अरध बीच दै गये धाम कौ हरि अहार चलि जात ।
ग्रह नक्षत्र अरु वेद अरध कर, को बरजै मुहि खात ।
रवि पंचम संग गये स्याम घन, ताते मन उकलात ।
कहु सहुक्त कब मिलै ` सूर ` प्रभु प्रान रहत न तु जात ॥

इस कूट में विरहिणी नायिका मथुरावासी परदेशी कृष्ण की बात सुनाती है और कहती है कि कृष्ण के पन्द्रह दिन में लौटने की अवधि के स्थान पर पूरा महीना बीत

1- सूर की साहित्य - साधना - सं० डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र,
(सूर के दृष्टिकूट-डॉ० शंकरदयाल चौऋषि)-पृ० 245 ।

गया । वह निराश होकर विष खाना चाहती है। इन शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं - अरध बीच धाम = आधा, घर का पक्ष = पखवाड़ा = 15 दिन । हरि अहार = मांस (जिसे ध्वनि परिवर्तन कर ` मास ` बनाया गया है) तथा ग्रह नक्षत्र अरू वेद अरध = ग्रह 9 + नक्षत्र 27 + वेद 4 = 40 का आधा बीस (जो ध्वनि परिवर्तन से ` विष ` बन गया है।

सूर के कूट- काव्य के विषय में डॉ० शंकरदयाल चौऋषि लिखते हैं - ` सूरदास जी ने ` सूरसागर तथा ` साहित्य - लहरी ` में प्राय: समस्त कूट - कला एवं कूट- प्रक्रिया को प्रस्तुत कर दिया है, जिसे उनके पूर्ववर्ती संस्कृत तथा उसकी अन्य परवर्ती भाषाओं के कूटकारों ने प्रयुक्त किया था । इतना ही नहीं यह भी निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सूर के कूटों में कूट- काव्य का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप मुखरित हुआ है ।[1] `

गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में हमें इस प्रकार के दृष्टि- कूट का रूप दिखाई नहीं देता । सूरदास जी ने तो राधा- कृष्ण की केलि - क्रीड़ा का वर्णन प्रमुख रूप से इसी काव्य- शैली में किया है लेकिन गुरू गोबिन्दसिंह जी ने काव्य में उक्ति- वैचित्र्य का सहारा कम ही लिया है। फिर भी, अलंकार और रस - व्यंजना के अन्तर्गत उनके कुछ पद पूरी तरह से तो नहीं पर कुछ - कुछ रस- व्यंजना - प्रधान शैली जैसे लगते हैं ।

गुरू गोबिन्दसिंह प्रणीत ` कृष्णावतार- कथा ` कृष्ण के वीर रूप को ले कर अधिक चली है। इस कारण इस में दुराव- छिपाव वाली शैली का विशेष प्रयोग गुरू जी ने नहीं किया है। हां, जब वो प्रतीकों को लेते हैं तो लगता है जैसे इस शैली को छू रहे हों :-

` गोपन की बरजी न रही सुर कान्ह के सुनबे को त्राधी ।।
नास चली अपने गृह इउ जिमु मत्त जुगीस्वर इंदुहि लाधी ।।

1- सूर की साहित्य - साधना - सं० डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र(सूर के दृष्टिकूट- डॉ० शंकरदयाल चौऋषि)- पृ० 248 ।

देखन को मुखि त्राहि चली जोउ काम कला हुको है फुन बाधी ।।
डार चली सिर के पट इउ जनु डार चली सम लाज बहाधी ।। 450 ।।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि दृष्टिकूट शैली के क्षेत्र में गुरू - गोबिन्दसिंह की अपेक्षा महाकवि सूर की पैठ अधिक थी ।

गुरू गोबिन्दसिंह की काव्य- शैली में उनके व्यक्तित्व की झलक स्पष्ट दिखाई देती है और व्यक्तित्व का निर्माण तत्कालीन वातावरण द्वारा होता है। अत: गुरू जी की काव्य- शैली के विवेचन से पूर्व तद्युगीन वातावरण का संकेत भी आवश्यक होगा । - गुरू जी के युग में, औरंगज़ेब का शासन था । अन्याय, अनीति, अनाचार एवं अत्याचार का बोल- बाला था । समाज में दुरव्यवस्था फैली थी, भोग-विलास का बोल- बाला था, निर्बल - जनता इन अत्याचारों का विरोध कर सकने की स्थिति में नहीं थी । सर्वत्र मानवता की हत्या की जा रही थी। तो, ऐसी भयंकर बेला में जब अपना शासक ही अपनी प्रजा के साथ अनाचार एवं अत्याचार कर रहा था, तो गुरू गोबिन्दसिंह ने इस अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाई । गुरू जी का सम्पूर्ण जीवन इन संघर्षों में ही व्यतीत हुआ । और इन संघर्षों के कारण ही उनकी काव्य शैली में ओज, प्रखरता, तीव्रता एवं अपूर्व उत्साह का समावेश सहज ही हो गया था । गुरू जी की वीर- भावना वस्तुत: भक्ति - भावित थी । योद्धा बनने से पूर्व वह एक धर्म- सम्प्रदाय के धर्म गुरू थे । धर्मगुरू होने के नाते उनका अधर्म से विरोध तो स्वाभाविक ही था । उनकी काव्य- रचना का उद्देश्य भी धर्म- युद्ध था । इसके अतिरिक्त गुरू जी की रचनाएं रीतिकालीन परिवेश में रची गई थी । अत: तत्कालीन प्रभाव भी उन पर स्पष्ट है । उनकी शृंगार- भावना रीतिकाल की ही देन है ।

इस प्रकार ` गुरू गोबिन्दसिंह अपने युग में प्रचलित हिन्दी की सभी काव्य-शैलियों से पूरी तरह परिचित थे । वीरगाथा कालीन पद्धटिका शैली, भक्तिकालीन गेय- पद- शैली और रीतिकालीन सवैया- कवित्त शैली आदि सभी काव्य- शैलियों का निर्वाह अद्भुत सफलता से उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है ।[1] `

1- गुरू गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता - डॉ० महीपसिंह - पृ० ३५

37)

उनकी ` प्रत्येक शैली का अपना विशिष्ट प्रवाह और प्रभाव है । कवित्त-सवैया शैली का प्रयोग सालंकार चित्रण के लिये हुआ है। ऐसा चित्रण चाक्षुस सौन्दर्य का सृजन करता है। पद्धटिका- शैली का प्रयोग अलंकारहीन प्रकृत- चित्रण के लिये हुआ है । पद्धटिका शैली का वैशिष्ट्य युद्ध की गति और ध्वनि को अंकित करने में है । ऐसे अंकन से मुख्यत: कर्णेन्द्रियों की संतुष्टि होती है। युद्ध वर्णन के लिये विष्णुपद शैली का प्रयोग बहुत कम देखने में आता है। वीरगाथाकाल के कवियों अथवा रीतिकालीन कवि भूषण में यह प्रवृत्ति नहीं पाई जाती । गुरू गोबिन्दसिंह ने पारसनाथ ब्रह्मावतार में इस शैली का प्रयोग युद्ध को अत्यन्त कोमल कर्म के रूप में प्रस्तुत करने के लिये किया है । पथ अथवा गीत का प्रयोग अधिकतर प्रणय निवेदन के लिये ही होता रहा है । गीतों में चित्रित युद्ध- दृश्यों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है जैसे युद्ध - सुन्दरी कवि की अपनी प्रेयसी है। युद्ध के लिये ऐसे आत्मीय अनुराग के दर्शन अन्यत्र सर्वत्र अलभ्य है[1] ।`

5- अलंकार -काव्य को अलंकृत करने की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है । काव्य शास्त्र से सम्बद्ध केवल अलंकार- सम्प्रदाय के आचार्यों ने ही नहीं, अपितु अन्य आचार्यों ने भी काव्य में अलंकारों का महत्व स्वीकार किया है । ` दृश्य, घटना स्वभाव, गुण इत्यादि का सौन्दर्य बोध करने अथवा प्रस्तुत को मूर्त रूप देने के लिये कवि जो अप्रस्तुत- योजना करता है वह काव्य- शास्त्र में ` अलंकार ` के नाम से प्रख्यात है। कवि इस अप्रस्तुत - योजना के द्वारा अपनी कल्पना का वैभव प्रदर्शित कर पाठक हृदय को मोह लेता है। काव्य में अप्रस्तुत योजना अथवा अलंकारों का प्रयोग कोई नई बात नहीं है । - - यह बात अवश्य है कि अलंकारों का प्रयोग औचित्य की दृष्टि में रखकर करना चाहिये । अलंकार- भाव- साधन है। अत: भावों में तीव्रता लाने के लिये उनका उपयोग होना चाहिये । वे रस- पोषण में सहायक हैं[2] । ` वस्तुत: ` भाव `

1- गुरूमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी काव्य- डॉ0 हरिभजनसिंह - पृ0 242 ।

2- हिन्दी और तेलुगु कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन (सूर एवं पोतना के संदर्भ में)- डॉ0 एन0 एस0 दक्षिणामूर्ति -पृ0 3 8 ।

38)

और ` अलंकार ` का सम्बन्ध अटाण्ण है। भाव का सम्बन्ध व्यक्ति के अभ्यन्तर जगत् से होता है और इन भावों की अभिव्यंजना के लिये ` अलंकारों ` का प्रयो। मुख्य साधन के रूप में होता है । इस प्रकार अलंकारों का भी मानव- जीवन के अभ्यन्तर से गहन सम्बन्ध है । अत: अलंकार काव्य के साधन ही होने चाहिये, साध्य नहीं ।

सूरदास और गुरु गोबिन्दसिंह - दोनों ने ही अपने काव्य में अलंकारों को यथोचित स्थान प्रदान किया है । वस्तुत: उनके काव्यों में अलंकारों के प्रयोग के लिये अलंकारों का प्रयोग नहीं हुआ, वरन् वे स्वयं ही आ गये हैं। सूरदास एवं गुरु - गोबिन्दसिंह द्वारा प्रयुक्त कतिपय अलंकारों का अवलोकन प्रस्तुत है :-

1- शब्दालंकार - शब्दालंकारों में शब्दों के प्रयोग द्वारा कविता में लय, संगीतात्मकता एवं चमत्कार उत्पन्न किया जाता है। इन अलंकारों में ` अनुप्रास ` अलंकार का विशेष महत्व है। इससे नाद- सौन्दर्य के साथ- साथ भाव- सौन्दर्य में भी वृद्धि होती है । सूर और गुरु जी की इन पंक्तियों में ` अनुप्रास ` की छटा दर्शनीय है :-

सूरदास :- (1) कामी, कृपन, कुचील, कुदरसन, को न कृपा करि तार्‌यो ।

(2) अज- अनीह- अविरुद्ध एक रस, यहै अधिक ये अवतारी।

(3) चटकीलौ पर लपटानौ कटि पर, बंसीबट जमुना के तट राजत नागर न
मुकुट की लटक,मटक भृकुटी की लोल,कुंडल चटक आछी,सुबरन की लुकुट

गुरु गोबिन्दसिंह के काव्य में :-

(1) बिस्वंभर बिस्वनाथ बिसेस बिस्व भरन हैं ।(द0 ग्र0 पृ0 26)

(2) नीलकंट नरहरि नारायण नील बसन बनवारी ।
परम पुरख परमेसर सुआमी पावन पउन अहारी ।।
माधव महाजोति मध मरदन मान मुकुन्द मुरारी ।। 1 ।।
निरविकार निरजुरनिद्रा बिनु निरबिख नरक निवारी ।।
(द0 ग्र0 पृ0 710)

1- सूर सागर , पद सं0 101, 789, 2019 .

39)

अनुप्रास के अन्तर्गत अंत्यानुप्रास के उदाहरण दोनों कवियों के काव्यों में बहु संख्या में उपलब्ध होते हैं :-

(1) अक्षत - दूब दल बंधार, लालन को गांठ जुराइ,

+ + +

पंचरंग सारी मंगार, वधू जननि पैहराइ ।

(2) देखि री नंद कुल के उधारी ।

मातु पितु- दुरित- उद्धरन ब्रज उद्धरन धरनि उद्धरन, सिर मुकुट धारी ।

+ + + +

पतित उद्धरन, निज भक्त उद्धरन, जन दीन उद्धरन, सिर मुकुट धारी ।[1]

(1) माते मतंग जरे जर संग अनूप उतंग सुरंग सवारे ।।
कोट तुरंग कुरंग से कूदत पउन के गउन को जात निवारे ।।
मारी भुजान के भूपमली विधि निआवत सीस न जात विचारे ।।
रते भए तो कहा भए भूपति अन्त को नागे ही पाइ सिधारे ।

(द० ग्र० पृ० - 22)

लाटानुप्रास- (1) कमल नयन के कमल बदन पर बारिज बारिज वारि ।

(सूरसागर :)

(1) अखंड खंड खंड के अडंड डंड दंड हैं ।।
अजीत जीत जीत के विसेस राज मंड है । (द० ग्र० पृ० -40)

यमक- इसमें एक ही शब्द की आवृत्ति अर्थान्तर के साथ होती है ।

सूरदास:(1) ऊधो जोग जोग हम नाहीं ।

(2) सारंग विनय करति सारंग सौ सारंग दुख बिसरावहु ।

गुरू जी कहते हैं :-

(1) भूलि पड़ी प्रभु कीजै छिमा मुहि नारि नवाइ के नारि सुनाई(द०ग्र०पृ०528)

1- सूरसागर , पद सं० - 713 , 3699

(2) हरि सो मुख है हरिती दुख है अलके हरिहार प्रभा हरनी है ।।
लोचन है हरि से सर से हरि से भरुटे हरि सी बरुनी है ।।
केहरि सो करिहा चलबो हरि पै हरि की हरिनी तरनी है ।।
है कर मै हरि पै हरि सो हरि रूप किमेहरि की धरनी है ॥

(चण्डी चरित्र प्रथम - 88)

गुरू जी की उक्त पंक्तियों की तुलना सूर की निम्न पंक्तियों से हो सकती है :-

` हरि मोकौं हरि - भख कहि जु गयौ ।
हरि दरसत हरि मुदित उदित हरि, हरि ब्रज हरि जु लयौ ।।
हरि रिपु ता रिपु ता पति की सुत, हरि बिनु प्रजरित दहे ।।५०७॥

वक्रोक्ति - इस में वक्ता के कथन का अभिधापरक अर्थ न ग्रहण करके श्रोता उस से चमत्कारपूर्ण भिन्न अर्थ लगा लेता है । कुन्तक जैसे आचार्यों ने तो वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा तक माना है। अन्य विद्वानों ने वक्रोक्ति को एक अलंकार के रूप में मान्यता दी है। सूर की वक्रोक्तियों के संबन्ध में डॉ० हरवंशलाल शर्मा लिखते हैं :- " जिस प्रकार उमड़ती हुई सरिता अपने कूल- नियमित सरल पथ में प्रवाहित होने में असमर्थ होकर नवीन- नवीन मार्ग खोज लेती है, इसी प्रकार अनुभूति और भावुकता के चरम विकास की स्थिति में कवि के कंठ से निकली हुई भाव- रस धारा सीधी सरल भाषा के कूलों में न समाती हुई चमत्कारपूर्ण वक्र कथनों के विस्तृत क्षेत्र में फैल जाती है । असाधारण भावोद्रेक के कारण वर्णन में, वर्णन - शैली में वक्रता और चमत्कृति आ ही जाती है, यह स्वाभाविक है ।[1] `

सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने वक्रोक्तियों का प्रयोग वियोग-प्रसंग(भ्रमरगीत) में उपालम्भ के रूप में भी किया है। सूर के इस पद में वक्रोक्ति का कैसा सुन्दर प्रयोग है :-

---

1- सूर और उनका साहित्य- डॉ० हरिवंशलाल शर्मा - पृ० 296 ।

सूरदास:- ऊधौ स्याम सखा तुम साँचे ।
की करि लियौ स्वांग बीचहि तैं वैसहि लागत काँचे । ५।३५

गुरू जी के काव्य में :-

` पाइ घनो सुख पै मन में अति ऊपर मान सो बोल सुनायो ।
चन्द्रमगाहु सो कैल करो इह ठौर कहा तजि लाजहि आयो ॥ 729 ॥
(कृष्णावतार, छ0 सं0- 729)

वीप्सा - जहां प्रभाव सृष्टि के लिये एवं भाषा में गति तथा भाव में तीव्रता उत्पन्न करने के लिये शब्द को दुहराया जाये, वहां वीप्सा अलंकार होता है।

भक्ति, शृंगार एवं युद्ध के प्रसंगों में गुरू जी ने इसका खूब प्रयोग किया है :-

` मेरो धनौ हितु है तुम सो सखी अउर किसी नहि ग्वारनि माही ।।
तेरे खरे तुहि देखत हौं बिन त्वै तुहि मूरत की परछाही ॥
यों कहि कान्ह गही बहियां चलिये हमसों बन मै सुख पाही ॥
हहा चबु मेरी सौं, मेरी सौं, मेरी सौं तेरी सौं तेरी सौं नाहीं जु नाही ॥
33 ॥

महाकवि सूर के काव्य में वीप्सा का सचेष्ट प्रयोग कहीं नहीं हुआ है अपितु उनके पदों में तो वीप्सा का समावेश अनायास ही हो गया है । जैसे :-

` मुरि- मुरि चितवत नंन्द गली । `
` बार- बार मोहर मुख कारन आवति फिरि- फिरि संग अली । `
` निरखि- निरखि मुख कहति लाल सौं, मौं निधनी के धनियां । `

2- अर्थालंकार - हमारे विवेच्य कवियों ने शब्दालंकारों का जितना हृदयग्राही वर्णन किया है, अर्थालंकारों का भी उतना ही सुन्दर अपितु उससे भी अधिक मनोहारी प्रयोग किया है। सूरसागर और दशमग्रन्थ में अर्थ- सौन्दर्य पूर्ण पदों की भरमार है। डॉ0 हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ` हिन्दी- साहित्य ` में लिखते हैं - ` सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानों अलंकार शास्त्र हाथ जोड़ कर उनके पीछे-पीछे

42)

दौड़ता है । उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है । - - पद- पद मिलने वाले अलंकारों को देखकर कोई अनुमान नहीं कर सकता कि कवि जान-बूझ कर अलंकारों का उपयोग कर रहा है। पन्ने पर पन्ने पढ़ते जाइये केवल उपमाओं और रूपकों की घटा, अन्योक्तियों का ठाठ, लक्षण और व्यंजना का चमत्कार [1] । गुरू जी के विषय में भी यही बात कही जा सकती है । उनके काव्य में भी उपमा रूपक और उत्प्रेक्षाओं का वैभव दृष्टिगत होता है। डॉ0 महीपसिंह तो कहते भी हैं - " दशम ग्रन्थ अलंकारों का अक्षय भंडार है। यदि कोई गोता लगा सके तो चाहे जितने अलंकार निकाल सकता है। अर्थालंकारों के सभी वर्ग साम्यमूलक, वैषम्यमूलक क्रम या शृंखला मूलक, न्याय मूलक, कारण- कार्य सम्बन्ध मूलक, निषेध मूलक, गूढार्थ-प्रतीति मूलक आदि के अलंकार अपने भेदों - उपभेदों सहित असंख्य मात्रा में उपलब्ध हैं [2] । "

अत: दोनों कवियों के काव्य में प्रमुख अर्थालंकारों के कुछेक उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं :-

उपमा- उपमा का शब्दार्थ है - सादृश्य, समानता तथा तुल्यता आदि [3] । अलंकारों में उपमा का महत्व भी बहुत है । उपमा गुरू गोबिन्दसिंह का सर्वप्रिय अलंकार है । उनकी रचनाओं में उपमा के अनेक भेदोपभेद मिलते हैं । एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

" ता छवि की उपमा अति ही कवि स्याम कही मुख तै कुनि ऐसे ।
भूमि द्रखी मन में अतिही जनु पालत है रिपु दैतन जै से ॥ 103 ॥

1- हिन्दी- साहित्य- डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी - पृ0 184 ।

2- गुरू गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता - डॉ0 महीपसिंह -पृ0-305 ।

3- हिन्दी साहित्य कोश, - पृष्ठ - 154 ।

सूरदास - ` हरि दरसन की साध मुई ।
उड़िये उड़ी फिरति नैननि संग फर फूट ज्यौं आक रुई ॥
+ + +
सूखति सूर धान- अंकुर सी, बिनु वर्षा ज्यौं मूल तुई ॥ २५७३ ॥

मालोपमा - ` स्याम मह राधा बस ऐसे ।
चातक स्वाति, चकोर चन्द्र ज्यों, चक्रवाक रवि जैसे ॥
ज्यों चकोर बस सरद चन्द्र के, चक्रवाक बस भान ।
जैसे मधुकर कमल कोस बस, त्यों बस स्याम सुजान ॥
ज्यों चातक बस स्वाति बूंद है, तन के बस ज्यों जीय ।
` सूरदास ` प्रभु अति बस तेरे, समाकि देखि धौं हीय ॥ २६७१ ॥

गुरू जी की इन पंक्तियों में उपमा का सुन्दर प्रयोग हुआ है -

` मान ते जिठ तम पउन ते जिउ घन मोरते जिउ फन तउ सकुचाने ॥
सूर ते कातर, कूरते चातरू सिंह ते सातुर हरिण डराने ॥
सूमते जिउ जस बिउगते जिउ रस पूत कपूत ते जिउ बंसु हाने ॥
धरम जिउ क्रुद्धो भरम सुबुद्धो चंडके जुद्धो दैत पराने ॥ `

(चंडी चरित्र प्रथम - 146)

उत्प्रेक्षा - उत्प्रेक्षा की छटा दिखाने में सूर और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ही सिद्धहस्त हैं। दोनों के काव्यों में उत्प्रेक्षा के अनंत उदाहरण मिलेंगे । सूर की इन पंक्तियों को देखिये :-

सूरदास:- ` कटि तट पीत बसन सुदेस ।
मनौ नव घन दामिनी, तजि रही सहज सुदेस ।
कनक मनि मेखला राजत, सुभग स्यामल अंग ।
मनौ हंस- अकास- पंगति, नारि - बालक संग । २६८ ।

और गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

` हसि बात कही संग गोपिन के कवि स्याम कहै ब्रिजमान जई ।
मनो आप ही ते ब्रजा सुरुचि रूच सो इह रूप अनूप मई ।

44)

हरि को पिखि के निहुराइ गई उपमा तिह की कवि भाख दई ।
मनो जोबन भार सह्यो न गयो तिह ते ब्रिज भामन नीच भई ।।545 ।।

रूपक - उत्प्रेक्षा की भांति रूपक का रूप भी सूरसागर और दशम - ग्रन्थ में पग-पग पर देखा जा सकता है। सूरसागर के विनय के पदों में रूपक का सुन्दर प्रयोग हुआ है। अपनी अविद्या का वर्णन करते हुये उसे दूर करने की प्रार्थना करते हुये सूरदास जी कहते हैं -

` अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल ।
काम क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ।
महामोह का नूपुर बाजत, निन्दा सब्द रसाल ।
भ्रम- भोयो मन भयो पखावज, चलत असंगत चाल ।
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल ।
माया कौ कटि फेंटा बांध्यो, लोभ तिलक दियो भाल ।
कोटिक कला काछि दिखलाई, जल- थल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सबै अविद्या दूर करौ नंदलाल ।। 2728 ॥

गुरू गोबिन्दसिंह के नीचे उद्धृत पद में रूपकालंकार की छटा दर्शनीय है :-

` रे मन ऐसो करि सन्यासा ।
बन ते सदन सबै करि समझहु मनहि माहि उदासा ।
जत की जटा जोग को मंजनु नेम के नखन बनाओ ।
ज्ञान गुरू आत्म उपदेसहु नाम विभूति लगाओ । `

(द0 ग्र0 शब्द सं0- 3)

उल्लेख - इसमें एक ही वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन या उल्लेख किया जाता है । गुरू जी ने स्तुति के प्रसंग में इस अलंकार को बहुत अधिक प्रयुक्त कियाहै :-

` करुणालय हैं। अघघालय हैं ।।
खल खंडन हैं । महि मंडन हैं ।। `(द0 ग्र0, जापु छ0 सं0- 170)

सूरदास की निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

` हरि प्रति- अंग नागरि निरखि ।
दृष्टि रोमावली पर रही, बनत नाहीं परखि ।।
कोउ कहति यह काम- सरनी, कोउ कहति नहिं जोग ॥
कोउ कहति अलि-बाल-पंगति, जुरी इक संजोग ॥
कोउ कहति अहि काम पठयौ, डसै जिनि यह काहु ।
स्याम रोमावली को कवि सूर नाहिं निबाहु ॥ १२५५

भ्रान्ति - काव्य में भ्रम अथवा भ्रांति का आयोजन करके कवि अपनी कल्पना - शक्ति का अद्भुत चमत्कार दिखाता है। भ्रम का क्षेत्र अति विस्तृत है जिस में मानव की अनेक मनोदशाएं एवं प्रकृति के अनेक रूप सम्मिलित हैं। गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने काव्य में अनेक भ्रमात्मक स्थलों की बड़ी उत्कृष्ट अभिव्यंजना की है । यथा :-

` घन जानके मोर नच्यो बन मांझ चकोर लख्यो ससि के सम है।
मन कामन काम स्वरूप भयो प्रभ दासन जानयो नरोतम है ।
वर जोगिन जान जुगिसर ईसररोगन मान्यो सदा छम है ।
हरि दालन बालन रूप लख्यो जीय द्रव्जन जान्यो महा जय है ॥ 1269 ॥

सूरदास- ` छुटे केस मज्जन समय, देखि बिरध अहि मोर ।
मोर- कुहू- निसि मेरू तें, उतरि चले उहिं ओर ॥ `(3231)

सन्देह- भ्रम अथवा भ्रान्ति में तो विपरीत ज्ञान के पूर्णतया सत्य ही लगने लगता है लेकिन ` सन्देह ` में अनिश्चय की भावना बराबर बनी रहती है और हृदय में शंका रहती है । गुरु जी ने ` कृष्णावतार ` में इसका भी यथेष्ट प्रयोग किया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :-

` प्रेत लग्यो किधौं प्रीत लगी कि कछु अब ठग भूरी सी खाई ।
भाखत भी सखी मोको अबै मोरो दे गयो प्रीतम आज दिखाई ॥2193 ॥

सूरदास जी ने भी ` सन्देह ` के बहुत सुन्दर चित्र खींचे हैं :-

` देखि सखी अधरन की लाली ।
+ +
मनो नीलमनि पुट मुक्तागन बंदन भरि बगराई ।
+ + +

46)

किंधौ सुभग बंधूक सुमन पर झलकत जलकन कांति ।
किंधौ अरुन अंबुज बिच बैठी सुन्दरताई आई ।
` सूर ` अरुन अधरन की सोभा बरनत बरनि न जाइ ॥२५८०॥

उदाहरण -जहां किसी तथ्य का प्रतिपादन कर उसके स्पष्टीकरण के लिये वैसे ही किसी दूसरे तथ्य को उदाहरण रूप में प्रतिपादित किया जाये वहां ` उदाहरण ` अलंकार होता है । दोनों कवियों ने उदाहरण के सुन्दर रूप प्रस्तुत किये हैं, यथा -

सूरदास- ` मेरो मन पिय जीव बसत है पिय जिय मो में नाहिं ।
ज्यों चकोर चंदा को निरखत इत उत दृष्टि न जारू ।

गुरू गोबिन्दसिंह - ` कान्ह को रूप निहार रही प्रिया स्याम कहे कवि होए इकाठी ।
जिऊ सुर की धुन को सुनके मृगनी चल आवत जात न नाठी ॥459 ॥

विभावना- जहां कारण के न रहने पर भी उसके फलस्वरूप होने वाले कार्य का वर्णन हो वहां विभावना अलंकार होता है । दोनों कवियों के काव्य में इसके उदाहरण द्रष्टव्य है :-

सूरदास - ` मुरली सुनत अचल चले ।
थके, चर,जल झरत पाहन, विफल वृक्ष फले ।।६४८।

गुरू गोबिन्दसिंह- ` ले मुरली अपने कर कान्ह किधौ अति ही हित साथ बजावे ।
पौन चले न, रहे जमुना थिर, मोहि रहे धुन जो सुन पावे ॥457 ॥

सूरदास:- ` जाकी कृपा पंगु गिर लंघै , अन्धे को सब कुछ दरसाई ।
बहिरो सुनै गुग पुनि बोलै, रंक चले सिर छत्र धराई ।। ` ॥

गुरू गोबिन्दसिंह :- ` मूक उचरे सास्त्र, खटि पिंग गिरन चढ़ि जाइ ।
अंध लखे बधिरो सुने जो काल कृपा कराइ ॥ (द० ग्र० पृ० 47)

स्वभावोक्ति- जीवन में जैसा देखा अथवा सुना जाता है, उसका ठीक उसी रूप में वर्णन किया जाये तो वहां ` स्वभावोक्ति अलंकार ` होता है । जैसे :- सूरदास ने बालकों की स्वाभाविक मनोवृत्ति का कितना सुन्दर वर्णन किया है :-

` मैया, कबहिं बढ़ेगी चोटी ?
किती बार मोहिं दुध पियत भई यह अजहूं है छोटी ।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लांबी मोटी ।793 । `

` कृष्णावतार ` की यशोदा का कृष्ण को यह सन्देश कितना स्वाभाविक है : -

` जसुधा इह भांति की विनती कहियो संग पूत कन्हैये ।
ऊधव ता संग यू कहिये बहुरो फिर आइके आखन लइये ॥ `

इन दोनों कवियों ने भगवान के गुणानुवाद में अतिशयोक्ति, स्वभावोक्ति, अन्योक्ति और विरोधाभास अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है । अर्थान्तरन्यास के उदाहरण भी जहां वहां पाये जाते हैं । कृष्ण के रूप- वर्णन में सागरूपक एवं उपमा अलंकारों का सुन्दर रूप देखने को मिलता है। महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह - दोनों ने ही अपनी अप्रस्तुत- योजना में मानव और मानवेतर सभी प्रकार के व्यापारों का उपयोग किया है। इस प्रकार इनकी अलंकार- योजना में प्रकृति के साथ भी सहज संबन्ध हो गया है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हमारे दोनों कवि औचित्यपूर्ण रीति से अलंकारों का प्रयोग करने में सिद्धहस्त हैं। दोनों ने ही अपनी कविता - कामिनी को अलंकारों से अलंकृत करते हुये उसकी आत्मा (रस) को भी ऊंचा उठाने का सफल एवं सुन्दर प्रयास किया है ।

6- भाषा-विन्यास- वास्तव में भाषा ही तो भावभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है जो शब्दों का समूह मात्र होते हुये भी अपने गुणों(माधुर्य, ओज, प्रसाद) शक्तियों, (अभिधा, लक्षणा, व्यंजना) एवं गति, लय तथा चित्रात्मकता आदि विशेषताओं से अलंकृत होने के कारण कवि हृदय के मूक भावों को वाणी प्रदान करता है। भाषा के माध्यम से ही कवि अपनी प्रतिभा, कल्पना, अनुभूति एवं उद्देश्य को अभिव्यक्ति देता है ।

महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही अपने भावों एवं

विचारों को अधिव्यंजित करने के लिये ` ब्रजभाषा ` को ही माध्यम बनाया है।

वास्तव में इस ब्रजभाषा को ब्रजभाषा के धनी महात्मा सूरदास ने सजाया था, नंददास ने इसमें लालित्य भरा था, गोस्वामी तुलसीदास ने इसे परिष्कृत किया था , रसखान ने इसमें चुस्ती और माधुर्य की सृष्टि की थी ,बिहारी ने इसे समास- शक्ति सम्पन्न बनाया था और मतिराम ने इसमें सरसता एवं सरलता का संचार किया था । ` उसी सुललित एवं माधुर्य युक्त कोमल ब्रजभाषा को गुरू - गोबिन्दसिंह ने अपनी वीर- भावना के अनुकूल ओजमयी एवं सशक्त बनाने का सफल प्रयास किया । लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि गुरू जी की ब्रजभाषा में माधुर्य एवं कोमलता है ही नहीं । ब्रजभाषा के उपर्युक्त सभी गुणों का प्रभाव गुरू - गोबिन्दसिंह के शृंगार, भक्ति सम्बन्धी स्थलों में दृष्टिगत होता है । सवैयों और कवित्तों में उनकी भाषा का नाद- सौन्दर्य एवं श्रुति- माधुर्य देखते ही बनता है, यथा ` कृष्णावतार ` में :-

` प्रेम कही अपने मुख तें, इह भांति कह्यो वृखभान की जाई ।
स्याम गये मथुरा तजिके वृज ही अब धौं हमरी गति काई ।
देखत ही पुर की तिय को सुकके तिनके रस में जिय आई ।
कान्ह लयो कुबजा बसिके टसक्यो न ही यो कसम्यो न कसाई ।।911 ।। `

और - ` ए हो लला नन्दलाल कहै सब ग्वारनियां अति मैन भरी ।
हमरे संग आवहु खेल करो न कछु मन भीतरी संक करी ।
नैन नचाइ कछु मुसकाइके भौंह दुऊ करि टेढ़ धरी ।
मन यू उपजी उपमा रस की मनहु कान्ह के कंठही फांसपरी ।529 ।

महाकवि सूरदास की भाषा के विषय में डॉ० हरिवंशलाल शर्मा लिखते हैं - ` जो कोमलकान्त- पदावली, भावानुकूल शब्द- चयन, सार्थक अलंकार- योजना, धारा-वाही प्रवाह, संगीतात्मकता और सजीवता सूर की भाषा में है, उसे देखकर तो यही कहना पड़ता है कि सूर ने ही सर्वप्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया । `[1]

1- सूर और उनका साहित्य - डॉ० हरिवंशलाल शर्मा - पृ० - 304 ।

वास्तव में जिस कवि का शब्द-भण्डार जितना अधिक विशाल होगा उतनी ही उसकी भाषा प्रभावोत्पादक एवं समृद्ध होगी । कवि अपनी भावाभिव्यंजना के लिये भावानुकूल शब्दों का ही चयन करते हैं । श्रेष्ठ कवि किसी भाषा विशेष की सीमा में बंधे न रहकर, अपनी अभिव्यक्ति में तीव्रता और सुन्दरता लाने के लिये प्राचीन और अर्वाचीन दोनों प्रकार की शब्दावली का प्रयोग करते हैं । कभी तो वो देशी शब्दों को अपनाते हुये दिखाई देते हैं तो कभी विदेशी शब्दों का अभिनन्दन करते हैं । अत: सूर और गुरू जी की भाषा के सम्बन्ध में विचार करते समय सर्वप्रथम शब्द-सम्पत्ति पर विचार करना होगा :-

1- शब्द - कोष - हमारे कवियों का शब्द- भण्डार विशाल है । दोनों ने ही देशी- विदेशी, साहित्यिक - असाहित्यिक, तत्सम- तद्भव आदि शब्दों का उदारता-पूर्वक प्रयोग करके अपनी भाषा की अभिव्यंजना शक्ति और अर्थ वैभव को द्विगुणित किया है। शब्दों को तोड़ा- मरोड़ा भी है । दोनों कृतियों में अन्य भाषाओं का समावेश भी ब्रजभाषा की प्रकृत्यनुकूल हुआ है जिससे भाषा शक्तिशाली एवं प्रभविष्णु हो जाती है ।

तत्सम- शब्द - गुरू गोबिन्दसिंह और सूरदास दोनों ने ही संस्कृत के तत्सम शब्दों का समुचित प्रयोग किया है। दशम- ग्रंथ में अनेक छंद ऐसे हैं जिन में संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रचुरता है। संस्कृत के प्रति उनकी अटूट आस्था का पता इसी से चल जाता है कि उन्होंने प्रत्येक रचना का आरम्भ और अन्त संस्कृत रचनाकारों की शैली के अनुरूप ही किया है -

प्रारम्भ - अथ कृष्णावतार इक्कीसमों अवतार कथनं ।

अध्याय समाप्ति पर- इति श्री विचित्र नाटके कृष्णावतारे देवकी वासुदेव को हारबे वर्णनं समाप्तं ।

अन्त - इति श्री दशमसिकंध पुराणे विचित्र नाटक ग्रंथे कृष्णावतारे ध्याये समापतंम शुभमस्तु ।

संस्कृत के तत्सम शव्द- ध्यान, नीर, विवेक, अरूप, अनूप, अकाम, अना ।, करूणालय , महिमा, कीर, कुरंग, कपोत, कंचन, कटि, केहरि, मुक्ताहल, कंठ, ाघ, इत्यादि अनेक शव्द गुरू जी के ` कृष्णावतार ` में व्यवहृत हुये हैं ।

दशम- ग्रंथ की अन्य कृतियों पर तो संस्कृत भाषा का इतना अधिक प्रभ व है कि प्राय: सम्पूर्ण छन्दों के स्वरूप ही संस्कृतमय लगते हैं :-

(1) क्रीअतं पापणो करमं न अधरमं भरमण त्रसताइ ।
कुकरम करमा क्रितं न देवलोकेण प्रापतहि ।।64 ।।(द0 ग्र0 पृ0 575)

(2) सुख संता करणं दुरमति दरणं किल बिख हरणं अस सरणं ।
जै जै जग कारण स्त्रिसट उबारण मम प्रतिपारण जै तेगं ।।2।।(पृ0 3१)

उपरोक्त पंक्तियों में संस्कृत- व्याकरण का निर्वाह भले ही नहीं हो पाया किन्तु इनके स्वरूप की संस्कृतमयता स्पष्ट परिलक्षित होती है। गुरू जी ने संस्कृत शव्दावली का अधिकतर प्रयोग प्राय: स्त्रोतों एवं अप्रस्तुत - योजना में किया है ।

अपने नायक एवं नायिकाओं के रूप - चित्रण में जहां भी परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया गया है, उन स्थलों की शव्द- योजना संस्कृतमय हो गई है । ` कृष्णावतार ` की पंक्तियां द्रष्टव्य हैं(कृष्ण का रूप) -

` काम के रूप कलानिधि से मुख कीर से नाक कुरंग से नैनन ।
कंचन सो तन दारून दांत कपोत से कंठ सुकोकिल बैनन ।। 84 ।।

एक अन्य प्रसंग में कृष्ण -की रूप- माधुरी दृष्टव्य है :-

कमल सो आनन कुरंग ताके बाके नैन
कटि सम केहरि मृनाल बाहे सैन है ।
कोकल सो कंठ कीर नासका धनुख भउ है
बानी सुर सर जाहि लागै नहि चैन है।।190 ।।
(द0 ग्र0 पृ0 176)

इन पंक्तियों में सभी शव्द- कमल, आनन, कुरंग, नैन(नयन) कटि, मृन ल (मृणाल) कोकल(कोकिल), कंठ कीर, नासका (नासिका) धनुख (धनुष) ब नी

(वाणी) सुर, सर- तत्सम हैं किन्तु रचना - कौशल के कारण इनकी तत्समता दब सी गई है ।

संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग सूर ने बड़ी प्रचुरता से किया है जैसे - अंबुज, अधोमुख, उपहास, इन्दीवर, पीयूष, लज्जा, भुजंग, अजिर, अंगीकार, अनायास, आमिष, आयुध, आविर्भाव, कालिमा, कमल - दल- लोचन , कलत्र, कलेवर, कौतुक, कुन्तल, क्वासि, खगपति, गृह, गह्वर, चिबुक, जलज, डिम्भ, तनया, दारा, दायक, निरालम्ब, पुनीत, पावन, प्रतीति, परिवेश, मम, रसना, राका, रुचिर, वसुधा समर, सरसिज सत्वर, सायक, हाटक, त्राहि - त्राहि - इत्यादि ।

सूरदास जी ने संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग बहुधा सिद्धान्त - निरूपण एवं भक्तिभाव के प्रकाशन में किया है, जैसे -

(1) ` अविगति आदि अनंत अनूपम, अलख पुरुष अविनासी ।
पूरण ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम, नित निज लोक विलासी ।।
जहां वृन्दावन आदि अजर, जहां कुंज- लता विस्तार ।
तहां बिहरत प्रिया- प्रीतम दोऊ निगम भृग गुजार।।`(सूरसारावली)

(2) ` ऐसी कब करिहौ गोपाल ।
मनसा- नाथ मनोरथ- दाता हौ प्रभु दीनदयाल ।।
चरननि चित्त निरंतर अनुख रसना चरित रसाल । `(सूरसागर 189)

सूरदास जी ने भी रूप- चित्रण में परम्परागत उपमानों को जुटाने के लिये संस्कृत की काव्य- परम्परा का अनुसरण किया है :-

(3) ` देखो माई रूप सरोवर साज्यौ ।
+ + +
लोचन जलज, मधुप अलकावलि, कुंडल मीन सलोल ।
कुच चकवाक विलोकि बदन- बिधु बिछुरि रहे अनबोल ।।`(सूरसागर 1667

सूरदास के संस्कृत के तत्सम शब्दों के विषय में डा० हरवंशलाल शर्मा लिखते हैं :- ` संस्कृत के तत्सम शब्दों में यह बात लक्ष्य करने की है कि उन्होंने उन शब्दों को

ब्रजभाषा की ध्वनि के अनुकूल बना दिया है। संस्कृत के कर्णकटु शब्दों में ब्रजभाषा के उच्चारण के आधार पर यत्किंचित परिवर्तन कर उन में उन्होंने माधुर्य लाने का प्रयास किया है।[1]

अर्द्ध तत्सम - शब्द - अर्द्धतत्सम शब्दों का प्रयोग सामान्यत: उच्चारण की सुविधा के लिये किया जाता है। हमारे दोनों कवियों ने ही जहां कहीं भी तत्सम शब्दों के उच्चारण में किसी प्रकार की कर्ण- कटुता अथवा कठिनता देखी, उन्हें सरल रूप दे कर काव्य- भाषा के उपयुक्त बना दिया। गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य- भंडार में सब से अधिक संख्या ऐसे अर्द्ध तत्सम शब्दों की ही है यथा - तीरथ (तीर्थ), न्हान (स्नान), संजम (संयम), नेम(नियम), बेद पुरान (वेद- पुराण), पठन (पठन), जती (यति), बिचार(विचार), नासका (नासिका), मृनाल(मृणाल), बिस्व (विश्व), बिसन(विष्णु), किसन(कृष्ण), मरन(मरण),आपदा-हरन (हरण), करन(करण), प्रकास(प्रकाश), दउस (दिवस), निसा(निशा), ससि (शशि), सूर (सूर्य), सृसटि (सृष्टि), तत्त (तत्व), सरूप(स्वरूप), बिआकल(व्याकुल), धरन (धरणि), पुरुख (पुरूष)-- इत्यादि अनेकों अर्द्ध तत्सम शब्द दशम - ग्रंथ में ढूंढे जा सकते हैं।

सूरदास की भाषा में भी ऐसे शब्दों की बहुलता है जो उनकी कल्पना - शक्ति एवं माधुर्य प्रियता का स्पर्श पा कर, ब्रजभाषा के अनुकूल बन गये हैं। जैसे - संकर(शंकर), विभूषन (विभूषण), जमुना(यमुना), जसोदा (यशोदा),कृष्ना (कृष्ण), सुदरसन(सुदर्शन), धुनि (ध्वनि), स्याम(श्याम) मोर(मयूर), मनि (मणि), अपजस(अपयश), अम्रित(अमृत), असुमान (अंशुमान) कलेस(क्लेश), गनिका(गणिका), जनम(जन्म), जोजन(योजन), परभात(प्रभात) सुरूप(स्वरूप), सरबस(सर्वस्व), मरजाद(मर्यादा), साच्छात् (साक्षात्) - इत्यादि ।

1- सूर और उनका साहित्य- डॉ० हरवंशलाल शर्मा - पृ० 307 ।

तद्भव शब्द - हमारे दोनों कवियों की भाषा में तत्सम और अर्द्ध तत्सम शब्दों के अतिरिक्त तद्भव शब्द प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। सूर के काव्य में - अंचरा(अंचल), अंजोरी(अंजलि), पूत (पुत्र), आखर(अक्षर), कापरा, अटारी, काठ, कुरेख, चबाई, छहियां, जदपि, जुगति, जोति, जीभ, तिय, तरनाई, पनहियां, राकस, बछल, सांझ - इत्यादि अनेक शब्द प्रयुक्त हुये हैं।

गुरू जी की भाषा में तद्भव शब्दों के कुछेक उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

1- चांदिनी राति रही छकि कै दीजिये हरि होवन रैन अंध्यारी।(कृष्णावतार)

2- बृषभान सुता पिखि ग्वारन की निरहाइ के नीचे रही अंखियां ।(कृष्णावता)

3- धावत घोरन पग की रज छाइ लए रवि सी छवि पाई। (कृष्णावतार)

4- अंत भई रत ग्रीष्म की तब पावस आइ गई सुखदाई। (कृष्णावतार)

5- अउ सब रिद्धन सिद्धन पै हमरो नहिं नेकु होया ललचावै ।(कृष्णावतार)

इसके अतिरिक्त - आंखि, अगानि, कान्ह, पाव, पाहन, बैन,राई, धरम, हिय, पंख, पात, काज- इत्यादि शब्द तद्भव शब्दों के ही अन्तर्गत आते हैं।

देशज- शब्द - सूरदास के काव्य में तत्सम और तद्भव शब्दों के पश्चात् देशज शब्दों को स्थान मिलता है। सूरदास की केवल काव्य- भाषा ही नहीं, अपितु मातृभाषा भी ब्रज थी अत: उनके काव्य में ब्रजभाषा के ठेठ शब्द भी देखने को मिलते हैं जैसे - दुर (पुरूषों के कान का आभूषण), लरिकाई(लड़कपन), बरै(जल जाये), छक (अल्प भोजन), लरिकिनी(लड़की), कारी(लोटा), अचगरी(नटखट पन), नाऊं(नाम), सरबा(मिट्टी का बर्तन), जाख (पूजा)- इत्यादि।

इसके विपरीत गुरू जी की मातृभाषा पंजाबी है और उनकी कृतियों की लिपि भी गुरमुखी है। अत:उनका भाषा में पंजाबी के ठेठ शब्द मिलते हैं जैसे :- त्रिखी(तीक्ष्ण), नावन(स्नान), हाणी(समव्यस्क), चंगी(अच्छी) किरसान (कृषक), हउल(डर), असाडा (हमारा), जणी-कणी) हर- कोई) दाज (दहेज)- इत्यादि।

54)

विदेशी - भाषाओं का प्रभाव - किसी भी भाषा को व्यापक, समृद्ध एवं शक्तिशाली बनाने के लिये उसमें अन्य सहयोगिनी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग आवश्यक होता है। सूरसागर में निम्नांकित शब्द अन्य भाषाओं के हैं - साहिबी, गुंजाइस, अमल, जमीन, दगाबाज़, कुतवाल, उजीर, सिकार, लसकर, अहदी, पासंग, मसाहत, कैद, जहतिया, कसूर, असल, मुजमिल, गुजरान, मुहासिब, दस्तक, माफ, मसखरा, बकसी, जहाज, दामनगीर, नफा, नाहक, खर्च - इत्यादि शब्द अरबी- फारसी के हैं। बोइस, सोइस, होइस, इहवां, तोर, मोर, हमारा, कीन, जिनि, केरो आदि अवधी के शब्द हैं। गहिबी, साहिबी आदि बुन्देलखण्डी के,

गुरू गोबिन्दसिंह तो स्वयं फारसी के विद्वान थे। गुरू जी कृत `जफर-नामा` और `हिकायते` फारसी भाषा में ही रचित हैं। अपनी ब्रजभाषा की रचनाओं में भी गुरू जी ने अरबी- फारसी शब्दों का इच्छानुसार प्रयोग किया है। `कृष्णावतार` में कृष्ण से युद्ध करने जब कालयवन आता है तो उसकी तैयारी का वर्णन(सवैया छन्द में) फारसी शब्दावली में हुआ है :-

`जंग दराइद काल जमन बगोइद कीम न फौज को शाहम ।।
बा मन जंग बुगो कुनव्या हरगिज दिल मो न जरा कुनवाहम ।।
रोज मयां दुनियां अफताबम स्याम शबे अदली सब शाहम ।।
कान्ह गुरैजी - मकून तू बिआ खुसमा तुक नेम जि जंग गुआहम ।।

(द० ग्र० पृ० 497)

इसके अतिरिक्त गुरू जी की रचनाओं में अवधी, पंजाबी के भी कई शब्द मिलते हैं।

हमारे दोनों कवियों ने एक ही नाम के अनेक पर्यायवाची शब्दों का सुन्दर एवं सफल प्रयोग भी अपने काव्य में किया है। दोनों ने ही श्री कृष्ण के लिये कृष्ण, कान्ह, श्याम, हरि, मोहन, नंदलाल, ब्रजनाथ आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

नवीन शब्द - इसके अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो हमारे कवियों ने स्वयं गढ़े हैं।

सूरदास के मौलिक शब्द द्रष्टव्य हैं:- ज्योतिक (ज्योतिष), नीलकण्ठीर (नीलकंठ) अर्थात मोर, मसानी(मसिपात्र), उतजोग(उद्योग) इत्यादि ।

गुरू गोबिन्दसिंह की भाषा में भी यहां - वहां ऐसे प्रयास मिलते हैं जैसे :- - क्रिसोदर(क्षीण कटि के लिये) और लोभक (लोलुप) शब्द ऐसे हैं जो साधारणत: कहीं भी प्रयुक्त हुये नहीं मिलते ।

सारांश यह है कि महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह ने सन्दर्भ और औचित्य के अनुसार शब्दों को सुन्दर प्रयोग किया है ।

2- शब्द शक्तियां - ` शब्द ` या ` शब्द समूह ` जो अर्थ छिपा होता है उसे प्रकाशित करने वाली ` शक्ति ` का नाम ` शब्द- शक्ति ` है ।[1] शब्द के अर्थ के तीन प्रकार माने गये हैं - वाच्चार्थ,लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ । शब्द के सीधे- सादे निश्चित अर्थ को उद्घाटित करने वाले शब्दार्थ वाच्यार्थ कहलाते हैं। जब किसी शब्द का ऐसा प्रयोग किया जाता है कि उसके सीधे एवं निश्चित अर्थ से उसका बोध न हो कर उसका लक्ष्य कुछ और ही होता है तो वहां लक्ष्यार्थ होता है। इसी तरह जहां किसी शब्द के वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों ही असंगत हों तो व्यंग्यार्थ सामने आता है । - वस्तुत: वाच्यार्थ से अभिधा, लक्ष्यार्थ से लक्षणा और व्यंग्यार्थ से व्यंजना शब्द- शक्ति का बोध होता है ।

कुछ कवि अपनी रूचि के अनुसार अभिधा को प्रधानता देते हैं तो कुछ लक्षणा को, और कुछ व्यंजना को । ` अभिधा के द्वारा स्वाभाविक रीति से रस- ग्रहण हो जाता है । लक्षणा में कल्पना का मुख्यत्व है । कवि लक्षणा के द्वारा केवल परम्परा या रूढ़ि का ही अनुगमन नहीं करता, अपितु वह किसी व्यापार का भी बिम्ब ग्रहण करा देता है - - व्यंजना का अपेक्षाकृत अधिक वैशिष्ट्य है। व्यंजना अर्थ की वक्ता पर निर्भर है। कवि अपने काव्य के रसमय प्रसंगों के वर्णन में उसका साहाय्य ग्रहण करता है।[2]

1- काव्यांग विवेचन - प्रो0 श्यामनन्दन शास्त्री - पृ0 - 19 ।

2- हिन्दी और तेलुगु कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन (सूर एवं पोतना के संदर्भ में) - डॉ0 स्न0 स0 दक्षिणामूर्ति - पृ0 405 ।

महाकवि सूरदास ने अपने काव्य में शब्द की तीनों शक्तियों का समुचित रीति से उपयोग किया है। गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में अभिधा ही प्रधान है। लक्षणा का भी अच्छा प्रयोग है लेकिन व्यंजना के उदाहरण अत्यल्प हैं ।

` वर्णनात्मक प्रसंगों में तो सूरदास ने भी अभिधा शक्ति का उपयोग अधिक किया है । गोकुल में हरि के प्रकट होने का वर्णन सूर इस प्रकार करते हैं :-

` गोकुल प्रगट भए हरि आइ ।
अमर उधारन असुर- संहारन, अंतर जामी त्रिभुवनराइ ।
माथे धरि वसुदेव जू ल्याए, नंद महर घर गए पहुंचाइ ।
जागी महरि पुत्र मुख देख्यौ, पुलकि अंग उर में न समाइ ।६३। ।

\+ \+ \+

और एक अन्य उदाहरण देखिये :-

` या विधि राजा करयौ बिचारि ।
राज- साज सब ही कौ डारि ।
जीरन पट कुपीन तन धारि ।
चल्यौ सुरसरी सीस उघारि ॥ `

गुरू जी का तो प्राय: समस्त काव्य ही अभिधापरक है लेकिन उनके काव्य में अभिधा का रूप ही इतना सजा - संवरा है कि व्यंजना की अल्पता नहीं खटकती ।

महाकवि सूरदास ने तो अपनी कल्पना शक्ति से लक्षणा के अत्यन्त सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं । जैसे :-

` देखि री हरि के चंचल नैन ।

\+ \+ \+

निसि मुद्रित प्रातहिं के विकसित, ये ` विकसित ` दिन रात ।२५३।

गुरू जी के काव्य में भी ऐसे सुन्दर वर्णन मिल जाते हैं यथा , -

` तिन काम भरी गुपियां सबहीं मुखते इह भांतिन जवाव मनो ।
मुख कान्ह गुलाब के फूल भयो इह नाल गुलाब चुआत मनो ।। `

और एक अन्य दृश्य देखिये , गोपियां कृष्ण के पीछे चुंबक की सूई की भांति घूम रही हैं :-

` स्याम कहे सम ही गुपीआं हरि के संग डोल है सम हुईआं ।
गावत एक फिरै इक नाचत एक फिरै रस रंग अकूईयां ।
एक कहै भगवान हरी एक बै हरि नाम परै गिर भूईआ ।
यौ आपजी उपमा पिख चुंमक लागी फिरै तिह के संग सूईआं ।। 533 ।।

इस प्रकार के तो अनेकों उदाहरण कृष्णावतार में उपलव्ध हैं ।

सूरदास जी ने तो केवल विशेषण के द्वारा ही नहीं, विशेष्य के माध्यम से भी लक्ष्यार्थ प्रकट किया है । यथा -

` आयौ घोष बड़ो ` व्यापारी ` ।

(यहां ` व्यापारी ` शव्द ` ठग ` का बोध होता है)

सूरसागर के रसात्मक प्रसंगों में हम व्यंजना शक्ति का प्रयोग देख सकते हैं । सूरसागर का यह प्रसिद्ध पद व्यंग्यार्थ को ही प्रकट करता है :-

` मैया मैं नहिं माखन खायौ ।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायौ ।
देखि तुही सीकै पर भाजन ऊंचे धरि लटकायौ ।
हौ जु कहत नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायौ ।
मुख दधि पोंछि , बुद्धि इक कीन्हीं, दोना पीठि दुरायौ । १५२।

\+ \+ \+

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुरू गोंबिन्दसिंह की अपेक्षा महाकवि सूरदास ने शव्द - शक्तियों (तीनों) का प्रयोग अधिक सुन्दर एवं प्रभावोत्पादक ढंग से किया है।

3- काव्य - गुण - वस्तुत: यदि रस काव्य की आत्मा है तो गुण रस का मर्म है ।

आचार्य मम्मट ने गुण तीन माने हैं - ओज, माधुर्य एवं प्रसाद ।

1) ओज- गुण - काव्य के अन्तर्गत जो गुण पाठक अथवा श्रोता के मन में उत्साह, वीरता एवं आवेश जागृत करे वह ` ओज ` कहलाता है । ओज गुण की स्थिति वीर, वीभत्स और रौद्र रस में क्रमश: अधिक होती है । इसमें लम्बे समासों और कर्कश- कठोर वर्णों का प्रयोग अच्छा होता है । ट,ठ,ड,ढ, श तथा ष वर्ण के प्रयोग से ` ओज ` गुण में वृद्धि होती है ।

गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य का मुख्य स्वर ` ओज ` ही है । न्यूनाधिक रूप से तो उनकी सभी रचनाओं में ओज गुण विद्यमान है लेकिन विशेष रूप से विचित्र नाटक, चंडी चरित्र (दय) रामावतार तथा कृष्णावतार में इसके उदाहरण मिलते हैं :-

(1) ` एक मरे भट स्त्रोनन सों भभकारत धाइ फिरै रन डोलत ।।
एक परै गिरकै धरनी तिनके तन जंबक गीधक ढोलत ।।
एकन के मुखि ऊठन आंखन काग सु चौचन सिउ टकटोलत ।।
एकन की उर आंतन को कट जोगन हाथन सिउ फकफोलत ।।

(द0 ग्र0 पृ0 480)

(2) ` और- किछरे गुआन करे घनस्याम अबे रन ते प्रनि तोहि भजैहौं ॥
काहे कौ आन अरयो सुन रे सिर केसनि ते बहुरे गहि लैहौं ॥
रे रे अहीर अधीर डरै नहि तो कहि जीवत जान न दैहौं ॥
इन्द्र बिरंच, कुबेर, जहयाधिप को ससि को सिव को हत कैहौं ।

(द0 ग्र0 पृ0 467)

सूरदास का ` सूरसागर ` ओजगुण प्रधान न होते हुये भी सन्दर्भानुसार ओज गुण को भी स्थान देता है । वीर, रौद्र एवं भयानक रसों के पोषण में सूरदास ने ओज गुण की ही प्रतीति करवाई है। इससे पूर्व ` रस- व्यंजना ` उपशीर्षक में रौद्र, वीर एवं भयानक रसों के जो उदाहरण दिये गये हैं, वे ओज गुण से युक्त ही हैं । उन्हें

पुन: यहां दुहराना अनावश्यक है । एक ही उदाहरण द्रष्टव्य है :-

` बरसत मेघवर्त्त धरनी पर ।
मूसलधार सलिल बरषतु है बूंद न आवत भू पर ।
चपला चमकि - चकचौंधति करति सब्द आघात ।
अन्धा धुन्ध पवनवर्त्तक घन, करत फिरत उतपात ।
निसि सम गगन भयो आच्छादित बरषि बरषि झर इंद ।।५५८।

माधुर्य - गुण - माधुर्य का अर्थ है - मिठास अथवा रोचकता । काव्य - गुण के प्रसंग में सभी विद्वानों के मतों का विवेचन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि माधुर्य - गुण से तात्पर्य - सरसता, शिष्टता एवं सुसंस्कृतता से ही है । इसकी स्थिति शृंगार, करूण एवं शान्त रस में ही अधिक होती है । इसमें लम्बे समास नहीं होते और न ही ट,ठ,ड,ढ, आदि वर्णों का इसमें प्रयोग होता है ।

महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ने ही मधुर वर्ण-योजना के द्वारा श्री कृष्ण के रूप, गुण, लीला आदि का वर्णन किया है ।

बाल- छवि का वर्णन करते समय सूरदास ने वर्णों की कैसी मधुर योजन प्रस्तुत की है :-

` बरनौ बाल- वेष मुरारि ।
थकित जित तित अमर मुनिगन नन्द लाल निहारि ।
केस सिर बिन बपन के चहुं दिसा छिटके कारि ।
सीस पर धरि जटा, मनु सिसु- रूप कियो त्रिपुरारि ।
तिलक ललित ललाट केसरि - बिंदु सोमाकारि ।१४१।

इसी तरह भ्रमरगीत प्रसंग में :-

` ऊधौ काल चाल औरासी ।
मन हरि मदन गुपाल हमारौ, बोलत बोल उदासी ।
अब हम कहा करैं एते पर, जोग कहत अविनासी ।
+ + +
रसना सूर स्याम के रस बस चातक हूं तैं प्यासी ।५०१३।

गुरू गोबिन्दसिंह के ` कृष्णावतार ` में से बारहमासे का माधुर्य पूर्ण वियोग- चित्र प्रस्तुत है :-

` बीच शरद रुत के सजनी हम खेलत स्याम सौं प्रीत लगाई ।
आनन्द के अति ही मन मै तज के सम ही जीथ की उचिताई ।।
नारि सभै ब्रिज कीन बिखै मन की तज के सम संक कन्हाई ।।
ता संग सो सुखदाइक थी रित स्याम बिना अब भी दुखदाई ।।

(द० ग्र० कृ० सं० 877)

प्रसाद गुण - प्रसाद का शाब्दिक अर्थ है प्रसन्नता । जैसे सूखे वन में आग तेज़ी से फैल जाती है, वैसे ही काव्य का जो गुण पाठक अथवा श्रोता के मन में सुनते ही द्रुतगति से व्याप्त हो जाता है, वही ` प्रसाद गुण ` है। यह गुण सभी रचनाओं एवं सभी रसों में वर्तमान रह सकता है। सुनते ही जिसका अर्थ खुल जाये, ऐसे सरल, सुबोध शब्दों का प्रयोग ही प्रसाद गुण का व्यंजक होता है ।

शृंगार एवं वात्सल्य आदि रसों का पोषण करते समय हमारे दोनों कवियों ने प्रसाद- गुण वाले वर्णों का चयन किया है। ` सूरसागर ` के निम्न उद्धृत वात्सल्य- चित्रण में सरल, सुबोध शब्दों का प्रयोग हुआ है :-

` जेंवत स्याम नंद की कनिया ।
कछुक खात, कछु धरनि गिरावत, छवि निरखति नंद- रनियां ।
बरी, बरा बेसन बहुभांतिनि व्यंजन बिबिध अगनियां ।
+ + +
जो रस नंद जसोदा बिलसत, सो नहिं तिहूं भुवनियां ।
भोजन करि नंद अचमन लीन्हो, मांगत सूर लुठनियां ॥ 238॥ 856 ॥

इसी तरह गोबिंदसिंह के बाल- कृष्ण आंख- मिचौली खेल रहे हैं :-

` बैठि करि ग्वार आंख मीचे एक ग्वार हूं की
छोर देत ताको सो तो अउरो गहि धाइ कै ।
आंखि मूंदत है ओही गोप हूं कि फेरि
जाके तन कौ जो छुये कर साथ जाइकै ।

वह तो कुल बलके पलावे हाथ आवे नही
तउ मिटावे आखि आप ही ते सो तो आइ के ।
कहे कवि स्याम ताकी महिमा न लखी जाइ
ऐसी भांति खेल कान्ह महा सुखु पाइके ॥ 229 ॥

अत: स्पष्ट है कि दोनों कवियों ने ही काव्य के तीनों गुणों का सुन्दर एवं सफल चित्रण किया है ।

4- चित्र- योजना - वस्तुत: चित्रमयता ही काव्य का प्राण है । हमारे दोनों कवियों की भाषा में यह गुण यथेष्ट रूप में विद्यमान है। उन्होंने जिस दृश्य का भी वर्णन किया है उसका चित्र सा खड़ा कर दिया है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है :-

(1) नटवर मेष धरे ,बज आवत ।
मोर मुकुट मकराकृति, कुण्डल, कुटिल अलक मुख पर छबि छावत

(2) देखी मैं लोचन चुअत अचेत ।
द्वार खड़ी इकटक मग जोवति ऊरध श्वास न लेत ।

(3) खेलत स्याम सखा लिये संग ।
इक भारत इक रोवत गेंदहि इक भागत करि नाना रंग ।

इस प्रकार ` कृष्णावतार ` में निम्न पंक्तियां प्रस्तुत है :-

(1) बैठि करि ग्वार आंख मीचे एक ग्वार हूं
छोर देत ताको सो तो औरो गहे धाइ के । `

(2) कान्ह कुह्यो चहे ग्वारनि को सोऊ भाग चले नहीं देत कुहाई ।
जिउ प्रिगनि अपने पति को रति केल समै नहीं देत मिलाई ।
कुंजन भीतर तीर नदी त्रिख मान सुता सु फिरै तह धाई ।
ठउर तहा कवि स्याम कहे इह भांत सो स्याम जू खेल मचाई॥ 658 ॥ `

5- संगीतात्मकता एवं गत्यात्मकता - भाषा की प्रभावोत्पादक बनाने के लिये भाषा में प्रवाह का होना भी आवश्यक है और इस प्रवाह के लिये संगीतात्मक एवं गत्यात्मक

शैली अपेक्षित है । हमारे दोनों कवियों ने अपनी भाषा में इन विशेषताओं का भली- भांति चित्रण किया है । उनके काव्य लय एवं गति से युक्त हैं। सूरदास का निम्न पद देखिये, भाषा कैसी द्रुत गति के साथ लय-बद्ध हो कर प्रवाहित हो रही है:-

` फहरात फहरात दावानल आयौ ।
घेरि चहुं ओर, करि सोर अंदोर बन, धरनि अकास चहुं पास छायौ ॥
बरत बन बांस, थरहरत कुस कांस जरि उड़त है मांस अति प्रबल धायौ ॥
फपटि फटपट लपट, फूल- फल चट- चटकि फटत, लट लटकिद्रुम- द्रम नवायौ ॥
अति अगिनि झार, झंझार धुंधार करि, उचरि अंगार झंझार छायौ ॥
बरत बन पात, महरात फहरात अररात तरु महा, धरनी गिरायौ ॥

गुरु गोबिंदसिंह की काव्य- भाषा के विषय में डा० हरभजनसिंह का कथन है ` ग्रंथ में युद्ध के वर्णन की कहीं से कोई पंक्ति पढ़ें तो चित्र, ध्वनि, गति और भावातिरेक का सुन्दर संयोग दृष्टिगोचर होगा । - ` थका हुआ शरीर, खून के छींटे शरीर पर घाव, शून्य पीठ घोड़ा आदि के चित्र भी ध्वनि संयोग से रहित नहीं हैं । - - उनके युद्ध वर्णनों में इतनी गति है कि वे शस्त्र का भी स्थिर अवस्था में वर्णन नहीं करते । म्यान में बंद तलवार, शूरवीर की कमर में लटकती कृपाण तुणीर में विश्राम करते बाण,अथवा शूरवीर के हाथ में स्थिर नेजा, बरछा आदि के स्थिर चित्र इन युद्धों में नहीं मिलेंगे । उनके अस्त्र- शस्त्र अनवरत अविश्राम की अवस्था में दिखाई देते हैं ।[1] `

6- मुहावरे एवं लोकोक्तियां -मुहावरे एवं लोकोक्तियां भाषा की सबलता के अनिवार्य उपकरण हैं। अपनी भाषा को प्रौढ़ एवं समृद्ध बनाने के लिये कवि इनका प्रयोग करते हैं। सूरदास के काव्य में मुहावरों एवं लोकोक्तियों की संख्या अत्याधिक है जिनके माध्यम से सूर ने अपनी भाषा में अद्भुत - अर्थ - गाम्भीर्य के साथ- साथ सजीवता, सशक्तता एवं प्रभावोत्पादकता की सृष्टि की है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

(1) मुहावरे :- 1- एक दुख दूजे हांसी, 2- एक बात की बीस बनाई,3- जिय में सूल

रही, 4- गाढ़े दिन के मीत, 5- किहि गिनतीमें आऊं, 6- सीस धुनै कर मारै, 7- सुधै करत न बात, 8- सोवत सिंह जगायौ, 9- जैसे गाल बजैहैं, 10- अंगुरी नि दन्त दै रह्यो , 11- गांठि हृदय की खोली इत्यादि ।

(2) लोकोक्तियां - 1- अपनी दूध छाड़ि को पीवै खार कूप को वारि । 2- जाहि लगै सोई पै जानि । 3- सूरदास खल कामरि चढ़ै न दूजौ रंग । 4- जोवन रूप दिवस दस ही के । 5- अंगुरी गहत गह्यौ जिहिं पहुंचो । जो कोउ परहित कूप खनावै परै सु कूपहिं मांहि । 6- दाई आगे पेट दुरावति इत्यादि ।

गुरु गोबिंदसिंह के काव्य में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ तो है , किन्तु अल्प मात्रा में ही । ` कृष्णावतार ` से कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है :-

1- जो पिखवे न तहा तिनको सुकहे, हमको हरि हाथ न आवे ।

2- आज समो मरिहो टरिहो नहीं स्याम मनै मुंह राम दुहाई ।

3- गाल बजाय बजाय के दूदम ज्यौ घन सावन के घहुराये ।

उनके सम्पूर्ण दशम ग्रन्थ में जिन मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है उन में से कुछ इस प्रकार हैं :-

1- केहरि के मुख में मृग देसो, 2- चाम के दाम काहे चलाये,

3- कछु न कान राखहिं , 4- इसक मुसक खांसी खुरक छिपत छिपाए नाहिं

5- बाह गहे की लाज बिचार, 6- लोक लाज तज नाचे, 7- तर आंख डर न आन, 8- धात गई फिरि हाथ न देहै इत्यादि ।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दोनों कवियों ने अपनी - अपनी दृष्टि से ब्रजभाषा को नवीन रूप प्रदान किया है । ब्रजभाषा काव्य- मार्ग का आदर्श स्थापित कर सूरदास ने परवर्ती युग को प्रभावित किया तो गुरु जी ने भी ब्रजभाषा को वीर- रस के अनुकूल ढाल कर नव्य- मार्ग प्रशस्त किया । संगीताचार्य सूरदास का गीतिकाव्य विविध राग- रागिनियों का भण्डार है। गुरु जी का ` कृष्णावतार `

64)

प्रबन्ध काव्य की कोटि में आता है, परउसमें सहज संगीत की मधुरिमा भी है।

पिछले पृष्ठों में महाकवि सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह की काव्य - कला के सम्बन्ध में जानने का यथा- सम्भव प्रयास किया गया है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही कवि श्रेष्ठतम कलाकार एवं चतुर चितेरे हैं और उनकी कृतियां हिन्दी- साहित्य की अमूल्य निधियां हैं ।

--

4400

तुलनात्मक - अध्ययन

(ङ) साहित्य - सन्देश

(ङ) साहित्य - सन्देश

वस्तुत: कोई भी कवि अथवा साहित्य तभी महान् हो सकता है जब उसके काव्य- सृजन अथवा साहित्य का उद्देश्य भी महान् हो । इस दृष्टि से सूरदास और गुरू गोबिंदसिंह दोनों ही महान् थे । उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से तद्युगीन जनमानस को जो संदेश दिया वह वास्तव में ही महान् था, उच्च था ।

` विश्व का सम्पूर्ण इतिहास साक्षी है कि समय की पुकार के अनुकूल ही जगत् में महान् विभूतियां ज्योतित हुईं और जगत् को अपनी ज्योति से आलोकित कर तिरोहित हो गईं । विश्व का प्रांगण इतना विशाल है, जहां कभी राजनैतिक विप्लव किसी राष्ट्र के शासन को अव्यवस्थित कर देते हैं तो कभी सामाजिक विषमतायें जनसामान्य को उद्वेलित कर देती हैं । आर्थिक दरिद्रता से भी देश का उद्धार करने के लिये मौलिकता- प्रिय पुरूष जन्म लेते हैं और जन समाज को धार्मिक अत्याचारों के पाश से मुक्त करने के लिये दैवी विभूतियां भी अवतरित होती हैं। एक का साधन भुजबल है, तो दूसरे का बुद्धिबल, एक का अर्थबल है, तो इतर का आत्मिक बल ` ।[1] महाकवि सूरदास ने अपने आत्मिक बल से प्रेरित होकर तत्कालीन संतप्त जनता को - भक्ति का सन्देश दिया। उनका साहित्य आत्मपरक है, उनका सन्देश महान् है जिसने - मानव- जीवन की छोटी से छोटी एवं बड़ी से बड़ी वासनाओं, भावनाओं और क्रिया-कलापों रूपी नालों को भक्ति की मन्दाकिनी में मिलाकर गंगा की सी पावनता प्रदान की । तत्कालीन संतप्त जनमानस को ऐसा `सागर ` प्रदान किया जिसमें अवगाहन करने वालों का तन-मन शीतल हो गया । - गुरू - गोबिंदसिंह के व्यक्तित्व में तो उपरोक्त चारों तत्व ही बहुतायत से विकसित हुए ।

1- गुरू गोबिन्दसिंह के साहित्य में भारतीय संस्कृति के तत्व-
डॉ0 धर्मपाल मैनी- पृष्ठ- 135 ।

अपने युग की पुकार के अनुरूप उन्होंने स्वत: परिस्थितियों के दास न बनकर युग की आवश्यकतानुकूल, विरोधी तत्वों से टक्कर लेकर उन्हें अपने अनुकूल ढाल लिया था । औरंगज़ेब के अत्याचारों के फलस्वरूप आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में हुई अशान्ति एवं अव्यवस्था के प्रतिकार स्वरूप गुरू को आविर्भूत होना पड़ा था । सचमुच गुरू आविर्भूत ही तो हुए थे, उन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य यही बताया है :-

` हम इह काज जगत मो आए, धर्म हेतु गुरू देव पठाए ।
जहां जहां तुम धर्म बिथारो, दुष्ट दोखियन पकरि पछारो ।
याही काज धरा हम जनमम्, समझ लेहु साधु सब मनमम् ।
धर्म चलावन सन्त उबारन, दुष्ट सभन को मूल उपारन ।५२, ५३ ।

और उनके जीवन का यह उद्देश्य ही उनके साहित्य का सन्देश बन गया ।

महाकवि सूरदास ने अपने युग में व्याप्त अशान्ति एवं उत्तेजना से उदासीन होकर एवं दृष्टि को आत्मपरक बनाकर भक्ति के माध्यम से जहां, शाश्वत् सुख एवं आध्यात्मिक आनन्द को ही अपना उद्देश्य बना लिया था, वहां गुरू जी ने भक्ति के माध्यम से खड्गरूपिणी शक्ति को अवतरित कर लिया था - धर्म युद्ध के लिए ।

महाकवि सूरदास के साहित्य का उद्देश्य है - आध्यात्मिक उपलब्धि । इस आध्यात्मिक उपलब्धि के लिये ही उन्होंने भक्ति पर बल दिया है। उन्होंने भक्ति को उसके अनुरूप कवित्व और संगीत से भावपूर्ण और मधुर बनाकर, न केवल सरल और आकर्षक आध्यात्मिक साधन ही बनाया, प्रत्युत उसे साहित्य का मनोरम स्वरूप भी दिया । अपने इष्टदेव ` श्रीकृष्ण ` की लीलाओं का गान करना ही उनके जीवन एवं साहित्य का मुख्य उद्देश्य रहा है। `सच तो यह है कि ` सूरसागर ` एक सम्पूर्ण, मौलिक, निजी, आन्तरिक भाव-सृष्टि है जिसमें पुष्टिमार्गीय दर्शन और पुराण- कथा के पात्र और प्रतीक घुल- मिल कर एक हो गये हैं। सूरदास ने अपने भावलोक में बालकृष्ण और राधा- नागर की इस ` लीला ` को अत्यन्त

निकट से ` निपट निकट ` से देखा है जहां वह प्रत्यक्ष, प्रतीयमान और रहस्यमय बन गयी है । ..... सूरदास ने दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए जिस प्रतीक- भाषा का निर्माण किया है वह पुराणों से ग्रहीत होने पर भी उनकी अपनी भावानुभूति से पुष्ट है। अत: उनके काव्य में प्रतीक बोलते हैं, दर्शन मौन रहता है ।[1] `

महाकवि सूरदास कृत ` सूरसागर ` वास्तव में वात्सल्य एवं शृंगाररस से परिपूर्ण रस- सागर है। `यह कहना कठिन है कि सूर में अतिचेतन और साक्षात्कार के काव्य की क्या स्थिति है, परन्तु यह स्पष्ट है कि उनकी भावभूमि रहस्यगर्भित, प्रज्ञात्मक, साक्षात्मयी और नैरंतरिक है । उनके काव्य में विषय और विषयी, राग और रागेतर, दर्शन और प्रतीक, अध्यात्म और लोकानुभूति एकाकार हो गये हैं। पुराण कथा, प्रतीक- कथा या रसात्मक काव्य मानकर हम सूर- काव्य को छोटा ही करते हैं। भक्ति- काव्य की संज्ञा में भी वह सम्पूर्ण रूप से नहीं बंधता क्योंकि उसमें न तो भक्ति की वैष्णवीय भूमियों का उपयोग है, न लीला- मात्र का उद्घाटन है। वह प्रत्यक्ष- दर्शन है। इस कोटि का काव्य विरल ही होगा । वास्तव में सूरदास का सहज भागवत- भाव और कोमल व्यक्तित्व ही ` सूरसागर ` में ढल गया है। ` सूरसागर ` ही उनका साक्षात्कार है। उसमें अंध कवि की अन्तर्दृष्टि का लीला- विलास मूर्तिमान है। अर्थों की स्थूलता में वह विलीयमान हो जाता है । वल्लभाचार्य ने ठीक ही सूरदास को ` सागर ` कहा था । सागर की तरह ही विस्तृत , गम्भीर और सरस उनका काव्य है, परन्तु वह सरल होते हुये भी अगम है। उसमें ` परम स्वाद ` का अमित तोष है। - - - ब्रह्म की निर्लेपता और माधुर्य- मयी आन्तरिकता के बालकृष्ण और नटनागर प्रतीकों में सूरदास ने वात्सल्य और

1- सूर की साहित्य साधना - सं० डा० भगवतस्वरूप मिश्र
(सूरदास: मूल्यांकन की समस्या -डा० रामरतन भटनागर)-
पृ०- 371 - 72 ।

शृंगार की जो गंगा- यमुना प्रवाहित की है, वह विश्व- साहित्य में अप्रीतम है `।[1]

आचार्य शुक्ल कहते हैं - ` वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आंखों से किया, उतना किसी और कवि ने नहीं । इन क्षेत्रों का कोना- कोना वे झांक आए । उक्त दोनों रसों के प्रवर्तक रति भाव के भीतर की जितनी मानसिक वृत्तियों और दशाओं का अनुभव और प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके उतनी का और कोई नहीं । हिन्दी साहित्य में शृंगार का रसराजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया, तो सूर ने । - - - उनकी उमड़ती हुई वाग्धारा उदाहरण रचने वाले कवियों के समान गिनाए हुए संचारियों से बंध कर चलने वाली न थी । - - - यदि हम मनुष्य- जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्र को लेते हैं, तो सूरदास जी की दृष्टि परिमित दिखाई पड़ती है । पर यदि उनके चुने हुए क्षेत्रों (शृंगार और वात्सल्य)तो उनके भीतर उनकी पहुंच का विस्तार बहुत अधिक पाते हैं । उन क्षेत्रों में इतना अन्तर्दृष्टि - विस्तार और किसी कवि का नहीं ।[2] ` सूरदास का ` सूरसागर ` वास्तव में सागर है - अथाह, अगाध और अपार । सूर- साहित्य भक्ति, काव्य एवं शृंगार की ऐसी त्रिवेणी है जिसमें अवगाहन कर अवत्रस्त विपन्न जन- मन को शान्ति एवं स्निग्धता प्राप्त होती है। भक्ति और काव्य का ऐसा ग्रंथि- बंधन विश्व- साहित्य में भी कम ही देखने को मिलता है।

सूरदास के युग की परिस्थितियों का विवेचन करते हुए डॉ० विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं :- ` ऐसे समय सूर ने कृष्ण चरित्र का आश्रय लेकर सगुण भक्ति पद्धति के आदर्शों की स्थापना का बीड़ा ही नहीं उठाया, वरन् कृष्ण की रंजक-लीलाओं का

1- सूर की साहित्य साधना(सं-डॉ० भगवतास्वरूप मिश्र)-
सूरदास:मूल्यांकन की समस्या
डॉ० रामरतन भटनागर
} पृ०- 374 ।

2- सूरदास- आचार्य शुक्ल - पृ०- 150-51 ।

गायन करके साहित्य का नूतन संस्कार भी किया । सूर ने जयदेव और चण्डीदास की आवृत्ति नहीं की, किन्तु भागवत् का हार्द जनभाषा द्वारा लोक- मानस में पहुंचाया ।[1] ` सूर- साहित्य का साध्य एवं साधन प्रेम ही है और उनके प्रेम का आधार थे उनके ` गोपाल कृष्ण ` ।

सूरदास का ` सूरसागर ` एक साथ ही लीलागान, आत्मिक आनन्दानुभूति और आत्मोपलब्धि है। लेकिन सूर- साहित्य में जितनी शक्ति लोकानुरंजन की है उतनी लोकमंगल की नहीं । सूरदास के कृष्ण लोकरंजक हैं, माधुर्य की साकार प्रतिमा हैं । कदाचित् इसका कारण यह रहा हो कि सूर ने बाह्य- प्रपंच से मुक्त होकर आत्मपरक दृष्टि से काव्य सृष्टि की थी ।

` सूर ने भक्ति को माधुर्य- मण्डित करके प्रस्तुत करने का ध्येय बनाया हुआ था । यही उस युग की सबसे बड़ी मांग थी ।[2] `

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूरदास के काव्य का परम उद्देश्य ` लीलागान ` ही है। महाकवि सूरदास ने तद्युगीन त्रस्त जनमानस को राहत प्रदान करने के लिये कृष्ण का ` लीला पुरूषोत्तम ` रूप प्रस्तुत किया । कृष्ण ही उनकी वात्सल्य, सख्य, दास्य, माधुर्य और शान्त भक्ति के आलम्बन बने । कृष्ण की बाल और किशोर लीलाओं ने सूरदास की मानवीय कोमल वृत्तियों और रंजन-कारिणी रागात्मक अनुभूतियों को उद्वेलित किया और परिणामस्वरूप ` सूरसागर ` जन- मन में तरंगित हो उठा । सूरदास ने अपने काव्य में भावना को प्रमुखता दी - कृष्ण के दैनिक कार्यक्रम का वर्णन करना भक्त- कवि का प्रधान उद्देश्य है, अतः

1- सूरदास - सं० डा० हरवंशलाल शर्मा (सूर- साहित्य - एक सर्वेक्षण - डा० विजयेन्द्र स्नातक)पृ०-66 ।

2- सूर की साहित्य साधना- सं० डा० भगवत स्वरूप मिश्र(सूर- साहित्य: एक सर्वेक्षण-डा०विजयेन्द्र स्नातक) - पृष्ठ, 74 ।

सूरसागर में ऐसे पदों की बहुलता है । कृष्ण की बालक्रीड़ायें बाल- मनोविज्ञान की परिचायक हैं। ` रास ` संयोग शृंगार का चरमोत्कर्ष है और ` भ्रमरगीत ` वियोग का ।

महाकवि सूरदास ने अपने काव्य में वस्तुत: - भक्ति का ही सन्देश दिया है । उनकी यह कृष्ण- विषयक भक्ति माधुर्य- भाव से मण्डित है और इसी माधुर्य- भाव की प्रधानता के कारण ही उनके उपास्यदेव का स्वरूप लोक- रंजनकारी बन गया है । ` सूरसागर ` में वर्णित विषय के आधार पर कवि का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। ` सागर ` के प्रारम्भ में यह पद हैं :-

` अविगत गति कछु कहत न आवे ।

\+ + + +

मन बानी को अगम- अगोचर सो जाने जो पावै ।
रूप- रेख- गुन जाति जुगति बिनु निरालम्ब कित धावै ।
सब विधि अगम विचारहीं तातै सूर- सगुन पद गावै ।२।

और ` श्रीमद्भागवत प्रसंग ` में सूरदास लिखते हैं :-

` श्री मुख चारि श्लोक दिये ब्रह्मा को समुझाइ ।
ब्रह्मा नारद सौं कहे, नारद व्यास सुनाय ।
व्यास कहे कुछ सुकदेव सौं द्वादस स्कन्ध बनाइ ।
सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाइ । २२५ ।

इन पदों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भाषा में भागवत की रचना करते समय सूरदास का ध्यान पूर्णत: प्रभु के सगुण रूप की ओर ही था । भगवान् के सगुण रूप से सम्बन्धित जितने भी अंश हैं उनका वर्णन करना ही कवि का उद्देश्य है । उनकी दृष्टि में भागवत के जो प्रसंग नीरस एवं अनावश्यक थे,(जैसे राजवंशों का इतिहास , दार्शनिक सिद्धान्तों का वर्णनादि) उनको सूरदास जी ने अपने ` सूरसागर ` में स्थान नहीं दिया । सूरदास जी ने कृष्ण के लीला- परक पदों को ही अधिक स्थान दिया है, शेष पदों की संख्या अपेक्षाकृत कम है ।

` वार्ता ` के अनुसार महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भी सूरदास जी को `लीला- गान ` का ही आदेश दिया था और उन्हें (सूरदास को) कीर्तन - सेवा सौंपी थी ।

महाकवि सूरदास के कई पदों से ऐसा आभास मिलता है कि मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से ही काव्य- रचना की । यथा, -

1) ` धरि जिय नेम सूर सारावली उत्तर दक्षिणाकाल ।
मन वांछित फल सब ही पावें मिटै जन्म जंजाल॥ `(सूरसारावली,पद 1105

2) ` सरस समसतर लीला गावे युगल चरण चित लावे ।
गर्भवास बन्दीखाने में बहुरि सूर नहीं आवे ।। `(,, पद सं0-1107)

सूरसागर में भी यत्र- तत्र इस प्रकार की पंक्तियां हैं, जैसे -

1) ` सूर हरि को सुजस गावौ, जाहि मिटि भव-भार।`(सूरसागर,पद सं0-224)

2) ` राम नाम बिन क्यों छूटोगे,चंद गहे ज्यों केत॥`(सूरसागर,पद सं0293) ।

3) ` सूर भजि चरनारीवंदनि,मिटै जीवन मरन। `(सूरसागर,पद सं0 30) ।

4) ` सूर हरि को भजन करि लै,जनम-मरन नसाइ ।(सूरसागर,पद सं0 315) ।

इन सब उद्धरणों से कवि की आध्यात्मिक उपलब्धि का ही संकेत मिलता है और इसी आध्यात्मिक उपलब्धि के लिये ही उन्होंने भक्ति पर बल दिया है जो उनके साहित्य- सृजन का उद्देश्य है ।

वास्तव में कृष्ण- जीवन से सम्बन्धित विविध प्रकार के चित्र प्रस्तुत करते हुए एवं कृष्ण के शारीरिक सौन्दर्य की पूर्ण प्रतिष्ठा के द्वारा सूरदास जी भगवान को हमारे जीवन के सन्निकट लाये हैं और इसके माध्यम से उन्होंने मानव- कल्याण की महती भावना की अभिव्यक्ति की है। सूर ने जिस प्रभु की लीला का गान किया है वह सौंदर्य से मंडित है । माधुर्य की साकार प्रतिमा है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सूरदास का उद्देश्य भागवत के अनुसरण पर लीलागान ही है और लीलागान की नयी दृष्टि ही उनको महाप्रभु वल्लभाचार्य जी से मिली थी । कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करना सूरदास जी का प्रधान उद्देश्य

8)

होने पर भी उन्होंने अन्य अवतारों का भी वर्णन किया है लेकिन अन्यावतारों का वर्णन इतना विस्तृत नहीं है , अपितु कृष्णावतार की भूमिका मात्र है ।

गुरू गोबिन्दसिंह के साहित्य का संदेश अथवा उद्देश्य भी उनके जीवन के उद्देश्य की भाँति ही उच्च एवं उदात्त था । ` उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व अन्याय विरोधी एवं सह्योगी तत्वों का अद्भुत संगम स्थल है। ` भक्ति ` और ` शक्ति ` के अद्भुत घोल से उनके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था । ` निवृत्ति ` और ` प्रवृत्ति ` उनके क्रियात्मक जीवन की आधार- भूमि रही है। वाणी और खड्ग दोनों के ही विशेष धनी थे । भक्त और योद्धा उनके दोनों रूप ही सब से अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध हुये । स्वत: भक्त होने के साथ- साथ वे धर्म- गुरू भी थे, तो योद्धा होने के साथ- साथ सेनापति भी । - - - वे केवल साहित्य-रचयिता ही न थे, अपितु साहित्य रचयिताओं के लिये अद्भुत प्रेरक शक्ति एवं उसके संरक्षक भी थे । और गुरू के रूप में वे केवल उपदेष्टा ही न थे, अपितु वैयक्तिक जीवन के आचरण के माध्यम से उन्होंने अपना संदेश प्रसारित किया था ।[1] `

गुरू जी ने तत्कालीन मुगल सम्राट औरंगज़ेब के भय से त्रस्त तथा नैराश्य के गर्त में पड़ी हिन्दु जाति को पुन: संगठित कर मुगल अधिकारियों की अमानुषता के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी, क्योंकि ` नैतिक तथा बौद्धिक ह्रास के इस युग में धर्म की उदात्त भावना पूर्ण रूप से लुप्त हो गई थी। धर्म का उद्देश्य होता है व्यक्ति और समाज के नैतिक स्तर को उच्च बनाना तथा जनता में लौकिक संघर्षों से टक्कर लेने की शक्ति उत्पन्न करना ।[2] ` गुरू गोबिंदसिंह के काव्य में भी यही उद्देश्य उद्भासित हुआ है ।

1- गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में भारतीय संस्कृति के तत्व - डॉ० धर्मपाल सैनी- पृष्ठ- 8 ।

2- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (षष्ठ भाग)-डॉ० नगेन्द्र-पृ० - 17 ।

9)

गुरू जी ने अपने साहित्य के माध्यम से मानव- धर्म का उपदेश दिया है। वस्तुत: गुरू जी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व आध्यात्मिकता की भावना से ही ओत- प्रोत है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही अपने आप को पहचानने का सन्देश दिया । स्वयं को पहचान कर ब्रह्म रूप हो जाना ही उनके जीवन का साध्य था । जीवन के इसी साध्य को ही उन्होंने अपने साहित्य में अभिव्यक्ति दी, अनुभूति के माध्यम से । गुरू जी ने अपने साहित्य में अपने मन को जीतने का सन्देश दिया है। औपचारिकताओं एवं बाह्याडम्बरों का विरोध कर के उन्होंने जन सामान्य को ` परम तत्व ` की प्राप्ति का वास्तविक मार्ग दिखलाया ।

गुरू गोबिन्दसिंह के सम्पूर्ण काव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि गुरू जी मुख्य रूप से वीर रस के कवि थे । वास्तव में गुरू जी जिस सम्प्रदाय(सिख- सम्प्रदाय) से सम्बन्धित थे, उसका मूलाधार आध्यात्मिक चेतना एवं भक्ति ही थी, लेकिन गुरू जी को युग की परिस्थितियों के अनुकूल वीर आचरण को अपनाना पड़ा था । गुरू जी ने अपने शिष्यों में धर्म-युद्ध के प्रति उत्साह उत्पन्न करने के लिये अपनी काव्य- शक्ति का उपयोग भी किया । गुरू जी कृत ` दशमग्रंथ ` वस्तुत: धर्म योद्धाओं का प्रेरणा स्त्रोत है। गुरू जी ने अपने काव्य की रचना असहाय एवं त्रस्त हिन्दू - जाति में जातीय स्वाभिमान, राष्ट्र प्रेम एवं धर्म रक्षा के उच्च भावों को उत्तेजित करने के महान् उद्देश्य को लेकर की है ।

` कृष्णावतार ` की रचना भी गुरू जी ने युद्धोत्साह के लिये ही की थी । अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए वह लिखते हैं :-

` दशम कथा भागौत की भाखा करी बनाइ ।
अवर वासना नाहिं प्रभ, धरम जुद्ध की चाइ।`(2491,कृष्णावतार)

गुरू जी ने अपने इसी कार्य की सिद्धि के लिये ही सारी कथा को आरम्भ से अन्त तक संजोया है, विविध छन्दों को एक माला में पिरोया है और इसी उद्देश्य की दृष्टि से ही सम्पूर्ण काव्य की योजना बनाइ है । ध्यान देने योग्य बात तो यह

है कि गुरू जी ने अपने शिष्य सैनिकों में केवल युद्ध का नहीं, ` धर्म-युद्ध ` का उत्साह पैदा किया ।

सन्त कबीर की भांति गुरू जी ने भी बाह्याचारों एवं आडम्बरों का त्याग करने का सन्देश अपने काव्य में दिया है। सन्त कबीर ने बड़े तीव्र व्यंग्यों के माध्यम से इन तथाकथित साधुओं एवं कर्मकाण्डी ब्राह्मणों का विरोध किया था, लेकिन गुरू-गोबिन्दसिंह ने अपेक्षाकृत कोमल वाणी में नम्रता पूर्वक उनका खंडन किया । अत इस प्रकार के पाखण्डों में लीन सांसारिकों को धिक्कारते हुये ` अकाल स्तुति ` में गुरू जी कहते हैं :-

` काहूं लै पाहन पूज धर्‌यो सिर,
काहूं लै लिंग गरे लटकायो ।
काहूं लखि हरी अवाची दिसा महि,
काहूं पछाह को सीस निवायो ।
कोऊ बुतान को पूजत है पसु,
कोऊ मूतान को पूजत धायो ।
कूर क्रिया उरझायो सबही जगु,
श्री भगवान का भेदु न पायो ।। 30 ।। `

प्रेमाभक्ति को प्रश्रय देते हुये एवं बाह्याचारों का विरोध करते हुये गुरू जी कहते हैं कि :-

` कहा भयो दोऊ लोचन मूंद के,
बैठि रह्यो बक ध्यान लगाइयो ।
नात फिर्‌यो लिये सात समुद्रन,
लोक गयो परलोक गवाइयो ।
वास कियो बिखियान सो बैठ के,
ऐसे ही ऐस सु बैस बिताइओ ।
साचु कहौं सुन लहु सभै,
जिन प्रेम कियो तिन ही प्रभु पायो।`(अकालस्तुति,दश०, सं०- 20) ।

11)

गुरू जी ने बाह्य औपचारिकताओं का विरोध कर भाव को प्रधानता दी है । जब तक भक्त में भाव अथवा प्रभु के प्रति प्रेम नहीं होता, तब तक वह किसी भी धर्म को अपना कर चाहे मूर्ति - पूजा करे, चाहे कुरान अथवा पुराणों का जाप करे या फिर माला लेकर बैठ जाये, उसे भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती । वस्तुत: उन दिनों जब सामाजिक अवस्था गिरती जा रही थी तथाकथित उपदेशक भी बहुत हो गये थे जो स्वत: कुछ न जानते हुये भी मासूम जनता को उपदेश देते थे, क्योंकि उपदेश देना तो बहुत सरल है किन्तु स्वत: कुछ करना उन्हें रूचिकर नहीं था । वे अपने आप तो प्रभु का ध्यान कर नहीं सकते पर दूसरों को ध्यान लगाने का उपदेश देते थे, दूसरों को धन- त्याग का उपदेश दे कर स्वयं धन के पीछे भागते थे :-

` औरन को उपदेश करे आपु ध्यान को न धरे ।
लोगन को सदा त्याग धन को द्रिढ़ात हैं ।
तेही धन लोभ ऊँच नीच के द्वार - द्वार,
लाज त्यागि जेहि- तेहि वैधा घात है ।[1] `

इस प्रकार गुरू गोबिंदसिंह ने अपने काव्य में सभी भाव-हीन बाह्याडम्बरों का खूब विरोध करके जन- सामान्य को वास्तविक मार्ग का परिचय दिया है जिसका अनुकरण करने पर व्यक्ति ` आत्म तत्व ` में लीन हो कर ` परमात्म तत्व ` को प्राप्त कर लेता है। भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही गुरू जी ने वेद- पुराणादि में अपनी आस्था दिखलाकर उन्हें पूज्य माना है लेकिन भावहीन होकर उन में (वेदादि में) अन्धविश्वास करके उनका दुरूपयोग करने वालों का गुरू जी ने विरोध किया है ।

वस्तुत: गुरू जी ने अपने काव्य में आन्तरिक भाव को महत्व देते हुए, उसी को अपना कर आत्मसात् करने का दिव्य संदेश दिया है। गुरू जी ने केवल दिखावटी तप,

---

1- दशम ग्रन्थ - उपाख्यान चरित्र (श्री रणखम्भकता चरित्र)क्र0 सं0 - 112 ।

12)

साधना का ही विरोध किया है। मूलत: उन्हें हिन्दूधर्म एवं संस्कृति के सभी मूल्यों में विश्वास था, और इसी आस्था एवं हिन्दू धर्म की रक्षा के कारण ही उन्होंने अपने पिता गुरू तेग बहादुर को बलिदान देने के लिये प्रेरित किया था :-

` तिलक जंजू राखा प्रभ ताका ।
कीनो बड़ो कलू महि साका ।। 13 ।।(द० प्र०-पृष्ठ -54)

अपनी अवतार कथाओं में भी गुरू गोबिन्दसिंह जी ने तप द्वारा प्राप्त ऋषियों की गरिमा का उल्लेख किया है । भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही गुरू जी ने तप- त्याग एवं सेवा- साधन का सन्देश दिया था और उसे केवल काव्य में ही नहीं अपितु अपने कर्मव्य- जीवन में भी अपने सन्देश को चरितार्थ किया । लौकिक ऐश्वर्य युक्त वस्तुओं का अभाव न होते हुए भी गुरू जी ने संयमपूर्वक उसका उपभोग किया ।

` गुरू जी ने भावहीन आवरणों और आडम्बरों का जी भर कर विरोध किया । मूर्ति- पूजा करने वालों को अन्तर में बैठी मूर्ति से परिचय करवाया,मन्दिर जाने वालों को मन- मन्दिर की याद दिलाई, ` कर का मनका ` फेरने वालों को मन का मनका ` ला पकड़ाया , तीर्थों में भ्रमण करने वालों को सत्गुरू रूपी तीर्थ के दर्शन करवाए, गंगा - स्नान करने वालों को अन्त:स्नान का पाठ पढ़ाया । व्रत रखने वालों को वास्तविक व्रत का महत्व बताया । इन आवरणों के माध्यम से भक्ति में मूलतत्व भावपूर्ण ` नाम ` का वरदान दिया। इस प्रकार भक्ति का भी उन्होंने विरोध किया अपितु उसे परिष्कृत रूप प्रदान कर दिया तथा सहज और स्वाभाविक बना दिया । ताकि जन-सामान्य भावपूर्ण हृदय से बिना किसी आडम्बर के भी उसे अपना सके ` ।[1]

1- गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में भारतीय संस्कृति के तत्व -
डॉ० धर्मपाल मैनी- पृष्ठ 131 ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुरू गोबिन्दसिंह बाह्याचारों का विरोध करते हुए, ब्रह्म ज्ञान के साथ साथ विरक्ति के महत्व को स्वीकार करते हैं, परन्तु मुख्य भक्ति को ही मानते हैं। डा० जयभगवान गोयल लिखते हैं :-

- ` हम यह कह सकते हैं कि उन्हें न तो राजशक्ति की कामना थी न ही धन और ऐश्वर्य से कोई मोह था । धन- शक्ति यदि उन्हें इकट्ठी करनी थी तो केवल इसलिये कि उसकी ` धर्मयुद्ध ` लड़ने के लिये आवश्यकता थी, न कि निजि उपभोग के लिये । ब - - - अकाल पुरूष ` ने उन्हें धर्म स्थापना के जिस उद्देश्य से भेजा था, वह कार्य उन्होंने धर्मवीर और युद्धवीर दोनों प्रकार से किया था ।जहां वे साहसी शूरवीर थे और अन्याय, अधर्म और अनीति के विरुद्ध अन्त तक लड़ते रहे, वहां एक मननशील चिंतक, ब्रह्म ज्ञानी और निष्ठावान भक्त थे । - - - उन्होंने बार- बार इसी तथ्य पर ज़ोर दिया कि मन्दिर- मसीत, हिन्दू और मुसलमान, राम- रहीम, पुराण - कुरान, वेद - कुतेब एक ही हैं। सभी में उस ब्रह्म का प्रसार है, उसी का प्रकाश है। इसीलिये उन्होंने जाति- पाँति, वर्ग- वैषम्य का विरोध करते हुये मानवीय एकता में विश्वास प्रकट किया और मानववादी भावना को प्रश्रय दिया ` [1] ।

कई विद्वानों का कथन है कि गुरू जी की साहित्य- रचना का उद्देश्य केवल वीरता का संचार करना ही था । वस्तुत: उन्हें अवतारों में आस्था नहीं थी और ` कृष्णावतार ` का सृजन भी उन्होंने वीरता के संचार के लिये ही किया था । लेकिन यह बात कुछ युक्ति- संगत प्रतीत नहीं होती, यदि उन्हें मात्र वीरता के संचार के लिये ही अवतार- कथाओं का निरूपण करना था, तो इस उद्देश्य-पूर्ति

1- गुरू गोबिंदसिंह विचार : और चिंतन - डा० जयभगवान गोयल- पृष्ठ 31- 32 ।

के लिये तो गुरू जी किसी लौकिक पुरूष की वीरता का गान भी तो कर सकते थे जैसा कि उनके समकालीन कवि भूषण ने किया था और वीर- काव्य-परम्परा में भूषण का नाम भी आदर से लिया जाता है। इसी तरह गुरू जी भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये किसी योग्य लौकिक पुरूष की वीरता के गान के माध्यम से अपने सैनिकों में युद्धोत्साह जगा सकते थे, तो फिर उन्होंने इस ध्येय की सिद्धि के लिये अथवा वीरता का सन्देश देने के लिये राम और कृष्ण जैसे अलौकिक पुरूषों को ही क्यों चुना । -- यह तो स्पष्ट है कि गुरू जी की ` कृष्ण ` में आस्था थी । ` कृष्णावतार ` एवं ` रामावतार ` में वर्णित कई छन्द उनकी इस आस्था को प्रकट करते हैं ।

` उनका न तो मुसलमानों से ही कोई विरोध था और न इस्लाम से । विरोध था उन आसुरी शक्तियों से जो अन्याय, अधर्म, असत्य, अनीति, अत्याचार का प्रतीक हैं। किसी अन्य मत या सम्प्रदाय से भी उनका कोई विरोध नहीं था । विरोध था - बाह्याचार, आडम्बर, पाखंड, अंधविश्वास और अज्ञान से और जीवन पर्यन्त एक सच्चे धर्मयोद्धा की भांति वे उनके विरुद्ध लड़ते रहे ।[1] `

गुरू जी ने तो वस्तुत: औरंगज़ेब के अन्याय एवं अत्याचारों तथा तथाकथित पण्डितों एवं ब्राह्मणों के बाह्याडम्बरों का एक साथ विरोध करने के लिये ` भक्ति ` पर आधारित ` शक्ति ` का आश्रय लिया था । गुरू जी ने सांसारिक विषमताओं से ऊब कर जंगल में बैठ कर ब्रह्म की साधना करने की अपेक्षा कर्मण्य - जीवन बिताने का सन्देश दिया। जीवन भर अत्याचारों से लड़ते हुये वे कर्मण्य बने रहे । इस दिशा में उनका संदेश गीता के निष्काम कर्मण्य जीवन से मिलता जुलता है। डा० मनमोहन सहगल के शब्दों में :- ` ऐसा नर- नाहर

1- गुरू गोबिन्दसिंह : विचार और चिन्तन -
डा० जयभगवान गोयल - पृष्ठ - 32 ।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण द्वारा दिये गये वचन ` अभ्युत्थानधर्मस्य तदात्मानं सृजनाम्यहम् ` की निश्चित पूर्ति था, यह कहने में कोई अत्युक्ति न होगी ।[1] ^

वास्तव में सूर एवं तुलसी जैसे भक्तों की भांति ही गुरू गोबिन्दसिंह के लिये भी साध्य और साधन दोनों भक्ति ही है। युद्ध धर्म तो एक साधन मात्र है । गुरू जी साहसी योद्धा अवश्य थे और जीवन- पर्यन्त ` धर्म युद्ध ` में लगे रहे (जैसा कि उनकी रचनाओं से स्पष्ट है) तथा तत्कालीन जनता में वीर भावना जगा कर मुगलों के विरूद्ध लड़ने को तैयार करना उनका मुख्य उद्देश्य था, फिर भी पहले वह भक्त थे और अच्छे कर्मों को करते हुये परमात्मा के सामीप्य को प्राप्त कर फिर उसी में लीन हो जाना ही जीव का परम लक्ष्य मानते थे ।

डा० गोयल लिखते हैं :- ` वे सत्य का खड्ग, न्याय का खांडा और नीति की तुफंग और नाम का अग्निबाण लेकर धर्म- युद्ध के लिये निकले थे । और असत्य, अन्याय और दुराचार की प्रतीक आसुरी शक्तियों की जड़ें हिलाने में उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई । - - देश - प्रेम, धर्म- प्रेम, प्राणी - प्रेम और प्रभु- प्रेम यही उनका अमर संदेश था ।[2] ^

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुरू गोबिन्दसिंह जी ने अपनी वाणी के माध्यम से तद्युगीन अन्धविश्वासों, मूर्तिपूजा, जात्यभिमान, पाखण्ड बाह्याचार, आडम्बरों एवं ढोंगियों की निर्भीकता पूर्वक आलोचना की । गुरू जी का विचार था कि इन्हीं भेद- भावों एवं दुर्बलताओं से ही जातिय- संगठन पंगु हो गया ^ह जिसका अनुचित लाभ विदेशी शासक उठा रहे हैं । इस प्रकार गुरू जी

1- परिशोध (अंक 5) गुरू गोबिन्दसिंह विशेषांक - डॉ० मनमोहन सहगल- पृष्ठ - 136 ।

2- गुरू गोबिन्दसिंह : विचार और चिंतन - डॉ० जयभगवान गोयल- पृष्ठ - 32- 33 ।

16)

ने इन बाह्याडम्बरों एवं अन्धविश्वासों के स्थान पर विशुद्ध ईश्वरवाद की स्थापना द्वारा जाति- पाति, छुत- छात, ऊँच- नीच, छल- कपट, द्वेष इत्यादि भावनाओं का विरोध कर अखंड जातीय एकता का अनुपम सन्देश दिया ।

गुरू जी ने तत्कालीन भटकी हुई जनता को अपने साहित्य एवं जीवन के माध्यम से सत्य? न्याय, संयम, संतोष, दया, सेवा एवं तप-त्यागादि के पथ पर अग्रसर किया । गुरू जी मानव- मात्र की एकता में दृढ़ आस्था रखने वाले एवं सत्य तथा न्याय के लिये ` धर्म युद्ध ` की इच्छा रखने वाले सच्चे धर्मवीर थे। उनका जीवन आशावान, उत्साह युक्त साहसपूर्ण, आस्थावान, संयमित, संतुलित एवं सात्विक- संत का जीवन था । वास्तव में उनका योद्धा रूप, संतों की रक्षार्थ ही प्रस्तुत हुआ । उन्होंने अपने योद्धा रूप को साधन बना कर ही ` धर्म- स्थापन ` रूपी साध्य को प्राप्त किया था । गुरू जी वास्तव में संत- योद्धा थे । उन्होंने गृह- त्यागी सन्यासी होने के स्थान पर जन- समाज में रह कर ही काम- क्रोध, दम्भ, द्वेष, अहंकारादि का त्याग करने वाले सन्यासी बनने का उपदेश दिया । गुरू जी ने निष्काम- कर्मण्य जीवन को ही महत्ता दी और अपने कथनों को अपने जीवन के माध्यम से चरितार्थ कर दिखाया । ` कथनी ` और ` करनी ` का ऐसा अपूर्व एवं अटूट ग्रन्थि- बंधन अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलता ।

भौतिक जगत् को गुरू जी के इस असीम, अनन्त, अनन्य एवं अनवरत आध्यात्मिक सन्देश से बड़ा और कोई सन्देश हो भी क्या सकता था । गुरू जी ने राजनैतिक - क्षेत्र में अत्याचार के नाश एवं ` धर्म- युद्ध ` का संदेश दिया, सामाजिक क्षेत्र में जाति- पाति के विरोध द्वारा मानव की समता और एकता का क्रियात्मक सन्देश दिया तथा आर्थिक क्षेत्र में कर्मण्य- जीवन का संदेश दिया । इस प्रकार गुरू जी ने अपने साहित्य द्वारा कोई उपदेश नहीं दिया अपितु उसे (उपदेश को) क्रियात्मक रूप दे कर अपने जीवन के माध्यम से संदेश दिया और

यह सन्देश था ` धर्म- युद्ध ` । यह ` धर्म- युद्ध ` बाह्याडम्बरों के प्रति भी हो सकता है : निष्कर्मण्यता के प्रति भी हो सकता है और अत्याचारों एवं अन्याय के प्रति भी हो सकता है ।

अत: गुरू जी का साहित्य- सन्देश महान् है, अनूठा है, अद्वितीय है, अपूर्व है, अनन्त है एवं अमर है, जो तद्युगीन मांग के अनुकूल था ।

वास्तव में महाकवि सूरदास जी ने बाह्य प्रपंचों से मुक्त होकर अंतर्लीन दशा में काव्य- सृष्टि की जिसका उद्देश्य भक्ति को माधुर्य से मण्डित करना था । और यही उस युग की सबसे बड़ी मांग थी । ` सूरदास जी ने निर्गुण ब्रह्म और अद्वैत वेदान्त का उपदेश झाड़ने वाले पंडितों के समक्ष भक्ति का एक व्यवहार्य और सुगम मार्ग प्रस्तुत किया था, जिसका उद्देश्य संसार त्याग किये बिना ही अपने आराध्य को सगुण- साकार रूप में प्राप्त करना था । यह उद्देश्य लोक - संग्रह की भावना से दूर न होकर उसी का अव्यक्त रूप कहा जाएगा। सूर ने भक्ति मार्ग को कष्टक विहीन बनाकर लोक- कल्याण का पथ प्रशस्त किया था । ` महाकवि सूरदास ने वस्तुत: यशोलिप्सा अथवा कवि- कर्म से प्रेरित होकर काव्य की रचना नहीं की थी, जैसाकि उनकी जीवनी से ज्ञात होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क में आने से पूर्व भी और बाद में भी भक्त प्रवर सूरदास प्रभु का ही गुणगान करते रहे । अत: उनकी काव्य- रचना का उद्देश्य भी भक्ति की महत्ता स्थापित करना एवं हरि की लीला- गान करना ही है ।

गुरू गोबिन्दसिंह जी की रचनाओं की पृष्ठभूमि में भी कोई सांसारिक आकांक्षा नहीं है और ना ही उन्होंने किसी आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिये काव्य का सृजन किया है । कवि - कर्म से प्रेरित होकर भी उन्होंने काव्य - रचना नहीं की । साहित्य- सृजन के लिये उनका एकमात्र उद्देश्य ` धर्म - युद्ध ` का चाव है जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है ।

इस प्रकार सूरदास और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों की काव्य- रचना पर समग्र रूप से विचार करने से ज्ञात होता है कि -- (1) दोनों की काव्य- रचना का प्रधान उद्देश्य मानव- कल्याण की महत्ती भावना है। (2) दोनों कवियों ने ही काव्य- सृजन के लिये किसी का आश्रय स्वीकार नहीं किया । (3) दोनों के काव्य- सृजन का उद्देश्य कवि- कर्म नहीं था । (4) दोनों ने ही अपने ` कृष्णकाव्य ` का मुख्याधार ` भागवत ` को स्वीकार किया है । (5) - दोनों कवियों के साहित्य का सन्देश महान् है, अनुपम है एवं अमर है।

-

सप्तम - परिच्छेद

कृष्ण काव्य परम्परा में स्थान

1- गुरू गोबिंदसिंह - धार्मिक नेता के रूप में

2- महाकवि सूरदास - सूर परम्परा के निर्माता एवं भक्त के रूप में ।

हिन्दी का कृष्ण- काव्य विशुद्ध धार्मिक वातावरण में निर्मित हुआ । यह काव्य-धारा मात्र पुराणों का ही पिष्टपेशन नहीं है वरन् युग की परिस्थितियों में निराश जनता का मनोरंजन करने में एक ऐसी समर्थ काव्यधारा है जिसमें नाना कवियों रूपी उर्मियां हमें दृष्टिगत होती हैं। वैसे तो सभी, अपना- अपना महत्व रखती हैं परन्तु कुछ उर्मि- विशेष अपने सौन्दर्य से हमारा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करती हैं। महाकवि सूर और गुरू गोबिन्दसिंह इस काव्यधारा की ऐसी ही दो उर्मियां हैं जो साम्यता एवं विषमता होते हुये भी बरबस हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं । इसी आकर्षण के कारण ही इस काव्य-धारा में इनका स्थान कुछ विशिष्ट हो जाता है ।

1- गुरू गोबिन्दसिंह : धार्मिक नेता के रूप में :-

गुरू गोबिन्दसिंह मानव-धर्म के उन्नायक थे । ` उनके कर्म और धर्म में एकता थी, कथनी और करनी में साम्य था, ` कहनी और रहनी ` में समरूपता थी। इसी लिये उनका धर्म ` नकद धर्म ` था । वह नकद धर्म जिसका आधार गुरू को मान्य नहीं, जिसको सीमित रखना गुरू को सह्य नहीं और जिसका उपदेश गुरू को ग्राह्य नहीं, क्योंकि वह तो केवल संदेश देने की साधना लेकर आया था - वह भी कथनी नहीं, करनी के माध्यम से । इसीलिये गुरू का धर्म योग में अटका नहीं, वहां से सहज बनकर निकल आया, ज्ञान में उसका नहीं, वहां से विवेक बनकर चला आया और भक्ति में रमा नहीं वहां से अनुभूति बनकर बढ़ निकला । इसीलिये वह विभिन्न मतों से विवाद करके भी स्वत: झगड़े में नहीं फंसा, जाति के बन्धन तोड़ कर भी स्वत: उन बन्धनों में नहीं रमा । ऐसा था गुरू का धर्म । इसीलिये वह किसी मानव-विशेष का धर्म न बनकर भी मानव- धर्म ही बन गया और धर्मों(सम्प्रदायों) को मानकर स्वत: अमर हो गया ।[1] `

गुरू गोबिन्दसिंह ने धर्म के नाम पर फैले बाह्याडम्बरों एवं अनाचारों

1- गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में भारतीय संस्कृति के तत्व-
डा0 धर्मपाल मैनी- पृष्ठ 98 ।

का महत्व दिखला कर और जन - मानस में सहज ही प्रविष्ट हो जाने वाली अप्रितम प्रभावशाली वाणी के माध्यम से सन्देश एवं आदेश दे कर सबके अन्त:करण में प्रभु के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास उत्पन्न कर देना तथा सद्गुणों एवं सद्विचारों में विश्वास एवं प्रेम पैदा करवा कर लोगों में सद्धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न कराना भी धर्म- संस्थापन के ही अन्तर्गत आता है। इस दृष्टि से गुरू गोबिन्दसिंह एक महान् धर्म- संस्थापक थे ।

गीता के महान् सन्देश के विषय में श्री अरविन्द लिखते हैं :- ` श्री गुरू स्वयं भगवान् हैं जो मानव- जाति में अवतरित हुये हैं , शिष्य अपने काल का श्रेष्ठ व्यक्ति है, जिसे हम आधुनिक भाषा में मनुष्य जाति का प्रतिनिधि कह सकते हैं और जो इस अवतार का अंतरंग सखा और चुना हुआ यन्त्र है। वह एक विशाल कार्य और संग्राम में प्रमुख पात्र है जिसका रहस्यमय उद्देश्य उस रंगभूमि के पात्रों को ज्ञात नहीं - - - [1] `

गुरू जी भी ईश्वर को ही अपना गुरू मानते हैं । उनका प्रत्येक कार्य उसी की आज्ञा से ही होता है । गुरू जी तो इस संसार में भी उसी महागुरू की आज्ञा से ही आये हैं :-

` धर्म हेतु गुरू देव पठाए ` ।

उन्हें अपने गुरू से ` धर्म संस्थापन ` का आदेश मिला और इस आदेश की पूर्ति में ही उन्होंने अपना समस्त जीवन उत्सर्ग कर दिया। गुरू गोबिन्दसिंह सच्चे अर्थों में मानव- जाति के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं और इस दृष्टि से वे अपने गुरू(भगवान) के सच्चे एवं श्रेष्ठ शिष्य हैं। गुरू गोबिन्दसिंह ने तो सिख- सम्प्रदाय की स्थापना भी उसी अकाल पुरूष की आज्ञा से ही की है :-

` आगिया भई अकाल की तबै चलायो पन्थ । `

1- गीता - प्रबन्ध, अनुवादक जगन्नाथ विद्यालंकार, पृष्ठ 56 ।

गीता मानव रूप में भगवान् के अवतार लेने के सिद्धान्त को मानती है क्योंकि गीता में भगवान मानव- रूप में बारंबार युग- युग में प्रकट होने की बात कहते हैं। स्पष्ट रूप से अवतारवाद को न मानते हुये भी गुरू गोबिन्दसिंह इन्हीं भावों को व्यक्त करते हैं:-

` जब- जब होत अनिष्ट अपारा ।
तब- तब देह धरत अवतारा ।[1] `

गीता वस्तुत: एक योद्धा से कही गयी है, जो कर्मठ है और जिसके जीवन का उद्देश्य है युद्ध और संरक्षण । इस युद्ध का उद्देश्य है दीन - दुर्बलों एवं पीड़ितों की रक्षा और दुष्टों के विनाश से जगत् में धर्म और न्याय की स्थापना । गीता के सन्देश से यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध शस्त्र उठाना आवश्यक है, तभी मानव स्वधर्म एवं स्वाधिकार की रक्षा कर सकता है । इस प्रकार के युद्ध को ` धर्म - युद्ध ` का नाम दिया गया है। धर्म- युद्ध की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये गीता में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं :-

` स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयो न्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ 31 ॥[2] `

(अर्थात् - अपने धर्म को देख कर भी तू भय करने योग्य नहीं है क्योंकि क्षत्रिय के लिये धर्मयुक्त युद्ध से बढ़ कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है ।)

और - ` यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिन: क्षत्रिया: पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ 32 ॥[3] `

(हे पार्थ । अपने आप प्राप्त हुये और खुले हुये स्वर्ग के द्वार रूप इस प्रकार के युद्ध को भाग्यवान क्षत्रिय लोग ही पाते हैं ।)

1- दशम ग्रन्थ पृष्ठ 155.

2- गीता अध्याय 2

3- वही वही

गुरू गोबिन्दसिंह ने भी शस्त्रों का उपयोग ऐसे ही युद्धों के लिये किया है। गुरू जी के समय में देश अत्यन्त दयनीय स्थिति से गुज़र रहा था। तद्युगीन हिन्दू जनता को अपमान एवं अवमानता का जीवन बिताना पड़ रहा था। औरंगज़ेब के बढ़ते हुये अत्याचारों एवं पाखंडपूर्ण साधनाओं से उत्पन्न बाह्याडम्बरों तथा मिथ्याचारों के विरोध में ही गुरू जी ने धर्म संस्थापनार्थ ` खालसा पन्थ ` की स्थापना की और तद्युगीन शासकों के बढ़ते हुये अत्याचारों को रोकने के लिये गुरू जी ने अपने अनुयायियों को संगठित कर उन में धर्म- युद्ध का उत्साह उत्पन्न करने के लिये अपनी काव्य- शक्ति का भी पूरा उपयोग किया । उनका ` दशम ग्रंथ ` वस्तुत: धर्म - योद्धाओं का प्रेरणा स्रोत है । ` कृष्णावतार ` की रचना भी युद्धोत्साह प्राप्त करने के लिये ही की गई थी, जैसाकि उन्होंने लिखा है :-

` दशम कथा भागोत की भाखा करी बनाइ ।
अवर वासना नाहिं प्रभ धरम युद्ध की चाइ ॥ 249 ॥ `

गुरू गोबिन्दसिंह इसी धर्म युद्ध के लिये ही अन्याय, अधर्म और अनीति के विरुद्ध जीवन पर्यन्त लड़ते रहे ।

गीता के कृष्ण ने धर्म- युद्ध के माध्यम से ही ` कर्मयोग ` का अमर सन्देश दिया है और इसी सन्देश अथवा उपदेश को निष्ठा एवं श्रद्धापूर्वक सुनने का ही फल हुआ था - अर्जुन का मोह नाश एवं प्रभु के उपदेशानुसार कर्म करने का दृढ़ संकल्प । गीता में भी कहा गया है :-

` नष्टो मोह: स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देह: करिष्ये वचनं तव ।। [1] `

(अर्थात् (अर्जुन कहता है) - मेरी विपरीत बुद्धि नष्ट हो गयी है, पूर्व स्मृति जाग्रत हो आयी है। हे अच्युत । तुम्हारे ही अनुग्रह से मुझे यह लाभ हुआ है, अब

1- गीता अध्याय 18 श्लोक 73.

कर्तव्य के विषय में मैं दृढ़चित हो गया हूं। तदनुसार अब से तुम्हारे उपदेशानुसार ही कर्तव्य - कर्म करूंगा ।)

इससे स्पष्ट है कि गीता सुनने से अर्जुन की कर्तव्य- कर्म में दृढ़ प्रवृत्ति हुई थी। जो लोग अर्जुन के समान श्रद्धान्वित हो कर गीता- श्रवण करेंगे, उनकी वृत्ति भी कर्तव्य-कर्म में लगेगी । कदाचित् गुरू गोबिन्दसिंह जी ने भी धर्म- युद्ध में लोगों को उत्साहित करने एवं कर्तव्य- कर्म की ओर प्रेरित करने के लिये ही अपने काव्य का सृजन किया था। ` कृष्णावतार ` के ` युद्ध- प्रबन्ध ` में वे स्पष्ट लिखते हैं:-

` कृष्ण जुद्ध जो हौं कह्यो अतिही संग सनेह ॥
जिह लालच इह मैं रचयो मोह वहै वरू देहि ॥ 1899 ॥[1]

और उनका यह ` लालच ` धर्म- युद्ध अथवा कर्तव्य पालन ही था और कुछ नहीं । वस्तुत: इस संसार में मनुष्य युद्ध करने के लिये ही जन्म लेता है। हमारे शरीर के भीतर आसुर भाव एवं दैवभाव - यह दो प्रकार के भाव विद्यमान हैं जो अनादिकाल से ही युद्ध करते आ रहे हैं, जैसे आदर्श के साथ युद्ध, विवेक और अविवेक में युद्ध,मत - मतान्तरों में युद्ध आदि । इन द्वन्द्वों के हम एक को चाहते हैं, दूसरे को नहीं, हम जय चाहते हैं, पराजय नहीं । वस्तुत: अर्जुन के हृदय में भी कर्मप्रवृत्ति के साथ वैराग्य एवं सन्यास प्रवृत्ति का युद्ध आरम्भ हो गया था, जिसके शमन के लिये अर्जुन अपने सारथी भगवान कृष्ण के शरणागत हुये और उनके ` कर्मयोग ` के सन्देश से प्रेरणा पा कर कर्म में संलग्न हुए ।

गुरू गोबिन्दसिंह तो अपने आपको समग्र रूप से प्रभु चरणों में अर्पित कर चुके थे, उसके (प्रभु के) शरणागत हो चुके थे । अत: उनका समस्त व्यक्तित्व एवं कृतित्व कर्मयोग ` का ही द्योतक है। उन्होंने अपने समस्त कर्मों का सम्बन्ध प्रभु के साथ जोड़ दिया था। अपने राष्ट्र की मुक्ति को ही उन्होंने अपना कर्तव्य समझा और यही उनकी दृष्टि में सबसे बड़ा कर्म था जिसकी पूर्ति में वह जीवन- पर्यन्त लगे रहे। शुभ कर्मों से कभी न हटना और सत्य की रक्षा के लिये और असत्य के संहार के लिये शस्त्र

1- कृष्णावतार - द० ग्र० - पृ० - ५१९ ।

का प्रयोग करना तथा निश्चित रूप से अपनी विजय में विश्वास करना ही उनके जीवन एवं साहित्य का उद्देश्य था। इसी कर्त्तव्य की पूर्णता के लिये ही उन्होंने ईश्वर की आराधना की है :-

` देहु शिवा वर मोहि इहै शुभ कर्मन ते कबहूं न टरौं ।
+ + +
जब आवक निदान बनै, अतही रण में तब जूझ मरौं ।।[1]

गुरु जी ने गीता की भांति ही अपने साहित्य के माध्यम से निष्काम कर्मण्य जीवन का क्रियात्मक सन्देश दिया। उनके कर्म मानव- कर्म नहीं बल्कि दिव - कर्म हैं जो भक्ति- प्रेरित हैं एवं ईश्वर को अर्पित हैं।

गीता सब धर्मों का परित्याग कर (सर्वधर्मान् परित्यज्य) एक परमात्मा का ही आश्रय ग्रहण करने की शिक्षा देती है। गुरु गोबिन्दसिंह ने भी इन्हीं भावों को अपने साहित्य में मुखरित किया है :-

` करता करीम सोइ राजक रहीम ओई, दूसरो न भेद कोइ भूल भ्रम मानबो ।
एक ही की सेव सभ ही को गुरुदेव एक,एक ही सरूप सबै एकै जोति जानबो ।।[2]

गीता के कृष्ण अर्जुन के तामस विराग और सन्यास ग्रहण करने की प्रवृत्ति से उसका चित्त फेरते हैं और कर्म(धर्म- युद्ध) को ही जारी रखने की प्रेरणा देते हैं लेकिन साथ ही उसे(अर्जुन को) आंतरिक वैराग्य ग्रहण करने का निर्देश देते हैं वस्तुत: शारीरिक नहीं, अपितु आंतरिक तपस्या अथवा सन्यास ही गीता में अभिप्रेत है ।

गुरु गोबिन्दसिंह ने भी अपने काव्य में बाह्याचारों का निषेध कर आंतरिक सन्यास को महत्व दिया है। गुरु गोबिन्दसिंह का जीवन द्वेष एवं आकांक्षा से रहित

1- दशम ग्रन्थ -पृ० 99 ।
2- ,, ,, -पृ०19 ।

7)

था, गृहस्थ होते हुये भी वह निर्लिप्त थे। गीता में ऐसे ही द्वेष एवं आकांक्षा से हीन निर्लिप्त कर्मयोगी को ही सच्चे अर्थों में सन्यासी कहा गया है :-

` ज्ञेय: स नित्य सन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वों हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥ 3 ॥[1]

गीता घर छोड़कर सन्यासी बन जाने को नहीं कहती। अर्जुन ने भी तो गीता का उपदेश सुनकर अपने क्षात्रधर्म का पालन ही किया। उसने जंगल की राह नहीं ली न उसने गृहस्थ- धर्म का परित्याग ही किया। अत: गीता का उपदेश स्पष्ट ही यह था कि मनुष्य को अपनी सामाजिक स्थिति एवं अवस्था के अनुकूल कर्तव्यों का पालन करना चाहिये एवं अपना अन्त:करण शुद्ध रख आंतरिक सन्यास को महत्व देना चाहिये। गीता के अनुसार क्षत्रिय का कर्तव्य है अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध धर्मयुद्ध करना। गुरु जी भी ` कृष्णावतार ` में यही भाव प्रकट करते हुये कहते हैं कि वह ब्राह्मण पुत्र नहीं जो इस प्रकार अकर्मण्य हो कर बैठा रहे, वह क्षत्रिय- सुत है और उसका कर्तव्य है कर्मण्य होकर अन्याय एवं अनाचार के विरुद्ध लड़ना। वह कहते हैं :-

` छत्री को पूत हो कामन को नहि कै तपु आवत है जो करो ।
अरु अउर जंजार जितो ग्रह को तुहि तिआग कहा चित तामै धरो ।
अब रीझ कै कहै हम कउ जोउ हउ विनती कर जोर करो ।
जब आठ की अउध निदान बनै अति ही रन मै तब जूझ मरो । 2489 ।।[2]

गुरु गोबिन्दसिंह ने भी तो यही किया। गुरु जी मूलत: सन्त थे, जो तप त्याग, संयम एवं क्षमा का उपदेश देते थे लेकिन साथ में वह धर्मयोद्धा भी थे। उनका यह योद्धा रूप युग की मांग के अनुरूप था। अपने समाज को ऊपर उठाने और धार्मिक चेतना जगाने के लिये ही गुरु जी ने शस्त्र उठाया और धर्मयुद्ध का आवाहन किया। साथ ही में उन्होंने बाह्याचारों का विरोध कर आंतरिक शुद्धि पर बल दिया और गीता की ही भांति गृहस्थ - धर्म को त्याज्य नहीं माना। आंतरिक सन्यास के

---

1. गीता, अध्याय 5. श्लोक - 3।
2. कृष्णावतार — पृ० 570।

8)

विषय में वे कहते हैं :-

` रे मन ऐसो कर सन्यासा ।
बन से सदन सबै करि समझहु मन ही माँहि उदासा ।। 1 ॥
+ + +
काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सौ त्यावे ॥
तबही आतम तत्त को दरसे परम पुरख कह पावे ॥ 3 ॥[1] `

गीता के अनुसार कर्तव्य ही धर्म है जिसका बोध विवेक युक्त बुद्धि के माध्यम से ही होता है। गुरू गोबिन्दसिंह जी ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुये विवेक अथवा ज्ञान का महत्व भी प्रतिपादित किया है । गुरू जी के अनुसार ज्ञान के बिना भगवत्भक्ति का वास्तविक रूप समझ में नहीं आ सकता ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुरू गोबिन्दसिंह जी ने भी गीता में प्रतिपादित ज्ञान- कर्मसंश्रिता भगवद्भक्ति का प्रतिपादन किया है । गीता में दान- धर्म की व्यापक व्याख्या की गयी है । गुरू जी ने भी अपने ` ज्ञान- प्रबोध ` में दान- धर्म का महत्व प्रतिपादित किया है और कुपात्र को दान देने का विरोध किया है।

` गुरू का सम्पूर्ण जीवन और कृतित्व ` निवृत्ति परक ` प्रवृत्ति की ही व्याख्या मात्र है। मोक्ष और धर्म पर आधारित अर्थ और काम को उन्होंने जीवन में विकसित किया और उसकी व्याख्या की अपने साहित्य के माध्यम से । अर्जित को त्याग कर जंगल में जाकर बैठने वाले धर्म- गुरू न बने, अपितु अन्याय का विरोध करके अपने अधिकारों के लिये धर्म- युद्ध करने वाले शक्ति के उपासक वीर- योद्धा गुरू थे । उन्होंने समाज से, जीवन से अपने को विरक्त नहीं किया, अपितु उसमें अनुरक्त रहे । - - - - दो विवाह भी किये चार पुत्रों के पिता भी हुये। पर देश की रक्षा के लिये उनका बलिदान देने में ज़रा भी संकोच नहीं किया । - -- उनकी सम्पूर्ण

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 709.

प्रवृत्ति का आधार थी निवृत्ति । इसीलिये उन्हें सच्चे सन्यास का बोध था, ` पद्म पत्रमिवाम्भसा ` (पानी में कमल के पत्ते की तरह निर्लिप्त) रहने का वैयक्तिक जीवन के माध्यम से उनका क्रियात्मक सन्देश बहुत महान् है ।[1] `

गुरू के इस निर्लिप्त एवं निष्काम कर्मण्य जीवन को देखते हुये एक विद्वान् का कथन उपयुक्त है कि - ` गुरू का सम्पूर्ण जीवन गीता के आदर्शों का क्रियात्मक रूप मात्र है। कोई भी व्यक्ति गीता के अनुरूप जीवन व्यतीत करने की प्रणाली अनायास ही उनसे सीख सकता है ।[2] `

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गुरू गोबिन्दसिंह के सिद्धान्त गीता से गहरा साम्य रखते हैं। गुरू जी का व्यक्तित्व तो गीता का ही साकार रूप है और उनका व्यक्तित्व ही उनके कृतित्व का परिचायक है अत: यह स्पष्ट है कि गुरू जी का काव्य गीता के अत्यन्त निकट है। इससे गुरू जी की गीता में अटूट आस्था एवं निष्ठा भी परिलक्षित होती है और इसी आस्था के फलस्वरूप ही उन्होंने ` कृष्णावतार ` का सृजन किया। ` कृष्णावतार ` के कृष्ण भी धर्म- योद्धा हैं। कृष्ण का यह वीर एवं योद्धा रूप उस युग की मांग के अनुकूल ही था, जिसने दिशाभ्रम में डूबी जनता को एक नई दिशा दी, उन्हें निष्काम कर्मण्य- जीवन का सन्देश दिया ।

यह कहने में भी कोई अत्युक्ति न होगी कि उस युग में गीता का गोबिन्द ही फिर आया था, अपने सन्देश को क्रियात्मक रूप देने के लिये, अकर्मण्य जनता को कर्मण्यता का मार्ग दिखाने के लिये, केवल कथनी ही नहीं, करनी के माध्यम से, वो आया, लेकिन ईश्वर बनकर नहीं, ईश्वर का दास बन कर। गुरू जी ने अपने को ईश्वर कहने की साफ मनाही की थी:-

---

1- गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में भारतीय संस्कृति के तत्व - डॉ० धर्मपाल मैनी, पृष्ठ- 122 ।

2- 'His (Guru Gobind Singh's) whole life was nothing but Gita in action, a materialization of its ideal into life. One can learn from him the ways to live the Gita.
(Y. M. Chatterji: Sikh Review, Sept. 1967, Page 14

10)

` जो हम को परमेश्वर उचरिहैं ।
ते वर नरक कुण्ड में परिहैं ।

इस प्रकार गुरू जी की धर्म- साधना गीता के सिद्धान्तों के सर्वथा अनुकूल है और उनका काव्य गीता के अति निकट है ।

।।) गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में कृष्ण का योद्धा रूप-

पुराणों में ईश्वर के इस धरतीतल पर अवतरण के दो मुख्य कारणों का उल्लेख है। एक दुष्टदमन- हेतु- दूसरा भक्तों के लिये लीला- हेतु । इन अवतारों में भी कृष्ण का लीलामय एवं लोक- रंजनकारी रूप ही कवियों का प्रेरणा स्रोत बना रहा। लेकिन गुरू गोबिन्दसिंह के ` कृष्णावतार ` में कृष्ण का मूल उद्देश्य केवल अपनी मनमोहक लीलाओं द्वारा लोक- रंजन करना ही नहीं, अपितु दुष्टों के दमन से लोक-रक्षा एवं धर्म- रक्षा का भार वहन करना है। वस्तुत: ` कृष्णावतार ` की रचना भी युद्धोत्साह प्राप्त करने के लिये ही की गई थी। कवि ने अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुये लिखा भी है -

` अवर वासना नाहि प्रभ धरम जुद्ध की चाइ । `(2491 कृष्णावतार)

श्रीमद्भगवद्गीता में भी ईश्वर के अवतार ग्रहण करने का मूल उद्देश्य ` धर्म- संस्थापन ` एवं ` दुष्ट- दलन ` ही माना गया है । गुरू जी के काव्य- सृजन का उद्देश्य भी वस्तुत: धर्म- संस्थापन एवं ` दुष्ट- दमन ` ही था । ` कृष्णावतार ` में कृष्ण के वीर रूप की प्रतिष्ठा भी इसी महान प्रयास का ही एक अंग है । योद्धा-कृष्ण का रूप देखिये :-

` प्रउनत तरंगनी उठाइ कोप बल बीर, मार मार तीर रिप खंड किए रा में।।
बाज गज मारे रथी ब्रिथी करि डारै, केते पैदल बिदारे सिंह जैसे म्रिग बन में ।।
जैसे सिव कोप के जगत जीव पार प्रले, तैसे हरि अरियों संघारे आई मन में ॥
एक मार डारे एक छाइ छित मारै एक, से एक हारे जाके ताकत न तन मै ।

(कृष्णावतार : 1054)

11)

`राधाधर- सुधापान शालि- बनमाली ` कृष्ण ही ` कृष्णावतार ` । युद्ध- भूमि में विकराल एवं रौद्र रूप धारण कर लेते हैं :-

` श्री नन्दलाल सदा रिप थाल कराल बिसाल जबै धनु लीनो ।।
इहु सरजाल चले तिह काल तबै अरिसाल रिसै इह कीनो ।।
थाइन संगि गिरी चतुरंग चमूं सभ को तन प्रउनत कीनो ।।
मानो पन्द्रसवो विधने सु रच्यो रंग आरन लोक नवीनो ।। 1061 ।। `

कृष्ण के धनुष से निकलते बाणों का चित्र द्रष्टव्य है :-

` जदुबीर कमान ते बान छुटे अवसान गए लख सत्रन के ।।
गजराज मरे गिर भूमि परे मनो रुख कटे करवत्रन के ।।
रिप कउन गनो जु हतो तिह ठां मुरझाइ गिरे सिर छत्रन के ।।
रन मानों सरोवर आंधी बहै तुट फूल परे सत पत्रन के ।।1748 ।।

कृष्ण के दुष्ट- दमन अथवा शत्रु- संहार का दृश्य प्रस्तुत है :-

` पान कृपान गही घनिस्याम बडै रिप ते बिन प्रान किए ।।
गजबाजन के असवार हजार मुरार संधार विदार दिए ।।
अर एकन के सिर काट दए इक बीरन के दए फार हिए ।।
मनो काल सरूप कराल लख्यो हरि सत्र भजे इक मार लिए ।। 1750 । `

कृष्ण के वीर- रूप का एक अन्य चित्र द्रष्टव्य है :-

` कान्ह कमान लिए कर मैं रन के जब केहरि जिउ ममकारे ।।
को प्रगटिउ भट ऐसो बली जग धीर धरे हरि सो रन पारे ।।
अउर सु कउन तिहूं पुर मैं बलि स्याम सिउ बैर को माउ बिचारे ।।
जो हठ के कोउ जुद्ध करै सु मरे पल मैं जम लोक- सिधारे ।।1763 ।। `

कृष्णापाणि कृष्ण के युद्ध- कौशल का एक अन्य दृश्य दर्शनीय है:-

` काटत एकन के सिर चक्र गदा गहि दूजन के तन फारे ।।
तीजन नैन दिखाइ गिरावत चउथन चोप चपेटन मारे ।।
चीर दए अर के उर श्री हरि सूरन के अंग- अंग प्रहारे ।।
धीर तहां भट कउन धरै जदुबीर जबै तिह ओर सिधारे।।1795 ।। `

12)

कृष्ण के वीर रूप को उत्कृष्टता प्रदान करते हुये गुरू जी ने उनकी (कृष्ण की) युद्ध- वीरता के साथ- साथ दया वीरता की भी भावपूर्ण अभिव्यंजना की है। अपने प्रतिद्वन्द्वी के शस्त्र- त्याग पर शरणागत की भावना से वे सरल एवं कोमल हृदय - कृष्ण स्वयं को ही उसके(हलायुध) द्वारा विजित मानने लगते हैं :-

` करूनानिधि देख दसा तिहकी करूणारस को चित बीच बढ़ायो ।।
कोपहि छा दयो हरि जू दुहू नैनन भीतर नीर बहायो ।।
वीर हलायुध ठाढ़ो हुतो तिह को कहिके इह बैन सुनायो ।।
छाड़ि दे जो हम जीतन आयो हौं सो हम जीत लयो बिलखायो।।1881 ।।

कृष्ण के वीर- रूप की प्रतिष्ठा के लिये कवि ने गर्वोक्तियों का भी आश्रय लिया है। ` कृष्णावतार ` में युद्ध- प्रबन्ध ही सबसे विस्तृत एवं व्यापक भाग है जिसमें कृष्ण के पराक्रमी रूप की प्रतिष्ठा की गई है।

वस्तुत: गुरू जी ने अन्य कृष्ण- भक्त कवियों की भांति विशुद्ध भक्ति-भाव से प्रेरित होकर ही ` कृष्णावतार ` की रचना नहीं की अपितु वे तो समाज की उन्नति एवं धर्म की रक्षा के लिये ही जन-सामान्य में शक्ति का संचार करना चाहते थे, उन्हें धर्म- युद्ध के लिये उत्साहित करना चाहते थे और उन्होंने युग की मांग को अनुभव करके ही कृष्ण के चरित्र के माध्यम से अपना सन्देश दिया, वह सन्देश जो गीता की वाणी को ही दुहराता है - ` धर्म - युद्ध ` और ` निष्काम - कर्म ` कतिपय विद्वानों का कथन है कि गुरू जी की कृष्ण के ईश्वर रूप में आस्था नहीं थी । साक्षात् भगवान कृष्ण के मुख से निसृत गीता के सुललित एवं अमर सन्देश को अपने जीवन और काव्य का ध्येय बना लेना, अपने को गीता के अनुरूप ढाल लेना, कृष्ण के दिये सन्देश को ही साकार करना - क्या उनकी आस्था को प्रकट नहीं करना ? ` कृष्णावतार ` में कई स्थलों पर कृष्ण के अवतारतत्व के प्रति आस्था एवं निष्ठा स्पष्ट ध्वनित होती है ।[1]

1-द्रष्टव्य कृष्णावतार - छ0 सं0 2, 3, 553, 2275, 2352 आदि।

13)

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गुरू जी ने धर्म की रक्षा के लिये, एवं धर्म- युद्ध के प्रति लोगों को उत्साहित करने के लिये ही ` कृष्णावतार ` की रचना की जिसके लिये कृष्ण का वीर योद्धा एवं धर्म- संस्थापक रूप ही अपेक्षणीय था । वास्तव में इसके माध्यम से गुरू जी यह प्रकट करना चाहते थे कि वे मुगल शासकों से उसी प्रकार लड़ रहे हैं जैसे कृष्ण जरासन्ध आदि असुरों से लड़े थे ।

इसी प्रकार गुरू गोबिन्दसिंह जीवन पर्यन्त अत्याचारों से जूझते हुए कर्मण्य बने रहे । उनके अनुसार जीवन कर्म- क्षेत्र है और सत्कर्म करते हुए नैतिक-भक्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करना ही सच्चा धर्म है। उनका धर्म प्रत्येक मानव का धर्म था । गुरू जी ने भक्ति के माध्यम से शक्ति को जाग्रत कर लिया था । वस्तुत: गुरू जी ने औरंगज़ेब के अत्याचारों से आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में उत्पन्न अशान्ति एवं अव्यवस्था के प्रतिकार के लिये ` धर्म- युद्ध ` का आश्रय लिया और अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये भारतीय संस्कृति का आलोक लेकर अंधकार में डूबी जनता को कर्मण्य होने का सन्देश दिया मानव- धर्म के माध्यम से । डॉ० मैनी लिखते हैं - ` यह गुरू के विरोध की ही शक्ति थी कि उन्होंने विकृत तांत्रिक प्रभाव एवं अस्वस्थ यौगिक चमत्कारों से जनता को एकदम मुक्त कर दिया था । अभी धर्मपराङ्मुख जनता माखनचोर कृष्ण में रम सकी और कुंजों में जाकर उसकी बांसुरी सुन सकी, उस बांसुरी की ध्वनि ही तो आज तक न केवल वृन्दावन, अपितु समस्त उत्तरी भारत में सुनाई देती है। इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में गुरू ने बाह्याचार के आडम्बर में उलझी हुई जनता को सुलझा हुआ मार्ग दिखाया ।[1] `

2- सूरदास: भक्त एवं परम्परा के निर्माता के रूप में :

हिन्दी- साहित्य के अन्तर्गत कृष्ण- काव्य- धारा को प्रवाहित करने वाले सर्वप्रथम कवि विद्यापति ही हैं। तदोपरान्त इस काव्य- धारा को, जनता ने

1- गुरू गोबिन्दसिंह के काव्य में भारतीय संस्कृति के तत्व -
डॉ० धर्मपाल मैनी - पृष्ठ - 138 /

हृदय का संस्पर्श कराते हुये, उसमें सहज रूप से भारतीय संस्कृति का कलात्मक उद्घाटन करते हुये उसे सरसता, अभिनवता, सुचारुता एवं मनोवैज्ञानिकता आदि गुणों से युक्त कर भारतव्यापी बनाने का श्रेय महाकवि सूरदास को ही प्राप्त है।

महाकवि सूरदास एक भक्त, प्रेमी एवं कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनके प्रेमी हृदय ने ही उन्हें कृष्ण में अनुरक्त किया और वे कृष्ण भक्ति में लीन हो गये। इसी भक्ति- भाव से विभोर होकर जो सुललित पद उनकी वीणा से स्वर मिलाते हुये उनके कण्ठ से निःसृत हुये, उन्होंने उन्हें (सूरदास को) कवि का रूप प्रदान किया।

सूरदास की कविता के केन्द्र बिन्दु कृष्ण हैं। कृष्ण का जो रूप उनके काव्य में चित्रित हुआ है वह मधुरता, कोमलता एवं लावण्य से सम्पन्न है, सौन्दर्य एवं आकर्षण से परिपूरित है। सूरदास के कृष्ण का व्यक्तित्व अति मृदुल है जिस में कठोरता का लेश मात्र भी नहीं है।

भक्त के रूप में :- महाकवि सूरदास वस्तुतः आर्त भक्त थे। वे भक्त पहले और कवि बाद में थे। उन्होंने कविता के माध्यम से अपनी भक्ति भावना को ही व्यक्त किया है या फिर यह कह लें कि भक्ति सूर का साध्य थी और कविता साधन।

सूरदास जी ने बाल्यावस्था में गृह- त्याग कर दिया था और उन्हें सांसारिक जीवन से वितृष्णा हो गई थी। अतः सन्यास लेकर वे हरिभक्ति में ही लीन रहने लगे थे।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की शरण में जाने से पूर्व भी वे भगवान का ही गुणगान करते थे लेकिन तब उनकी भक्ति- भावना में दैन्य एवं दास्य का भाव अधिक था। सूरदास जी ने अनेक पदों में प्रभु की शक्तिमत्ता एवं अपनी लघुता का वर्णन करते हुये भगवान की भक्त- वत्सलता, दयालुता, पतितपावनता तथा भक्त की लघुता, निस्सहायता, दीनहीनता एवं पतितावस्था का चित्रण किया है। अपने विनय के पदों में सूरदास जी ने सांसारिक ऐश्वर्य एवं सुखों की विगर्हणा की है। उन्होंने माया

15)

के दो रूपों- विद्या माया एवं अविद्या माया- का वर्णन करके अविद्या माया-जन्य संसार को मिथ्या माना है। सांसारिक विषयों के त्याग का भाव सूर के विनय-सम्बन्धी पदों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

सूरदास जी की भक्ति के आलम्बन कृष्ण है जो परब्रह्म हैं, अन्तर्यामी हैं सर्वगुण सम्पन्न, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापक हैं। सूरदास ने भगवान के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है लेकिन ईश्वर के सगुण स्वरूप को ही भक्ति के लिये उपयुक्त माना है। सूरदास के इष्टदेव कृष्ण परब्रह्म, अविगत, अविनाशी, अनन्त एवं अनादि होते हुये भी भक्तों के लिये ही इस पृथ्वी पर अवतार लेते हैं । उनके कृष्ण लोक-रंजन के लिये ही इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुये हैं । वस्तुत: सूरदास के कृष्ण लीला पुरूषोत्तम हैं और उनकी भक्ति में निमग्न होकर सूरदास जी ने कृष्ण के इसी लीलामय सगुण रूप को अपनी भक्ति का आलम्बन बनाकर उनकी लीला-गान को ही अपने काव्य का विषय बनाया है। कृष्ण के व्यक्तित्व, एवं कृतित्व को लेकर सूरदास जी ने जिस काव्य की रचना की उसे ` सागर ` का नाम दिया गया। ` सूर- सागर ` वास्तव में ही सागर की तरह विस्तृत गम्भीर और सरस है।

भक्ति- भावना[1] के सन्दर्भ में इतना ही कहा जा सकता है कि मध्यकालीन वैष्णव भक्त परम्परा में महाकवि सूर शीर्ष स्थान के अधिकारी हैं। भक्ति-शृंगार की जो मन्दाकिनी विशिष्ट सीमा- कूलों में जयदेव, चण्डीदास और विद्यापति की सरस वाणी के रूप में प्रवाहित होती चली आ रही थी, उसे ही महाकवि सूर ने जनभाषा के व्यापक धरातल पर लाकर संगीत और माधुर्य से मण्डित कर नव रूप प्रदान किया । शृंगार और माधुर्य की सार्वभौमिक सत्ता एवं भक्ति की भव्यता उदात्त रूपमें जैसे सूर के काव्य में मुखरित हुई है वैसी उनसे पूर्व किसी के स्वर में नहीं हुई । सम्भवत: सूर ने

1- सूरदास जी की भक्ति भावना का विवेचन प्रस्तुत प्रबन्ध के षष्ठ परिच्छेद में भाव पक्ष के अन्तर्गत विस्तृत रूप में किया जा चुका है ।

ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देख लिया था कि भक्ति में ही ज्ञान की सार्थकता है और काव्य ही भक्ति को रस- सिक्त कर सकता है।

सूरदास भक्त थे और भक्ति की आनन्ददायिनी असीम शक्ति का उन्हें पूर्ण- रूपेण बोध था। ` सूरसागर ` रचने की प्रेरणा उन्हें महाप्रभु वल्लभाचार्य जी से ही प्राप्त हुई थी। सूरदास जी ने अपने ` सूर- सागर ` में भी विनय- परक पदों की अपेक्षा लीला परक पदों को ही अधिक स्थान दिया है। इस प्रकार ` लीला- गान ` ही उनके काव्य का एक मात्र उद्देश्य प्रतीत होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि सूरदास एक भक्त के रूप में साहित्य- जगत् में अवतीर्ण हुये। उनकी इस साध्य रूपा भक्ति का आधार बना उनका प्रेमी हृदय जिसने उन्हें कृष्ण पर रीझना सिखा कर उनका गुण- गान करवाया और फिर सूरदास को कवि बनने के लिये प्रेरित किया। सूरदास का काव्य उनकी कृष्ण- विषयक निष्काम भक्ति का ही परिणाम है।

(।।) परम्परा - निर्माता के रूप में -

वास्तव में महाकवि सूरदास को अपने पूर्ववर्ती कवियों ने ब्रजभाषा विषयक प्राय: कुछ भी प्रेरणा नहीं मिली है। इस विषय में ` सूर- निर्णय ` के लेखक द्वय का कथन द्रष्टव्य है कि ` सूरदास से पहले ब्रज के लोक- गीतकारों एवं संगीतज्ञों के गायनों में भाषा और भाव का जो रूप था, वह उच्च साहित्य के लिये नगण्य था। स्वयं सूरदास ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से जिन गेय पदों का निर्माण किया, वे ही परवर्ती भक्त कवियों को प्रेरणा के स्रोत सिद्ध हुए। इस प्रकार उन्होंने ब्रजभाषा के गेय काव्य की एक परंपरा प्रचलित की थी। उन्होंने पदों के साथ ही साथ दोहा, रोला, चौपाई, चौपई, दंडक, घनाक्षरी, सरसी आदि छंदों का भी गेय रूप में प्रयोग किया है। उन्होंने दोहा और रोला को तथा अन्य दो छंदों को मिलाकर एक अत्यन्त मनोहर काव्य-रूप निर्मित किया जिसका उपयोग बाद के अनेक कवियों ने भी किया है।[1] `

1- सूर- निर्णय - प्रभुदयाल मीतल एवं द्वारिकादास पारीख-पृ० 303-304 ।

इसके अतिरिक्त महाकवि सूर अपने पूर्ववर्ती कवियों - संस्कृत के जयदेव, मिथिला के विद्यापति एवं बंग- भाषा के चण्डीदास - के काव्य से प्रभावित तो अवश्य हुए, लेकिन उन्होंने इन कवियों के काव्य का कोरा अनुकरण नहीं किया । सूरदास ने जयदेव से संगीत - सरिता एवं कोमलकान्त पदावली का गौरव तो ग्रहण किया साथ में अपने कथन की विविधता भी उसमें समो दी, उन्होंने अपने राधा - कृष्ण को विद्यापति के राधा- कृष्ण की भाँति केवल साधारण नायक -नायिका तक ही सीमित नहीं रखा अपितु उन्हें (राधा- कृष्ण को) अलौकिक धरातल पर भी प्रतिष्ठित किया । इसी प्रकार चण्डीदास के काव्य में राधा- कृष्ण के विशुद्ध प्रेम का दर्शन तो होता है किन्तु उसमें सूरदास की सी लीला- भावना का अभाव है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सूर- काव्य की परम्परा पूर्ववर्ती कवियों की देन नहीं है वरन् वह सूरदास की स्वतंत्र उद्भावना एवं मौलिकता से निर्मित हुई है ।

कृष्ण - काव्य परम्परा में स्थान -

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में कृष्णाश्रित काव्य- मन्दाकिनी निरन्तर प्रवाहित होती चली आ रही है। (इस शोध प्रबंध में `तृतीय - परिच्छेद ` में कृष्ण काव्य धारा के विकास क्रम का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है, जिससे ज्ञात होता है कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल, मध्यकाल रीतिकाल एवं आधुनिक काल ने अपने परिवेश के अनुकूल ही कृष्ण के व्यक्तित्व एवं चरित को ढाला है ।)

विद्यापति ने मैथिल भाषा के अन्तर्गत कृष्ण की प्रेममयी माधुर्य भावना को अपने गीतों में संजो कर कृष्ण को शृंगारदेव की संज्ञा प्रदान की तो मध्यकाल में सूर, तुलसी, मीरां, रसखान आदि कवियों ने विभिन्न आचार्यों एवं सम्प्रदायों की प्रेरणा पा कर अपनी पावन- भक्ति भावना के माध्यम से कृष्ण को भक्तिदेव बना दिया । इन मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन या विश्लेषण करना ही उनका उद्देश्य नहीं

था, वे तो कृष्ण को परब्रह्म एवं लीला पुरुषोत्तम मान कर उनकी भक्ति में निमग्न हो कृष्ण लीला सम्बन्धी पद गाते हुये आनन्द - विभोर हो जाया करते थे। इस प्रकार मध्यकालीन कृष्ण- भक्त कवियों की रचनाओं में कृष्ण वात्सल्य, सख्य, दास्य, माधुर्य और शान्त भक्ति का आलम्बन बने। रीतिकाल में आकर कृष्ण-काव्य धारा का प्रवाह भक्ति की पुण्य भूमि को छोड़कर भौतिक विलास एवं ऐश्वर्य की ओर प्रवाहित होने लगा। कृष्ण भक्तिदेव से पुनः शृंगारदेव बन गये। लेकिन इस युग में भी कृष्ण-काव्य- धारा, भक्ति- भावना से पूर्णतः मुक्त नहीं हुई। कवि ग्वाल, घनानन्द, नागरीदास, हितवृन्दावनदास आदि कितने ही ऐसे कवि हुए जिन्होंने कृष्ण- भक्ति में लीन होकर काव्य रचना की। फिर भी, रीतिकालीन साहित्य में कृष्ण का शृंगारिक रूप ही अधिक मुखर रहा। रीतिकाल के अचल पर रस की धाराएं बही, और उमड़ कर बही, लेकिन एक पत्थर ऐसा था, जो अपनी जगह पर अड़ा रहा, लहरें उससे आ आ कर टकराती रही, वह भीगा अवश्य, पर डूबा नहीं- वह थे गुरु गोबिन्दसिंह। - गुरु गोबिन्दसिंह ने भौतिक ऐश्वर्य एवं घोर शृंगारिकता में डूबे कृष्ण- काव्य को भक्ति एवं शक्ति का समन्वयात्मक रूप प्रदान कर उसे एक नया मोड़ दिया। उनके कृष्ण भक्ति एवं शक्ति का साकार रूप हैं। गुरु जी के `कृष्णावतार` में कृष्ण वीरदेव की उपाधि से विभूषित हुये। आधुनिक काल में कृष्ण- काव्य में बौद्धिकता का समावेश भी हुआ और वीरता का भी। इस युग में कृष्ण भावदेव बन गये।

इस प्रकार कृष्ण काव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता हैकि हिन्दी-कृष्ण- काव्य - परम्परा का लिखित एवं परिमार्जित रूप सूरदास के उपरान्त ही प्राप्त होता है। सूरदास के परवर्ती कृष्ण भक्त कवियों ने उनके अनुसरण पर ही कृष्ण भक्ति के अन्तर्गत शृंगार एवं वात्सल्य पूर्ण भावों का समावेश किया। इस दृष्टि से सूरदास कृष्ण काव्य-धारा के प्रवर्तक कहे जाते हैं।

सूर के काव्य में माधुर्य एवं सौन्दर्य के साथ भक्ति का जो आकर्षक रूप हमें मिलता है वैसा अन्यत्र कम ही उपलब्ध होता है। महाकवि ने कृष्ण के रूप-सौन्दर्य तथा उनकी क्रीड़ा स्थली- ब्रज, यमुना, मधुवन तथा गोप- गोपियों आदि के प्रति जन मानस में जो श्रद्धा एवं विश्वास जागृत किया है वैसा कोई अन्य कवि नहीं कर सका। इस सन्दर्भ में कृष्ण काव्य-धारा के अन्य कवि महाकवि सूर के चिर-ऋणी हैं क्योंकि उन्होंने अपने गीतों द्वारा कृष्ण में रूप माधुर्य का जो अद्भुत रूप आध्यात्मिकता से आवृत्त कर जनता के सामने रखा, उसी ने वास्तव में जनमानस को अपनी आकृष्ट किया है और यही कारण है कि मनीषि सूर को कृष्ण- काव्य- धारा का प्रतिनिधि कवि मानते हैं ।

सूर प्रमुख रूपसे भावुक भक्त कवि हैं। लेकिन सूर- साहित्य की भाव- भूमि वस्तुपरक होते हुये भी आत्मपरक है। सूर वास्तव में भगवान के लीला- गान के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति ही करना चाहते थे । इसीलिये ही वे अपने काव्य में भक्ति के साथ परमात्मा की शक्ति एवं लोकधर्म रक्षक स्वरूप का समन्वय नहीं कर सके। परन्तु सूर का सा वात्सल्य- वर्णन, वियोग वर्णन,राधा- कृष्ण के प्रेम का स्वाभाविक वर्णन तथा भावों की मौलिकता एवं मनोवैज्ञानिकता सूर को छोड़ कर अन्य किसी भी कृष्ण- भक्त कवि के काव्य में देखने को नहीं मिलती । इस प्रकार साहित्यिक उत्कर्ष एवं मौलिकता की दृष्टि से सूर सर्वोपरि हैं।

सूर वस्तुत: वात्सल्य एवं शृंगार के ही कवि कहे जाते हैं। उन्होंने पुरुष होते हुये भी माता का हृदय पाया था । भक्ति- भाव में विह्वल होकर के यशोदा के नेत्रों के माध्यम से ही कृष्ण की बाल छवि निहारा करते थे ।

वास्तव में कृष्ण- काव्य- परम्परा में कृष्ण भक्त कवि अपने इष्टदेव कृष्ण की केवल बाल-लीला एवं यौवन लीला का ही गान करते रहे और इसके लिये उन्होंने गीत एवं मुक्तक का ही आश्रय लिया । कृष्ण- काव्य में राम- काव्य की तरह प्रबन्धात्मकता नहीं मिलती । वास्तव में कृष्ण भक्त कवि कृष्ण के लोकरंजक रूप को ले कर ही आगे बढ़े । सूर के काव्य में भी कृष्ण के लोकरंजक रूप एवं मुक्तक-

काव्य का सुन्दर एवं परिमार्जित रूप देखने को मिलता है।

भक्ति- साधना के सर्वोच्च उत्कर्ष के साथ ही ` सूरसागर ` में संगीत लिला भी प्रवाहित हुई है। सूरदास जी ने जो कुछ भी लिखा, सब संगीत के स्व में बंधा है । ` सूरसागर ` में महाकवि सूर का अभिप्रेत रससिक्त भावों को ही अधिकाधिक विस्तार देना रहा है। यही कारण है कि उसमें कथा को अग्रसर करने की चेष्टा हमें दिखाई नहीं देती । प्रबन्ध- काव्य में मुख्यत: जीवन का बाह्य रूप चित्रित किया जाता है और कवि स्वतंत्र उसमें जन - जीवन की मनोरम झांकी प्रस्तुत करता है। परिणामत: प्रबन्ध काव्य में लोकरंजन का तत्व अपेक्षाकृत कम और आदर्श तथा लोकहित आदि के तत्व प्रधान होते हैं। सूरसागर में आत्मपरक दृष्टिकोण ही प्रधान है। इसमें कृष्ण का चरित्र वैविध्य नहीं मिलता । श्रीमद् - भागवत के भू- भार उतारने वाले असुर- निकंदन कृष्ण, गीता के योगीराज और महाभारत के राजनीति- विशारद कृष्ण ` सूरसागर ` में नंदनंदन, मनमोहन, नटवर, मुरलीमनोहर जनमनरंजन, राधा- वल्लभ रसिकशिरोमणि हैं। लोक- रक्षा, मर्यादा और आदर्श संस्थापक के स्थान पर रसावतार श्री कृष्ण की रास- लीला वर्णन में आत्मानंद की प्राप्ति ही यहां कवि का साध्य प्रतीत होता है।

गुरु गोबिन्दसिंह का ` कृष्णावतार ` एक उत्कृष्ट प्रबन्ध - रचना है । राम- कथा पर तो प्रबन्ध - काव्यों की परम्परा प्राचीन है लेकिन कृष्ण- काव्य - परम्परा में केवल आधुनिक काल में ही कुछ प्रबन्धकाव्यों की रचना हुई है। इस दृष्टि से ` कृष्णावतार ` ब्रज भाषा में कृष्ण के जीवन को लेकर लिखा जाने वाला, उस युग का सम्भवत: सर्वप्रथम प्रबन्ध काव्य है। ` कृष्णावतार ` के कृष्ण केवल लीला- हेतु ही अवतीर्ण नहीं हुए अपितु दुष्ट- दमन ही उनका मुख्य उद्देश्य है। डा० जयभगवान गोयल लिखते हैं :- ` सम्भवत: हिन्दी के कृष्ण- काव्य में यह पहला ग्रन्थ है जिसमें कृष्ण के युद्धों का इतनी विशदता और विस्तार से वर्णन किया गया है। सम्भवत: पहली बार इसी रचना में कृष्ण एक असुर- संहारक, धर्म- संस्थापक, धर्मवीर एवं युद्धवीर लोक रक्षक के रूप में चित्रित हुये हैं । कृष्ण के इतने विशद, व्यापक चरित्र को लेकर लिखा जाने वाला भी सम्भवत: यह पहला और अकेला प्रबन्ध

21)

है । ब्रज के कृष्ण- भक्त कवियों ने तो उसके रसेश्वर रूप की रसिक लीलाओं में ही रस लिया है, वे उनकी युद्धवीरता से उत्साहित नहीं हुए । ` कृष्णावतार ` की रचना युद्धोत्साह प्राप्त करने के लिये ही की गई थी ।[1] `

वास्तव में ` कृष्णावतार ` की रचना के पीछे अन्य कृष्ण भक्त कवियों की भांति गुरु जी का उद्देश्य भक्ति- भाव का प्रचार अथवा कृष्ण की लीलाओं के गान के माध्यम से लोकरंजन करना नहीं था । गुरु जी तो तत्कालीन समाज में आत्म- गौरव का निर्माण करना चाहते थे, जिसके लिये उन्होंने जनता में उत्साह लाने के लिये प्राचीन संस्कृति एवं आदर्शों की प्रतिष्ठा को आवश्यक समझा और शक्ति- संचार के लिये अवतार- कथाओं का आश्रय लिया ।

आज तक कृष्ण- भक्त कवियों ने कृष्ण को गोपीवल्लभ राधावल्लभ, रसिक शिरोमणि, माखनचोर, एवं अपनी मधुर लीलाओं से तथा वेणु- वादन से सम्पूर्ण वायुमण्डल को रस-सिक्त करने वाले कोमल एवं माधुर्ययुक्त रूप में ही देखा और दिखाया था। सूर के कृष्ण भी इसका अपवाद न थे । लेकिन गुरु गोबिन्दसिंह ने कृष्ण को माखनचोर, रसिकेश्वर एवं राधावल्लभ के साथ- साथ वीर एवं योद्धा रूप में भी देखा।

वस्तुत: गुरु गोबिन्दसिंह के लिये तो कंस, जरासंध आदि असुर अत्याचारी मुगल शासकों के प्रतीक थे ।

गुरु जी के कृष्ण के केवल योद्धा रूप का ही नहीं उनके बाल एवं युवा रूप का भी मनोरंजक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। ` कृष्णावतार ` के कुल 2392 छन्दों में से लगभग 500 छन्दों में तो कृष्ण के बाल रूप का ही चित्रण हुआ है इस दृष्टि से डा० संसारचन्द्र के विचार दर्शनीय हैं - - ` गुरु गोबिन्दसिंह जी द्वारा वर्जित कृष्ण बाल- लीला की तुलना सूर से करने पर दो तथ्य स्पष्ट होते हैं। एक यह कि गुरु जी द्वारा इन बाल- लीलाओं में सूर का तनिक भी अनुकरण नहीं किया गया। उनके सभी चित्र सर्वथा नवीन और मौलिक हैं। दूसरा यह कि भले ही उनके चित्र मात्रा में कम हैं किन्तु बाल- मनोविज्ञान में शैशव सुलभ चपलता और किशोर- अठखेलियां - इन सभी की दृष्टि से वे कम महत्वपूर्ण नहीं हैं । उन्हें

1. वीर कवि दशमेश, डॉ. जय भगवान गोयल, पृ० 12.

बाल- मनोविज्ञान के पारखी के रूप में यद्यपि सूर के समक्ष प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता, तथापि उनके काव्य में एक ऐसी नवीनता, सहज ऋजुता एवं सुचारुता सन्निहित है जो उन्हें कृष्ण बाल- लीला के अमर गायकों में एक विशिष्ट स्थान दिलाने के लिये पर्याप्त है।[1] `

इसके अतिरिक्त ` कृष्णावतार ` के विरह - खण्ड ` का भी अपना ही एक महत्व है। ` इस विरह- खण्ड का सर्वाधिक वैशिष्ट्य एवं मौलिकता उस बात में है जो हिन्दी - कृष्ण चरित्र में सदैव उपेक्षित रही है। माता यशोदा तथा प्रेमिका गोपियों के विलाप और विरह पर कृष्ण- साहित्य में उक्तियों का अभाव नहीं। परन्तु मां और प्रेमिका के अतिरिक्त भी एक व्यक्ति है जो वियोग की पीड़ा से पीड़ित होता है परन्तु मुंह से बहुत कम बोलता है और वह है पिता। गुरु - गोबिन्दसिंह जी ने बाबा नन्द की मन:स्थिति का परिचय देने वाले कुछ पद लिखे हैं जो अपनी मार्मिकता और मौलिकता में हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है।[2] `

प्रस्तुत प्रबन्ध में अन्य रसों के होते हुये भी प्रचुरता वीर- रस की ही है। वास्तव में गुरु जी के जीवन एवं काव्य का एक ही लक्ष्य था - ` धर्म युद्ध `। क्योंकि उन्हें युद्ध करना था अत्याचारी शासकों से, तथाकथित सन्तों एवं पाखण्डियों से, उन्हें युद्ध करना था मानवता की रक्षा के लिये रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से। इसीलिये ही ` कृष्णावतार ` में भी उनका यही उद्देश्य ` धर्म युद्ध की चाह ` ही सर्वत्र परिलक्षित होता है।

अत: हम डॉ० गोयल के शब्दों में कह सकते हैं - ` वस्तुत: ` कृष्णावतार ` के कथानक में विविध मानवीय मनोवेगों की व्यंजना हुई है। उसमें सम्बद्धता भी है

1- परिशोध(अंक 5) गुरु गोबिन्दसिंह के काव्य में -) डॉ० संसारचन्द्र- पृ० 4 ।
कृष्ण-बाल-लीला - वर्णन -)

2- गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता - डॉ० महीपसिंह - पृ० 163 ।

और सन्तुलन भी । प्रवाह भी है और विविधता भी । उस में बाल्य- जीवन का चांचल्य, कैशोर्य की अल्हड़ता यौवन की मस्ती और - प्रौढ़ता का उद्दीप्त कर्म - सौन्दर्य है। उसमें रुक्मिणि - कृष्ण तथा सुभद्रा- अर्जुन के विवाहों जैसे रोचक प्रसंगों का भी वर्णन है और प्राकृतिक दृश्यों तथा जन्म एवं विवाहोत्सवों के वर्णन से भी गरिमायुक्त है। कृष्ण की रसमय लीलाओं एवं उत्साहपूर्ण कर्मण्यता के साथ कथानक अग्रसर होता है ।[1] `

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ` कृष्णावतार ` का कृष्ण- काव्य - परम्परा में नवीन रूप से योगदान है। गुरु जी ने कृष्ण के परम्परा से चले आ रहे लोकरंजक एवं माधुर्य पूर्ण चरित्र में वीरता का समावेश कर कृष्ण- काव्य- धारा को एक नया मोड़ दिया । गुरु जी ने कृष्ण को समाज सुधारक एवं धर्म- संस्थापक के रूप में चित्रित किया । इस दृष्टि से गुरु जी ने हिन्दी कृष्ण- काव्य- परम्परा को एक नया सम्प्रदाय दिया जिसे ` वीर - सम्प्रदाय ` का नाम दिया जा सकता है । गुरु जी के परवर्ती आधुनिककालीन कवियों ने भी सम्भवत: गुरु जी की प्रेरणा पाकर ही अपने कृष्ण- काव्य में कृष्ण को समाज सुधारक का रूप दिया है।

कृष्ण का ` पूर्णावतार ` रूप तो वस्तुत: ` कृष्णावतार ` में ही देखने को मिलता है ।

लेकिन खेद तो इस बात का है कि इतना महत्व रखते हुये भी गुरु जी कृत ` कृष्णावतार ` अभी तक कृष्ण- काव्य- परम्परा में कोई स्थान नहीं पा सका है। कदाचित् इसका कारण ` गुरुमुखी लिपि का अल्प प्रचार ही रहा हो।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूरदास और गुरु गोबिन्दसिंह दोनों ही कृष्ण- काव्य - परम्परा में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। दोनों का

1- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य - डॉ0 गोयल - पृष्ठ 72 ।

महत्व ही अक्षुण्ण है। एक ने यदि हमें कृष्ण के माध्यम से मनोरंजन प्रदान किया तो दूसरे ने रक्षा का विश्वास दिलाया ।

सूरदास के कृष्ण- काव्य का उद्देश्य संसार के प्रति अनुरक्ति की भावना को अभिव्यक्त कर कृष्ण- प्रेम में लीन हो जाना है जबकि गुरू जी के ` कृष्णावतार ` का उद्देश्य शत्रुओं का संहार कर धर्म की स्थापना करना है। ` कृष्णावतार ` का युद्ध- वर्णन केवल नर संहार नहीं अपितु दुष्टों का विनाश करने के लिये समस्त राष्ट्र को प्रेरणा देना है।

विगत परिच्छेदों में सूरदास एवं गुरू गोबिन्दसिंह की जीवनी, रचना, काव्य-कला , भक्ति- पद्धति और दार्शनिक- विचारों का विश्लेषण कर हम जान चुके हैं कि दोनों परम भागवत एवं उत्तम कोटि के कवि हैं । दोनों ने ही ` श्रीमद्भागवत ` को ही अपने कृष्ण- काव्य का आधार बनाया है। पर सूरसागर की अपेक्षा ` कृष्णावतार ` में भागवत के असुर- निकंदन ` कृष्ण का सजीव चित्रण हुआ है।

दोनों कवियों की रचनाओं के बाह्य रूप में परिस्थिति जन्य एवं स्वतंत्र - प्रवृत्ति के कारण अन्तर होने पर भी अभ्यान्तर दृष्टि से दोनों में समानता है। मानव-कल्याण के महान आदर्श दोनों के मूल में विद्यमान है।

सूरदास ने कृष्ण के बाल एवं युवा रूप का सुन्दर चित्रण किया है तो गुरू जी ने बाल एवं युवा रूप की झाँकी प्रस्तुत करते हुये उनके योद्धा रूप को प्रमुखता दी है। इस प्रकार यदि दोनों के कृष्ण काव्य को एक साथ देखा जाय तो कृष्ण का एक अत्यन्त सुन्दर, उत्कृष्ट, माधुर्यपूर्ण, मनोरंजक,उत्साहवर्धक, ओजपूर्ण,राजनीति कुशल योद्धा रूप हमारे सामने प्रस्तुत होता है जो कृष्ण- काव्य को अत्यन्त महत्व प्रदान करता है। सूर ने कृष्ण जीवन के पूर्वार्द्ध और गुरू जी ने उत्तरार्द्ध को प्रमुखता दी है इस प्रकार कृष्ण के ` पूर्णावतार ` का चित्र प्रस्तुत करने में दोनों कवि एक दूसरे के पूरक हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कृष्ण- काव्य- परम्परा में महाकवि सूरदास को भक्त - शिरोमणि का स्थान प्राप्त है और गुरू गोबिन्दसिंह जी को धार्मिक नेता का ।

उपसंहार

उपसंहार

भारतीय संस्कृति और साहित्य में कृष्ण का चरित्र अत्यन्त प्राचीन है। कृष्णाख्यान हमें साहित्य में कई रूपों में दिखाई देता है। लिखित एवं मौखिक रूप से दृष्टिपात करने से ज्ञान, राग और कर्म की तीन मानवीय प्रधान मानसिक वृत्तियों के प्रतिनिधि के रूप में कृष्ण के दर्शन हमें होते हैं। योगी धर्मात्मा का रूप जिसकी चरम परिणति गीता में मिलती है, ललित मधुर गोपाल का रूप जो श्रीमद्भागवत और परवर्ती काव्य में तथा वीर राजनयिक का रूप जो महाभारत के युद्ध के सन्धि - विग्रह प्रसंगों में प्रकट होता है, क्रमश: ज्ञान, राग और कर्म का प्रतिनिधित्व करता है। श्री कृष्ण का यह रूप प्रारम्भ से आज तक कवियों की वाणी से जन- मानस तक पहुंचता रहा है। हिन्दी- साहित्य के भक्ति काल में तो कृष्ण के चरित्र ने साकार ब्रह्म के रूप में कवियों को इतना अधिक प्रभावित किया कि उनकी लेखनी अधिकांशत: कृष्णमय हो गई।

महाकवि सूर भक्तिकाल के कृष्ण भक्त कवियों में अग्रगण्य माने जाते हैं तो रीतिकाल में गुरू गोबिन्दसिंह भक्ति और शक्ति के समन्वित रूप को अपने में संजोये हुये एक विलक्षण व्यक्तित्व के अधिकारी हैं। कवि अपने समय से प्रभावित होता है यह एक ध्रुव सत्य है। इसी कारण किसी भी युग की परिस्थितियों का अध्ययन उस युग की विचारधारा को समझने के लिये एक प्रबलतम साधन माना जाता है।

महाकवि सूर 15 वीं- 16 वीं शती की एक अद्भुत देन है। उनके जन्म के समय देश की राजनीतिक अवस्था अस्त व्यस्त थी। विदेशी आक्रान्ता अपनी विजय के अहं में निरीह हिन्दु जनता को कुचल रहे थे। अकबर के शासनकाल में जो कुछ सान्त्वना उन्हें प्राप्त हुई थी उसी के परिणामस्वरूप हिन्दी के कृष्णभक्त कवि तन्मय होकर कृष्ण की लीलाओं का गान करने लगे। सामाजिक रूप में भी साधारण जनता की

2)

स्थिति उस समय दयनीय थी और देश की बिगड़ती हुई सामाजिक दशा को सुधारने के लिये स्वामी रामानन्द आदि धर्माचार्यों ने प्रशंसनीय प्रयत्न किये । धर्म के क्षेत्र में विविध आचार्यों ने अपने- अपने मतों द्वारा हिन्दु - धर्म और भारतीयता की रक्षा के लिये उल्लेखनीय कार्य किया । निर्गुणोपासक सन्तों ने भी जातिगत और धर्मगत भेद के स्थान पर मानवोत्थान पर बल दिया । गेय पद शैली उस समय की साहित्यिक- परम्परा की बन गई थी । इन सबने सूर को प्रभावित किया ।

गुरू गोबिन्दसिंह के समय में अकबर द्वारा प्रस्थापित राजनीतिक शान्ति पूरी तरह नष्ट हो चुकी थी। औरंगज़ेब ने देश भर में धर्म- परिवर्तन की नीति अपना रखी थी। हिन्दु राजा अपने गौरव को भूल चुके थे । समाज शासक और शासित के रूप में विभाजित था और धर्म को अधर्म करना ही उस युग का सबसे बड़ा धर्म था । अन्धविश्वास एवं रूढ़ियां व्यक्ति को आगे नहीं बढ़ने दे रही थी । कविगण भी राधा- कन्हाई के सुमिरन का बहाना कर घोर श्रृंगार में डूब रहे थे । ऐसे समय में कुछेक कवि ही अनाचार का विरोध करते हुये भारतीयता की रक्षा करने में सन्नद्ध थे ।

कृष्ण भारतीय संस्कृति में लीला पुरुषोत्तम के रूप में स्वीकृत हैं, अनुराग, कोमल,ता, कलात्मकता आदि के भावपूर्ण स्त्रोत कृष्ण वेदों में मंत्रद्रष्टा हैं। महाभारत में धर्म के संस्थापक के रूप में हमें उनके दर्शन होते हैं । पुराणों में आ कर वे भावात्मक स्वरूप को ग्रहण कर लेते हैं । कृष्ण- भक्ति का सर्वांग सम्पूर्ण ग्रन्थ श्रीमद्भागवत है । भागवत पुराण को श्री कृष्ण की वेणु की ध्वनि आप्लावित किये है। प्राकृत- भाषा में भी कृष्ण का उल्लेख प्रेमी गोपाल के रूप में हुआ है । संस्कृत साहित्य के दृश्य और श्रव्य दोनों ही रूपों में भी कृष्ण को नायकत्व मिला है और जयदेव के कृष्ण - वर्णन ने परवर्ती साहित्य को जितना प्रभावित किया है , वह स्पष्ट ही है ।

हिन्दी- साहित्य को अन्य अनेक धाराओं की भांति कृष्ण काव्य धारा भी परम्परा से प्राप्त हुई है । विद्यापति पर जयदेव का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत

3)

होता है । उनके समकालीन अन्य कवियों ने भी जो कृष्ण लीला का गान किया है उसमें समग्रत: कृष्ण की प्रेम कथा ही अंकित होती रही है । शंकरदेव विष्णुदास, नामदेव आदि अनेक कवियों ने भी कृष्ण को अपने काव्य का नायक बनाकर काव्य - जगत् में अमरता प्राप्त कर ली। हिन्दी- साहित्य के भक्ति काल में निम्बार्क, चैतन्य, वल्लभ, राधा- वल्लभ एवं हरिदासी सम्प्रदायों में भी कृष्ण के चरित्र के विविध पक्षों में से कुछेक पक्षों को अपना कर आराध्य के रूप में उपासना प्रारम्भ हो गई । वल्लभ- सम्प्रदाय में दास्यवत्सल, सख्य तथा माधुर्य - भक्ति को अधिक महत्व दिया गया । इन विविध सम्प्रदायों के अनुयायियों के अतिरिक्त मीरां, रसखान, नरोत्तम- दास आदि कवियों ने भी कृष्ण लीला का गान करके प्रसिद्धि प्राप्त की । रीतिकाल में कृष्ण नायक तो रहे किन्तु तत्कालीन कवियों ने उनके भक्ति के बाने को उतार कर शृंगार के रस में सराबोर कर दिया । शृंगार की इस वेगवती रस- धारा से कोई भी कवि बचा नहीं रह सका किन्तु एक शिलाखण्ड ऐसा था, जो इस रस- धारा से भीगा तो अवश्य पर डूबा नहीं, उन्नत ही बना रहा । और वह शिला खण्ड थे - गुरू गोबिन्दसिंह जो शृंगार काल में उत्पन्न होकर भी प्रमुखत: वीर- रस के कवि ही रहे, गुरू जी ने अपने कृष्णकाव्य के नायक कृष्ण को शृंगार की पीठिका से कहीं ऊपर ले जाकर वीरदेव के आसन पर आसीन किया । सम्भवत: हिन्दी- साहित्य में प्रथम बार कृष्ण गुरू जी के ` कृष्णावतार ` में ही युद्धवीर, धर्मवीर, कुशल राजनीतिज्ञ एवं लोक रक्षक के रूप में प्रस्तुत हुये । गुरू गोबिन्दसिंह के पश्चात् आधुनिक काल में भी कतिपय कृष्ण- भक्त कवियों ने कृष्ण के इसी वीर रूप को ही उजागर किया है अत: हमें यह मानना ही होगा कि गुरू जी ने परम्परा से चली आ रही कृष्ण -काव्य- धारा को एक नया मोड़ दिया जिससे प्रभावित होकर उनके परवर्ती कवियों ने भी कृष्ण के इसी लोकरक्षक रूप को अपनाया । इस प्रकार गुरू जी को कृष्ण- काव्य- परम्परा के एक नवीन सोपान, जिसे ` वीर- सम्प्रदाय ` की संज्ञा दी जा सकती है, का प्रवर्तक कहा जा सकता है । हिन्दी- कृष्ण - काव्य परम्परा को गुरू गोबिन्दसिंह की यह

4)

देन, अमूल्य एवं अद्वितीय है । आधुनिक काल में कृष्ण का चरित्र मानवता के अधिक निकट आ गया है । देवत्व के स्थान पर कर्मयोगी लोक- नायक के रूप में श्रीकृष्ण एक युग- पुरूष हैं जिनका चित्रण अपने - अपने भावानारूप विविध कवियों ने किया है ।

महाकवि सूर कृष्ण लीलाओं के अमर नायक माने जाते हैं। वे वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे और अष्टछाप के प्रमुख कवि थे । पुष्टिमार्गीय अनुग्रह के लिये वे आयु - पर्यन्त कृष्णलीलाभिमुख रहे । बाल आदि लीलाओं के वर्णन में उनका कोई सानी नहीं । सूरसागर, साहित्य- लहरी और सूर- सारावली में आपके पद संगृहीत हैं ।

गुरू गोबिन्दसिंह भारतीय साहित्य, संस्कृति तथा इतिहास में एक सूरत अनेक दर्शन के रूप में प्रसिद्ध हैं। सिक्ख सम्प्रदाय की दशम ज्योति यद्यपि निर्गुण निराकार की उपासक थी परन्तु उसने सगुण साकार की कभी अवहेलना नहीं की । गुरू जी कृत ` दशमग्रन्थ ` हिन्दी - काव्य- माला की अमूल्य मणि है जिसकी रचना उत्तर मध्य युग के जिस वातावरण में हुई उस समय हिन्दी- काव्य- धारा लोक - जीवन से सर्वथा विच्छिन्न होकर रीति और श्रृंगार की सरणियों में प्रवाहित हो रही थी । हिन्दी- काव्य की इस एकांगिता को विविधता में परिणत करने का श्रेय यदि उस युग की किसी काव्यकृति को है तो वह है - दशम ग्रन्थ । दशम ग्रन्थ विविध - विषयों एवं - उर्मियों का एक आकर्षक एवं पावन संगम स्थल है जिसमें धर्म, दर्शन, समाज और संस्कृति आदि के विभिन्न तत्वों का सुन्दर समाहार है। वस्तुत: गुरू जी के व्यक्तित्व में शौर्य और विनय, शक्ति और भक्ति, धर्म और योग, ज्ञान और व्यवहार तथा कर्तव्य एवं त्याग का विलक्षण संयोग था । गुरू जी एक युग- पुरुष थे जिन्होंने धर्म गुरू , राजनैतिक नेता, वीर एवं कुशल योद्धा तथा सजग साहित्यकार के रूप को सहज ही अपने व्यक्तित्व में समो लिया था । ` कृष्णावतार ` भी इसी प्रखर व्यक्तित्व की बहुमुखी साधना का ही सुफल है । दशम ग्रन्थ में संकलित ` चौबीस अवतार कथा ` के अन्तर्गत कृष्णावतार- कथा प्रसंग सबसे बड़ा है और प्रबन्धात्मक रूप में कृष्ण- काव्य- धारा

में एक अनूठी कृति है ।

किसी भी एक धारा के दो कवि, भले ही वो एक युग के ही क्यों न हों, एक सा दृश्य अंकित नहीं कर पाते । फिर जब बीच में समय का व्यवधान भी हो तो कुछ अन्तर आ जाना स्वाभाविक ही है । इस कालान्तर के होते हुये भी कहीं न कहीं उनका काव्यधारा एक होता है । जिस प्रकार तना एक होता है और ऊपर की शाखायें भिन्न आकार एवं प्रकार की तथा दूर- दूर होती हैं । इसी कारण विशेष से ही हम एक ही काव्यधारा के दो कवियों में तुलना करते समय साम्य एवं वैषम्य दृष्टिगत होता है । वर्ण्य- वस्तु के अन्तर्गत दोनों कवियों ने युग की मांग के अनुरूप एक अन्तर के साथ अपने भावों को व्यक्त किया है। सूर जहां कोमल वत्सलता को ले कर चलते हैं वहां गुरू गोबिन्दसिंह वीर- रस पूर्ण दृश्यों में अपना मन अधिक रमा पाये हैं । बाल - कृष्ण के सुमधुर रूप का तो दोनों ही कवियों ने बहुत सुन्दर, स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। गुरू जी के बाल- वर्णन के चित्र भले ही सूर के बाल- चित्रों से मात्रा में अत्यल्प हैं किन्तु मनोवैज्ञानिकता एवं सहजता की दृष्टि से यदि वे सूर से आगे नहीं तो पीछे भी नहीं हैं। सूर के बाल-वर्णन के चित्रों की अत्याधिकता का कारण सम्भवत: यह भी है कि सूर तो वर्णन करने बैठे हैं अत: वे अपने भावावेश में एक ही विषय को ले कर अनेकों पद कह डालते हैं जबकि गुरू जी कथा कह रहे हैं जिसमें सीमा एवं मर्यादा का होना अनिवार्य है। और फिर गुरू जी स्वयं योद्धा थे। उनके पास साहित्य रचना के लिये समय का अभाव भी तो था । फिर भी गुरू जी ने कृष्ण को लेकर जो 2492 छन्दों का प्रबन्ध काव्य लिखा उसमें से लगभग 500 छन्द केवल कृष्ण के बाल रूप को लेकर ही लिखे गये हैं। किशोरावस्था में श्री कृष्ण मित्र, शिष्य, प्रेमी और पति के रूप में दिखाई देते हैं। रसिक शिरोमणि श्री कृष्ण के प्रेमी रूप का चित्रण सूर ने बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। लोक नायक के रूप में कृष्ण की स्थापना करने में गुरू जी को अधिक सफलता मिली है। दुष्ट- दलन- प्रवृत्ति का चित्रण महाकवि सूर की अपेक्षा गुरू -

गोबिन्दसिंह अधिक सबल, सहज एवं सक्षम रूप से कर गये हैं। लेकिन वात्सल्य एवं शृंगार के वर्णन में वे सूर से आगे नहीं जा पाये । कृष्ण काव्य के अन्य पात्रों का चित्रण भी दोनों के काव्य में उपलब्ध है जिसमें यशोदा, नंद गोपियां एवं बलराम का रूप- चित्रण ही प्रमुख रूप से मिलता है। गुरू जी के कृष्ण काव्य में बाबा नंद का विरह- वर्णन भी उपलब्ध है जो सूर के काव्य में नहीं मिलता । इसके अतिरिक्त गुरू जी ने रुक्मणि एवं प्रद्युम्न आदि का वर्णन भी अपने कृष्ण -.काव्य में किया है। गुरू जी ने उद्धव के ब्रज आने, गोपियों को सान्त्वना देने एवं गोपियों के विरह तथा कृष्ण को संदेश भेजने का वर्णन तो विस्तृत रूप से किया है लेकिन उसमें भ्रमर का उल्लेख नहीं और ना ही इस विरह- वर्णन को ` भ्रमरगीत ` का नाम दिया गया है । महाकवि सूर भ्रमरगीत - परम्परा में भी अपना सानी नहीं रखते । सूर ने अपने भ्रमरगीत में गोपी- उद्धव संवाद के माध्यम से निर्गुण पर सगुण की विजय दिखाई है । गुरू जी ने भी गोपी- उद्धव संवाद के माध्यम से प्रेमाभक्ति का महत्व प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त गुरू जी ने `बारहमासा ` का वर्णन किया है जो सूर - काव्य में उपलब्ध नहीं होता । प्रकृति के सहज एवं स्वाभाविक रूप का चित्रण दोनों कवियों ने किया है लेकिन इस दृष्टि से सूर गुरू गोबिन्दसिंह को पीछे छोड़ गये हैं ।

दर्शन भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। महाकवि सूर और गुरू गोबिन्दसिंह दोनों ही मूलत: दार्शनिक नहीं थे किन्तु दोनों की रचनाओं में सन्दर्भानुसार दार्शनिक विषयों की चर्चा अवश्य हुई है। सूरदास जी वल्लभ- सम्प्रदाय में दीक्षित थे अत: उन के काव्य में वल्लभाचार्य जी के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव परिलक्षित होता है । गुरू गोबिन्दसिंह जी ने पूर्ववर्ती सिक्ख- गुरुओं के सिद्धान्तों को अपने काव्य में स्थान दिया है । दोनों ही परब्रह्म के साकार तथा निराकार दोनों रूपों का वर्णन किया है ।उस की कृपा से ही भक्त उसे प्राप्त कर सकते हैं। उसके अनेकों नाम हैं और उस घट- घट व्यापि विश्वमूर्ति के विराट् रूप का वर्णन दोनों ही कवियों ने किया है। जीव ब्रह्म का

7)

अंश है। अंश और अंशी वाले भाव को दोनों ही कवियों ने स्वीकार किया है। आत्मा अजर एवं अमर है। माया के कारण जीव अपने आपको भूल जाता है और इस संसार जन्य दुखों से प्रभावित हो जाता है। सृष्टि की उत्पत्ति वही ब्रह्म करता है और वही इसका पालन कर्ता है। महाकवि सूर और गुरु गोबिन्दसिंह दोनों ही इस बात को स्वीकार करते हैं। माया का वर्णन महाकवि सूर ने गुरु गोबिन्द से अधिक किया है। पर जहां तक ईश्वर से विमुख करने वाले रूप का प्रश्न है, उस अज्ञान रूपी माया की कल्पना दोनों ही कवियों ने की है। गुरु जी के काव्य में ` काल ` भी ईश्वर का प्रतीक है। इस का विस्तृत विवेचन करने में सूर गुरु गोबिन्दसिंह से पीछे रह जाते हैं। दोनों विवेच्य कवियों ने ही प्रभु की भक्ति द्वारा ` मुक्ति ` को सुलभ बताया है।

श्रीकृष्ण का चरित्र लीलाओं से परिपूर्ण है। उनका रूप सौन्दर्य साकार ब्रह्म के रूप में सर्वोत्कृष्ट है और उस परम सौन्दर्य रूप के प्रति साधारण- जन का मोहित हो जाना स्वाभाविक है। इसी दृष्टि से कृष्ण- काव्य में प्रमुखत: शृंगार रस का ही परिपाक हुआ है। संयोग शृंगार के अन्तर्गत श्री कृष्ण की विविध लीलाओं की गान परिपाटी को जितनी सुन्दरता व सहजता से महाकवि सूर चित्रित कर पाये हैं उतना गुरु गोबिन्दसिंह नहीं। पर, फिर भी कृष्णावतार - कथा में इसका अभाव नहीं है विप्रलम्भ - शृंगार शृंगार की पूर्ति है। उसकी विविध अवस्थाएं उसको पुष्ट करने में सहायक होती हैं। दोनों ने ही बहुत स्वाभाविक रूप में इसका वर्णन किया है। दोनों विवेच्य कवि धर्म सम्प्रदायों में दीक्षित थे इसलिये भक्ति को दोनों ही साधन मान कर चले हैं। नवधा- भक्ति का वर्णन दोनों ही कवियों ने किया है। महाकवि सूर ने अपने काव्य में जहां, पुष्टिमार्गीय सेवा पर बल दिया है वहां गुरु गोबिन्दसिंह ने प्रेमाभक्ति को अपनाया है।

कलापक्ष के अन्तर्गत काव्य की रचना शैली का विश्लेषण होता है। ` सूरसागर ` वृहद् काव्य(4936 पद) होते हुये भी मुक्तक है जबकि ` कृष्णावतार कथा ` (2492 छन्द) एक प्रबन्ध के रूप में हमारे सामने आती है। गुरु गोबिन्दसिंह की यही

विशिष्टता है कि कृष्ण- काव्य में प्रबन्धात्मकता के अभाव को दूर करने का उन्होंने सफल प्रयास किया है । ` सूरसागर ` गीति- काव्य की कोटि में आता है। शृंगार और भक्ति की प्रधानता होते हुये भी अन्य रसों का यथा स्थान वर्णन दोनों ही कवियों ने किया है। सूर यदि करुण- रस के कुशल चितेरे हैं तो वीर एवं रौद्र रस के वर्णन में गुरु गोबिन्दसिंह आगे बढ़ जाते हैं । भयानक और वीभत्स - रस- वर्णन में भी गुरु गोबिन्दसिंह सूर से आगे हैं। महाकवि सूर छन्द- वैविध्य में अपनी गायकता के कारण अधिक चातुर्य नहीं दिखा पाए जबकि ` कृष्णावतार - कथा ` में सवैये की प्रमुखता होते हुए भी कवित्त, दोहा, चौपाई, छप्पय, सोरठा, झूलना आदि छन्दों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया गया है। वर्णन- शैली प्रधान कृष्ण - कथा में गेय-पद और दृष्टिकूट शैली को भी सूर ने अपनाया है जबकि गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी पूर्ववर्ती और सम सामयिक सभी शैलियों को अपना कर अपनी कुशलता का परिचय दिया है । अलंकारों का भावानुकूल प्रयोग दोनों कवियों की समान विशेषता है । भाषा विन्यास की दृष्टि से भावानुरूप शब्दों का प्रयोग करने में दोनों कवि चतुर हैं। गुरु - गोबिंदसिंह के काव्य में अभिधा की प्रधानता है एवं लक्षणा का भी उन्होंने अच्छा प्रयोग किया है जबकि महाकवि सूर शब्द की तीनों शक्तियों का प्रयोग करने में चतुर हैं। गुरु गोबिन्दसिंह का काव्य ओजगुण प्रधान है और सूर का काधुर्य गुण प्रधान है। इसके साथ ही मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग प्रसंगानुकूल दोनों ही कवियों ने किया है ।

कोई भी कवि अपने महान उद्देश्य के कारण ही महान कहलाता है । महा-कवि सूरदास और गुरु गोबिन्दसिंह दोनों ने अपने काव्य के माध्यम से सम-सामयिक जन- मानस को जो सन्देश दिया है वह मानव- कल्याण की महत्ती- भावना से सम्पृक्त है । जहां महाकवि सूर कृष्ण - लीला का गान पुष्टिमार्गीय अनुग्रह की प्राप्ति के लिए करते हैं। इस प्रकार लोक- कल्याण का महान सन्देश ही दोनों कवियों का अभिप्रेत रहा है ।

किसी भी काव्य- परम्परा में किसी कवि को क्या स्थान दिया जाये, इस

लिये हमें समग्र - रूप से विचार करना होता है। कृष्ण काव्य धारा में कई कवि हैं और सब ने अपने युग के अनुरूप कृष्ण के चरित्र को अपने काव्य का विषय बनाया है। कुछ कवि ऐसे भी होते हैं जो अपनी महत्ता से पूर्ववर्ती स्थापनाओं से हट कर ऐसी स्थापनाएं स्थापित करते हैं जो परवर्ती साहित्यकारों को एक नई ही दिशा दे देती हैं। महाकवि सूर एक भक्त थे और गुरू गोबिन्दसिंह एक धार्मिक नेता। महाकवि सूर की साध्य थी भक्ति और साधन थी कविता जबकि गुरू गोबिन्दसिंह साहित्यकार के साथ-साथ अत्याचारों से जूझते हुये कुशल सेना नायक भी थे। इसीलिये सूर को जहां भागवत की कृष्ण- लीलाओं ने अधिक मोहा है वहां गुरू - गोबिंदसिंह को गीता का अमर सन्देश देने वाले शस्त्रधारी एवं कर्मयोगी कृष्ण के सिद्धान्तों ने आकृष्ट किया है। गुरू जी का व्यक्तित्व गीता के कर्मयोग का जीता- जागता चित्र है। अत: उनके काव्य में धर्म - युद्ध की ओर प्रेरित करने वाले कृष्ण का योद्धा रूप ही अधिक उजागर हुआ है जबकि सूरदास की भक्ति- भावना ही उनके काव्य में अधिक मुखरित हुई है। कृष्ण काव्य की श्रीवृद्धि के लिये एक ने गेय पद रचे तो दूसरे ने प्रबन्धात्मकता का रूप अपनाया। फिर भी, हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि बाह्य रूप में भले ही दोनों में अन्तर हो परन्तु आभ्यान्तर दृष्टि से मानव- कल्याण का महान आदर्श दोनों में ही समान था। एक भक्त था तो दूसरा धार्मिक नेता एवं योद्धा था और इन दोनों के मिल कर कृष्ण का जो रूप प्रस्तुत किया, वस्तुत: वही कृष्ण के ` पूर्णावतार ` को चरितार्थ करता है। सूर के बाल- गोपाल एवं रसिक शिरोमणि कृष्ण ही गुरू जी के काव्य में प्रौढ़ता को प्राप्त कर लोक नायक वीर- योद्धा एवं नीति कुशल कृष्ण बन गये हैं और कृष्ण का यही समन्वित रूप ही मानवता का परिचायक बन आधुनिक काल के कवियों को भी प्रभावित कर रहा है। इस दृष्टि से दोनों ही कवि कृष्ण काव्य- धारा में समान रूप से उच्च पद के अधिकारी हैं।[1]

1- यह खेदपूर्ण बात है कि आज तक कृष्ण - काव्य-परम्परा में हम गुरू - गोबिन्दसिंह का नाम अनुपस्थित ही पाते हैं जबकि उनका ` कृष्णावतार ` ब्रज भाषा की एक अनमोल एवं अनुपम कृति तथा कृष्ण के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को लेकर लिखा जाने वाला प्रथम प्रबन्ध काव्य है। अत: ` कृष्णावतार ` को कृष्ण- काव्य परम्परा में उचित स्थान मिलना ही चाहिये।

सहायक - ग्रन्थ - सूची

सहायक ग्रन्थ सूची

अनुक्रम	पुस्तक	लेखक/सम्पादक	प्रकाशक	संस्करण
1-	अठारहवीं शताब्दी के ब्रजभाषा काव्य में प्रेमभक्ति	डॉ० देवीशंकर अवस्थी	अक्षर, प्रकाशन, दिल्ली ।	प्रथम, सन् 1968
2-	अष्टछाप परिचय	डॉ० प्रभुदयाल मीतल	अग्रवाल प्रेस, मथुरा ।	प्रथम,
3-	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय(दोनों भाग)	डॉ० दीनदयाल गुप्त	हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ।	प्रथम, संवत 2004 वि.
4-	अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन	मायारानी टंडन	हिन्दी साहित्य - भंडार, लखनऊ ।	प्रथम, सन् 1960
5-	अध्ययन और विचार	डॉ० इन्द्रपालसिंह	विश्वभारती-प्रकाशन, नागपुर ।	प्रथम, सन् 1969
6-	अवधी कृष्णकाव्य और उसके कवि	मुरारीलाल शर्मा	रंजन प्रकाशन, आगरा ।	प्रथम, सन् 1967
7-	आधुनिक मनोविज्ञान और सूर काव्य	डॉ० कमला आत्रेय	विभु प्रकाशन, साहिबाबाद ।	प्रथम, सन् 1976
8-	कूट काव्य: एक अध्ययन	रामधन शर्मा	नेशनल पब्लिशिंग-हाउस, दिल्ली ।	प्रथम, सन् 1963
9-	कृष्ण भक्ति काव्य	डॉ० जगदीश गुप्त	वसुमती, 38 जीरो-रोड, इलाहाबाद ।	प्रथम, सन् 1968
10-	कृष्ण काव्य में भ्रमर-गीत	डॉ० श्याम सुन्दरलाल-दीक्षित	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।	सन् 1958
11-	काव्य के रूप	गुलाबराय	प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली ।	सन् 1964

अनु०	पुस्तक	लेखक / सम्पादक	प्रकाशक	संस्करण
12-	काव्य - प्रदीप	श्री रामबहोरी शुक्ल	हिन्दी भवन, जलन्धर	सन् 1958
13-	गुरू गोबिन्दसिंह और उनका काव्य	डॉ० प्रसन्नी सहगल	हिन्दी साहित्य - भण्डार, लखनऊ ।	सन् 1965
14-	गुरू गोबिन्दसिंह एक युग-व्यक्तित्व	डॉ० महीप सिंह	उमेश प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली ।	सन् 1966
15-	गुरू गोबिंदसिंह और उन की हिन्दी कविता	डॉ० महीपसिंह	नैशनल पब्लिशिंग-हाउस, दरियागंज-दिल्ली-6 ।	सन् 1969
16-	गुरू गोबिंदसिंह जीवन और दर्शन	नारायण भक्त	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-7 ।	सन् 1969
17-	गुरू गोबिंदसिंह विचार-और चिन्तन	डॉ० जयभगवान गोयल	पंजाब यूनीवर्सिटी-पब्लिकेशन ब्यूरो, चण्डीगढ़ ।	
18-	गुरू गोबिंदसिंह का वीर काव्य	डॉ० जयभगवान गोयल	गुरु गोबिंदसिंह संस्थान ।	सन् 1966
19-	गुरू गोबिन्दसिंह का काव्य और दर्शन	डॉ० विनोद कुमार	भागी पब्लिशर्स, अम्बाला ।	सन् 1973
20-	गुरू शोभा(सेनापति)	डॉ० जयभगवान गोयल	पंजाब यूनीवर्सिटी - पब्लिकेशन ब्यूरो, चण्डीगढ़ ।	
21-	गुरमुखी लिपि में हिन्दी-साहित्य	डॉ० जयभगवान गोयल	हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-6 ।	सन् 1970
22-	गुरमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य	डॉ० हरिभजनसिंह	भारतीय साहित्य - मन्दिर, दिल्ली ।	सन् 1963
23-	गुरू गोबिंदसिंह के काव्य में भारतीय संस्कृति के तत्व	डॉ० धर्मपाल मैनी	लोक भारती, इलाहाबाद	सन् 1971-

अनु0	पुस्तक	लेखक ।सम्पादक	प्रकाशक	संस्करण
24-	दशम ग्रन्थ	गुरू गोबिंदसिंह	जवाहरसिंह, कृपालसिंह, अमृतसर ।	
25-	दशमग्रन्थ की पौराणिक पृष्ठभूमि	डॉ0 रत्नसिंह जग्गी	भारतीय साहित्य मन्दिर ।	सन् 1965
26-	दुष्टदमन श्री गुरू - गोबिंदसिंह जी	प्रो0 करतारसिंह	शिरोमणि गुरूद्वारा-प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर ।	सन् 1962
27-	पंजाब प्रांतीय हिन्दी-साहित्य का इतिहास	चन्द्रकान्त बाली	नेशनल पब्लिशिंग - हाउस, दिल्ली ।	सन् 1962
28-	ब्रजभाषा	डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दुस्तानी एकडमी, इलाहाबाद ।	सन् 1954
29-	ब्रज- साहित्य का - इतिहास	डॉ0 सत्येन्द्र	पंजाब हिन्दी साहित्य-एकडमी(रजि0)जलन्धर।	सन् 1961
30-	ब्रजबोली साहित्य	डॉ0 शैलेन्द्रमोहन झा	हरियाणा हिन्दी - ग्रन्थ एकडमी, चंडीगढ़	सन् 1976
31-	ब्रजभाषा के कृष्ण - भक्ति काव्य में अभि-व्यंजना शिल्प	डॉ0 सावित्री सिन्हा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।	सन् 1961
32-	भक्ति आन्दोलन का अध्ययन	डॉ0 रतिभानु सिंह नाहर	किताब महल, इलाहाबाद।	प्रथम
33-	भक्ति का विकास	डॉ0 मुंशीराम शर्मा	चौखम्बा विद्याभवन, बाराणसी ।	सन् 1958
34-	भक्ति काव्य में प्रकृति-चित्रण	डॉ0 सुखदेव	अभिनव प्रकाशन, वेस्ट-सीलमपुर, दिल्ली-31 ।	सन् 1974
35-	भक्ति कालीन कृष्णकाव्य- का अध्ययन	डॉ0 कृष्णदेव शर्मा	रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली- 6 ।	सन् 1973

अनु०	पुस्तक	लेखक ।सम्पादक	प्रकाशक	संस्करण
36-	भक्ति काव्य कवियों के काव्य- सिद्धान्त	डॉ० सुरेश चन्द्र गुप्त	आर्य बुक डिपो 30, करोलबाग, नई दिल्ली ।	सन् 1971
37-	भक्ति कालीन राम तथा कृष्ण काव्य की नारी भावना एक तुलनात्मक - अध्ययन	डॉ० श्यामबाला गोयल	विभु प्रकाशन, साहिबाद।	सन् 1976
38-	भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएं	परशुराम चतुर्वेदी	साहित्य भवन, प्रा०लि०, इलाहाबाद ।	सन् 1962
39-	भारतीय साधना और सूर-साहित्य	डॉ० मुंशीराम शर्मा	आ० शुक्ल साधना सदन, पटकापुर, कानपुर ।	संवत् 2013
40-	भारतीय दर्शन	डॉ० उमेश मिश्र	प्रकाशन ब्यूरो, सूचना-विभाग, उत्तर प्रदेश-सरकार, लखनऊ ।	सन् 1957
41-	मध्यकालीन धर्म-साधना	डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी	साहित्य भवन, प्रा० लि०, इलाहाबाद ।	सन् 1962
42-	मध्यकालीन संत साहित्य	डॉ० राम खेलावन - पाण्डेय	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी ।	सन् 1965
43-	मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण-काव्य में रूप- सौन्दर्य	डॉ० पुरुषोत्तम दास अग्रवाल	रोशनलाल जैन एण्ड सन्स, जयपुर ।	संवत् 2027 वि०
44-	मध्ययुगीन कृष्ण काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति	डॉ० हरगुलाल	भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली ।	सन् 1967
45-	मध्ययुग के भक्तिकाव्य में माया	डॉ० नन्दकिशोर तिवारी	शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद ।	सन् 1974
46-	मध्यकालीन प्रेम साधना	परशुराम चतुर्वेदी	साहित्य भवन, प्रा०लि०, इलाहाबाद ।	सन् 1952

अनु०	पुस्तक	लेखक ।सम्पादक	प्रकाशक	संस्करण
47-	महाकवि सूरदास	डॉ० सत्येन्द्र	दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नई दिल्ली ।	
48-	महाकवि सूरदास - जन्मभूमि और जीवन-परिचय	तोताराम शर्मा `पंकज`	विनोद पुस्तक मन्दिर- आगरा ।	संवत् 2015
49-	महाकवि सूरदास	आचार्य नंददुलारे वाजपेयी	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।	सन् 1958
50-	महाकवि सूरदास	जयकिशन प्रसाद - खण्डेलवाल	रविन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर ।	सन् 1972
51-	रसखान: भक्त और कवि	डॉ० लीलाधर वियोगी	सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली- 6 ।	सन् 1972
52-	रीतिकाल की भूमिका	डॉ० नगेन्द्र		
53-	रीतिकालीन साहित्य- की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	डॉ० शिवलाल जोशी	साहित्य सदन, देहरादून ।	सन् 1962
54-	रीतिकाल के प्रमुख प्रबन्ध-काव्य	डॉ० इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।	सन् 1963
55-	वाणी गुरु गोबिंदसिंह	डॉ० इन्द्रपालसिंह [illegible]	भाषा विभाग,पंजाब,	सन् 1963
56-	वैष्णव साधना और सिद्धान्त : हिन्दी - साहित्य पर उसका प्रभाव	डॉ० भुवनेश्वर नाथ मिश्र `माधव`	हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ- एकडमी, चण्डीगढ़ ।	सन् 1976
57-	वीर कवि दशमेश	डॉ० जयभगवान गोयल	पंजाब यूनी० पब्लिकेशन ब्यूरो,चण्डीगढ़ ।	प्रथम
58-	सन्त- साहित्य	सुदर्शनसिंह मजीठिया	रूप कमल प्रकाशन, दिल्ली ।	सन् 1962
59-	सन्त- साहित्य के प्रेरणा स्त्रोत	आचार्य परशुराम चतुर्वेदी	राज्यपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।	सन् 1975

अनु०	पुस्तक	लेखक ।सम्पादक	प्रकाशक	संस्करण
60-	संत काव्य का दार्शनिक विश्लेषण	डॉ० मनमोहन सहगल	भारतेन्दु भवन,चंडीगढ़	सन् 1965
61-	संस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिंह दिनकर	उदयाचल, पटना	सन् 1962
62-	सिख धर्म का सन्देश	प्रो० प्यारासिंह पद्म	शिरोमणि गुरुद्वारा कमेटी,अमृतसर ।	सन् 1950
63-	सिद्धान्त और अध्ययन	गुलाब राय	आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली ।	सन् 1965
64-	सूरदास	डॉ० हरवंश लाल शर्मा	राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।	सन् 1973
65-	सूरदास	डॉ० ब्रजेश्वर शर्मा	हिन्दी परिषद विश्व-विश्वालय, प्रयाग ।	सन् 1959
66-	सूरदास	दामोदरदास गुप्ता	हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली ।	सन् 1960
67-	सूरदास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	सरस्वती मन्दिर,बनारस	चतुर्थ
68-	सूर काव्य का सांस्कृतिक-मूल्यांकन	डॉ० प्रेमनारायण टंडन	हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ ।	सन् 1958
69-	सूर के कृष्ण:एक अनुशीलन	डॉ० शशि तिवारी	मिलिन्द प्रकाशन,हैदराबाद।	सन् 1968
70-	सूर की काव्य-साधना	डॉ० गोविन्दराम शर्मा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।	सन् 1970
71-	सूरकी काव्य- कला	डॉ० मनमोहन गौतम	भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली ।	सन् 1963
72-	सूर के सौ कूट	चुन्नीलाल शेष	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस ।	सन् 1956
73-	सूर की भाषा	डॉ० प्रेमनारायण टंडन	हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ ।	सन् 1957
74-	सूर की झांकी	डॉ० सत्येन्द्र	शिवलाल अग्रवाल,आगरा	सन् 1956
75-	सूर की गोपियां: एक मनोवैज्ञानिक विवेचन	श्रीमति प्रभारानी भाटिया	स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद	सन् 1970

अनु०	पुस्तक	लेखक ।सम्पादक	प्रकाशक	संस्करण
76-	सूरकी साहित्य-साधना	डॉ० भगवतस्वरूप मिश्र, विश्वम्भर ` अरुण `	शिवलाल अग्रवाल एंड - कम्पनी, आगरा ।	सन् 1965
77-	सूर और उनका साहित्य	डॉ० हरवंशलाल शर्मा	भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ ।	सन् 1971
78-	सूर और उनका काव्य-वैभव	डॉ० मुंशीराम शर्मा	ग्रन्थम, कानपुर	सन् 1965
79-	सूर और भगवद्भक्ति	डॉ० मुंशीराम शर्मा	साहित्य भवन प्रा० लि० इलाहाबाद ।	सन् 1953
80-	सूर - दर्शन	कृष्णलाल हंस	रामनारायण लाल, बेनी माधव, इलाहाबाद।	सन् 1953
81-	सूर निर्णय	द्वारिकादास पारीख, प्रभुदयाल मीतल	साहित्य संस्थान,मथुरा	सन् 1963
82-	सूर- मीमांसा	डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा	ओरियंटल बुक डिपो, दिल्ली ।	सन् 1952
83-	सूर - संचयन	डॉ० मुंशीराम शर्मा	रवीन्द्र प्रकाशन,ग्वालियर आगरा ।	सन् 1967
84-	सूर- पूर्व ब्रजभाषा - और उनका साहित्य	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी ।	सन् 1958
85-	सूर- सागर(दोनों भाग)	डॉ० नंददुलारे वाजपेयी	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।	संवत् 2012 वि०
86-	सूर - सागर में लोक - जीवन	हरगुलाल	हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली ।	सन् 1967
87-	सूर- साहित्य	डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर लि०, बम्बई ।	सन् 1956
88-	सूर- साहित्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन	डॉ० प्रेमनारायण टंडन	हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ ।	सन् 1958
89-	सूर साहित्य की भूमिका	डॉ० रामरतन भटनागर और वाचस्पति त्रिपाठी	रामनारायण लाल, इलाहाबाद ।	सन् 1954
90-	सूर-साहित्य में पुष्टि-मार्गीय सेवा-भावना	डॉ० धर्मनारायण ओझा	शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद ।	सन् 1973
91-	सूर- सौरभ	डॉ० मुंशीराम शर्मा	शारदायन, कानपुर ।	सन् 1970

8)

अनु0	पुस्तक	लेखक । सम्पादक	प्रकाशक	संस्करण
92-	सूर- सुषमा	आचार्य नंददुलारे वाजपेयी	नागरी प्रचारिनी सभा, काशी ।	संवत्, 1970 वि·
93-	हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक - स्वरूप विकास	डॉ0 तपेश्वर नाथ	हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी ।	संवत्, 2027 वि·
94-	हिन्दी के श्रेष्ठ काव्यों का मूल्यांकन	डॉ0 यश गुलाटी	सूर्य प्रकाशन, दिल्ली।	सन्, 1973
95-	हिन्दी के कृष्णभक्ति कालीन- साहित्य में संगीत	डॉ0 उषा गुप्त	लखनऊ विश्वविद्यालय	संवत्, 2016 वि·
96-	हिन्दी के प्रतिनिधि कवि	डॉ0 सत्यदेव चौधरी	नागरी प्रचारिनी सभा, बाराणसी ।	संवत्, 2015
97-	हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि	डॉ0 द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।	सन् 1971
98-	हिन्दी के आधुनिक प्रति - निधि कवि	डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।	सन्, 1971
99-	हिन्दी के मध्यकालीन खण्ड- काव्य	डॉ0 सियारामतिवारी	हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली ।	सन्, 1964
100-	हिन्दी कृष्ण भक्ति - साहित्य में मधुरभाव की उपासना	डॉ0 पूर्णमासी राय	अभिनव भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।	सन्, 1974
101-	हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर पुराणों का प्रभाव	शशि अग्रवाल	हिन्दुस्तानी एकडमी, इलाहाबाद ।	सन्, 1961
102-	हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव	डॉ0 विश्वनाथ शुक्ल	भारत प्रकाशन, अलीगढ़ ।	सन्, 1966
103-	हिन्दी-साहित्य कोश(भाग- 1,2)	डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा	ज्ञानमण्डल लिमिटेड,	संवत् 2020 वि·
104-	हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास	डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी	अशरचन्द कपूर एण्ड सन्स, दिल्ली ।	सन्, 1964
105-	हिन्दी साहित्य का वृहत- इतिहास	डॉ0 नगेन्द्र	नागरी प्रचारिनी सभा, काशी ।	संवत् 2015 वि·

अनु0	पुस्तक	लेखक ।सम्पादक	प्रकाशक	संस्करण
106-	हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास(षोडशभाग)	म0प0 सहुल सांकृत्यायन, डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय	नागरी प्रचारिनी सभा, काशी ।	संवत् 2017 वे.
107-	हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास	- डॉ0 ग्रियर्सन,अनु0 किशोरीलाल गुप्त	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी ।	प्रथम
108-	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ0 लक्ष्मीसागर - वार्ष्णेय	महामना प्रकाशन, इलाहाबाद ।	सन्,1966
109-	हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त	भारतेन्दु भवन,चंडीगढ़ ।	सन्,1965
110-	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिनी सभा, वाराणसी ।	संवत् 2018
111-	हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास	- राजनाथ शर्मा	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।	सन्,1968
112-	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ0 रामकुमार वर्मा		
113-	हिन्दी और तेलगु के कृष्णकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन (सूर और पोतना के सन्दर्भ में)	डॉ0 एन0एस0 दीक्षणा- मूर्ति	हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ ।	सन्,1967
114-	हिन्दी और मलयालम में कृष्णभक्ति (तुलनात्मक अध्ययन)	के0 मास्करन नायर	राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली ।	सन्,1967
115-	हिन्दी साहित्य में कृष्ण	डॉ0 सरोजिनी कुलश्रेष्ठ	राज्यश्री प्रकाशन, मथुरा	प्रथम
116-	श्री गुरु ग्रंथ साहिब : एक परि चय	डॉ0 धर्मपाल मैनी	अनन्त भवन,फील्डगंज, लुधियाना ।	सन्, 1962
117-	श्री गुरु गोबिंदसिंह(महाकाव्य)	श्यामनारायण प्रसाद	राजधानी ग्रन्थागार, दिल्ली ।	सन्,1967

10)

अनु0	पुस्तक	लेखक। सम्पादक	प्रकाशक	संस्करण
118-	श्री गुरू गोबिंदसिंह जी तथा चण्डी दी वार	डॉ0 कालासिंह बेदी	पंजाबी बुक स्टोर, दिल्ली ।	प्रथम
119-	श्रीमद्भागवत गीता रहस्य	बालगंगाधर तिलक, अनु0 श्रीमाधवराय जी सप्रे	जयंत श्रीधर तिलक, पूना ।	सन्,1965
120-	अरविन्द - दर्शन	अनु0 जगन्नाथ विद्यालंकार		

आंगल - भाषा

1-	आउट लाईनज़ आफ - सिक्ख थाट	डॉ0 सुरेन्द्रसिंह कोहली	पंजाबी प्रकाशन टेदनगर, दिल्ली ।	सन्,1966
2-	ए शार्ट हिस्ट्री आफ दि सिक्खस(भाग-1)	श्रीतेजासिंह तथा श्री गंडासिंह	ओरियंटल लाग मैन लि0, बम्बई ।	सन्,1950
3-	ए शार्ट हिस्ट्री आफ दि सिक्खस	सर सैयद अब्दुल कादिर	प्रकाशक स्वयं,लाहौर	सन्,1920
4-	ट्रांसफारमेशन आफ सिक्खिज़म	डॉ0 गोकुल नारंग	न्यू बुक सोसायटी, लाहौर ।	सन्,1946
5-	द पोयट्री आफ दशम-ग्रन्थ	डॉ0 धर्मपाल आशता	अरूण प्रकाशन,नई दिल्ली	सन्,1969
6-	द सिक्ख रिलिजन(भाग-5)	एम0 ए0 मैकालिफ	एस0चान्द एण्ड क0,दिल्ली	सन्,1963
7-	हिस्ट्री आफ औरंगज़ेब	डॉ0 जे0 एन0 सरकार	एन0 सी0 सरकार एण्ड सन्ज़, कलकत्ता ।	सन्,1914

पत्र - पत्रिकायें

1- कल्याण(भक्ति अंक, संत अंक श्री कृष्णवचनामृतांक,

2- परिशोध(5) गुरू गोबिन्दसिंह विशेषांक

11)

3- परिशोध (6)
4- सप्तसिन्धु(कृष्ण काव्य विशेषांक) सन्, 1956
5- सप्तसिन्धु(वीर काव्य विशेषांक), सन्, 1956
6- धर्मयुग (साप्ताहिक)
7- साप्ताहिक हिन्दुस्तान
8- सरस्वती (दिसम्बर, 1968)
9- दि खालसा रिव्यू : गुरू गोबिन्दसिंह अंक
10- दि सिक्ख रिव्यू

-0-